मुंहमें रखता था जैसे कोई दवा खा रहा हो। इतनी ही रुचिसे वह घास भी खाता। विलासीने पूछा, क्या साग अच्छा नहीं ? गुड़ दूं ?

मनोहर—नहीं, साग तो अच्छा है।

विलासी—तो क्या भूख नहीं है ?

मनोहर—भूख क्यों नहीं है, खा तो रहा हूं।

विलासी—खाते तो नहीं हो, जैसे औंघ रहे हो। किसीसे कुछ कहा-सुनी तो नहीं हुई ?

मनोहर—नहीं, कहा-सुनी किससे होती ?

इतनेमें एक युवक कोठरीमें आकर खड़ा हो गया। उसका शरीर खूब गठीला हृष्टपुष्ट था, छाती चौड़ी और भरी हुई थी। आंखोंसे तेज झलक रहा था। उसके गलेमें एक सोनेका यंत्र था और दाहिनी बांहमें एक चांदीका अनन्त। यह मनोहरका पुत्र बलराज था।

विलासी—कहां घूम रहे हो, आओ खा लो, थाली परसूं ?

बलराजने धुएंसे आंखें मलते हुए कहा, काहे दादा, आज गिरधर महाराज तुमसे क्यों बिगड़ रहे थे ? लोग कहते हैं कि बहुत लाल-पीले हो रहे थे ?

मनोहर—कुछ नहीं, तुमसे कौन कहता था ?

बलराज—सभी लोग तो कह रहे हैं, तुमसे घी मांगते थे, तुमने कहा, मेरे पास घी नहीं है, बस इसीपर तन गये।

मनोहर—अरे तो कोई झगड़ा थोड़े ही हुआ। गिरधर महाराजने कहा, तुम्हें घी देना पड़ेगा, हमने कह दिया जब घी हो जायगा तब देंगे, अभी तो नहीं है। इसमें भला झगड़नेकी कौन सी बात थी ?

बलराज—झगड़ेकी बात क्यों नहीं है ? कोई हमसे क्यों घी मांगे ? किसीका दिया खाते हैं कि किसीके घर मांगने जाते हैं ? अपना तो एक पैसा भी नहीं छोड़ते, तो हम क्यों धौंस सहें ? न

हुआ मैं, नहीं तो दिखा देता। क्या हमको भी दुर्जन समझ लिया है?

मनोहरकी छाती अभिमानसे फूली जाती थी, पर इसके साथ ही यह चिन्ता भी थी कि कहीं यह कोई ऊधम न कर बैठे। बोला, चुपकेसे बैठकर खाना खा लो; बहुत बहकना अच्छा नहीं होता। कोई सुन लेगा तो वहां जाकर एककी चार जड़ आयेगा। यहां कोई अपना मित्र नहीं है।

बलराज—सुन लेगा तो क्या किसीसे छिपाके कहते हैं। जिसे बहुत घमंड हो आकर देख ले। एक-एकका सिर तोड़के रख दें। यही न होगा कैद चला जाऊंगा। इससे कौन डरता है? महात्मा गांधी भी तो कैद हो आये हैं।

विलासीने मनोहरकी ओर तिरस्कारके भावसे देखकर कहा, तुम्हारी कैसी आदत है कि जब देखो एक न एक बखेड़ा मचाये ही रहते हो। जब सारा गांव घी दे रहा है तब हम क्या गांवसे बाहर हैं? जैसे बन पड़ेगा देंगे। इसमें कोई अपनी हेठी थोड़े ही हुई जाती है? हेठा तो नारायणहीने बना दिया है। तो क्या अकड़नेसे ऊंचे हो जायंगे? थोड़ा-सा घी हांड़ीमें है, दो-चार दिनमें और बटोर लूंगी, जाकर तौल आना।

बलराज—क्यों दे आयें? किसीके दबैल हैं।

विलासी—नहीं, तुम तो लाट-गवर्नर हो। घरमें भूनी भांग नहीं, उसपर इतना घमण्ड!

बलराज—हम दरिद्र सही, किसीसे मांगने तो नहीं जाते?

विलासी—अरे जा बैठ, आया है बड़ा योधा बनके। ऊंट जबतक पहाड़पर नहीं चढ़ता तबतक समझता है मुझसे ऊंचा और कौन होगा? जमींदारसे बैर करके गांवमें रहना सहज नहीं है। (मनोहरसे) सुनते हो महापुरुष, कल कारिन्दाके पास जाके कह सुन आओ।

मनोहर—मैं तो अब नहीं जाऊंगा।

विलासी—क्या ?

मनोहर—क्यों क्या, अपनी खुशी है। जायें क्या अपने ऊपर तालियां लगवायें ?

विलासी—अच्छा, तो मुझे जाने दोगे ?

मनोहर—तुम्हें भी न जाने दूंगा। कारिन्दा हमारा कर ही क्या सकता है ? बहुत करेगा अपनी सिकमी खेत छुड़ा लेगा। न दो हल चलेंगे, एक ही सही।

यद्यपि मनोहर बढ़-बढ़कर बातें कर रहा था, पर वास्तवमें उसका इन्कार अब परास्त तर्कके समान था। यदि बिना दूसरों-की दृष्टिमें अपमान उठाये बिगड़ा हुआ खेल बन जाय तो उसे कोई आपत्ति नहीं थी। हां, वह स्वयं क्षमाप्रार्थना करनेमें अपनी हेठी समझता था। एक बार तनकर फिर झुकना उसके लिये बड़ी लज्जाकी बात थी। बलराजकी उद्दण्डता उसे शान्त करनेमें हानिके भयसे भी अधिक सफल हुई थी।

प्रातःकाल विलासी चौपाल जानेको तैयार हुई, पर न मनोहर साथ चलनेपर राजी होता था, न बलराज। अकेली जानेकी उसको हिम्मत न पड़ती थी। इतनेमें कादिरमियांने घरमें प्रवेश किया। बूढ़े आदमी थे, ठिगना डील, लम्बी दाढ़ी, घुटनेके ऊपर तक धोती, एक गाढ़ेकी मिरजई पहने हुए थे। गांवके नातेसे वह मनोहरके बड़े भाई होते थे। विलासीने उन्हें देखते ही थोड़ा-सा घूंघट निकाल लिया।

कादिरने चिन्तापूर्ण भावसे कहा, अरे मनोहर, कल तुम्हें क्या सूझ गयी ? जल्दी जाकर कारिन्दासाहेबको मना लो, नहीं तो फिर कुछ करते-धरते न बनेगी। सुना है, वह तुम्हारी शिकायत करने मालिकोंके पास जा रहे हैं। सुक्खू भी साथ जानेको तैयार है। नहीं मालूम, दोनोंमें क्या सांठ-गांठ हुई है।

विलासी—भाईजी, यह बूढ़े हो गये, लेकिन इनका लड़कपन अभी नहीं गया। कितना समझाती हूं, बस अपने ही मनकी

करते हैं। इन्हींकी देखादेखी एक लड़का है वह भी हाथसे निकला जाता है। जिससे देखो उसीसे उलझ पड़ता है। भला इनसे पूछा जाय कि जब सारे गांवने घीके रुपये लिये तो तुम्हें नाहीं करनेकी क्या पड़ी थी?

कादिर—इनकी भूल है, और क्या? दस रुपये हमें भी लेने पड़े, क्या करते? और यह कोई नयी बात थोड़े ही है? बड़े सरकार थे तब भी तो एक न एक बेगार लगी ही रहती थी।

मनोहर—भैया, तबकी बातें जाने दो। तब साल दो सालकी देन बाकी पड़ जाती थी। मुदा मालिक कभी कुड़की-बेदखली नहीं करते थे। जब कोई कामकाज पड़ता था तब हमको नेवता मिलता था। लड़कियोंके ब्याहके लिये उनके यहांसे लकड़ी, चारा और २५) बंधा हुआ था। यह सब जानते हो कि नहीं? जब यह अपने लड़कोंकी तरह पालते थे तो रैयत भी हंसी-खुशी उनकी बेगार करती थी। अब यह बातें तो गयीं, बस एक न एक पचड़ लगा ही रहता है। तो जब उनकी ओरसे यह कड़ाई है तो हम भी कोई मिट्टीके लोंदे थोड़े ही हैं?

कादिर—तबकी बातें छोड़ो, अब जो सामने है उसे देखो। चलो जल्दी करो, मैं इसलिये तुम्हारे पास आया हूं। मेरे बैल खेतमें खड़े हैं।

मनोहर—दादा, मैं तो न जाऊंगा।

बिलासी—इनकी चूड़ियां मैली हो जायंगी, चलो मैं चलती हूं।

कादिर और बिलासी दोनों चौपाल चले। वहां इस वक्त बहुतसे आदमी जमा थे। कुछ लोग लगानके रुपये दाखिल करने आये थे, कुछ घीके रुपये लेनेके लिये और कुछ केवल तमाशा देखने और ठकुरसुहाती करनेके लिये। कारिन्देका नाम गुलाम-गौसखां था। वह वृहदाकार मनुष्य थे, सांवला रंग, लम्बी दाढ़ी। चेहरेसे कठोरता झलकती थी। अपनी जवानीमें वह पलटनमें नौकर थे और हवलदारके दरजेतक पहुंचे थे। जब सीमाप्रान्त-

में कुछ छेड़छाड़ हुई तब बीमारीकी छुट्टी लेकर घर भाग आये और यहींसे इस्तीफा पेश कर दिया। वह अब भी अपने सैनिक जीवनकी कथायें मजे ले-लेकर कहते थे। इस समय वह तख्तपर बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। सुक्खू और दुखरन तख्तके नीचे बैठे हुए थे।

सुक्खूने कहा, हम मजूर ठहरे, हम घमण्ड करें तो हमारी भूल है। जमींदारकी जमीनमें बसते हैं, उसका दिया खाते हैं, उससे बिगड़ कर कहां जायंगे—क्यों दुखरन?

दुखरन—हां, ठीक ही है।

सुक्खू—नारायण हमें चार पैसे दें, दस मन अनाज दें तो क्या हम अपने मालिकोंसे लड़ें, मारे घमंडके धरतीपर पैर न रक्खें?

दुखरन—यही मद तो आदमीको खराब करता है। इसी मदने रावणको मिटाया, इसीके कारण जरासंध और दिरजोधन-का सर्वनाश हो गया। तो भला हमारी तुम्हारी कौन बात है?

इतनेमें कादिरमियां चौपालमें आये। उनके पीछे-पीछे बिलासी भी आयी। कादिरने कहा, खां साहेब, यह मनोहरकी घरवाली आयी है, जितने रुपये चाहें घीके लिये दे दें। बेचारी डरके मारे आती न थी।

गौसखांने कटु स्वरमें कहा, वह कहां है मनोहर, क्या उसे आते शरम आती थी? बिलासीने दीनतापूर्वक कहा, सरकार, उनकी बातोंका कुछ खयाल न करें। आपकी गुलामी करनेको मैं तैयार हूं।

कादिर—यों तो गऊ है, किन्तु आज न जाने उसके सिर कैसे भूत सवार हो गया। क्यों सुक्खू महतो, आजतक गांवमें किसी-ने उनकी लड़ाई सुनी है?

सुक्खूने बगलें झांकते हुए कहा, नहीं भाई, कोई झूठ थोड़े ही कह देगा?

कादिर—अब बैठा रो रहा है। कितना समझाया कि चलके खां साहेबसे कसूर माफ करा ले, लेकिन शरमसे आता नहीं है।

गौसखां—शर्म नहीं, शरारत है। उसके सिरपर जो भूत चढ़ा हुआ है उसका उतार मेरे पास है। उसे गरूर हो गया है।

कादिर—अरे खां साहेब, बिचारा मजूर गरूर किस बातपर करेगा? मूरख उजड्ड आदमी है, बात करनेका सहूर नहीं है।

गौसखां—तुम्हें वकालत करनेकी जरूरत नहीं। मैं अपना काम खूब जानता हूं। इस तरह दबने लगा तब तो मुझसे कारिन्दागरी हो चुकी। आज एकने तेवर बदले हैं, कल उसके दूसरे भाई शेर हो जायंगे। फिर जमींदारको कौन पूछता है? अगर पल्टनमें किसीने ऐसी शरारत की होती तो उसे गोली मार दी जाती। जमींदारसे आंखें बदलना खालाजीका घर नहीं है।

यह कहकर गौसखां टांगनपर सवार होने चले। बिलासी रोती हुई उनके सामने हाथ बांधकर खड़ी हो गयी और बोली, सरकार कहींकी न रहूंगी। जो डांड़ चाहे लगा दीजिये, जो सजा चाहे दीजिये, पर मालिकोंके कानमें यह बात न डालिये।

लेकिन खां साहेबने सुक्खू महतोको मत्थेपर चढ़ा लिया था। वह सूखी करुणाको अपनी कपट-चालमें बाधक नहीं बनाना चाहते थे। तुरन्त घोड़ेपर सवार हो गये और सुक्खूको आगे-आगे चलनेका हुक्म दिया। कादिर मियांने धीरेसे गिरधर महराजके कानमें कहा, क्या महाराज, बेचारे मनोहरका सत्यानास करके ही दम लोगे?

गिरधरने गौरवयुक्त भावसे कहा, जब तुम हमसे आंखें दिखाओगे तो हम भी अपनीसी करके रहेंगे। हमसे कोई एक अङ्गुल दबे तो हम उससे हाथभर दबनेको तैयार हैं। जो हमसे जौ भर तनेगा हम उससे गजभर तन जायंगे।

कादिर—यह तो पद ही है, तुम हम किसानोंसे दबने लगोगे तो तुम्हें कौन पूछेगा। मुदा अब मनोहरके लिये कोई राह निकालो।

उसका सुभाव तो जानते हो। गुस्सैल आदमी है, पहले बिगड़ जाता है, फिर बैठकर रोता है। बेचारा मिट्टीमें मिल जायगा।

गिरधर—भाई, अब तो तीर हमारे हाथसे निकल गया।

कादिर—मनोहरकी हत्या तुम्हारे ही ऊपर पड़ेगी।

गिरधर—एक उपाय मेरी समझमें आता है। जाकर मनोहर-से कह दो कि मालिकके पास जाकर हाथ पैर पड़े। वहां मैं भी कुछ कह सुन दूंगा। तुम लोगोंके साथ नेकी करनेका जी तो नहीं चाहता, काम पड़नेपर घिघिआते हो, काम निकल गया तो सीधे ताकते भी नहीं। लेकिन अपनी अपनी करनी अपने साथ है। जाकर उसे भेज दो।

कादिर और बिलासी मनोहरके पास गये। वह शङ्का और चिन्ताकी मूर्त्ति बना हुआ इसी रास्तेकी ओर ताक रहा था। कादिरने आते ही यहांका सब समाचार कहा और गिरधर महाराजका आदेश भी सुना दिया। मनोहर क्षणभर सोचकर बोला, वहां मेरी और भी दुर्गति होगी। अब तो सिरपर पड़ी ही है, जो कुछ होगा देखा जायगा।

कादिर—नहीं, तुम्हें जाना चाहिये। मैं भी चला चलूंगा।

मनोहर—मेरे पीछे तुम्हारी भी ले दे होगी।

बिलासीने कादिरको ओर अत्यन्त विनीत भावसे देखकर कहा, दादाजी, यह न जायंगे, मैं ही तुम्हारे साथ चली चलूंगी।

कादिर—तुम क्या चलोगी, वहां बड़े आदमियोंके सामने मुंह तो खुलना चाहिये?

बिलासी—न कुछ कहते बनेगा तो रो तो लूंगी।

कादिर—यह जाने देंगे?

बिलासी—जाने क्यों न देंगे, मैं इनसे कुछ मांगती हूं? इन्हें अपना बुरा भला न सूझता हो, पर मुझे तो सूझता है।

कादिर—तो फिर देर न करनी चाहिये, नहीं तो वह लोग पहलेसे ही मालिकोंका कान भर देंगे।

मनोहर ज्योंका त्यों मूरतकी तरह बैठा रहा। विलासी घरमें गयी, अपने गहने निकालकर पहने, चादर ओढ़ी और बाहर निकलकर खड़ी हो गयी। कादिरमियां संकोचमें पड़े हुए थे। उन्हें आशा थी कि अब भी मनोहर उठेगा, किन्तु जब वह अपनी जगहसे जरा भी न हिला तब वह धीरे धीरे आगे चले। विलासी भी पीछे-पीछे चली। पर रह रहकर कातर नेत्रोंसे मनोहरकी ओर ताकती जाती थी। जब वह गांवके बाहर निकल गये तो मनोहर कुछ सोचकर उठा और लपका हुआ कादिरमियांके समीप आकर विलासीसे बोला, जा, घर बैठ, मैं जाता हूं।

४

तीसरा पहर था। ज्ञानशंकर दीवानखानेमें बैठे हुए एक किताब पढ़ रहे थे कि कहारने आकर कहा, बाबू साहब पूछते हैं, के बजे हैं। ज्ञानशंकरने चिढ़कर कहा, जा कह दे, आपको नीचे बुलाते हैं। क्या सारे दिन सोते रहेंगे?

इन महाशयका नाम बाबू ज्वालासिंह था। ज्ञानशंकरके सहपाठी थे और आज ही इस जिलेमें डिप्टी कलेक्टर होकर आये थे। दोपहरतक दोनों मित्रोंमें बातचीत होती रही। ज्वालासिंह रातभरके जगे थे, सो गये। ज्ञानशंकरको नींद नहीं आयी। इस समय उनकी छातीपर सांपसा लोट रहा था। सबके सब बाजी लिये जाते हैं और मैं कहींका न हुआ? कभी अपने ऊपर क्रोध आता, कभी अपने पिता और चचाके ऊपर। पुराना सौहार्द्र द्वेषका रूप ग्रहण करता जाता था। यदि इस समय अकस्मात् ज्वालासिंहके पदच्युत होनेका समाचार मिल जाता तो शायद ज्ञानशंकरके हृदयको सच्ची शांति होती। वह इस क्षुद्र भावको मनमें न आने देना चाहते थे। अपनेको समझाते थे कि यह अपना अपना भाग्य है। अपना मित्र कोई ऊंचा पद पाये तो हमें प्रसन्न होना चाहिये; किन्तु उनकी विकलता इन सद्विचारोंसे न मिटती थी और बहुत

यत्न करनेपर भी परस्पर सम्भाषणमें उनकी लघुता प्रकट हो जाती थी। ज्वालासिंहको विदित हो रहा था कि मेरी सफलता इन्हें जला रही है। किन्तु यह सर्वथा ज्ञानशंकरकी ईर्षावृत्तिका ही दोष न था। ज्वालासिंहके बात-व्यवहारमें वह पहलेकी-सी स्नेहमय सरलता न थी, वरन् उसकी जगह एक अज्ञात सहृदयता, एक कृत्रिम वात्सल्य, एक गौरवयुक्त साधुता पायी जाती थी, जो ज्ञानशंकरके घावपर नमकका काम कर रही थी। इसमें सन्देह नहीं कि ज्वालासिंहका यह दुस्स्वभाव इच्छित न था, वह इतनी नीच प्रकृतिके मनुष्य न थे, पर अपनी सफलताने उन्हें उन्मत्त कर दिया था। इधर ज्ञानशकर इतने उदार न थे कि इससे मानव-चरित्रके अध्ययनका आनन्द उठाते।

कहारके जानेके क्षणभर पीछे ज्वालासिंह ऊपरसे उतर पड़े और बोले, यार बताओ क्या समय है? जरा साहबसे मिलने जाना है। ज्ञानशङ्करने कहा, अजी मिल लेना, ऐसी क्या जल्दी है!

ज्वालासिंह—नहीं भाई, एक बार मिलना जरूरी है, जरा मालूम तो हो जाय किस ढंगका आदमी है, खुश कैसे होता है।

ज्ञान—वह इस बातसे खुश होता है कि आप दिनमें तीन बार उसके द्वारपर नाक रगड़ें।

ज्वालासिंहने हंसकर कहा, यह तो कुछ मुश्किल नहीं, मैं पांच बार सिजदे किया करूंगा।

ज्ञान—और वह इस बातसे खुश होता है कि आप कायदे कानूनको तिलाञ्जलि दीजिये, केवल उसकी इच्छाको कानून समझिये।

ज्वालासिंह—ऐसा ही करूंगा।

ज्ञान—इनकमटैक्स बढ़ाना पड़ेगा, किसी अभियुक्तको भूल-कर भी छोड़ा तो बुरी तरह खबर लेगा।

ज्वाला—भाई, तुम बना रहे हो, ऐसा भला क्या होगा!

ज्ञान—नहीं, विश्वास मानिये, वह ऐसा ही विचित्र जीव है।

ज्वाला—तब तो उसके साथ मेरा निबाह कठिन है।

ज्ञान—ज़रा भी नहीं। आज आप ऐसी बातें कर रहे हैं? कलको उसके इशारोंपर नाचेंगे। इस घमंडमें न रहिये कि आपको अधिकार प्राप्त हुआ है, वास्तवमें आपने गुलामी लिखायी है, यहां आपको आत्माकी स्वाधीनतासे हाथ धोना पड़ेगा, न्याय और सत्यका गला घोटना पड़ेगा, यही आपकी उन्नति और सम्मानके साधन हैं। मैं तो ऐसे अधिकारपर लात मारता हूं। यहां तो अल्लाहताला भी आसमानसे उतर आयें और अन्याय करनेको कहें, तो उनका हुक्म न मानूं।

ज्वालासिंह समझ गये कि यह जले हुए दिलके फफोले हैं। बोले, अभी ऐसी डूनकी ले रहे हो, कलको नामजद हो जाओ तो यह बातें भूल जायें।

ज्ञानशंकर - हां, बहुत संभव है; क्योंकि मैं भी तो मनुष्य हूं, लेकिन संयोगसे मेरे इस परीक्षामें पड़नेकी कोई संभावना नहीं है और हो भी तो मैं आत्माकी रक्षा करना सर्वोपरि समझूं।

ज्वालासिंह गर्म होकर बोले, आपको यह अनुमान करनेका क्या अधिकार है कि और लोग अपनी आत्माका आपसे कम आदर करते हैं? मेरा विचार तो यह है कि संसारमें रहकर मनुष्य आत्माकी जितनी रक्षा कर सकता है उससे अधिकार उसे वंचित नहीं कर सकता। अगर आप समझते हों कि वकालत या डाक्टरी विशेष रूपसे आत्मरक्षाके अनुकूल हैं तो आपकी भूल है। मेरे चचासाहेब वकील हैं, बड़े भाईसाहेब डाक्टरी करते हैं, पर वह लोग केवल धन-कमानेकी मशीन हैं; मैंने उन्हें कभी सद्-असद्के झगड़ेमें पड़ते हुए नहीं पाया।

ज्ञानशंकर—यह चाहें तो अपनी आत्माकी रक्षा कर सकते हैं।

ज्वालासिंह —बस, उतनी ही जितनी कि एक सरकारी नौकर कर सकता है। वकीलको ही ले लीजिये, यदि वह विवेककी रक्षा करे तो रोटियां चाहे भले खाय, समृद्धिशाली नहीं हो

सकता। अपने पेशेमें उन्नति करनेके लिये उसे अधिकारियों-का कृपापात्र बनना परमावश्यक है और डाक्टरोंका तो जीवन ही रईसोंकी कृपापर निर्भर है। गरीबोंसे उन्हें क्या मिलेगा? द्वारपर सैकड़ों गरीब रोगी खड़े रहते हैं, लेकिन ज्यों किसी रईसका आदमी पहुंचा वह उनको छोड़कर फिटनपर सवार हो जाते हैं। इसे मैं आत्माकी स्वाधीनता नहीं कह सकता।

इतनेमें गौसखां, गिरधर महाराज और सुक्खूने कमरेमें प्रवेश किया। गौसखां तो सलाम करके फर्शपर बैठ गये, शेष दोनों आदमी खड़े रहे। लाला प्रभाशंकर बरामदेमें बैठे हुए थे। बोले, असामियोंको घीके रुपये बांट दिये?

गौसखां—जी हां, हुजूरके इकबालसे सब रुपये तकसीम हो गये, मगर इलाकेमें चन्द आदमी ऐसे सरकश हो गये हैं कि खुदाकी पनाह। अगर उनकी तंबीह न की गयी तो एक दिन मेरी इज्जतमें फर्क आ जायगा और क्या अजब है कि जानसे भी हाथ धोऊं।

ज्ञानशंकर—(विस्मित होकर) देहातमें भी यह हवा चली?

गौसखाने रोनी सूरत बनाकर कहा, हुजूर, कुछ न पूछिये, गिरधर महाराज भाग न खड़े हों तो इनकी जानकी खैरियत नहीं थी।

ज्ञान—उन आदमियोंको पकड़के पिटवाया क्यों नहीं?

गौस—तो थानेदार साहबके लिये थैली कहांसे लाता?

ज्ञान—अजी आप लोगोंको तो सैकड़ों हथकंडे मालूम हैं, किसीको शिकंजेमें कस लीजिये।

गौस—हुजूर मौरूसी असामी हैं। यह सब जमींदारको कुछ नहीं समझते, इनमें एकका नाम मनोहर है। २० बीघे जोतता है और कुल ५०) लगान देता है। आज उसी अराजीका किसी दूसरे असामीसे बन्दोबस्त हो सकता तो १००) कहीं नहीं गये थे।

ज्ञानशंकरने चचाकी ओर देखकर पूछा, आपके अधिकांश असामी दखलकार क्योंकर हो गये?

प्रभाशंकरने उदासीनतासे कहा, जो कुछ किया होगा इन्हीं कारिन्दोंने किया होगा, मुझे क्या खबर!

ज्ञानशंकर—(व्यंगसे) तभी तो इलाका चौपट हो गया!

प्रभाशंकरने झुंझलाकर कहा, अब तो भगवानकी दयासे तुमने हाथ पैर संभाले, इलाकेका प्रबन्ध क्यों नहीं करते?

ज्ञान—आपके मारे जब मेरी कुछ चले तब तो।

प्रभा–मुझसे कसम ले लो जो तुम्हारे बीचमें कुछ भी बोलूं। यह काम करते बहुत दिन हो गये, इसके लिये लोलुप नहीं हूं।

ज्ञान—तो फिर मैं भी दिखा दूंगा कि सुप्रबन्धसे क्या हो सकता है।

इसी समय कादिरखां और मनोहर आकर द्वारपर खड़े हो गये। गौसखांने कहा, हुजूर यह वही असामी है जिसका अभी मैं जिक्र कर रहा था।

ज्ञानशंकरने मनोहरकी ओर क्रोधसे देखकर कहा, क्यों रे, जिस पत्तलमें खाता है उसीमें छेद करता है? १००) की जमीन ५०) में जोतता है। उसपर जब थोड़ासा बल खानेका अवसर पड़ा तो जामेसे बाहर हो गया?

मनोहरकी जबान बन्द हो गयी। रास्तेमें जितनी बातें कादिरखांने सिखायी थीं वह सब भूल गयीं।

ज्ञानशंकरने उसी स्वरमें फिर कहा, दुष्ट कहींका, तू समझता होगा कि मैं दखलकार हूं, जमींदार मेरा कर ही क्या सकता है। लेकिन मैं तुझे दिखा दूं कि जमींदार क्या कर सकता है। तेरा इतना हियाव है कि तू मेरे आदमियोंपर हाथ उठाये?

मनोहर निर्बल क्रोधसे कांप और सोच रहा था। मैंने घीके रुपये नहीं लिए, यह कोई पाप नहीं है। मुझे लेना चाहिये था। दबाव भयसे नहीं, केवल इसलिये कि बड़े सरकार हमारे ऊपर दया रखते थे। उसे लज्जा आयी कि मैंने ऐसे दयालु स्वामीकी आत्माके साथ कृतघ्नता की; किन्तु इसका दंड गाली और अप-

मान नहीं है। उसका अपमानाहत हृदय उत्तर देनेके लिये व्यग्र होने लगा। किन्तु कादिरने उसे बोलनेका अवसर न दिया। बोला, हुजूर, हम लोगोंकी मजाल ही क्या है कि सरकारी आदमियोंके सामने सिर उठा सकें? हां, अपढ़ गंवार ठहरे, बातचीत करनेका सहूर नहीं है, उजड्डपनकी बातें मुंहसे निकल आती हैं। क्या हम नहीं जानते कि हुजूर चाहें तो आज हमारा कहीं ठिकाना न लगे। अब तो यही विनती है कि जो खता हुई उसको माफी दी जाय।

लाला प्रभाशंकरको मनोहरपर दया आ गयी, सरल प्रकृतिके मनुष्य थे। बोले, तुम लोग हमारे पुराने असामी हो, क्या नहीं जानते हो कि असामियोंपर सख्ती करना हमारे यहांका दस्तूर नहीं है? ऐसा ही कोई काम आ पड़ता है तो तुमसे बेगार ली जाती है और तुम हमेशा उसे हँसी खुशी देते रहे हो। अब भी उसी तरह निभाते चलो। नहीं तो भाई, अब जमाना नाजुक है, हमने तो भली बुरी तरह अपना निभा दिया, मगर इस तरह लड़कोंसे न निभेगी। उनका खून गर्म ठहरा, इसलिये अब संभलकर रहो, चार बातें सह लिया करो, जाओ फिर ऐसा काम न करना। घरसे कुछ खाकर तो चले न होगे। दिन भी चढ़ आया, यहीं खा पीकर विश्राम कर, दिन ढले चले जाना।

प्रभाशंकरने अपने निर्द्वन्द्व स्वभावके अनुसार इस मामलेको टालना चाहा, किन्तु ज्ञानशंकरने उनकी ओर तीव्र नेत्रोंसे देखकर कहा, आप मेरे बीचमें क्यों बोलते हैं? इसी नरमीने तो इन आदमियोंको शेर बना दिया है। अगर आप इस तरह मेरे कामोंमें हस्तक्षेप करते रहेंगे तो मैं इलाकेका प्रबन्ध कर चुका। अभी आपने वचन दिया है कि इलाकेसे कोई सरोकार न रखूंगा। अब आपको बोलनेका कोई अधिकार नहीं है।

प्रभाशंकर यह तिरस्कार न सह सके। सरोष होकर बोले, अधिकार क्यों नहीं है? क्या मैं मर गया हूं?

ज्ञानशंकर—नहीं, आपको कोई अधिकार नहीं है। आपने सारा इलाका चौपट कर दिया, अब क्या चाहते हैं कि जो बचा खुचा है उसे भी धूलमें मिला दें।

प्रभाशंकरके कलेजेमें चोट लग गयी। बोले, बेटा, ऐसी बातें करके क्यों दिल दुखाते हो? तुम्हारे पूज्य पिता मर गये, लेकिन कभी मेरी बात नहीं दुलखी। अब तुम मेरी जबान बन्द कर देना चाहते हो, किन्तु यह नहीं हो सकता कि अन्याय देखा करूं और मुंह न खोलूं। जबतक जीवित हूं, तुम यह अधिकार मुझसे नहीं छीन सकते।

ज्वालासिंहने दिलासा दिया, नहीं साहब, आप घरके मालिक हैं, यह आपकी गोदके पले हुए लड़के हैं, इनकी अबोध बातोंपर ध्यान न दीजिये। इनकी भूल है जो कहते हैं कि आपका कोई अधिकार नहीं है। आपको सब कुछ अधिकार है, आप घरके स्वामी हैं।

गौसखांने कहा, हुजूरका फर्माना बहुत दुरुस्त है। आप खानदानके सरपरस्त और मुरब्बी हैं। आपके मन्सबसे किसे इनकार हो सकता है?

ज्ञानशंकर समझ गये कि ज्वालासिंहने मुझसे बदला ले लिया। उन्हें यह खेद न हुआ कि ऐसी अविनय मैंने क्यों की। खेद केवल यह था कि ज्वालासिंह यहां बैठे थे और उनके सामने वह असज्जनता नहीं प्रकट करना चाहते थे। बोले, अधिकारसे मेरा वह आशय नहीं था जो आपने समझा। मैं केवल यह कहना चाहता था कि जब आपने इलाकेका प्रबन्ध मेरे सुपुर्द कर दिया है तो मुझीको करने दीजिये। यह शब्द अनायास मेरे मुंहसे निकल गया। मैं इसके लिये बहुत लज्जित हूं, भाई ज्वालासिंह, मैं चचा साहबका जितना अदब करता हूं उतना अपने पिताका भी नहीं किया। मैं स्वयं गरीब असामियोंपर सख्ती करनेका विरोधी हूं। इस विषयमें आप मेरे विचारोंसे भलीभांति

परिचित हैं। किन्तु इसका यह आशय नहीं है कि हम दीन-पालनकी धुनमें इलाकेसे ही हाथ धो बैठें। पुराने जमानेकी बात और थी। तब जीवन-संग्राम इतना भयंकर न था, हमारी आव-श्यकताएं परिमित थीं, सामाजिक अवस्था इतनी उन्नत न थी और सबसे बड़ी बात तो यह है कि भूमिका मूल्य इतना चढ़ा हुआ न था। मेरे कई गांव जो दो-दो हजारपर बिक गये हैं, उनके दाम आज २०-२० हजार लगे हुए हैं। उन दिनों असामी मुश्किल-से मिलते थे, अब एक टुकड़ेके लिये सौ-सौ आदमी मुंह फैलाये हुए हैं। यह कैसे हो सकता है कि इस आर्थिक दशाका असर जमींदारपर न पड़े?

लाला प्रभाशंकरको अपने अप्रिय शब्दोंका बहुत दुःख हुआ। जिस भाईको वह देवतुल्य समझते थे उसीके पुत्रसे द्वेष करनेपर उन्हें बड़ी ग्लानि हुई, बोले, भैया, इन बातोंको तुम जितना सम-झोगे मैं बूढ़ा आदमी उतना क्या समझूंगा? तुम घरके मालिक हो। मैंने भूल की कि बीचमें कूद पड़ा। मेरे लिये एक टुकड़ा रोटीके सिवा और किसी चीजकी आवश्यकता नहीं है। तुम जैसे चाहो वैसे घरको संभालो।

थोड़ी देर तक सब लोग चुपचाप बैठे रहे। अन्तमें गौसखांने पूछा, हुजूर, मनोहरके बारेमें क्या हुक्म होता है?

ज्ञानशंकर—इजाफा लगानका दावा कीजिये।

कादिर—सरकार, बड़ा गरीब आदमी है, मर जायगा।

ज्ञानशंकर—अगर इसकी जोतमें कुछ सिकमी जमीन हो तो निकाल लीजिये।

कादिर—सरकार, बेचारा बिना मारे मर जायगा।

ज्ञानशंकर—उसकी परवा नहीं। असामियोंकी कमी नहीं है।

कादिर—हुजूर

ज्ञान—चुप रहो, मैं तुमसे हुज्जत नहीं करना चाहता।

कादिर—सरकार जरा

ज्ञान—बस, कह दिया कि जबान मत खोलो।

मनोहर अबतक चुपचाप खड़ा था। प्रभाशङ्करकी बातें सुनकर उसे आशा हुई थी कि यहां आना निष्फल नहीं हुआ। उनकी विनयशीलताने उसे वशीभूत कर लिया था। ज्ञानशंकरके कटु व्यवहारके सामने प्रभाशंकरकी नम्रता उसे देवोचित प्रतीत होती थी। उसके हृदयमें उत्कण्ठा हो रही थी कि अपना सर्वस्व लाकर इनके सामने रख दूं और कह दूं कि यह मेरी ओरसे बड़े सरकारकी भेंट है। लेकिन ज्ञानशंकरके अन्तिम शब्दोंने इन भावनाओंको पददलित कर दिया। विशेषतः कादिरमियांका अपमान उसे असह्य हो गया। तेवर बदलकर बोला, दादा, इस दरबारसे अब दया धर्म उठ गया। चलो भगवानकी जो इच्छा होगी वह होगा। जिसने मुंह चीरा है वह खानेको भी देगा। नहीं तो भीख, परदेश तो कहीं नहीं गया है।

यह कहकर उसने कादिरका हाथ पकड़ा और उसे जबरदस्ती खींचता हुआ दीवानखानेसे बाहर निकल गया। ज्ञानशङ्करको इस समय इतना क्रोध आ रहा था कि यदि कानूनका भय न होता तो वह उसे जीता चुनवा देते। अगर इसका कुछ अंश मनोहरको डांटने फटकारनेमें निकल जाता तो कदाचित् उसकी ज्वाला कुछ शान्त हो जाती, किन्तु अब उसे हृदयमें खौलनेके सिवा निकलनेका कोई रास्ता न था। उनकी दशा उस बालककी-सी हो रही थी जिसका हमजोली उसे दांत काटकर भाग गया हो। इस ज्ञानसे उन्हें शान्ति न होती थी कि मैं इस मनुष्यके भाग्यका विधाता हूं, आज इसे पैरोंतले कुचल सकता हूं। क्रोधको दुर्वचनसे विशेष रुचि होती है।

ज्वालासिंह मौनी बने बैठे थे। उन्हें आश्चर्य्य हो रहा था कि ज्ञानशङ्करमें इतनी दयाहीन स्वार्थपरता कहांसे आ गयी। अभी क्षण भर पहले यह महाशय न्याय और लोकसेवाका कैसा महत्वपूर्ण उल्लेख कर रहे थे। इतनी ही देरमें यह कायापलट!

विचार और व्यवहारमें इतना अन्तर! मनोहर चला गया तो ज्ञान-शङ्करसे बोले, इजाफा लगानका दावा कीजियेगा तो क्या उसकी ओरसे उज्रदारी न होगी? आप केवल असामीपर दावा नहीं कर सकते।

ज्ञानशंकर—हां, यह आप ठीक कहते हैं। खां साहब, आप उन असामियोंकी एक सूची तैयार कीजिये, जिनपर कायदेके अनुसार इजाफा हो सकता है। क्या हरज है लगे हाथ सारे गांव-पर दावा हो जाय?

ज्वालासिंहने मनोहरकी रक्षाके लिये यह शङ्का की थी। उसका यह विपरीत फल देखकर उन्हें फिर कुछ कहनेका साहस न हुआ। उठकर ऊपर चले गये।

५

एक महीना बीत गया, लेकिन गौसखांने असामियोंकी सूची न तैयार की और न ज्ञानशङ्करने ही फिर ताकीद की। गौसखांके सहित और स्वामिहितमें विरोध हो रहा था और ज्ञानशंकर सोच रहे थे कि जब इजाफेसे सारे परिवारका लाभ होगा तो मुझीको क्या पड़ी है कि बैठे बिठायें सिरदर्द मोल लूं। सैकड़ों गरीबोंका गला तो मैं दबाऊं और चैन सारा घर करे। वह इस सारे अन्याय-का भार अकेले ही उठाना चाहते थे, और लोग भी शरीक हों, यह उन्हें स्वीकार न था। अब उन्हें रात दिन यही दुश्चिन्ता रहती थी कि किसी तरह चचा साहबसे अलग हो जाऊं। यह विचार सर्वथा उनके स्वार्थानुकूल था। उनके ऊपर केवल तीन प्राणियोंके भरण-पोषणका भार था—आप, स्त्री और भावज। लड़का अभी दूध पीता था। इलाकेकी आमदनीका बड़ा भाग प्रभाशङ्करके काम आता था, जिनके तीन पुत्र थे, दो पुत्रियां, एक बहू, एक पोता और स्त्री पुरुष आप। ज्ञानशंकर अपने पिताके अविचार पर झुंझलाया करते। आजसे बीस साल पहले यह अलग हो गये होते तो आज हमारी दशा ऐसी खराब न होती,



चचाके सिर जो पड़ती उसे झेलते, खाते चाहे उपवास करते, हमसे तो कोई मतलब न रहता। बल्कि उस दशामें हम उनकी कुछ सहायता करते तो वह इसे ऋण समझते, नहीं तो आज भाड़ लीपकर हाथ काला करनेके सिवा और क्या मिला। प्रभाशङ्कर दुनिया देखे हुए थे, भतीजेका यह भाव देखकर दबते थे, असृदुल बातें सुनकर भी अनसुनी कर जाते। दयाशङ्कर उनकी कुछ सहायता करनेके बदले उलटे उन्हींके सामने हाथ फैलाते रहते थे, इसलिये दबकर रहनेहीमें उनका कल्याण था।

ज्ञानशङ्कर दम्भ और द्वेषके आवेगमें बहने लगे। एक नौकर चचाका काम करता तो दूसरेको खामखाह अपने किसी न किसी काममें उलझा रखते। इसी फेरमें पड़े रहते कि चचाके आठ प्राणियोंपर जितना व्यय होता है उतना मेरे तीन प्राणियोंपर हो। भोजन करने जाते तो बहुतसा खाना जूठा करके छोड़ देते। इतनेपर भी सन्तोष न हुआ तो दो कुत्ते पाले। उन्हें साथ बैठाकर खिलाते। यहांतक कि प्रभाशङ्कर डाक्टरके यहांसे कोई दवा लाते तो आप भी उतने ही मूल्यकी कोई औषधि अवश्य लाते, चाहे उसे फेंक ही क्यों न दें। इतने अन्यायपर भी चित्तको शांति न होती थी। चाहते थे कि महिलाओंमें भी वमचख मचे। विद्याकी शालीनता इन्हें नागवार मालूम होती, उसे समझाते कि तुम्हें अपने भले बुरेकी ज़रा भी परवा नहीं। मरदोंको इतना अवकाश कहां कि ज़रा ज़रा सी बातोंपर ध्यान रखें। यह स्त्रियोंका खास काम है, यहांतक कि इसी कारण उन्हें घरमें आग लगानेका दोष लगाया जाता है, लेकिन तुम्हें किसी बातकी सुधि ही नहीं रहती। आंखोंसे देखती हो कि घीका घड़ा लुढ़का जाता है, पर जबान नहीं हिलातीं। विद्यावती यह शिक्षा पाकर भी उसे ग्रहण न करती थी।

इसी बीचमें एक ऐसी घटना हो गयी, जिसने इस विरोधाग्निको और भी भड़का दिया। दयाशङ्कर यों तो पहलेहीसे अपने

थानेमें अन्धेर मचाये हुए थे, लेकिन जबसे ज्वालासिंह उनके इलाकेके मैजिस्ट्रेट हो गये थे तबसे तो वह पूरे बादशाह बन बैठे थे। उन्हें यह मालूम ही था कि डिप्टी साहब ज्ञानशङ्करके मित्र हैं। इतना सहारा मेलजोल पैदा करनेके लिये काफी था। कभी उनके पास चिड़ियां भेजते, कभी मछलियां, कभी दूध घी। स्वयं उनसे मिलने जाते तो मित्रवत् व्यवहार करते। इधर सम्मान बढ़ा तो भय कम हुआ, इलाकेको लूटने लगे। ज्वालासिंहके पास शिकायतें पहुंची, लेकिन वह लेहाज़के मारे न तो दयाशङ्करसे और न उनके घरवालोंहीसे इनकी कुछ चर्चा कर सके। लोगोंने जब देखा कि डिप्टी साहेब भी हमारी फ़रियाद नहीं सुनते तो हार मानकर चुप हो बैठे। दयाशङ्कर और भी शेर हुए। पहले दाव घात देखकर हाथ चलाते थे, अब निःशङ्क हो गये। यहां-तक कि प्याला लबालब हो गया। इलाकेमें एक भारी डाका पड़ा। वह उसकी तहकीकात करने गये। एक जमींदारपर संदेह हुआ, तुरन्त उसके घरकी तलाशी लेनी शुरू की, चोरीका कुछ माल बरामद हो गया। फिर क्या था, उसी दम उसे हिरा-सतमें ले लिया। जमींदारने कुछ दे दिलाकर बला टाली। पर अभिमानी मनुष्य था, यह अपमान न सहा गया। उसने दूसरे दिन ज्वालासिंहके इजलासमें दारोगा साहेबपर मुकदमा दायर कर दिया। इलाकेमें आग सुलग रही थी, हवा पाते ही भड़क उठी। चारों तरफसे झूठे सच्चे इस्तगासे होने लगे। अन्तमें ज्वालासिंहको विवश होकर इन मामलोंकी छानबीन करनी पड़ी। सारा रहस्य खुल गया। उन्होंने पुलिसके अधिकारियोंको रिपोर्ट की। दयाशंकर मुअत्तल हो गये, उनपर रिश्वत लेने और झूठे मुक़द्मे बनानेके अभियोग चलने लगे। पासा पलट गया, उन्होंने जमींदारको हिरासतमें लिया था, अब खुद हिरासतमें आ गये। लाला प्रभाशंकरके उद्योगसे जमानत तो मंजूर हो गयी, लेकिन अभियोग इतने सप्रमाण थे कि दयाशंकरके बचनेकी बहुत कम

आशा थी। वह स्वयं निराश थे। सिट्टी पिट्टी भूल गयी, मानों किसीने बुद्धि हर ली हो। जो जबान थानेकी दीवारोंको कम्पित कर दिया करती थी, वह अब हिलती भी न थी। यह बुद्धि जो हवामें किले बनाती रहती थी, अब इस गुत्थीको भी न सुलझा सकती थी। कोई कुछ पूछता तो शून्य भावसे दीवारकी ओर ताकने लगते। उन्हें खेद न था, लज्जा न थी, केवल विस्मय था कि मैं इस दलदलमें कैसे फँस गया। वह मौन दशामें बैठे सोचा करते—मुझसे यह भूल हो गयी, अमुक बात बिगड़ गयी, नहीं तो कदापि न फंसता। विपत्तिमें भी जिस हृदयमें सद्ज्ञान न उत्पन्न हो वह सूखा वृक्ष है, जो पानी पाकर पनपता नहीं बल्कि सड़ जाता है। ज्ञानशंकर इस दुरवस्थामें अपने सम्बन्धियोंकी सहायता करना अपना धर्म समझते थे किन्तु इस विषयमें उन्हें किसीसे कुछ कहते हुए संकोच ही नहीं होता, वरन् जब कोई दयाशंकरके व्यवहारकी आलोचना करने लगता तब वह उसका प्रतिवाद करनेके बदले उससे सहमत हो जाते थे।

लाला प्रभाशंकरने बेटेको बरी करानेके लिये कोई बात उठा नहीं रक्खी। वह रात-दिन इसी चिन्तामें डूबे रहते थे। पुत्रप्रेम तो था ही, पर कदाचित् उससे भी अधिक लोकनिन्दाकी लाज थी। जो घराना सारे शहरमें सम्मानित हो, उसका यह पतन हृदयविदारक था। जब वह चारों तरफसे दौड़धूप कर निराश हो गये तो एक दिन ज्ञानशङ्करसे बोले, आज जरा ज्वालासिंहके पास चले जाते, तुम्हारे मित्र हैं, शायद कुछ रियायत करें।

ज्ञानशङ्करने विस्मित भावसे कहा, मेरा इस वक्त उनके पास जाना सर्वथा अनुचित है।

प्रभाशङ्कर—मैं जानता हूं और इसीलिए अबतक तुमसे जिक्र नहीं किया। लेकिन अब इसके बिना काम नहीं चलता दिखाई देता। डिप्टी साहेब अपने इजलाससे बरी कर दें, फिर आगे हम देख लेंगे। वह चाहें तो सबूतोंको निर्बल बना सकते हैं।

ज्ञान—पर आप इसकी कैसे आशा रखते हैं कि मेरे कहनेसे वह अपने ईमानका खून करनेपर तैयार हो जायंगे।

प्रभाशङ्करने आग्रहपूर्वक कहा, मित्रोंके कहने सुननेका बड़ा असर होता है।

बूढ़ोंकी बातें बहुधा वर्तमान सभ्य प्रथाके प्रतिकूल होती हैं। युवकगण इन बातोंपर अधीर हो जाते हैं, उन्हें बूढ़ोंका यह अज्ञान अक्षम्य-सा जान पड़ता है। ज्ञानशङ्कर चिढ़कर बोले, जब आपकी समझमें बात ही नहीं आती तो मैं क्या कहूं। मैं अपनेको दूसरोंकी निगाहमें गिराना नहीं चाहता।

प्रभाशङ्करने पूछा, क्या अपने भाईकी शिफारिश करनेसे अपमान होता है?

ज्ञानशङ्करने कटुभावसे कहा, शिफारिश चाहे किसी कामके लिए हो, नीची बात है, विशेष करके ऐसे मामलोंमें।

प्रभाशंकर बोले, इसका अर्थ तो यह है कि मुसीबतमें भाईसे मददकी आशा न रखनी चाहिए।

"मुसीबत उन कठिनाइयोंका नाम है जो दैवी और अनिवार्य कारणोंसे उत्पन्न हों, जान-बूझकर आगमें कूदना मुसीबत नहीं है।"

"लेकिन जो जान-बूझकर आगमें कूदे, क्या उसकी प्राण-रक्षा न करनी चाहिए?"

इतनेमें बड़ी बहू दरवाजेपर आकर खड़ी हो गयीं और बोलीं, चलकर लल्लू (दयाशङ्कर) को जरा समझा क्यों नहीं देते? रातको भी खाना नहीं खाया और इस वक्त अभीतक हाथ मुंह नहीं धोया। प्रभाशङ्कर खिन्न होकर बोले, कहांतक समझाऊं? समझाते समझाते तो हार गया। बेटा! मेरे चित्तकी इस समय जो दशा है वह बयान नहीं कर सकता। तुमने जो बातें कही हैं वह बहुत माकूल हैं, लेकिन मुझपर इतनी दया करो, आज डिप्टी साहबके पास जरा चले जाओ। मेरा मन कहता है कि तुम्हारे जानेसे कुछ न कुछ उपकार अवश्य होगा।

ज्ञानशंकर बगलें झांक रहे थे कि बड़ी बहू बोल उठीं, यह जा चुके। लल्लू कहते थे कि ज्ञानू झूठों भी जाकर कुछ कह दें तो सारा काम बन जाय। लेकिन इन्हें क्या परवा है, चाहे कोई चूल्हे भाड़में जाय। फंसाना होता तो चाहे दौड़ धूप करते भी, बचाने कैसे जायें, हेठी न हो जायगी?

प्रभाशंकरने तिरस्कारके भावसे कहा, क्या बेबातकी बात करती हो? अन्दर जाकर बैठती क्यों नहीं?

बड़ी बहूने कुटिल नेत्रोंसे ज्ञानशंकरको देखते हुए कहा, मैं तो बेलाग बात कहती हूं, किसीको भला लगे या बुरा। जो बात इनके मनमें है वह मेरी आंखोंके सामने है।

ज्ञानशंकर मर्माहत होकर बोले, चचा साहेब! आप सुनते हैं इनकी बातें? यह मुझे इतना नीच समझती हैं।

बड़ी बहूने मुंह बनाकर कहा, यह क्या सुनेंगे, कान भी हो? सारी उम्र गुलामी करते कटी, अब भी वही आदत पड़ी हुई है। तुम्हारा हाल मैं जानती हूं।

प्रभाशंकरने व्यथित होकर कहा, ईश्वरके लिये चुप रहो। बड़ी बहू तेवरियां चढ़ाकर बोलीं, चुप क्यों रहूं, किसीका डर है? यहां तो जानपर बनी हुई है और यह अपने घमण्डमें भूले हुए हैं। ऐसे आदमीका तो मुंह देखना पाप है।

प्रभाशंकरने भतीजेकी ओर दीनतासे देखकर कहा, बेटा, यह इस समय आपेमें नहीं हैं। इनकी बातोंको बुरा न मानना। लेकिन ज्ञानशंकरने यह बातें न सुनीं, चाचीके कठोर वाक्य उनके हृदयको मथ रहे थे। बोले, तो मैं आप लोगोंके साथ रहकर कौनसा स्वर्गका सुख भोग रहा हूं?

बड़ी बहू—जो अभिलाष मनमें हो वह निकाल डालो। जब अपनापा ही नहीं तो एक घरमें रहनेसे थोड़े ही एक हो जायेंगे।

ज्ञान—आप लोगोंकी यही इच्छा है तो यही सही। मुझे निकाल दीजिये।

बड़ी बहू—हमारी इच्छा है। आज महीनोंसे तुम्हारा रंग देख रही हूं। ईश्वरने आंखें दी हैं, धूपमें बाल नहीं सफेद किये हैं। हम लोग तुम्हारी आंखोंमें कांटेकी तरह खटकते हैं। तुम समझते हो, यह लोग हमारा सर्वस्व खाये जाते हैं। जब तुम्हारे मनमें इतना कमीनापन आ गया तो फिर—

प्रभाशंकरने ठंढी सांस लेकर कहा, या ईश्वर, मुझे मौत क्यों नहीं आ जाती? बड़ी बहूने पतिको कुपित नेत्रोंसे देखकर कहा तुम्हें यह बहुत प्यारे हैं तो जाकर उनकी जूतियां सीधी करो। जो आदमी मुसीबतमें साथ न दे वह दुश्मन है, उससे दूर रहना ही अच्छा।

ज्ञान—तो यह धमकी किसे देती हो? कलके बदले आज ही हिस्सा बांट कर लो।

बड़ी बहू—क्या तुम समझते हो कि हम तुम्हारा दिया खाते हैं?

ज्ञान—इन बातोंका प्रयोजन ही क्या है?

बड़ी बहू—नहीं, तुम्हें यही घमंड है।

ज्ञान—अगर यही घमंड है तो क्या अन्याय है। जितना आपका खर्च है उतना मेरा कभी नहीं है।

बड़ी बहूने पतिकी ओर देखकर व्यङ्गभावसे कहा, कुछ सुन रहे हो सपूतकी बातें? बोलते क्यों नहीं? क्या मुंहमें दही जमा हुआ है? बाप हजारों रुपये साल साधु भिखारियोंको खिला दिया करते थे, मरते दमतक पालकीके बारह कहार दरवाजेसे नहीं टले। इन्हें आज हमारी रोटियां अखर रही हैं। लाला, हमारा जस मानो कि आज रईसोंकी तरह चैन कर रहे हो, नहीं तो मुंहमे मक्खियां आतीं जातीं।

प्रभाशंकर यह बातें न सुन सके। उठकर बाहर चले गये। बड़ी बहू मोर्चेपर अकेले ठहर न सकीं, घरमे चली गयी। लेकिन ज्ञानशंकर वहीं बैठे रहे। उनके हृदयमें एक दाह-सी हो रही थी।

इतनी निष्ठुरता! इतनी कृतघ्नता! मैं कमीना हूं, मैं दुश्मन हूं, मेरी सूरत देखना पाप है। जिन्दगीभर हमको नोचा-खसोटा और आज यह बातें! यह घमंड! देखता हूं यह घमंड कबतक रहता है। इसे तोड़ न दिया तो कहना! लोग सोचते होंगे, मालिक तो हम हैं, कुञ्जियां तो हमारे पास हैं, इसे जो दे देंगे वह ले लेगा। एक एक चीजका आधा करा लूंगा। बुढ़ियाके पास जरूर रुपये हैं। पिताजीने सब कुछ इन्हीं लोगोंपर छोड़ दिया था। इसने काट कपटकर दस बीस हजार जमा कर लिया है। बस, उसीका घमंड है और कोई बात नहीं! द्वेषमें दूसरोंको धनी समझनेकी विशेष चेष्टा होती है।

ज्ञानशङ्कर इन कुकल्पनाओंसे भरे हुए बाहर आये तो चचाको दीवानखानेमें मुन्शी ईजादहुसेनसे बातें करते पाया। यह मुन्शी ज्वालासिंहके इजलासके अहलमद थे—बड़े बातूनी, बड़े चलते पुर्जे। वह कह रहे थे, आप घबरायें नहीं, खुदाने चाहा तो बाबू दयाशङ्कर बेदाग बरी हो जायेंगे। मैंने महरीकी मारफत उनकी बीबीको ऐसा चंगपर चढ़ाया है कि वह दारोगाजीको बिला बरी कराये डिप्टीसाहेबका दामन न छोड़ेंगी। सौ दो सौ रुपये खर्च हो जायंगे, मगर क्या मुजायका, आबरू तो बच जायगी। अकस्मात् ज्ञानशङ्करको वहां देखकर वह कुछ झेंप गये।

प्रभाशङ्कर बोले, रुपये जितने दरकार हों ले जायं, आपकी कोशिशसे बात बन गयी तो हमेशा आपका शुक्रगुजार रहूंगा।

ईजादहुसेनने ज्ञानशङ्करको देखते हुए कहा, बाबू ज्वालासिंह दोस्तीका कुछ हक तो जरूर ही अदा करेंगे। जबानसे चाहे कितने ही बेनियाज बनें, लेकिन दिलमें वह आपका बहुत लेहाज करते हैं। मैं भी इसपर खूब रङ्ग चढ़ाता रहता हूं। कल आपका जिक्र करते हुए मैंने कहा कि वह तो दो तीन दिनसे दाना पानी तर्क किये हुए हैं। यह सुनकर कुछ गौर करने लगे, बादअजां उठकर अन्दर चले गये।

प्रभाशङ्करने मुंशीको श्रद्धापूर्ण नेत्रसे देखा, पर ज्ञानशङ्करने तुच्छ दृष्टिसे देखा और ऊपर चले गये। विद्यावती उनकी राह देख रही थी, बोली आज देर क्यों कर रहे हो। भोजन तो कभी-से तैयार है।

ज्ञानशङ्करने उदासीनतासे कहा, क्या खाऊं ; कुछ मिले भी ?

मालिक और मालकिन दोनोंने आजसे मेरा निवटारा कर दिया, उन्हें मेरी सूरत देखनेसे पाप लगता है। ऐसोंके साथ रहने-से तो मर जाना अच्छा है।

विद्यावतीने सशंक होकर पूछा, क्या बात हुई ?

ज्ञानशंकरने इस प्रश्नका उत्तर विस्तारके साथ दिया। उन्हें आशा थी कि इन वातोंसे विद्याकी शान्तिप्रियताको आघात पहुंचेगा, किन्तु उन्हें कितनी निराशा हुई, जब उसने सारी कथा सुननेके बाद कहा, तुम्हें ज्वालासिंहके यहां चले जाना चाहिये था, चचाजीकी बात रह जाती। ऐसे ही अवसरोंपर तो अपने परायेकी पहचान होती है। तुम्हारी ओरसे आनाकानी देखकर उन लोगोंको क्रोध आ गया होगा। क्रोधमें आदमी अपने मनकी बात नहीं कहता। वह केवल दूसरेका दिल दुखाना चाहता है।

ज्ञानशंकर खिन्न होकर बोले, तुम्हारी बातें सुनकर जी चाहता है कि अपना और तुम्हारा दोनोंका सिर फोड़ लें। उन लोगोंके कटु वाक्योंको फूलपान समझ लिया, मुझीको उपदेश देने लगी। मुझे तो यह लज्जा आ रही है कि इस गुरगे ईजादहुसेनने मेरी तरफसे न जाने क्या क्या रद्दे जमाये होंगे और तुम मुझे सिफारिश करनेकी शिक्षा देती हो। मैं ज्वालासिंहको जता देना चाहता हूं कि इस विषयमें मैं सर्वथा स्वतंत्र हूं। गरजमन्द बनकर उनकी दृष्टिमें नीचा बनना नहीं चाहता।

विद्याने विस्मित होकर पूछा, क्या उनसे यह कहने जाओगे ?

ज्ञानशंकर—अवश्य जाऊंगा। दूसरेकी आवरूके लिये अपनी प्रतिष्ठा क्यों खोऊं ?

विद्या—भला वह अपने मनमें क्या कहेंगे ? क्या इससे तुम्हारा द्वेष न प्रकट होगा ?

ज्ञानशङ्कर—तुम मुझे जितना मूर्ख समझती हो उतना नहीं हूं। मुझे मालूम है कि कौन बात किस ढङ्गसे करनी चाहिये।

विद्या चिन्तित नेत्रोंसे भूमिकी ओर देखने लगी। उसे पतिकी संकीर्णतापर खेद हो रहा था. लेकिन कुछ और कहते डरती थी कि कहीं उनकी दुष्कामना और भी द्रढ़ न हो जाय। इतनेमें दयाशंकरकी स्त्री भोजन करनेके लिये बुलाने आयी। उधर श्रद्धाने जाकर बड़ी बहूको मनाना शुरू किया। विद्याने लाला प्रभाशंकरको मनानेके लिये तेजशंकरको भेजा, पर इनमें कोई भी भोजन करने न उठा। प्रभाशंकरको यह ग्लानि हो रही थी कि मेरी स्त्रीने ज्ञानशंकरको अप्रिय बातें सुनायीं, बड़ी बहूको शोक था कि मेरे पुत्रका कोई हितैषी नहीं और ज्ञानशंकरको यह जलन थी कि यह लोग मेरा खाकर मुझीको आंखें दिखाते हैं। क्षुधाग्निके साथ क्रोधाग्नि भी भड़कती जाती थी।

विवादमें हम बहुधा अत्यन्त नीतिपरायण बन जाते हैं, पर वास्तवमें इससे हमारा अभिप्राय यही होता है कि विपक्षीको जबान बन्द कर दें। इन चन्द घण्टोंमें ही ज्ञानशंकरकी नीतिपरायणता ईर्षाग्निमें भस्म हो चुकी थी। जिस प्राणीके हितके लिये ज्वालासिंहसे कुछ कहना उन्हें असंगत जान पड़ता था उसीके अहितके लिये वह वहां जानेको तैयार हो गये, उन्होंने इस प्रसंगकी सारी बातें मनमें निश्चित कर ली थीं। इस प्रश्नको ऐसी कुशलतासे उठाना चाहते थे कि नीयतका परदा न खुलने पावे।

दूसरे दिन प्रातःकाल ज्योंही ९ बजे, ज्ञानशङ्करने पैरगाड़ी संभाली और घरसे निकले। द्वारपर लाला प्रभाशङ्कर अपने दोनों पुत्रोंके साथ टहल रहे थे। ज्ञानशङ्करने मनमें कहा, बुड्ढा साठ बरसका हो गया है, पर अभीतक वही जवानीकी ऐंठ है। कैसा अकड़कर चलता है! अब देखता हूं मिश्री और मक्खन

कहां मिलता है। लौंडे मेरी ओर कैसे घूर रहे हैं, मानो निगल जायंगे। वर्षाका आगमन हो चुका था। घटा उमड़ी हुई थी, मानो समुद्र आकाशपर चढ़ गया हो। सड़कोंपर इतना कीचड़ था कि ज्ञानशङ्करको पैरगाड़ी मुश्किलसे निकल सकी, छींटोंसे कपड़े खराब हो गये। उन्हें म्युनिसिपैल्टीके सदस्योंपर क्रोध आ रहा था कि यह सबके सब स्वार्थी, खुशामदी और उचक्के हैं। चुनावके समय भिखारियोंकी तरह द्वार द्वार घूमते फिरते हैं, लेकिन मेम्बर होते ही राजा बन बैठते हैं। उस कठिन तपस्याका फल यह निर्वाणपद प्राप्त हो जाता है। यह बड़ी भूल है कि मेम्बरोंको एक निर्दिष्ट कालके लिये रखा जाता है। वोटरोंको अधिकार होना चाहिये कि जब किसी सदस्यको जी चुराते देखें उसे पदच्युत कर दें। यह मिथ्या है कि इस दशामें कोई कर्त्तव्य-परायण मनुष्य मेम्बरीके लिये खड़ा न होगा। जिन्हें राष्ट्रीय उन्नतिकी धुन है वह प्रत्येक अवस्थामें जातिसेवाके लिये तैयार रहेंगे। मेरे विचारमें जो लोग सच्चे अनुरागसे काम करना चाहते हैं वह इस बन्धनसे और भी खुश होंगे। इससे उन्हें अपनी अकर्मण्यतासे बचनेका एक साधन मिल जायगा। और यदि हमें जातिसेवाका अनुराग नहीं तो म्युनिसिपल हालमें बैठनेकी तृष्णा क्यों हो? क्या इससे इज्जत होती है? सिपाही बनकर कोई लड़नेसे जी चुरावे, यह उसकी कीर्ति नहीं, अपमान है।

ज्ञानशङ्कर इन्हीं विचारोंमें मग्न थे कि ज्वालासिंहका बंगला आ गया। वह घोड़ेपर हवा खाने जा रहे थे। साईस घोड़ा कसे खड़ा था। ज्ञानशंकरको देखते ही बड़े प्रेमसे मिले और इधर उधरकी बातें करने लगे। उन्हें भ्रम हुआ कि यह महाशय अपने भाईकी सिफारिश करने आये होंगे। इसलिये उन्हें इस तरह बातोंमें लगाना चाहते थे कि उस मुकदमेकी चर्चा ही न आने पाये। उन्हें दयाशङ्करके विरुद्ध कोई सबल प्रमाण न मिला था। यह यह जानते थे कि दयाशंकरका जीवन उज्ज्वल नहीं है, परन्तु यह

अभियोग सिद्ध न होता था। उनको चर्चा करनेका निश्चय कर चुके थे। ऐसी दशामें वह किसीको यह विचार करनेका अवसर नहीं देना चाहते थे कि मैंने अनुचित पक्षपात किया है। ज्ञानशंकरके आनेसे जनताके सन्देहकी पुष्टि हो सकती थी। जनताको ऐसे समाचार बड़ी आसानीसे मिल जाते हैं। अरदली और चपरासी अपना गौरव बढ़ानेके लिये ऐसी खबरें बड़ी तत्परतासे फैलाते हैं। बोले, कहिये, आपके असामी सीधे हो गये।

ज्ञानशङ्कर—जी नहीं, उन्हें काबूमें करना इतना सहज नहीं है। चचा साहबने उन्हें सिर चढ़ा दिया है। मैं इधर ऐसे झमेलोंमें पड़ा रहा कि उस विषयमें कुछ करनेका अवकाश ही न मिला।

ज्वालासिंह डरे कि भूमिका तो नहीं है, तुरन्त पहलू बदलकर बोले, भाई साहब, मैंने यह नौकरी क्या कर ली, एक जञ्जाल सिर ले लिया। प्रातःकालसे सन्ध्यातक सिर उठानेकी फुरसत नहीं मिलती। बहुधा दस ग्यारह बजे राततक काम करना पड़ता है। और इतना ही होता तो भुगत भी लेता, इसके साथ साथ यह चिन्ता लगी रहती है कि ऊपरवाले खुश रहें। आप जानते ही हैं, अबकी वर्षा बहुत हुई हैं, मेरे इलाकेके सैकड़ों गांवोंमें बाढ़ आ गयी। खेतोंका तो कहना ही क्या, किसानोंकी झोपड़ियांतक बह गयीं। जमींदारोंने आधी मालगुजारीकी छूटकी प्रार्थना की है और यह सर्वथा न्यायानुकूल हैं। किन्तु हाकिमोंकी यह इच्छा मालूम होती है कि इन दरखास्तोंको दाखिल दफ्तर कर दिया जाय। यद्यपि वह प्रत्यक्ष ऐसा कहते नहीं, पर हानियोंकी जांचमें इतनी बाधाएं डालते हैं कि जांच व्यर्थ हो जाती है। अब यदि मैं जानकर अनजान बनूं और स्वच्छन्दतासे जांच करूं तो अवश्य ही मुझपर फटकार पड़ेगी। लोग सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगेंगे। यहांकी हवा ही कुछ ऐसी बिगड़ी हुई है कि मनुष्य इस अन्यायसे किसी भांति बच नहीं सकता। अपने अन्य सहवर्गियोंकी दशा

देखकर बस यही इच्छा होती है कि इस्तीफ़ा देकर घरकी राह लूं। मनुष्य कितना स्वार्थप्रिय और कितना चापलूस बन सकता है, इसका यहांसे उत्तम उदाहरण और कहीं न मिल सकेगा। यदि साहेब बहादुर जरासा इशारा कर दें कि आमदनीके टैक्सकी जांच अच्छी तरह की जाय तो विश्वास मानिये हमारे मित्रगण दो ही दिनोंमें टैक्सको बढ़ाकर दुगुना तिगुना कर देंगे। यदि इशारा हो जाय कि अबकी तकावी जरा हाथ रोककर दी जाय तो समझ लीजिये कि वह बन्द हो जायगी। इन महानुभावोंकी बातें सुनकर ऐसी घृणा होती है कि इनका मुंह न देखूं। न कोई वैज्ञानिक निरूपण, न कोई राजनैतिक या आर्थिक बात, न कोई साहित्यकी चर्चा, बस मैंने यह किया, साहेबने यह कहा तो मैंने यह उत्तर दिया। आपसे यथार्थ कहता हूं कोई छटा हुआ शोहदा भी अपनी कपट लीलाओंकी डींग यों न मारेगा। खेद तो यह है कि इस रोगसे पुराने विचारके बुड्ढे ही ग्रसित नहीं, हमारा नवशिक्षितवर्ग उनसे कहीं अधिक इस रोगसे जर्जरित देख पड़ता है। मार्ले, मिल और स्पेन्सर सभी इस स्वार्थसिद्धान्तके सामने दब जाते हैं। अजी यहां ऐसे ऐसे भद्र पुरुष पड़े हुए हैं जो खानसामों और अरदलियोंकी पूजा किया करते हैं, केवल इसलिये कि वह साहेबसे उनकी प्रशंसा किया करें। जिसे अधिकार मिल गया वह समझने लगता है अब मैं हाकिम हूं, अब जनतासे, देशबन्धुओंसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। अंग्रेज अधिकारियोंके सम्मुख जायंगे तो नम्रता, विनय और शीलके पुतले बन जायंगे, मानों ईश्वरके दरबारमें खड़े हैं, पर जब दौरेपर निकलेंगे तो प्रजा और जमींदारोंपर ऐसा रोब जमायेंगे मानो उनके भाग्यके विधाता हैं।

ज्वालासिंहने स्थितिको खूब बढ़ाकर दर्शाया; क्योंकि इस विषयमें वह ज्ञानशङ्करके विचारोंसे परिचित थे। उनका अभिप्राय केवल यह था कि इस समय दयाशङ्करके अभियोगकी चर्चा न आने पावे।

ज्ञानशंकरने प्रसन्न होकर कहा, मैंने तो आपसे पहले ही दिन कहा था, किन्तु आपको विश्वास न आता था। अभी तो आपको केवल अपने सहवर्गियोंकी कपट-नीतिका अनुभव हुआ है। कुछ दिन और रहिये तो अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंकी चालें देखकर तो आप दंग रह जायंगे। यह सब आपको कठपुतली बनाकर नचायेंगे। बदनामीसे बचनेका इसके सिवा और उपाय नहीं है कि उन्हें मुंह न लगाया जाय। आपका अहलमद ईजादहुसेन एक ही घाग है, उससे होशियार रहियेगा, वह तरह तरहसे आपको अपने पक्षमें लानेकी कोशिश करेगा। आज ही मैंने उसके मुंहसे ऐसी बातें सुनी हैं जिनसे विदित होता है कि वह आपको धोखा दे रहा है। उसने आपसे कदाचित् मेरी ओरसे दयाशंकरकी सिफारिश की है। यद्यपि मुझे दयाशंकरसे उतनी ही सहानुभूति है जितनी भाईको भाईके साथ हो सकती है, तथापि मैं ऐसा धृष्ट नहीं हूं कि मित्रतासे अनुचित लाभ उठाकर न्यायका बाधक बनूं। मैं कुमार्गका पक्ष कदापि न ग्रहण करूंगा, चाहे मेरे पुत्रहीके सम्बन्धमें क्यों न हो। मैं मनुष्यत्वको भ्रातृप्रेमसे बढ़कर समझता हूं। मैं उन आदमियोंमें हूं कि यदि ऐसी दशामें आपको सहृदयताकी ओर झुका हुआ देखूं तो आपको उससे बाज रक्खूं।

ज्वालासिंह मनोविज्ञानके ज्ञाता थे। समझ गये कि यह महाशय इस समय अपने भाईसे बिगड़े हुए हैं। यह नीतिपरायणता उसीका उबार है। द्वेष और वैमनस्य कहांतक जा सकता है, इसका अनुभव हो गया। उनकी दृष्टिमें ज्ञानशङ्करकी जो प्रतिष्ठा थी वह लुप्त हो गयी। भाईका अपने भाईकी सिफारिश करना सर्वथा स्वाभाविक और मानव-चरित्रानुकूल है। इसे वह बहुत बुरा नहीं समझते थे, किन्तु भाईका अनहित करनेके लिये नैतिक सिद्धान्तोंका आश्रय लेना वह एक अमानुषीय व्यापार समझते थे। ऐसे दुष्प्रकृति मनुष्योंको जो आठों पहर न्याय और सत्यकी हांक लगाता फिरता हो मर्माहत करनेका यह अच्छा अवसर

मिला। बोले, आपको भ्रम हुआ है। ईजादहुसेनने मुझसे इस विषयमें कोई बातचीत नहीं की और न इसकी जरूरत ही थी, क्योंकि मैं अपने फैसलेमें दयाशंकरको पहले ही निरपराध लिख चुका हूं। और सबको यह भलीभांति मालूम है कि मैं किसी की नहीं सुनता। मैंने पक्षपातरहित होकर यह धारणा की है और मुझे आशा है कि आप यह सुनकर प्रसन्न होंगे।

ज्ञानशङ्करका मुख पीला पड़ गया, मानो किसीने उनके घरमें आग लगानेका समाचार कह दिया हो। हृदयमें तीरसा चुभ गया। अवाक् रह गये।

ज्वाला—गवाह कमजोर थे। मुकद्दमा बिल्कुल बनावटी था।

ज्ञानशंकर—यह सुनकर असीम आनन्द हुआ। आपको हजारों धन्यवाद! चचा साहेब तो सुनकर खुशीसे बावले हो जायँगे।

ज्वालासिंह इस दबी हुई चुटकीसे पीड़ित होकर बोले, यह कानूनकी बात है, मैंने कोई अनुग्रह नहीं किया।

ज्ञानशङ्कर—आप चाहे कुछ कहें, पर मैं तो इसे अनुग्रह ही समझूंगा। मित्रता कानूनकी सीमाओंको अज्ञात रूपसे विस्तृत कर देती है। इसके सिवा आप लोगोंको भी तो पुलिसका दबाव मानना पड़ता है। उनके द्रोही बनकर आपलोगोंके मार्गमें कितनी बाधायें पड़ती हैं इसे भी तो विचारना ही पड़ता है।

ज्वालासिंह इस व्यङ्गसे और भी तिलमिला उठे। गर्वसे बोले, यहां जो कुछ करते हैं न्यायके बलपर करते हैं। पुलिस क्या, ईश्वरका अनुचित दबाव भी नहीं मान सकते। आपकी इन बातोंमें मुझे कुछ वैमनस्यकी गन्ध आती है। मुझे सन्देह होता है कि दयाशङ्करका मुक्त होना आपको अच्छा नहीं लगा।

ज्ञानशंकरने उत्तेजित होकर कहा, यदि आपको ऐसा सन्देह है तो यह कहनेके लिये मुझे क्षमा कीजिये कि इतने दिनोंतक साथ रहनेपर भी आप मुझसे सर्वथा अपरिचित हैं। मेरी प्रकृति

कितनी ही दुर्बल हो, पर अभी इस अधोगतिको नहीं पहुंची है कि अपने भाईको गर्दनपर हाथ उठावे। मगर यह कहनेमें भी मुझे संकोच नहीं है कि भ्रातृस्नेहकी अपेक्षा मेरी दृष्टिमें राष्ट्रहितका महत्व कहीं अधिक है और जब इन दोनोंमे विरोध होगा तो मैं राष्ट्रहितकी ओर झुकूंगा। यदि आप इसे वैमनस्य या ईर्षा समझें तो यह आपकी सज्जनता है। मेरी नीतिशिक्षाने मुझे यही सिखाया है और यथासाध्य उसका पालन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। जब एक व्यक्ति-विशेषसे जनताका अपकार होता हो तो हमारा धर्म है कि उस व्यक्तिका तिरस्कार करें और उसे सीधे मार्गपर लावें चाहे वह कितना ही आत्मीय हो। संसारके इतिहासमें ऐसे उदाहरण अप्राप्य नहीं हैं, जहां राष्ट्रीय कर्त्तव्यने कुलहितपर विजय पायी है, ऐसी दशामें जब आप मुझपर दुराग्रहका दोषारोपण करते हैं तो मैं इसके सिवा और क्या कह सकता हूं कि आपकी नीतिशिक्षा और ईथिक्सने आपको कुछ भी लाभ नहीं पहुंचाया।

यह कहकर ज्ञानशंकर बाहर निकल आये। जिस मनोरथसे वह इतने सवेरे यहां आये थे उसके यों असफल हो जानेसे उनका चित्त बहुत खिन्न हो रहा था। हां, यह संतोष अवश्य था कि मैंने इन महाशयके दांत खट्टे कर दिये, अब यह फिर मुझसे ऐसी बातें करनेका साहस न कर सकेंगे। ज्वालासिंहने भी उन्हें रोकनेकी चेष्टा नहीं की। वह सोच रहे थे कि इस मनुष्यमें बुद्धिबल और दुर्जनताका कैसा विलक्षण समावेश हो गया है। चातुरी कपटके साथ मिलकर दो आतशी शराब बन जाती है। इस फटकारसे कुछ तो आंखें खुली होंगी। समझ गये होंगे कि कूटनीतिके परखनेवाले संसारसे लोप नहीं हो गये।

ज्ञानशङ्कर यहांसे चले तो उनकी दशा उस जुआरीकी-सी थी जो जुएमें हार गया हो और सोचता हो कि ऐसी कौन-सी वस्तु दांवपर लगाऊं कि मेरी जीत हो जाय। उनका चित्त उद्विग्न

हो रहा था। ज्वालासिंहको यद्यपि उन्होंने तुर्की-बतुर्की जवाब दिया था फिर भी उन्हें प्रतीत होता था कि मैं कोई गहरी चोट न कर सका। अब ऐसी कितनी ही बातें याद आ रही थीं जिनसे ज्वालासिंहके हृदयपर आघात किया जा सकता था। और कुछ नहीं तो खिब्तलहीका दोष लगा देता। खैर, फिर कभी देखा जायगा। अब उन्हें राष्ट्र-प्रेम और मनुष्यत्वका वह उच्चादर्श भी हास्यास्पद-सा जान पड़ता था, जिसके आधारपर उन्होंने ज्वालासिंहको लज्जित करना चाहा था। वह ज्यों ज्यों इस सारी स्थितिका निरूपण करते थे, उन्हें ज्वालासिंहका व्यवहार सर्वथा असंगत जान पड़ता था। मान लिया कि उनपर मेरी ईर्षाका रहस्य खुल गया तो सहृदयता और शालीनता इसमें थी कि वह मुझसे सहानुभूति प्रकट करते, मेरे आंसू पोंछते। ईर्षा भी मानवस्वभावका एक अङ्ग ही है, चाहे वह कितनाही अवहेलनीय क्यों न हो। यदि कोई मनुष्य इसके लिये मेरा अपमान करे तो इसका कारण उसकी आत्मिक पवित्रता नहीं, वरन् मिथ्याभिमान है। ज्वालासिंह कोई ऋषि नहीं, देवता नहीं, और न यह संभव है कि ईर्षावेगसे कभी उनका हृदय प्रवाहित न हुआ हो। उनकी यह गर्वपूर्ण नीतिज्ञता और धर्मपरायणता स्वयं उस ईर्षाका फल है, जो उनके हृदयमें अपनी मानसिक लघुताके ज्ञानसे प्रज्वलित हुई है।

यह सोचते हुए वह घर पहुंचे तो अपने दोनों छोटे चचेरे भाइयोंको अपने कमरेमें किताबें उलटते पलटते देखा। यद्यपि यह कोई असाधारण बात न थी, पर ज्ञानशंकर इस समय मानसिक अशान्तिसे पीड़ित हो रहे थे, जल गये और दोनों लड़कों-को डांटकर भगा दिया। इन लोगोंने अवश्य मुझे छेड़नेके लिये इन शैतानोंको यहां भेज दिया है। नीचे इतना बड़ा दीवानखाना है, दो कमरे हैं, क्या उनके लिये इतना काफी नहीं कि मेरे एक छोटेसे कमरेको भी नहीं देख सकते। क्या इसपर भी दांत है?

मुझे घरसे निकालनेकी ठानी है क्या ? इस मामलेको अभीसे साफ कर लेना चाहिये। यह कदापि नहीं हो सकता कि मुझे लोग दबाते जायं और मैं चूं न करूं। मनमें यह निश्चय करके उन्होंने तत्क्षण अपने चचाके नाम यह पत्र लिखाः—

मान्यवर, यह बात मेरे लिये असह्य है कि आपके सुपुत्र मेरी अनुपस्थितिमें मेरे कमरेमें आकर ऊधम मचावें और मेरी वस्तुओंका सर्वनाश करें। मैं चाहता हूं कि आज घरका बटवारा हो जाय और लड़कोंको ताकीद कर दी जाय कि वह भूलकर भी मेरे मकानमें पदक्षेप न करें, अन्यथा मैं उनकी ताड़ना करूं तो आपको या चचीजीको मुझसे शिकायत करनेका कोई अधिकार न रहेगा। इसका ध्यान रखियेगा कि मुझे जो भाग मिले वह गार्हस्थ्य आवश्यकताओंके अनुकूल हो, और सबसे बड़ी बात यह है कि वह पृथक् हो, जिसमें मैं उसे अपना समझ सकूं और आते-जाते, उठते-बैठते, आग्नेय नेत्रों और व्यंगशरोंका लक्ष्य न बनूं।

यह पत्र कहारको देकर वह उत्तरका इन्तजार करने लगे। सोच रहे थे कि देखें बुड्ढा अबकी क्या चाल चलता है। एक क्षणमें कहारने उसका जवाब लाकर उनके हाथमें रख दियाः—

बेटा, मेरे लड़के तुम्हारे लड़के हैं। उन्हें दण्ड देनेका तुमको पूरा अधिकार है, इसकी शिकायत मुझे न कभी हुई है न होगी। बल्कि तुम्हारा मुझपर अनुग्रह होगा यदि कभी कभी उनकी खबर लेते रहो। रहा घरका बटवारा, उसे मैं तुम्हारे ही ऊपर छोड़ता हूं। घर तुम्हारा है, मैं भी तुम्हारा हूं, जो टुकड़ा चाहो मुझे दे दो, मुझे कोई आपत्ति न होगी। हां, यह ध्यान रखना कि मैं बाहर बैठनेका आदमी हूं, इसलिये दीवानखानेके बरामदेमें मेरे लिये एक चौकीकी जगह दे देना। बस, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा थी कि मेरे जीवनकालमें यह विच्छेद न होता, पर तुम्हारी यदि इच्छा है और तुम इसीमें प्रसन्न हो तो मैं क्या कर सकता हूं !

ज्ञानशंकरने पुर्जेको जेबमें रख लिया और मुस्कुराये। बुड्ढा कैसा घाग है, इन्हीं नम्रताओंसे तो उसने पिताजीको उल्लू बना लिया था, मुझसे भी वही चाल चल रहा है, पर मैं ऐसा गौखा नहीं हूं। समझे होंगे कि जरा दब जाऊं तो वह आप ही दब जायगा। यहां ऐसी विषमशालीनताका पाठ नहीं पढ़ा है। विवश होकर दबना तो समझमें आता है पर किसीकी खातिरसे दबना, केवल मुरौवतके हाथोंकी कठपुतली बनना, यह निरी भावुकता है।

ज्ञानशंकर बैठकर सोचने लगे, कैसे इस समस्याकी पूर्ति करूं. केवल यह एक कमरा नीचेके दीवानखाने और उसके बगलके दोनों कमरोंकी समता नहीं कर सकता। ऊपरके दो कमरोंपर दया-शंकरका अधिकार है। पर ऊपरके तीनों कमरे मेरे, नीचेके तीनों कमरे उनके। यहां तो बड़ी सुगमतासे विभाग हो गया, किन्तु जनानेघरमें यह पार्थक्य इतना सुलभ नहीं। पर्देकी कमसे कम दो दीवारें खींचनी पड़ेंगी। पूर्वकी ओर निकासके लिये एक द्वार खोलना पड़ेगा, और इसमें झंझट है। म्युनिसिपैलोटी महीनोंका अलसेट लगा देगी। क्या हर्ज है यदि मैं दीवानखानेके नीचे-ऊपरके दोनों भागोंपर सन्तोष कर लूं? जनाना मकान उन्हींके हिस्सेमें डाल दूं। वहां ऊपर स्त्रियां भली भांति रह सकती हैं। जनाना-मकान इससे बड़ा अवश्य है, पर न जाने कबका बना हुआ है। थोड़े ही दिनोंमें उसे फिरसे बनवाना पड़ेगा। दीवारें अभीसे गिरने लगी हैं। नित्य मरम्मत होती ही रहती है। छतें भी टप-कती हैं। बस, मेरे लिये दीवानखाना ही अच्छा है। चचासाहेब-का इसमें गुजर नहीं हो सकता, उन्हें विवश होकर जनाना मकान लेना पड़ेगा। यह बात मुझे खूब सूझी, अपना अर्थ भी सिद्ध हो जायगा और उदारताका श्रेय भी हाथ रहेगा।

मनमें यह निश्चय करके वह स्त्रियोंसे परामर्श करनेके लिये अन्दर गये। वह सभ्यताके अनुसार स्त्रियोंकी सम्मति अवश्य

लेते थे, पर "वीटो" का अधिकार अपने हाथमें रखते और प्रत्येक अवसरपर उसका उपयोग करनेके कारण वह अबाध्य सम्मतिका गला घोंट देते थे। वह अन्दर गये तो उन्हें बड़ा करुणाजनक दृश्य दिखायी दिया। दयाशंकर कचहरी जा रहे थे और बड़ी बहू आंखोंमें आंसूभरे उन्हें विदा कर रही थीं। दोनों बहनें उनके पैरोंसे लिपटकर रो रही थीं। उनकी पत्नी अपने कमरेके द्वारपर घूंघट निकाले उदास खड़ी थी। संकोचवश पतिके पास न आ सकती थी। श्रद्धा भी खड़ी रो रही थी। आज अभियोगका फैसला सुनाया जानेवाला था। मालूम नहीं क्या होगा। घर लौटकर आना बदा है या फिर घरका मुंह देखना नसीब न होगा। दयाशंकर अत्यन्त कातर देख पड़ते थे। ज्ञानशंकरको देखते ही उनके नेत्र सजल हो गये, निकट आकर बोले, भैया आज मेरा हृदय शङ्कासे कांप रहा है, ऐसा जान पड़ता है, आप लोगोंके दर्शन न होंगे। मेरे अपराधोंको क्षमा कीजियेगा, कौन जाने फिर भेंट हो या न हो, दयाका क्या आसरा, यह घर अब आपके सुपुर्द है।

ज्ञानशंकर उनकी यह बातें सुनकर पिघल गये। अपने हृदय-की संकीर्णता और क्षुद्रतापर ग्लानि उत्पन्न हुई। तस्कीन देते हुए बोले, ऐसी बातें मुंहसे न निकालो, तुम्हारा बाल भी बांका न होगा। ज्वालासिंह कितने ही निर्दयी बनें पर मेरे एहसानोंको नहीं भूल सकते। और सच्ची बात तो यह है कि मैं अभी तुम्हारे ही सम्बन्धमें बातें करके उनके पाससे आ रहा हूं, तुम अवश्य बरी हो जाओगे। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें मुझे इसका विश्वास दिलाया है। चलता तो मैं भी तुम्हारे साथ, किन्तु मेरे जानेसे काम बिगड़ जायगा।

दयाशंकरने अविश्वासपूर्ण कृतज्ञताके भावसे उनकी ओर देखकर कहा, हाकिमोंकी बातका क्या भरोसा?

ज्ञानशंकर—ज्वालासिंह उन हाकिमोंमें नहीं हैं।

दयाशंकर—यह न कहिये, बड़ा बेमुरौवत आदमी है।

ज्ञानशंकरने उनके हृदयस्थ अविश्वासको ताड़कर कहा, यही हृदयकी निर्बलता हमारे अपराधोंका ईश्वरीय दण्ड है, नहीं तो तुम्हें इतना अविश्वास न होता।

दयाशंकर लज्जित होकर वहांसे चले गये। ज्ञानशंकरने भी उनसे और कुछ न कहा। उन्होंने हारी हुई बाजीको जीत बनाना चाहा था, पर सफल न हुए। वह इस बातपर मनमें झुंझलाये कि यह लोग मुझे उच्च भावोंके योग्य ही नहीं समझते। मैं इनकी दृष्टिमें विषैला सर्प हूं। जब मुझपर इनका इतना अविश्वास है तो फिर जो कुछ करना है वह खुल्लमखुल्ला क्यों न करूं, आत्मीयताका स्वांग भरना व्यर्थ है। इन भावोंसे यह लोग अब हत्थे चढ़नेवाले नहीं। सद्भावोंका वह अङ्कुर जो एक क्षणके लिये उनके हृदयमें विकसित हुआ था इन दुष्कामनाओंसे झुलस गया। वह विद्याके पास गये तो उसने पूछा, आज सवेरे कहां गये थे।

ज्ञानशंकर—जरा ज्वालासिंहसे मिलने चला गया था।

विद्या—तुम्हारी यह बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं।

ज्ञान—कौन बातें?

विद्या—यही अपने घरके लोगोंकी हाकिमोंसे शिकायत करना। भाइयोंमें खटपट सभी जगह होती है, मगर कोई इस तरह भाईकी जड़ नहीं काटता।

ज्ञानशंकरने होंठ चबाकर कहा, तुमने मुझे इतना कमीना, इतना कपटी समझ लिया है।

विद्या दृढ़तासे बोली, अच्छा, मेरी कसम खाओ कि तुम इसलिये ज्वालासिंहके पास नहीं गये थे।

ज्ञानशंकरने कठोर स्वरमें कहा, मैं तुम्हारे सामने अपनी सफाई देना आवश्यक नहीं समझता।

यह कहकर ज्ञानशंकर चारपाईपर बैठ गये। विद्याने पतेकी बात कही थी और इसने उन्हें मर्माहत कर दिया था। उन्हें

इस समय विदित हुआ कि सारे घरके लोग, यहांतक कि मेरी स्त्री भी मुझे कितना नीच समझती है।

विद्याने फिर कहा, अरे तो यहां कोई दूसरा थोड़े ही बैठा हुआ है जो सुन लेगा।

ज्ञान—चुप भी रहो, तुम्हारी ऐसी बातोंसे बदनमें आग लग जाती है। मालूम नहीं, तुम्हें कब बात करनेकी तमीज आवेगी। क्या हुआ, आज भोजन न मिलेगा क्या, दो पहर तो होने आया।

विद्या—आज तो भोजन बना ही नहीं। तुम्हींने घर बांटनेके लिये चचाजीको कोई चिट्ठी लिखी थी। तबसे वह बैठे हुए रो रहे हैं।

ज्ञान—उनका रोनेका जी चाहता है तो रोयें, हमलोगोंको भूखों मारेंगे क्या?

विद्याने पतिको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखकर कहा, घरमें जब ऐसा रार मचा हो तो खाने-पीनेकी इच्छा किसे होती है। चचाजीको इस दशामें देखकर किसके घटके नीचे अन्न जायगा। एक तो लड़केपर यह विपत्ति, दूसरे घरमें यह द्वेष। जबसे तुम्हारी चिट्ठी पायी है सिर नहीं उठाया। तुम्हें अलग होनेकी यह धुन क्यों समायी है?

ज्ञान—इसीलिये कि जो थोड़ी बहुत जायदाद बच रही है वह भी इस भाड़में न जल जाय। पहले घरमें छः हजार सलाना, की जायदाद थी। अब मुश्किलसे दो हजारकी रह गयी है। इन लोगोंने सब खा-पीकर बराबर कर दिया।

विद्या—तो यह लोग कोई पराये तो नहीं हैं।

ज्ञान तुम जब ऐसी बड़ी बड़ी बातें करने लगती हो तो मालूम होता है, धन्नासेठकी बेटी हो। तुम्हारे बापके पास तो लाखोंकी सम्पत्ति है, क्यों नहीं उसमेंसे थोड़ीसी हमें दे देते, वह तो कभी बात भी नहीं पूछते और तुम्हारे पैरों तले गंगा बहती है।

विद्या—पुरुषार्थी लोग दूसरोंकी सम्पत्तिपर मुंह नहीं फैलाते। अपने बाहुबलका भरोसा रखते हैं।

ज्ञान—लजाती तो नहीं हो, ऊपरसे बढ़-चढ़कर बातें करती हो। यह क्यों नहीं कहती कि घरकी जायदाद प्राणोंसे भी प्रिय होती है और उसकी रक्षा प्राणोंसे भी अधिक की जाती है? नहीं तो ढाई लाख सालाना जिसके घरमें आता हो उसके लिये बेटी दामादपर दो-चार हजार खर्च कर देना कौनसी बड़ी बात है? लाला साहेब तो पैसेको यों दांतोंसे पकड़ते हैं और तुम इतनी उदार बनती हो मानों जायदादका कुछ मूल्य ही नहीं।

इतनेमें श्रद्धा आ गयी और ज्ञानशंकर घरके बटवारेके विषयमें उससे बातें करने लगे।

६

लाला प्रभाशङ्करका क्रोध ज्योंही शांत हुआ वह अपने कटु वाक्योंपर बहुत लज्जित हुए। बड़ी बहूकी तीखी बातें ज्यों-ज्यों उन्हें याद आती थीं ग्लानि और भी बढ़ती जाती थी। जिस भाई-के प्रेम और अनुरागसे उनका हृदय परिपूर्ण था, जिसके मृत्यु-शोकका घाव अभी भरने न पाया था, जिसका स्मरण आते ही आंखोंसे अश्रुधारा बहने लगती थी, उसके प्राणाधार पुत्रके साथ उन्हें अपना यह बर्ताव बड़ी कृतघ्नताका मालूम होता था। रातको उन्होंने कुछ न खाया। सिर-पीड़ाका बहाना करके लेट रहे। कमरेमें धुन्धला प्रकाश था। उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो लाला जटाशंकर द्वारपर खड़े उनकी ओर तिरस्कारकी दृष्टिसे देख रहे हैं। वह घबराकर उठ बैठे, सांस वेगसे चलने लगी। बड़ी प्रबल इच्छा हुई कि इसी दम चलकर ज्ञानशङ्करसे क्षमा मांगूं, किन्तु रात ज्यादा हो गयी थी, बेचारे एक ठंढी सांस खींचकर फिर लेट रहे। हा! जिस भाईने जिन्दगीभरमें मेरी ओर कड़ी निगाह-से भी नहीं देखा उसकी आत्माको मेरे कारण ऐसा विषाद हो!

मैं कितना अत्याचारी, कितना संकीर्णहृदय, कितना कुटिल-प्रकृति हूं!

प्रातःकाल उन्होंने बड़ी बहूसे पूछा, रात ज्ञानूने कुछ खाया था या नहीं?

बड़ी बहू—रात चूल्हा ही नहीं जला, किसीने भी नहीं खाया।

प्रभाशङ्कर—तुम लोग खाओ या न खाओ, लेकिन उसे क्यों भूखों मारती हो। भला ज्ञानू अपने मनमें क्या कहता होगा! मुझे कितना नीच समझ रहा होगा!

बड़ी बहू—नहीं तो अबतक तो वह तुम्हें देवता समझता था। तुम्हारी आंखोंपर पर्दा पड़ा होगा, लेकिन मैं इस छोकरे का रुख साल भरसे देख रही हूं। अचरज यही है कि वह अबतक कैसे चुप रहा। आखिर वह क्या समझकर अलग हो रहा है? यही न कि हम लोग पराये हैं? उसे इसकी लेशमात्र भी परवाह नहीं कि इन लोगोंका निर्वाह कैसे होगा। उसे तो बस रुपयेकी हाय हाय पड़ी हुई है, चाहे चचा, भाई, भतीजे जीयें या मरें। ऐसे आदमीका मुंह देखना पाप है।

प्रभा—फिर वही बात मुंहसे निकालती हो। अगर वह अपना आधा हिस्सा मांगता है तो क्या बुरा करता है? यही तो संसारकी प्रथा हो रही है।

बड़ी बहू—तुम्हारी तो बुद्धि हरण हो गयी है, कहांतक कोई समझाये, जैसे कुछ सूझता ही नहीं। हमारे लड़केकी जानपर बनी हुई है, घर विध्वंस हुआ जाता है, दानापानी हराम हो रहा है, वहां आधी राततक हारमोनियम बजता है। मैं तो उसे काला नाग समझती हूं जिसके विषका उतार नहीं। यदि कोई हमारे गलेपर छुरी भी चला दे तो उसकी आंखोंमें आंसू न आवे। तुम यहां बैठे पछता रहे हो और वह टोले-महल्लेमें घूम-घूम तुम्हें बदनाम कर रहा है। सब तुम्हींको बुरा कह रहे हैं।

प्रभा—यह सब तुम्हारी मिथ्या कल्पना है, उसका हृदय इतना क्षुद्र नहीं।

बड़ी बहू—तुम इसी तरह बैठे स्वर्गसपना देखते रहोगे और वह एक दिन सब सम्बन्धियोंको बटोरकर बांट-बखरेको बात छेड़ देगा, फिर कुछ करते-धरते न बनेगा। राय कमलानन्दसे भी पत्र-व्यवहार कर रहा है। मेरी बात मानो, अपने सम्बन्धियों-को भी सचेत कर दो, पहलेसे सजग रहना अच्छा है।

प्रभाशङ्करने गौरवोन्मत्त होकर कहा, यह हमसे मरते दमतक न होगा। मैं ऐसा निर्लज्ज नहीं हूं कि अपने घरकी फूटका ढिंढोरा पीटता फिरूं। ज्ञानशंकर मुझसे चाहे जो भाव रखे, किन्तु मैं उसे अपना लड़का ही समझता हूं। हम दोनों भाई एक दूसरेके लिये प्राण देते रहे। आज भैयाके पीछे मैं इतना बेशर्म हो जाऊं कि दूसरोंसे पञ्चायत कराता फिरूं। मुझे ज्ञानशंकरसे ऐसे द्वेषकी आशा नहीं है, लेकिन यदि उसके हाथों मेरा अहित भी हो जाय तोभी मुझे लेशमात्र भी दुःख न होगा। अगर भैया-पर हमारा बोझ न होता तो उनका जीवन बड़े सुखसे व्यतीत हो सकता था। ज्ञानू उन्हींका लड़का है। यदि उसके सुख और संतोषके लिये हमें थोड़ासा कष्ट भी हो तो हमें बुरा न मानना चाहिये। हमारे सिर उसके ऋणसे दबे हुए हैं। मैं छोटी-छोटी बातोंके लिये उससे रार मचाना अनुचित समझता हूं।

बड़ी बहूने इसका प्रतिवाद न किया, उठकर वहांसे चली गयीं। प्रभाशङ्कर उन्हें और भी लज्जित करना चाहते थे। कुछ देरतक वहां बैठे रहे कि आ जायें तो दिलका बुखार निकालूं, लेकिन जब देर हुई तो उकताकर बाहर चले आये। वह पहले कितनी ही बार बड़ी बहूसे ज्ञानशङ्करकी शिकायत कर चुके थे। उनके फैशन और ठाटके लिये वह कभी खुशीसे रुपये न देते थे, किन्तु जब वह बड़ी बहू या अपने घरके किसी अन्य व्यक्तिको ज्ञानशङ्करसे विरोध करते देखते थे तो उनकी न्यायप्रवृत्ति प्रज्ज्व-

लित हो जाती थी और वह उमंगमें आकर सज्जनता और उदारताकी ऐसी डींग मारने लगते थे, जिसको व्यवहारमें लानेका कदाचित उन्हें कभी साहस न होता।

बाहर आकर वह आंगनमें टहलने लगे और तेजशङ्करको यह देखनेको भेजा कि ज्ञानशंकर क्या कर रहे हैं। वह उनसे क्षमा मांगना चाहते थे, किन्तु जब उन्हें पैरगाड़ीपर सवार कहीं जाते देखा तो कुछ न कह सके। ज्ञानशंकरके तीवर कुछ बदले हुए थे, आंखोंमें क्रोध झलक रहा था। प्रभाशंकरने सोचा, इतने सवेरे यह कहां जा रहे हैं, अवश्य कुछ दालमें काला है। उन्होंने अपने चिड़ियोंके पिंजरे उतार लिये और उन्हें बेसन चुगाने लगे। पहाड़ी मैनेके हरिभजनका आनन्द उठानेमें वह अपनेको भूल जाया करते थे। इसके बाद स्नान करके रामायणका पाठ करने लगे। इतनेमें दस बज गये और कहारने ज्ञानशंकरका पत्र लाकर उनके सामने रख दिया। उन्होंने तुरन्त पत्रको उठा लिया और पढ़ने लगे। उनकी ईश-वन्दनामें व्यावहारिक कामोंसे कोई बाधा न पड़ती थी। इस पत्रको पढ़कर उनके शरीरमें ज्वालासी लग गयी। उसका एक-एक शब्द चिनगारीके समान हृदयपर लगता था। ज्ञानशंकर कितना दंभी और ईर्षालु है, इसका कुछ अनुमान हुआ। ज्ञात हुआ कि बड़ी बहूने उसकी प्रकृतिके विषयमें जो आलोचना की थी वह सर्वथा सत्य थी। यह दुस्साहस! यह पत्र उसकी कलमसे कैसे निकला! उसने मेरी गर्दनपर तलवार भी चला दी होती तोभी मैं इतना द्वेष न कर सकता। इतना योग्य और चतुर होनेपर भी उसका हृदय इतना संकीर्ण है। विद्याका फल तो यह होना चाहिये कि मनुष्यमें धैर्य्य और सन्तोषका विकाश हो, ममत्वका दमन हो, हृदय उदार हो, न कि स्वार्थपरता, क्षुद्रता और शीलहीनताका भूत सिर चढ़ जाय। लड़कोंने शरारत की थी, डांट देते, झगड़ा मिटता, क्यों जरासी बातका बतंगड़ बनाया। अब स्पष्ट विदित हो रहा है कि साथ निबाह न होगा। मैं कहांतक

दया करूंगा, कहांतक सिर झुकाऊंगा। खैर, उनको जैसी इच्छा हो करें, मैं अपनी ओरसे ऐसी कोई बात न करूंगा जिससे मेरी पीठमें धूल लगे। मकान बांटनेको कहते हैं। इससे बड़ा अनर्थ और क्या होगा? घरका परदा खुल जायगा, सम्बन्धियोंमें घर-घर इसकी चर्चा होगी। हा दुर्भाग्य! घरमें दो चूल्हे जलेंगे, जो बात कभी न हुई थी वह अब होगी! मेरे और मेरे प्रिय भाईके पुत्रके बीच केवल पड़ोसीका नाता रह जायगा। वह जो जीवनपर्यन्त साथ रहे, साथ खेले, साथ रोये, साथ हंसे, अब अलग हो जायंगे। किन्तु इसके सिवा और उपाय ही क्या है! लिख दूं कि तुम जैसे चाहे घरको बांट लो? क्यों कहूं कि मैं यह मकान लूंगा, यह कोठा लूंगा? जब अलग ही होते हैं तो जहांतक हो सके आपसमें मनमोटाव न होने दें। यह सोच लाला प्रभाशंकरने ज्ञानशंकरके पत्रका उत्तर लिख दिया। उन्हें अब भी आशा थी कि मेरे उत्तरकी नम्रताका ज्ञानशंकरपर अवश्य कुछ न कुछ असर होगा। क्या आश्चर्य है कि अलग होनेका विचार ही उनके दिलसे अलग हो जाय! यह विचार करके उन्होंने पत्रका उत्तर लिख दिया और जवाबका इन्तजार करने लगे।

११ बजेतक कोई जवाब न आया। दयाशंकर कचहरी जाने लगे। बड़ी बहू आकर बोलीं, लल्लू के साथ तुम भी चले जाओ। आज तजवीज सुनायी जायगी। जाने कैसी पड़े कैसी न पड़े। प्रभाशंकरने अपने जीवनमें कभी कचहरीके अन्दर कदम न रखा था। दोनों भाइयोंको प्रतिज्ञा थी कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, कचहरीका मुंह न देखेंगे। यद्यपि इस प्रतिज्ञाके कारण उन्हें कितनी ही बार हानियां उठानी पड़ी थीं, कितनी ही बार बल खाना पड़ा था, विरोधियोंके सामने झुकना पड़ा था, तथापि उन्होंने अबतक प्रतिज्ञाका पालन किया था। बड़ी बहूकी बात सुनकर प्रभाशंकर बड़े असमंजसमें पड़े। न तो जाते ही बनता था, न इनकार ही करते बनता था। बगलें झांकने लगे। दयाशंकरने उन्हें

द्विविधामें देखकर कुछ उदासीन भावसे कहा, आपका जी न चाहता हो न चलिये, मुझपर जो कुछ पड़ेगी देख लूंगा।

बड़ी बहू—नहीं, चले जायंगे। हरज क्या है?

दयाशंकर—जब कभी कचहरी न गये तो अब कैसे जा सकते हैं? प्रतिज्ञा न टूट जायगी?

बड़ी बहू—भला, ऐसी प्रतिज्ञा बहुत देखी है। लाऊं कपड़े?

दयाशंकर—नहीं, मैं अकेले ही चला जाऊंगा, आपके चलनेकी जरूरत नहीं।

यह कहकर दयाशंकर चले गये। बड़ी बहू भी पतिको अश्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हुए घरमें चली गयी। प्रभाशंकर मनमें बड़ी बहूपर झुंझला रहे थे कि इसने मेरे कचहरी जानेका प्रश्न क्यों उठाया। मैं वहां जाकर क्या बना लेता, हाकिमकी कलम तो पकड़ नहीं लेता, न उससे कुछ विनय प्रार्थना ही कर सकता। और फिर जब कभी न गया तो आज क्यों जाऊं? जिसने कांटे बोये हैं, वह उनके फल खायगा, इस फिक्रमें कहांतक जान दूं।

वह इसी खिन्नावस्थामें बैठे थे कि ज्ञानशंकरका दूसरा पत्र आ पहुंचा। उन्होंने सम्पूर्ण दीवानखाना लेनेका निश्चय किया था। प्रभाशंकरने सोचा था मेरी नम्रता उनके क्रोधको शांत कर देगी। उस आशाके प्रतिकूल जब यह प्रस्ताव सामने आया तो उनका चित्त अस्थिर हो गया। पत्रके निश्चयात्मक शब्दोंने उन्हें संज्ञाहीन कर दिया। बौखला गये। क्रोधकी जगह उनके हृदयमें एक विवशताका संचार हुआ। क्रोध प्रत्याघातके सामर्थ्यका द्योतक है। उनमें यह शक्ति निर्जीव हो गयी थी। उस प्रस्तावकी भयङ्कर मूर्तिने संग्रामकी कल्पना तक मिटा दी। उस बालककीसी दशा हो गयी जो हाथीको सामने देखकर मारे भयके रोने लगे, उसे भागने तकको सुधि न रहे। उनका समस्त जीवन भ्रातृप्रेमकी सुखद छायामें व्यतीत हुआ था। वैमनस्य और विरोधकी यह ज्वालासम धूप असह्य हो गयी। एक दिन प्रार्थीकी भांति

ज्ञानशंकरके पास गये और करुण स्वरमें बोले, ज्ञानू, ईश्वरके लिये इतनी बेमुरौवती न करो। मेरी वृद्धावस्थापर दया करो। मेरी आत्मापर ऐसा निर्दय आघात मत करो। तुम सारा मकान ले लो, मेरे बाल-बच्चोंके लिये जहां चाहो थोड़ासा स्थान दे दो। मैं उसीमें अपना निर्वाह कर लूंगा। मेरे जीवनभर इसी प्रकार चलने दो। जब मर जाऊं तो जो इच्छा हो करना। एक थाली-में न खाओ, एक घरमें तो रहो, इतना सम्बन्ध तो बनाये रक्खो। मुझे दीवानखानेकी जरूरत नहीं है। भला सोचो तो तुम दीवान-खानेमें आकर रहोगे तो बिरादरीके लोग क्या कहेंगे, नगरवाले क्या कहेंगे। सब कुछ हो गया है, पर अभीतक तुम्हारे कुलकी मर्य्यादा बनी हुई है। हम दोनों भाई नगरमें रामलखनकी जोड़ी कहलाते थे। हमारे प्रेम और एकताकी सारे शहरमें उपमा दी जाती थी। किसीको यह कहनेका अवसर मत दो कि एक भाईकी आंखें बन्द होते ही आपसमें ऐसी अनबन हो गयी कि अब एक घरमें रह भी नहीं सकते। मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करो।

ज्ञानशंकरपर इन विनयपूर्ण शब्दोंका कुछ भी असर न हुआ। उनके विचारमें यह विकृत भावुकता थी, जो मानसिक दुर्बलता-का चिह्न है। हां, उसपर कृत्रिमताका सन्देह नहीं हो सकता था। उन्हें विश्वास हो गया कि चचा साहेबको इस समय हार्दिक वेदना हो रही है। वृद्धजनोंका हृदय कुछ कोमल हुआ करता है। इन्होंने जन्मभर कुल-प्रतिष्ठा तथा मान-मर्यादाके देवताकी उपासना की है। इस समय अपकीर्तिका भय चित्तको अस्थिर कर रहा है। बोले, मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर यह तो विचार कीजिये कि इस पुराने घरमें दो परिवारोंका निर्वाह हो भी सकता है। रसोईका मकान केवल एक ही है। ऊपर सोने-के लिये केवल तीन कमरे हैं। आंगन कहनेको तो है किन्तु वायु और प्रकाशका प्रवेश केवल एकहीमें होता है। स्नानगृह भी एक ही है। इन कष्टोंको नित्य नहीं झेला जा सकता।

हमारी आयु इतनी दीर्घ नहीं है कि उसका एक भाग कष्टोंके ही भेंट किया जाय। आपकी कोमल आत्माको इस परिवर्त्तनसे दुःख अवश्य होगा और मुझे आपसे पूर्ण सहानुभूति है, किन्तु भावुकताके फेरमें पड़कर अपने शारीरिक सुख और शान्तिका बलिदान करना मुझे पसन्द नहीं और यदि आप भी इस विषयपर निष्पेक्ष होकर विचार करेंगे तो मुझसे सहमत हो जायंगे।

प्रभाशंकर—मुझे तो इस बदनामीके सामने यह असुविधाएं कुछ भी नहीं मालूम होतीं। जैसे अबतक काम चलता रहा है, उसी भांति अब भी चल सकता है।

ज्ञानशङ्कर—आपके और मेरे जीवन-सिद्धान्तोंमें बड़ा अन्तर है। आप भावोंकी आराधना करते हैं, मैं विचारका उपासक हूं। आप निन्दाके भयसे प्रत्येक आपत्तिके सामने सिर झुकावेंगे, मैं अपनी विचार-स्वतन्त्रताके सामने लोकमतकी लेशमात्र भी परवा नहीं करता। जीवन आनन्दसे व्यतीत हो, यह हमारा अभीष्ट है। यदि संसार स्वार्थपरता कहकर इसकी हँसी उड़ाए, निन्दा करे तो मैं उसकी सम्मतिको पैरोंतले कुचल डालूंगा। आपकी शिष्टताका आधार ही आत्मघात है। आपके घरमें चाहे उपवास होता हो, किन्तु कोई मेहमान आ जाय तो आप ऋण लेकर उसका सत्कार करेंगे। मैं ऐसे मेहमानको दूरसे ही प्रणाम करूंगा। आपके यहां जाड़ोंमें मेहमान लोग प्रायः बिना ओढ़ना-बिछौना लिये ही चले आते हैं। आप स्वयं जाड़ा खाते हैं, पर मेहमानोंके ओढ़ने-बिछौनेका प्रबन्ध अवश्य करते हैं। मेरे लिये यह अवस्था दुस्सह है। किसी मनुष्यको, चाहे वह हमारा निज सम्बन्धी ही क्यों न हो, यह अधिकार नहीं है कि वह इस प्रकार मुझे असमंजसमें डाले। मैं स्वयं किसीसे यह आशा नहीं रखता। मैं तो इसे भी सर्वथा अनुचित समझता हूं, कि कोई असमय और बिना पूर्वसूचनाके मेरे घर आये, चाहे वह मेरा भाई ही क्यों न हो। आपके यहां नित्य दो-चार निठल्ले नातेदार पड़े

ठाट तोड़ा किये, आपकी जायदाद मटियामेट हो गयी, पर आपने कभी इशारेसे भी उनकी अवहेलना नहीं की। मैं ऐसी घास-पातको कदापि न जमने दूंगा, जिससे जीवनके पौधेका ह्रास हो। लेकिन वह प्रथा अब काल-विरुद्ध हो गयी। यह जीवन-संग्राम-का युग है, और यदि हमको संसारमें जीवित रहना है तो हमें विवश होकर नवीन और पुरुषोचित सिद्धान्तोंके अनुकूल बनना पड़ेगा।

ज्ञानशङ्करने नयी सभ्यताकी जिन विशेषताओंका उल्लेख किया, उनका वह स्वयं व्यवहार न कर सकते थे। केवल उनमें मानसिक भक्ति रखते थे। प्राचीन प्रथाको मिटाना उनके सामर्थ्य से परे था। निन्दा और परिहाससे सिद्धान्तमें चाहे न डरते हों, पर प्रत्यक्ष उसकी अवज्ञा न कर सकते थे। आतिथ्य सत्कार और कुटुम्बपालनको मनमें चाहे अपव्यय समझते हों, पर उनके मित्रों तथा सम्बन्धियोंको कभी उनकी असज्जनताकी शिकायत नहीं-हुई। किन्तु साधारणतः उनका संभाषण विवादका रूप धारण कर लिया करता था, इसलिये वह आवेशमें ऐसे सिद्धान्तोंका समर्थन करने लगते थे, जिनका अनुसरण करनेका उन्हें कभी साहस न होता। लाला प्रभाशंकर समझ गये कि इसके सामने मेरी कुछ न चलेगी, इसके मनमें जो बात ठन गयी है उसे पूरा करके छोड़ेगा। जिसे कुल-मर्य्यादकी परवा नहीं, उससे उदारताकी आशा रखनी व्यर्थ है। दुःखित भावसे बोले, बेटा, मैं पुराने जमानेका आदमी हूं, तुम्हारी इन नयी-नयी बातोंको नहीं समझता। हम तो अपनी मान-मर्य्यादाको प्राणोंसे भी प्रिय समझते थे। यदि घरमें एक दूसरेका सिर काट लेते तोभी अलग होनेका नाम नहीं लेते। लेकिन तुम्हारी इसमें हानि हो रही है तो जो इच्छा हो वह करो; मुझे कोई आपत्ति नहीं है। हां, इतना फिर भी कहूंगा कि अभी दो-चार दिन रुक जाओ। जहां इतने दिनों तकलीफ उठायी है, दो-चार दिन और उठा लो। आज लल्लूके मुकद्दमेका फैसला

सुनाया जायगा। हम लोगोंके हाथ-पैर फूले हुए हैं, दाना-पानी हराम हो रहा है, जरा इस आगको ठंढी हो जाने दो।

ज्ञानशंकरमें आत्मश्लाघाकी मात्रा अधिक थी। उन्हें स्वभावतः तुच्छतासे घृणा थी। पर यही ममत्व अपना गौरव और सम्मान बढ़ानेके लिये उन्हें कभी-कभी धूर्तताकी प्रेरणा किया करता था, विशेषतः जब उसके प्रकट होनेकी कोई संभावना न होती थी। सहानुभूतिपूर्ण भावसे बोले, इस विषयमें आप निश्चिन्त रहें, दयाशंकर केवल मुक्त ही नहीं, बरी हो जायंगे। उधरके गवाह जैसे बिगड़े हैं, वह आपको मालूम ही है, तिसपर भी सबको शंका थी कि ज्वालासिंह जरूर दबावमें आ जायंगे। ऐसी दशामें मुझे कैसे चैन आ सकता था। मैं आज प्रातःकाल उनके पास गया और परमात्माने मेरी लाज रख ली। यह कोई कहनेकी बात नहीं है, पर मैंने अपने सामने फैसला लिखवाकर पढ़ लिया, तब उनका पिंड छोड़ा। पहले तो महाशय देरतक बगलें झांकते रहे, टालमटोल करते रहे, पर मैंने ऐसा फटकारा कि अन्तमें लज्जित होकर उन्हें फैसला लिखना ही पड़ा। मैंने कहा, महाशय आपने मेरी ही बदौलत बी० ए० की डिगरी पायी है, इसे मत भूलिये। यदि आप मेरा इतना भी लेहाज न करेंगे तो मैं समझूंगा कि एहसान संसारसे उठ गया।

प्रभाशंकरने ज्ञानबाबूको श्रद्धापूर्ण नेत्रोंसे देखा। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि भैया साक्षात् सामने खड़े हैं और मेरे सिरपर रक्षाका हाथ रखे हुए हैं। अगर अवस्था बाधक न होती तो वह ज्ञानशंकरके पैरोंपर गिर पड़ते और उसे आंसूकी बूंदोंसे तर कर देते। उन्हें लज्जा आयी कि मैंने ऐसे कर्तव्यपरायण, ऐसे न्यायशील, ऐसे दयालु, ऐसे देवतुल्य पुरुषका तिरस्कार किया। यह मेरी उद्दंडता थी कि मैंने उससे दयाशंकरकी सिफारिश करनेका आग्रह किया। यह सर्वथा अनुचित था। आजकलके सुशिक्षितगण अपना कर्तव्य स्वयं समझते हैं और अपने इच्छानुकूल उसका

पालन करते हैं। यही कारण है कि उन्हें किसीकी प्रेरणा अप्रिय लगती है। बोले, बेटा, यह समाचार सुनकर मुझे जितना हर्ष हो रहा है वह प्रकट नहीं कर सकता। तुमने मुझे प्राणदान दिया और कुलकी मर्य्यादा रख ली। मेरा रोम-रोम तुम्हारा अनुगृहीत है। मुझे अब विश्वास हो गया है कि भैया देवलोकमें बैठे हुए भी मेरी रक्षा कर रहे हैं। मुझे अत्यन्त खेद है कि मैंने तुम्हें कटु शब्द कहे, परमात्मा मुझे इसका दण्ड दे, मेरे अपराध क्षमा करो। बुड्ढे आदमी सिड़चिड़े हुआ करते हैं, उनकी बातोंका बुरा न मानना चाहिये। मैंने अबतक तुम्हारा अन्तरस्वरूप न देखा था। तुम्हारे उच्चादर्शोंसे अनभिज्ञ था। मुझे यह स्वीकार करते हुए खेद होता है कि मैं तुम्हें अपना अशुभचिन्तक समझने लगा था। पर अब मुझे तुम्हारी सज्जनता, तुम्हारे भ्रातृस्नेह और तुम्हारी उदारताका अनुभव हुआ। मुझे इस मतिभ्रमका सदैव पछताधा रहेगा।

यह कहते-कहते लाला प्रभाशंकरका गला भर आया। हृदय-पर जमा हुआ बर्फ पिघल गया, आंखोंसे जलबिन्दु गिरने लगे। किन्तु ज्ञानशंकरके मुखसे सान्त्वनाका एक शब्द भी न निकला। वह इस कपटाभिनयका रंग भी गहरा न कर सके। प्रभाशंकरकी सरलता, श्रद्धालुता और निर्मलताके आकाशमें उन्हें अपनी स्वार्थान्धता, कपटशीलता और मलिनता अत्यन्त कालिमापूर्ण और ग्लानिमय दिखायी देने लगी। वह स्वयं अपनी ही दृष्टिमें गिर गये, इस कपटकाण्डका आनन्द न उठा सके। शिक्षित आत्मा इतनी दुर्बल नहीं हो सकती। इस विशुद्ध वात्सल्य ध्वनिने उनकी सोयी हुई आत्माको एक क्षणके लिये जगा दिया। उसने आंखें खोलीं, देखा कि मन मुझे कांटोंमें घसीटे लिये चला जाता है। वह अड़ गयी, धर्तीपर पैर जमा दिये और निश्चय कर लिया कि इससे आगे न बढ़ूंगी।

सहसा सैयद ईजादहुसेन मुस्कुराते हुए दीवानखानेमें आये।

प्रभाशङ्करने उनकी ओर आशामय नेत्रोंसे देखकर पूछा, कहिये, कुशल तो है ?

ईजाद—सब खुदाका फ़ज़लोकरम है। लाइये, मुंह मीठा कराइये। खुदा गवाह है कि सुबहसे अबतक पानीका एक क़तरा भी हलक़के नीचे गया हो। वारे खुदाने आबरू रख ली, बाजी अपनी रही, बेदाग़ छुड़ा लाये, आंचतक न लगी। हक़ यह है कि जितनी उम्मीद थी उससे कुछ ज्यादा ही कामयाबी हुई। मुझे ज्वालासिंहसे ऐसी उम्मीद न थी।

प्रभाशङ्कर ज्ञानू, यह तुम्हारी सद्प्रेरणाका फल है। ईश्वर तुम्हें चिरञ्जीवी करे।

ईजाद—बेशक, बेशक, इस कामयाबीका सेहरा आपके ही सिर है। मैंने भी जो कुछ किया है आपकी ही बदौलत किया है। आपका आज सुबहका उनके पास जाना काम कर गया। कल मैंने इन्हीं हाथोंसे तजवीज़ लिखी थी। वह सरासर हमारे ख़िलाफ थी। आज जो तजवीज़ उन्होंने सुनायी, वह कोई और ही चीज़ है। यह सब आपकी मुलाक़ातका नतीजा है। आपने उनसे जो-जो बातें कीं और जिस तरीक़ेसे उन्हें राहे रास्तपर लाया उसकी हर्फ़-बहर्फ़ इत्तला मुझे मिल चुकी है। अगर आपने इतनी साफ़गोईसे काम न लिया होता तो वह हज़रत पञ्जेमें आनेवाले न थे।

प्रभाशङ्कर—बेटा, आज भैया होते तो तुम्हारा यह सदुद्योग देखकर उनकी गज़भरकी छाती हो जाती। तुमने उनका सिर ऊंचा कर दिया।

ज्ञानशङ्कर देख रहे थे कि ईजादहुसेन चचासाहबके साथ कैसे दांव खेल रहा है और मेरा मुंह बन्द करनेके लिये कैसे कपटनीतिसे काम ले रहा है। मगर कुछ बोल न सकते थे। चोर-चोर मौसेरे भाई हो जाते हैं। उन्हें अपने ऊपर क्रोध आ रहा था कि मैंने ऐसे दुर्बल प्रकृतिके मनुष्यको उसके कुटिल स्वार्थ साधनमें

योग देनेपर बाध्य हो रहा हूं। मैंने कीचड़में पैर रखा और प्रति क्षण नीचेको ओर फिसलता चला जाता हूं।

७

जबतक इलाकेका प्रबन्ध लाला प्रभाशङ्करके हाथोंमें था वह गौसखांको अत्याचारसे रोकते रहते थे। अब ज्ञानशङ्कर मालिक और मुख़तार थे। उनकी स्वार्थप्रियताने खांसाहेबको अपनी अभिलाषाओंके पूरे करनेका सुअवसर प्रदान कर दिया था। वर्षान्तपर उन्होंने बड़ी निर्दयतासे लगान वसूल किया। एक कौडी भी बाकी न छोडी। जिसने रुपये न दिये या न दे सका, उसपर नालिश की, कुर्की करायी और एकके डेढ़ वसूल किया। शिकमी असामियोंको समूल उखाड़ दिया और उनकी भूमिपर लगान बढ़ाकर दूसरे असामियोंको सौंप दिया। मौरूसी और दखील-कार असामियोंपर भी करवृद्धिके उपाय सोचने लगे। यह जानते थे कि करवृद्धि भूमिकी उत्पादक शक्तिपर निर्भर है और इस शक्तिको घटने बढ़ानेके लिये केवल थोड़ीसी वाक्यचतुरताकी आवश्यकता होती है। सारे इलाकेमें हाहाकार मच गया। कर-वृद्धिके पिशाचको शान्त करनेके लिये लोग नानाप्रकारके अनुष्ठान करने लगे। प्रभातसे सन्ध्यातक खांसाहेबका दरबार लगा रहता। वह स्वयं मध्यमें मसनद लगाकर विराजमान होते। मुन्शी मौजी-लाल पटवारी उनके दाहिनी ओर बैठते और सुक्खू चौधरी बायीं ओर। यह महानुभाव गांवके मुखिया सबसे बड़े किसान और सामर्थी पुरुष थे। असामियोंपर उनका बहुत दबाव था। इसलिये नीतिकुशल खांसाहेबने उन्हें अपना मंत्री बना लिया था। यह त्रिमूर्त्ति समस्त इलाकेकी भाग्यविधायक थी।

खांसाहेब पहले अपने अवकाशका समय भोगविलासमें व्यतीत किया करते थे। अब यह समय कुरानका पाठ करनेमें व्यतीत होता था। जहां कोई फकीर या भिक्षुक द्वारपर खड़ा भी न होने पाता था, वहां अब अभ्यागतोंका उदारतापूर्ण सत्कार

किया जाता। कभी कभी वस्त्रदान भी होता। लोकसिद्धिने पर-लोक बनानेकी सदिच्छा उत्पन्न कर दी थी।

अब खांसाहेबको विदित हुआ कि इस इलाकेको विद्रोही समझनेमें मेरी भूल थी। ऐसा बिरलाही कोई असामी था जिसने उनके चौखटपर मस्तक न नवाया हो। गांवमें दस-बारह घर ठाकुरोंके थे। उनसे लगान बड़ी कठिनाईसे वसूल होता था। किन्तु इजाफा लगानकी खबर पाते ही वह भी दब गये। डपट-सिंह उनके नेता थे। वह दिनमें दस-पांच बार खांसाहेबको सलाम करने आया करते। दुखरन भगत शिवजीको जल चढ़ाने जाते समय पहले चौपालका दर्शन करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। बस, अब समस्त इलाकेमें कोई द्रोही था तो मनोहर था और उसका कोई बन्धु था तो कादिर। वह खेतोंसे लौटता तो कादिरके घर जा बैठता और अपने दिनोंको रोता। इन दोनों मनुष्योंको साथ बैठे देखकर सुक्खू चौधरीकी छातीपर सांप लोटने लगता था। वह यह जानना चाहते थे कि इन दोनोंमें क्या बातें हुआ करती हैं। अवश्य दोनों मेरी ही बुराई करते होंगे। उन्हें देखते ही दोनों चुप हो जाते थे, इससे चौधरीके सन्देहकी और भी पुष्टि हो जाती थी। खांसाहेबने कादिरका नाम शैतान रख छोड़ा था और मनोहरको काला नाग कहा करते थे। काले नागका तो उन्हें बहुत भय नहीं था; क्योंकि एक चोट से उसका काम तमाम कर सकते थे, मगर शैतानसे डरते थे; क्योंकि उसपर चोट करना दुस्तर था। उस जवारमे कादिरका बड़ा मान था। वह बड़ा नीतिकुशल, उदार और दयालु था। इसके अतिरिक्त उसे जड़ीबूटियोंका अच्छा ज्ञान था। यहां हकीम, वैद्य, डाक्टर, जो कुछ था वही था। रोगनिदानमें भी उसे पूर्ण अभ्यास था। इससे जनताकी उसमें विशेष श्रद्धा थी। एक बार लाला जटाशङ्कर कठिन नेत्ररोगसे पीड़ित थे। बहुत कुछ प्रयत्न किये, पर कुछ लाभ न हुआ। कादिरकी जड़ीबूटियोंने एक ही

सप्ताहमें इस असाध्य रोगका निवारण कर दिया। खांसाहेबको भी एक बार कादिरके दो चुटकुलोंने प्लेगसे बचा लिया था। खां साहेब इस उपकारसे तो नहीं, पर कादिरकी सर्वप्रियतासे सशंक रहते थे। वह सदैव इसी उधेड़-बुनमें रहते थे, कि इस शैतान-को कैसे पंजेमें लाऊं।

किन्तु कादिर निश्चिन्त और निश्शंक अपने काममें लगा रहता था। उसे एक क्षणके लिये भी यह भय न होता था कि गांवके जमींदार और कारिन्दा मेरे शत्रु हो रहे हैं और उनकी शत्रुता मेरा सर्वनाश कर सकती है। यदि इस समय भी दैवयोग से खांसाहेब बीमार पड़ जाते, तो वह उनका इशारा पाते ही तुरन्त उनके उपचार और सेवा-शुश्रूषामें दत्तचित्त हो जाता। उस-के हृदयमें राग और द्वेषके लिये स्थान न था और न इस बातकी ही परवा थी कि मेरे विषयमें कैसे-कैसे मिथ्यालाप हो रहे हैं। वह गांवमें विद्रोहाग्नि भड़का सकता था, खांसाहेब और उनके सिपाहियोंकी खबर ले सकता था। गांवमें ऐसे कई उद्दण्ड नवयुवक थे जो इस अनिष्टके लिये आतुर थे। किन्तु कादिर उन्हें सम्भाले रहता था। दीनरक्षा उसका लक्ष्य था, किन्तु क्रोध और द्वेषको उभारकर नहीं, वरन् सद्व्यवहार तथा सद्प्रेरणासे।

मनोहरकी दशा इसके प्रतिकूल थी। जिस दिनसे वह ज्ञान-शंकरकी कठोर बातें सुनकर लौटा था, उसी दिनसे विकृत भाव-नायें उसके हृदय और मस्तिष्कमें गूंजती रहती थीं। एक मर्मा-हत पक्षी था, जो घावोंसे तड़प रहा हो। वह अपशब्द उसे एक क्षण भी न भूलते थे। वह ईंटका जवाब पत्थरसे देना चाहता था। यह वह जानता था कि सबलोंसे वैर बढ़ानेमें मेरा ही सर्व-नाश होगा, किन्तु इस समय उसकी अवस्था उस मनुष्यकीसी हो रही थी, जिसके झोपड़ेमें आग लगी हो और वह उसके बुझा-नेमें असमर्थ होकर शेष भागोंमें भी आग लगा दे कि किसी प्रकार

इस विपत्तिका अन्त हो। रोगी अपने रोगको असाध्य देखता है तो पथ्यापथ्यकी बेड़ियोंको तोड़कर मृत्युकी ओर दौड़ता है। मनोहर चौपालके सामनेसे निकलता तो अनायास अकड़कर चलने लगता। अपनी चारपाईपर बैठे हुए कभी खांसाहेब या गिरधर महाराजको आते देखता, तो उठकर सलाम करनेके बदले पैर फैलाकर लेट जाता। सावनमें उसके पेड़ोंके आम पके, उसने सब आम तोड़कर घरमें रख लिये, जमींदारका चिरकालसे बंधा हुआ चतुर्थांश न दिया, और जब गिरधर महाराज मांगने आये तो उन्हें दुत्कार दिया। वह सिद्ध करना चाहता था कि मुझे तुम्हारी धमकियोंकी जरा भी परवा नहीं है। कभी-कभी ९-१० बजे रात-तक उसके द्वारपर गाना होता, जिसका अभिप्राय केवल खांसाहेब और सुक्खू चौधरीको जलाना था। बलराजको अब वह स्वेच्छाचार प्राप्त हो गया, जिसके लिये पहले उसे झिड़कियां खानी पड़ती थीं। उसके रंगीले सहचरोंका यहां खूब आदर-सत्कार होता, भंग छनती, लकड़ीके खेल होते, लावनी और ख्यालकी तानें उड़तीं, डफली बजती। मनोहर जवानीके जोशके साथ इन जमघटोंमें सम्मिलित होता। ये ही दोनों पक्षोंके विचार-विनिमयके माध्यम थे। खांसाहेबकी एक-एक बातकी सूचना यहां हो जाती थी। यहांका एक-एक शब्द वहां पहुंच जाता था। यह गुप्त चालें आगपर तेल छिड़कती रहती थीं। खांसाहेबने एक दिन कहा, आजकल तो उधर खूब गुलछर्रे उड़ रहे हैं, बेदखलीका सम्मन पहुंचेगा तो होश ठिकाने हो जायगा। मनोहरने उत्तर दिया, बेदखलीकी धमकी दूसरोंको दें, यहां हमारे खेतोंके मेड़ोंपर कोई आया तो उसके बालबच्चे उसके नामको रोयेंगे।

एक दिन संध्या समय, मनोहर द्वारपर बैठा हुआ बैलोंके लिये कड़बी छांट रहा था और बलराज अपनी लाठीमें तेल लगाता था कि ठाकुर डपटसिंह आकर मांचेपर बैठ गये, और बोले, सुनते हैं डिप्टी ज्वालासिंह हमारे बाबूसाहबके पुराने दोस्त

हैं। छोटे सरकारके लड़के जो थानेदार थे, उनका मुकद्मा उन्हीं-के इजलासमें था। वह आज बरी हो गये।

मनोहर—रिश्वत तो साबित हो गयी थी न?

डपटसिंह—हां, साबित हो गयी थी। किसीको उनके बरी होनेकी आशा न थी। पर बाबू ज्ञानशंकरने ऐसी सिफारिश पहुंचायी कि डिप्टी साहेबको मुकद्मा खारिज करना पड़ा।

मनोहर—हमारे परगनेका हाकिम भी तो वही डिप्टी है।

डपट—हां, इसीकी तो चिन्ता है। इजाफा लगानका मामला उसीके इजलासमें जायगा और ज्ञानबाबू अपना पूरा जोर लगा-वेंगे।

मनोहर—तब क्या करना होगा?

डपट—कुछ समझमें नहीं आता।

मनोहर—ऐसा कोई कानून नहीं बन जाता कि बेसीका मामला इन हाकिमोंके इजलासमें न पेश हुआ करे। हाकिम लोग आप भी तो जमींदार होते हैं, इसीलिये वह जमींदारोंका पच्छ करते हैं। सुनते हैं, लाट साहेबके यहां कोई पंचायत होती है। यह बातें उस पंचायतमें कोई नहीं कहता।

डपट—वहां भी तो सब जमींदार ही होते हैं, कास्तकारोंकी फरियाद कौन करेगा?

मनोहर—हमने तो ठान लिया है कि एक कौड़ी भी बेसी न देंगे।

बलराजने लाठी कंधेपर रखकर कहा, कौन इजाफा करेगा, सिर तोड़के रख दूंगा।

मनोहर—तू क्यों बीचमें बोलता है, तुझसे तो हम नहीं पूछते। यह तो न होगा कि सांझ हो गयी है, लाओ भैंस दूह लूं, बैलोंकी नादमें पानी डाल दूं। बेबातकी बात बकता है। (ठाकुरसे) यह लौंडा घरका रत्तीभर भी काम नहीं करता, बस खानेभरका घरसे नाता है। मटरगश्त किया करता है।

डपट—मुझसे क्या कहते हो, मेरे यहां तो तीन-तीन मूसलचन्द हैं।

मनोहर—मैं तो एक कौड़ी बेसी न दूंगा, और न खेती ही छोड़ूंगा। खेतोंके साथ जान भी जायगी और दो-चारको साथ लेकर जायगी।

बलराज—किसीने हमारे खेतोंकी ओर आंख भी उठायी तो कुशल नहीं।

मनोहर—फिर बीचमें बोला?

बलराज—क्यों न बोलूं, तुम तो चार दिनके मेहमान हो, जो कुछ पड़ेगी वह तो हमारे ही सिर पड़ेगी। जमींदार कोई बादशाह नहीं है कि चाहे जितनी जबरदस्ती करे और हम मुंह न खोलें। इस जमानेमें तो बादशाहोंका भी इतना अख्तियार नहीं है, जमींदार किस गिनतीमें हैं! कचहरी-दरबारमें कहीं सुनायी नहीं है तो (लाठी दिखाकर) यह तो कहीं नहीं गयी है।

डपट—कहीं खांसाहेब यह बातें सुन लें तो गजब हो जाय।

बलराज—तुम खांसाहेबसे डरो, यह उनके दबेल नहीं हैं। खेतमें चाहे कुछ उपज हो या न हो, बेसी होती चली जाय, ऐसा क्या अंधेर है? सरकारके घर कुछ तो न्याय होगा, किस बातपर बेसी मंजूर करेगा?

डपट—अनाजका भाव नहीं चढ़ गया है?

बलराज—भाव चढ़ गया है तो मजदूरोंको मजदूरी भी तो चढ़ गयी है, बैलोंका दाम भी तो चढ़ गया है, लोहे लकड़का दाम भी तो चढ़ गया है, यह किसके घरसे आवेगा?

इतनेमें कादिरमियां घासका गट्ठर सिरपर रक्खे हुए आकर खड़े हो गये। बलराजकी बातें सुनीं तो मुस्कुराकर बोले, भांगका दाम भी तो चढ़ गया है। चरस भी तो महंगी हो गयी है, कत्था-सुपारी भी तो दूने दामों बिकती है, इसे क्यों छोड़े जाते हो?

मनोहर—हां, कादिर दादा, तुमने हमारे मनकी बात कही।

बलराज—तो क्या अपनी जवानीमें तुम लोगोंने दूध-माठा न पी होगी, या सदा इसी तरह एक जून चबेना और दूसरे जून रोटी साग खाकर दिन काटे हैं? और फिर तुम जमींदारके गुलाम बने रहे तो उस जमानेमें और कर ही क्या सकते थे? न अपने खेतमें काम करते, किसी दूसरेके खेतमें मजूरी करते। अब तो शहरोंमें मजूरोंकी माग है, रुपया रोज खानेको मिलता है, रहनेको पक्का घर अलग। अब हम जमींदारकी धौंस क्यों सहें, क्यों भर पेट खानेको तरसें?

कादिर—क्यों मनोहर, क्या इसे खानेको नहीं देते?

बलराज—यह भी कोई खाना है कि एक आदमी खाय और घरके सब आदमी उपास करें? गांवमें सुक्खू चौधरीको छोड़के और किसके घर दोनों बेला चूल्हा जलता है? किसीको एक जून चबेना मिलता है, कोई चुटकीभर सत्तू फांककर रह जाता है। दूसरी बेला भी पेटभर रोटी नहीं मिलती।

कादिर—भाई, बलराज बात तो सच्ची कहता है। इस खेतीमें कुछ रह नहीं गया, मजदूरी भी नहीं पड़ती। अब मेरे ही घर देखो, कुल छोटे-बड़े मिलाकर दस आदमी हैं, पांच-पांच रुपये भी कमाते तो छः सौ रुपये सालभरके होते। खा-पीकर सौ-पचास रुपये बच ही रहते। लेकिन इस खेतीमें रात-दिन लगे रहते हैं फिर भी किसीको भर पेट दाना नहीं मिलता।

डपट—बस, एक मरजाद रह गयी है, दूसरेकी मजूरी नहीं करते बनती। इसी बहानेसे किसी तरह निबाह हो जाता है। नहीं तो बलराजकी उमिरमें हम लोग खेतके डाँड़पर न जाते थे। न जाने क्या हुआ कि जमीनकी बरकत ही उठ गयी। जहां बीघा पीछे २०-२० मन होते थे, वहां अब ४-५ मनसे आगे नहीं जाता।

मनोहर—सरकारको यह हाल मालूम होता तो जरूर कास्तकारोंपर निगाह करती।

कादिर—मालूम क्यों नहीं है? रत्ती-रत्तीका पता लगा लेती है।

डपट—(हंसकर) बलराजसे कहो, सरकारके दरबारमें हम-लोगोंकी ओरसे फरियाद कर आये।

बलराज—तुम लोग तो ऐसी हंसी उड़ाते हो, जानों कास्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदारकी बेगार ही भरनेके लिये बनाया गया है। लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है, उसमें लिखा है कि रूस देशमें कास्तकारोंहीका राज है, वह जो चाहते हैं करते हैं। उसीके पास कोई और देश बलगारी है। वहां अभी हालकी बात है, कास्तकारोंने राजाको गद्दीसे उतार दिया है और अब किसानों और मजूरोंकी पञ्चायत राज करती है।

कादिर—(कुतूहलसे) तो चलो ठाकुर! उसी देशमें चलें, वहां मालगुजारी न देनी पड़ेगी।

डपट—वहांके कास्तकार बड़े चतुर और बुद्धिमान होंगे तभी तो राज सम्भालते होंगे।

कादिर—मुझे तो विश्वास नहीं आता।

मनोहर—हमारे पत्रमें झूठी बातें नहीं होतीं।

बलराज—पत्रवाले झूठी बातें लिखें तो सजा पा जायं।

मनोहर—जब उस देशके किसान राजका बन्दोबस्त कर लेते हैं, तो क्या हम लोग लाट साहेबसे अपना रोना भी न रो सकेंगे?

कादिर—तहसीलदार साहेबके सामने तो मुंह खुलता नहीं, लाट साहेबसे कौन फरियाद करेगा?

बलराज—तुम्हारा मुंह न खुले, मेरी तो लाट साहेबसे बात-चीत हो तो सारी कथा कह सुनाऊं।

कादिर—अच्छा, अबकी हाकिम लोग दौरेपर आवेंगे, तो हम तुम्हींको उनके सामने खड़ा कर देंगे।

यह कहकर कादिरखां घरकी ओर चले। बलराजने भी लाठी कंधेपर रखी और उनके पीछे चला। जब दोनों कुछ दूर निकल

गये तो बलराजने कहा, दादा, कहो तो खांसाहेबकी (घूंसेका इशारा करके) कर दी जाय।

कादिरने चौंककर उसकी ओर देखा, क्या गांवभरको बंधवानेपर लगे हो? भूलकर भी ऐसा काम न करना।

बलराज—सब मामला लैस है; तुम्हारे हुकुमकी देर है।

कादिर—(कान पकड़कर) न! मैं तुम्हें आगमें कूदनेकी सलाह न दूंगा। जब अल्लाहको मंजूर होगा तब वह आप ही यहांसे चले जायेंगे।

बलराज—अच्छा तो बीचमें न पड़ोगे न?

कादिर—तो क्या तुमलोग सचमुच मारपीटपर उतारू हो क्या? हमारी बात न मानोगे तो मैं जाकर थानेमें इत्तला कर दूंगा यह मुझसे नहीं हो सकता कि तुम लोग गांवमें आग लगाओ और मैं देखता रहूं।

बलराज—तो तुम्हारी यही सलाह है कि नित यह अन्याय सहते जायं।

कादिर—जब अल्लाहको मंजूर होगा तो आप-ही-आप सब उपाय हो जायगा।

८

जिस भांति सूर्य्यास्तके पीछे एक विशेष प्रकारके जीवधारी, जो न पशु हैं न पक्षी, जीविकाकी खोजमें निकल पड़ते हैं; अपनी लम्बी श्रेणियोंसे आकाश-मण्डलको आच्छादित कर देते हैं, उसी भांति कार्तिकका आरम्भ होते ही एक अन्य प्रकारके जन्तु देहातोंमें निकल पड़ते हैं और अपने खेमों तथा छोलदारियोंसे समस्त ग्राम-मण्डलको उज्ज्वल कर देते हैं। वर्षाके आदिमें राजसिक कीट और पतंगका उद्भव होता है, उसके अन्तमें तामसिक कीट और पतंगका। उनका उत्थान होते ही देहातोंमें भूकम्प-सा आ जाता है और लोग भयसे प्राण छिपाने लगते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि अधिकारियोंके यह दौरे सदिच्छाओंसे

प्रेरित होकर होते हैं। उनका अभिप्राय है जनताकी वास्तविक दशाका ज्ञान प्राप्त करना,न्यायको न्यायप्रार्थीके द्वारतक पहुंचाना, प्रजाके दुःखोंको सुनना, उनकी आवश्यकताओंको देखना, उनके कष्टोंका अनुमान करना, उनके विचारोंसे परिचित होना। यदि यह अर्थ सिद्ध होते तो यह दौरे वसंतकालसे भी अधिक प्राणपोषक होते, लोग वीणा और पखावजसे, ढोल-मजीरेसे, उनका अभिवादन करते। किन्तु जिस भांति प्रकाशकी रश्मियां पानीमें वक्रगामी हो जाती हैं, उसी भांति सदिच्छायें भी बहुधा मानवी दुर्बलताओंके सम्पर्कसे विषम हो जाया करती हैं। सत्य और न्याय पैरोंके नीचे आ जाता है, लोभ और स्वार्थकी विजय हो जाती है। अधिकारिवर्ग और उनके कर्मचारी विरहिणीकी भांति इस सुखकालके दिन गिना करते हैं। शहरोंमें तो उनकी दाल नहीं गलती, या गलती है तो बहुत कम। वहां प्रत्येक वस्तुके लिये उन्हें जेबमें हाथ डालना पड़ता है ; किन्तु देहातोंमें जेबकी जगह उनका हाथ अपने सोटेपर होता है या किसी दीन किसानकी गर्दनपर। जिस घी-दूध, शाक-भाजी, मांस-मछली आदिके लिये शहरमें तरसते थे, जिनका स्वप्नमें भी दर्शन नहीं होता था, उन पदार्थोंकी यहां केवल जिह्वा और बाहुके बलसे रैल-पेल हो जाती है। जितना खा सकते हैं, खाते हैं, बार-बार खाते हैं, और जो नहीं खा सकते वह घर भेजते हैं। घीसे भरे हुए कनस्टर, दूधसे भरे हुए मटके, उपले और लकड़ी, घास और चारेसे लदी हुई गाड़ियां शहरोंमें आने लगती हैं। घरवाले हर्षसे फूले नहीं समाते, अपने भाग्यको सराहते हैं ; क्योंकि अब दुःखके दिन गये और सुखके दिन आये। उनकी तरी वर्षाके पीछे आती है, वह खुश्कीमें तरीका आनन्द उठाते हैं। देहातवालोंके लिये यह बड़े सङ्कटके दिन होते हैं, उनकी शामत आ जाती है, मार खाते हैं, बेगारमें पकड़े जाते हैं, दासत्वके दारुण निर्दय आघातोंसे आत्माका भी ह्रास हो जाता है।

अगहनका महीना था। सांझ हो गयी थी। कादिरखांके

द्वारपर अलाव लगी हुई थी। कई आदमी उसके इर्द-गिर्द बैठे हुए बातें कर रहे थे। कादिरने बाजारके तम्बाकूकी निन्दा की, दुखरन भगतने उनका अनुमोदन किया। इसके बाद डपटसिंह पत्थर और बेलनके कोल्हुओंके गुण-दोषकी विवेचना करने लगे। अन्तमें लोहेने पत्थरपर विजय पायी।

दुखरन बोले, आजकल रातको मटरमें सियार और हिरन बड़ा उपद्रव मचाते हैं। जाड़ेके मारे उठा नहीं जाता।

कादिर—अबकी ठण्ढ बहुत पड़ेगी, दिनको पछुआ चलता है, मेरे पास तो कोई कम्बल भी नहीं, वही एक दोहर लपेटे पड़ा रहता हूं। पुआल न हो गया होता तो रातको अकड़ जाता।

डपट—यहां किसके पास कम्बल है? उसी एक पुराने धुस्से की भुगुत है। लकड़ी भी इतनी नहीं मिलती कि रातभर तापें।

मनोहर—अबकी बेटीके ब्याहमें इमलीका पेड़ तो कटवाया था। क्या सब जल गयी?

डपट—नहीं, बची तो बहुत थी, पर कल डिप्टी ज्वालासिंहके लस्करमें चली गयी। खांसाहबसे कितना कहा कि इसे मत ले जाइये, पर उनकी बला सुनती है। चपरासियोंको ढेर दिखा दिया। बात-की-बातमें सारी लकड़ी उठ गयी।

मनोहर—तुमने चपरासियोंसे कुछ कहा नहीं?

डपट—क्या कहता, दस-पांच मन लकड़ीके पीछे अपनी जान सांसतमें डालता, गालियां खाता, लस्करमें पकड़ जाता, मार पड़ती ऊपरसे तब तुम भी पास न फटकते। दोनों लड़के और झपट तो गरम पड़े थे; लेकिन मैंने उन्हें डांट दिया। जबरदस्त का ठेंगा सिरपर।

कादिर—हाकिमोंका दौरा क्या है हमारी मौत है। बकरीदमें कुर्बानीके लिये जो बकरा पाल रखा था, वह कल लस्करमें पकड़ गया। रब्बी बूचड़ पांच रुपये नगद देता था, मगर मैंने न दिया था। इस बखत सातसे कमका माल न था।

मनोहर—यह लोग यहां अन्धेर मचाते हैं। आते हैं इन्तज़ाम करने, इन्साफ करने ; लेकिन हमारे गलेपर छुरी चलाते हैं। इससे कहीं अच्छा तो यही था कि दौरे बन्द हो जाते। यही न होता कि मुकद्दमेवालोंको सदर जाना पड़ता, इस सांसतसे तो जान बचती।

कादिर—इसमें हाकिमोंका कसूर नहीं। यह सब उनके लस्करवालोंकी धांधली है। यही सब हाकिमोंको भी बदनाम कर देते हैं।

मनोहर—कैसी बात कहते हो दादा! यह सब मिली भगत है। हाकिमका इसारा न हो तो मजाल है कि कोई लस्करी परायी चीजपर हाथ डाल सके। सब कुछ हाकिमोंकी मर्जीसे होता है। और उनकी मर्जी क्यों न होगी? सेंतका माल किसको बुरा लगता है?

डपट—ठीक बात है। जिसकी जितनी आमद होती है, वह उतना ही और मुंह फैलाता है।

दुखरन—परमात्मा यह अन्धेर देखते हैं, और कोई जतन नहीं करते। देखें, बिसेसर साहको अब कितनी घटी आती है।

डपट—परसाल तो पूरे तीन सौकी चपत पड़ी थी। वही अबकी भी समझो, अगर जिन्स ही तक रहे तो इतना घाटा न पड़े,मगर यहां तो इलायची, कत्था, सुपारी, मेवा और मिश्री सभी कुछ चाहिये और सब टके सिर। लोग खानेके इतनी शौकीन बनते हैं ; पर यह नहीं होता कि ये सब चीजें अपने साथ रखें।

मनोहर—शहरमें खरे दाम लगते हैं, यहां कौन, जीमें आया दिया न दिया।

कादिर—कल लस्करका एक चपरासी बिसेसरके यहां साबूदाना मांग रहा था। बिसेसर हाथ जोड़ता था, पैरों पड़ता था कि मेरे यहां साबू नहीं है ; लेकिन चपरासी एक न सुनता था कहता था, जहांसे चाहो मुझे लाकर दो। गालियां देता था, डंडा

दिखाता था। बारे बलराज पहुंच गया। जब वह कड़ा पड़ा, तो चपरासी मियां नरम पड़े, और भुनभुनाते चले गये।

दुखरन—बिसेसरको एक बार मरम्मत हो जाती तो अच्छा होता। गांवभरका गला मरोडता है, यह उसीकी सजा है।

डपट—और हम-तुम किसका गला मरोड़ते हैं?

मनोहरने चिन्तित भावसे कहा, बलराज अब सरकारी आदमियोंके मुंह आने लगा। कितना समझाके हार गया, मानता ही नहीं।

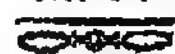
कादिर—यह उमिर ही ऐसी होती है।

यही बातें हो रही थीं कि एक बटोही आकर अलावके पास खड़ा हो गया। उसके पीछे-पीछे एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आयी और अलावसे जरा दूर सिर झुकाकर बैठ गयी।

कादिरने पूछा—कहो भाई, कहां घर है?

घर तो है देवरी पार, अपनी बुढ़िया माताको लिये असपताल जाता था, मगर वह जो सड़कके किनारे बगीचेमें डिपटी साहेब का लस्कर उतरा है, वहां पहुंचा तो चपरासियोंने गाड़ी रोक ली और हमारे कपड़े-लत्ते फेंक-फांककर लकड़ी लादने लगे। कितनी अरज विनती की, बुढ़िया बीमार है, भर रातका चला हूं, आज असपताल नहीं पहुंचा तो कल न जाने इसका क्या हाल हो। मगर कौन सुनता है। मैं रोता ही रहा, वहां गाड़ी लद गयी। तब मुझसे कहने लगे, गाड़ी हांक। क्या करूं, अब गाड़ी हांककर सदर जा रहा हूं। बैल और गाड़ी उनके भरोसे छोड़कर आया हूं। जब लकड़ी पहुंचाके लौटूंगा तब असपताल जाऊंगा। तुम लोगोंसे हो सके तो बुढ़ियाके लिये खटिया दे दो और कहीं पड़ रहनेका ठिकाना बता दो। इतना पुण्य करो, मैं बड़ी विपत्तियोंमें हूं।

दुखरन—यह बड़ा अन्धेर है। यह लोग आदमी काहेके, पूरे राछस हैं, जिन्हें दया-धरमका विचार नहीं।



डपट—दिनभरके थके मांदे बैल हैं, न जाने कहां गाड़ी ले जानी पड़ेगी और न जाने कब लौटोगे। तबतक बुढ़िया अकेली पड़ी रहेगी? जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े। हम लोग कितने भी हों तो पराये ही हैं, घरके आदमीकी और बात है।

मनोहर—मेरा तो ऐसा जी चाहता है कि इसी दम डिप्टी साहेबके सामने चला जाऊं और ऐसी खरी खरी सुनाऊं कि वह भी याद करें। बड़े हाकिमकी पोंछ बने हैं। इन्साफ तो क्या करेंगे, उल्टे और गरीबोंको पीसते हैं। खटियाकी तो कोई बात नहीं और जगहका भी कल्यान नहीं, लेकिन यह अकेली रहेंगी कैसे?

बटोही—कैसे बताऊं? जो भाग्यमें लिखा है वही होगा।

मनोहर—यहांसे कोई तुम्हारी गाड़ी हांक ले जाय तो कोई हरज है?

बटोही—ऐसा हो जाय तो क्या पूछना। है कोई आदमी?

मनोहर—आदमी बहुत हैं, कोई न कोई चला जायगा।

कादिर—तुम्हारा हलवाहा तो खाली है, उसे भेज दो।

मनोहर—हलवाहेसे बैल सधें न सधें, मैं ही चला जाऊंगा।

कादिर—तुम्हारे ऊपर मुझे विश्वास नहीं आता। कहीं झगड़ा कर बैठो तो और बन जाय। दुखरन भगत, तुम चले जाओ तो अच्छा हो।

दुखरनने नाक सिकोड़कर कहा, मुझे तो जानते हो, रातको कहीं नहीं जाता। भजन-भावकी यही बेला है।

कादिर—चला तो मैं जाता, लेकिन मेरा मन कहता है कि बूढ़ीको अच्छा करनेका जस मुझीको मिलेगा। कौन जाने अल्लाह-को यही मंजूर हो। मैं उन्हें अपने घर लिये जाता हूं। जो कुछ बन पड़ेगा करूंगा। गाड़ी हसनसे हंकवाये देता हूं। बैलोंको चारा पानी देना है, बलराजको थोड़ी देरके लिये भेज देना।

कादिरके बरोठेमें वृद्धाकी चारपाई पड़ गयी। कादिरका

लड़का हसनू गाड़ी हांकनेके लिए पड़ावकी तरफ चला। इतनेमें सुक्खू चौधरी और गौसखां दो चपरासियोंके साथ आते दिखाई दिये। दूसरी ओरसे बलराज भी आकर खड़ा हो गया।

गौसखाने कहा, सब लोग यहां बैठे गलचौड़ कर रहे हो, कुछ लश्करकी भी खबर है? देखो, यह चपरासी लोग दूधके लिये आये हैं, उसका बन्दोबस्त करो।

कादिर—कितना दूध चाहिए?

एक चपरासी—कमसे कम १० सेर।

कादिर—दस सेर! इतना दूध तो चाहे गांवभरमें न निकले। दो ही चार आदमियोंके पास तो भैंसें हैं और वह भी दुधार नहीं हैं। मेरे यहां तो दोनों जूनमे सेरभरसे ज्यादा नहीं होता।

चपरासी—भैंसें हमारे सामने लाओ, दूध तो हमारा चपरास निकालता है। हम तो पत्थरसे दूध निकाल लें, चोरोंकी पेटकी घाततक निकाल लेते हैं, भैंसें तो फिर भैंसें हैं। इस चपरासमें वह जादू है, कि चाहें तो जङ्गलमें मङ्गल कर दें। लाओ, भैंसें यहां खड़ी करो।

गौसखां—इतने तूल कलामकी क्या जरूरत है? दूधका इन्तजाम हो जायगा। दो सेर सुक्खू देनेको कहते हैं। कादिरके यहां भी दो सेर मिल ही जायगा, दुखरन भगत दो सेर दे देंगे, मनोहर और डपटसिंह भी दो-दो सेर दे देंगे। बस हो गया दस सेर।

कादिर—मैं दो सेर चार सेरका बीमा नहीं लेता। यह दोनों भैंसें खड़ी हैं। जितना दूध दे दें उतना ले लिया जाय।

दुखरन—मेरी तो दोनों भैंसें गाभिन हैं। बहुत देंगी तो आध सेर। पुआल तो खानेको पाती हैं और वह भी आधे पेट। कहीं चराई है नहीं, दूध कहांसे हो?

डपटसिंह—सुक्खू चौधरी जितना देते हैं उसका आधा मुझसे ले लीजिए। हैसियतहीके हिसाबसे न लीजियेगा?

गौसखां—तुम लोगोंकी यह निहायत बेहूदी आदत है कि हर

बातमें लाग-डांट करने लगते हो। शराफत और नरमीसे आधा भी न दोगे, लेकिन सख्तीसे पूरा लिये हाजिर हो जाओगे। मैंने तुमसे दो सेर कह दिया है, इतना तुम्हें देना होगा।

डपट—इस तरह आप मालिक हैं, भैंसें खोल ले जाइये, लेकिन दो सेर दूध मेरे यहां न होगा।

गौसखां—मनोहर, तुम्हारी भैंसें तो दुधार हैं?

मनोहरने अभी जवाब न दिया था कि बलराज बोल उठा, मेरी भैंसें बहुत दुधार हैं, मनभर दूध देती हैं, लेकिन बेगारके नामसे छटांकभर भी न देंगी।

मनोहर—तू चुपचाप क्यों नहीं रहता? तुझसे कौन पूछता है? हमसे जितना हो सकेगा देंगे, तुमसे मतलब?

चपरासीने बलराजकी ओर अपमानजनक क्रोधसे देखकर कहा, महतो, अभी हम लोगोंके पंजेमें नहीं पड़े हो। एक बार पड़ जाओगे तो आटे-दालका भाव मालूम हो जायगा। मुंहसे बात न निकलेगी।

दूसरा चपरासी—मालूम होता है सिरपर गरमी चढ़ गयी है, तभी इतना ऐंठ रहा है। इसे लश्कर ले चलो, तो गरमी उतर जाय।

बलराजने मर्माहत होकर कहा, मियां हमारी गरमी पांच-पांच रुपल्लीके चपरासियोंके मानकी नहीं है। जाओ, अपने साहेब बहादुरके जूते सीधे करो जो तुम्हारा काम है, हमारी गरमीके फेरमें न पड़ो, नहीं तो हाथ जल जायगे। उस जन्मके पापोंका दण्ड भोग रहे हो, लेकिन अब भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं।

बलराजने यह शब्द ऐसे सगर्व गम्भीरतासे कहे कि दोनों चपरासी खिसियासे गये। इस घोर अपमानका प्रतिकार करना कठिन था। यह मानों वादको वाणीकी परिधिसे निकालकर कर्मके क्षेत्रमें लानेकी ललकार थी। व्यङ्ग्याघात शाब्दिक कलहकी चरम सीमा है। उसका प्रतिकार मुंहसे नहीं, हाथोंसे होता है।

लेकिन बलराजका चौड़ा वक्ष और बृहद्‌काय देखकर चपरासि-योंको उससे हाथापाई करनेका साहस न हो सका। गौसखांसे बोले, खांसाहेब, आप इस लौंडेको देखते हैं, कैसा बढ़ा जाता है, इसे समझा दीजिये हमारे मुंह न लगे। ऐसा न हो शामत आ जाय और ६ महीने तक चक्की पीसनी पड़े। हम आप लोगों-का मुलाहिज़ा करते हैं, नहीं तो इस हेकड़ीका मज़ा चखा देते।

गौसखां—सुनते हो मनोहर, अपने बेटेकी बातें। भला सोचो तो डिपटी साहेबके कानोंमें यह बात पड़ जाये तो तुम्हारी क्या हाल हो। कहीं एक पत्तीका साया भी न मिलेगा।

मनोहरने दीनतासे खांसाहेबकी ओर देखकर कहा, खांसाहेब, मैं तो इसे सब तरह समझा बुझाके हार गया। न जाने क्या हाल करनेपर तुला हुआ है। (बलराजसे) अरे, तू यहांसे जायगा कि नहीं?

बलराज—क्यों जाऊं, मुझे किसीका डर नहीं है। यह लोग डिपटी साहेबसे मेरी शिकायत करनेकी धमकी देते हैं, मैं आप ही उनके पास जाता हूं। इन लोगोंको उन्होंने कभी ऐसा नादिरशाही हुक्म न दिया होगा कि जाकर गांवमें आग लगा दो। और मान लें कि वह ऐसा कड़ा हुक्म दे भी दें तो इन लोगोंको तो सोचना चाहिये कि यह गरीब किसान हमारे ही भाईबन्द हैं, इन्हें व्यर्थ न सतायें। लेकिन इन लोगोंको तो पैसेके लोभ और चपरासके मदने ऐसा अन्धा बना दिया है कि कुछ सूझता ही नहीं। आज उस बेचारे बनियेकी गाड़ी रोक ली। तनिक भी न सोचा कि बेचारी बुढ़ियाका क्या हाल होगा, मरेगी कि जियेगी। नौकरी तो की है पांच रुपयेकी, काम है बस्ते ढोना, मेज़ साफ़ करना, साहेबके पीछे-पीछे खिदमतगारोंकी तरह चलना, और बनते हैं रईस।

मनोहर—तू चुप होगा कि नहीं।

एक चपरासी—नहीं, इसे खूब गालियां दे लेने दो, जिसमें



इसके दिलकी हवस निकल जाय। इसका मजा कल मिलेगा। खांसाहेब, आपने सुना है। आपको गवाही देनी पड़ेगी। आपका इतना मुलाहिजा बहुत किया। लाइये, दूधका कुछ इन्तजाम करते हैं कि हम लोग जायं ?

गौसखां—नहीं जी दूध लो, और दस सेरसे सेरभर ज्यादा। यही लोग झख मारेंगे और देंगे। क्या बतायें आज इस छोकरेकी बदौलत हमको तुम लोगोंके सामने इतना शरमिन्दा होना पड़ा। इस गांवकी कुछ हवा ही बिगड़ी हुई है। मैं खूब समझता हूं। यह लोग जो भीगी बिल्ली बने बैठे हुए हैं, इन्हींके सह देनेसे इस लौंडेको इतनी जुरअत हुई है, नहीं तो इसकी मजाल थी कि यों टर्राता। बछड़ा खूंटेहीके बल कूदता है। खैर, अगर मेरा नाम गौसखां है तो एक-एकसे समझूंगा।

इस तिरस्कारका आशातीत प्रभाव हुआ। सब दहल उठे। वह अविनयशीलता जो पहले सबके चेहरोंसे झलक रही थी, लुप्त हो गयी। मनोहर तो ऐसा सिटपिटा गया, मानों सैकड़ों जूते पड़े हों। इस खटाईने सबके नशे उतार दिये।

कादिरखां बोले—मनोहर, जाओ, जितना दूध हो सब यहां भेज दो।

गौसखां—हमको मनोहरके दूधकी जरूरत नहीं है।

बलराज—यहां देता ही कौन है ?

मनोहर खिसिया गया। उठ खड़ा हुआ और बोला, अच्छा, ले अब तू ही बोल, तेरे जीमें जो आये वह कर, मैं जाता हूं। अपना घर-द्वार संभाल, मेरा निबाह तेरे साथ न होगा। चाहे घरको रख चाहे आग लगा दे।

यह कहकर वह सशंक क्रोधसे भरा हुआ वहांसे चल दिया। बलराज भी धीरे-धीरे अपने अखाड़ेकी ओर चला। वहां इस समय सन्नाटा था। मुगदरकी जोड़ी रखी हुई थी। एक पत्थरकी नाल जमीनपर पड़ी हुई थी, और लेजीम आमकी डालसे लटक रहा

था। बलराजने कपड़े उतारे और लंगोट कसकर अखाड़ेमें उतरा, लेकिन आज व्यायाममें उसका मन न लगा। चपरासियोंकी बातें एक फोड़ेकी भांति उसके हृदयमें टीस रही थीं। यद्यपि उसने चपरासियोंको निर्भय होकर उत्तर दिया था, लेकिन उसे इसमें तनिक भी सन्देह न था कि गांवके अन्य पुरुषोंको, यहांतक कि मेरे पिताको भी, मेरी बातें उद्दण्ड प्रतीत हुईं। सबके सब कैसा सन्नाटा खींचे बैठे रहे। मालूम होता था किसीके मुखमें जीभ ही नहीं है। तभी तो यह दुर्गति हो रही है! अगर कुछ दम होता तो आज इतने पीसे-कुचले क्यों जाते? और तो और, दादाने भी मुझीको डांटा। न जाने इनके मनमें इतना डर क्यों समा गया है। पहले तो यह इतने कायर न थे। कदाचित् अब मेरी चिन्ता इन्हें सताने लगी। लेकिन मुझे अवसर मिला तो स्पष्ट कह दूंगा कि तुम मेरी ओरसे निश्चिन्त रहो। मुझे परमात्माने हाथ-पैर दिये हैं। मिहनत कर सकता हूं और दोको खिलाकर खा सकता हूं। तुम्हें अगर अपने खेत इतने प्यारे हैं कि उनके पीछे तुम अत्याचार और अपमान सहनेपर तैयार हो तो शौकसे सहो, लेकिन मैं ऐसे खेतोंपर लात मारता हूं। अपने पसीनेकी रोटी खाऊंगा और अकड़कर चलूंगा। अगर कोई आंख दिखायेगा तो उसकी आंख निकाल लूंगा। यह बुड्ढा गौसखां कैसी लाल पीली आंखें कर रहा था। मालूम होता है इनकी मृत्यु मेरे ही हाथों लिखी हुई है। मुझपर दो चोटें कर चुके हैं। अब देखता हूं कौन हाथ निकालते हैं। इनका क्रोध मुझीपर उतरेगा। कोई चिन्ता नहीं, देखा जायगा। दोनों चपरासी मनमें फूले न समाये होंगे कि सारा गांव कैसा रोबमें आ गया, पानी भरनेको तैयार है। गांववालोंने भी लल्लो-चप्पो की होगी। कोई परवाह नहीं। चपरासी मेरा कर ही क्या सकते हैं? लेकिन मुझे कल प्रातःकाल डिप्टी साहेबके पास जाकर उनसे सब हाल कह देना चाहिये। विद्वान पुरुष हैं। दीन मनुष्योंपर उन्हें अवश्य दया आवेगी। अगर

वह गाड़ियोंके पकड़नेको मनाही कर दें तो क्या पूछना ! उन्हें यह अत्याचार कभी पसन्द न आता होगा। यह चपरासी लोग छिपाकर यों जबरदस्ती करते हैं। लेकिन कहीं उन्होंने मुझे अपने इजलाससे खड़े खड़े निकलवा दिया तो ? बड़े आदमियोंको घमंड बहुत होता है। कोई हरज नहीं। मैं सड़कपर खड़ा हो जाऊंगा और देखूंगा कि कैसे कोई मुसाफिरोंकी गाड़ी पकड़ता है। या तो दो-चारका सिर तोड़के रख दूंगा या आप भी वहीं मर जाऊंगा। अब बिना गरम पड़े काम नहीं चल सकता। वह दादा बुलाने आ रहे हैं।

बलराज अपने बापके पीछे-पीछे घर पहुंचा। रास्तेमें कोई बातचीत नहीं हुई। बिलासी बलराजको देखकर बोली, कहां जाके बैठ रहे ? तुम्हारे दादा कबसे खोज रहे हैं। चलो, रोटी तैयार है।

बलराज—अखाड़ेकी ओर चला गया था।

बिलासी—तुम अखाड़े मत जाया करो।

बलराज—क्यों ?

बिलासी—क्यों क्या, देखते नहीं हो, सबकी आंखोंमें कैसे खुबते हो। जिन्हें तुम अपना हितू समझते हो वह सबके सब तुम्हारी जानके घातक हैं। तुम्हें आगमें ढकेलकर आप तमाशा देखेंगे। आज ही तुम्हें सरकारी आदमियोंसे भिड़ाकर कैसा दबक गये !

बलराजने इस उपदेशका कुछ उत्तर न दिया। चौकेपर जा बैठा। उसके एक ओर मनोहर था और दूसरी ओर जरा हटकर उसका हलवाहा रंगी चमार बैठा हुआ था। बिलासीने जौकी मोटी मोटी रोटियां, बथुएका शाक और अरहरकी दाल तीनों थालियोंमें परस दी। तब एक फूलके कटोरेमें दूध लाकर बलराजके सामने रख दिया।

बलराज—क्या और दूध नहीं है ?

बिलासी—दूध कहां है, बेगारमें नहीं चला गया ?

बलराज—अच्छा, यह कटोरा रंगीके सामने रख दो।

विलासी—तुम खा लो, रंगी एक दिन दूध न खायेगा तो दुबला न हो जायगा।

बलराज बेगारका हाल सुनकर क्रोधसे आग हो रहा था। कटोरेको उठाकर आंगनकी ओर जोरसे फेंक दिया। वह तुलसीके चबूतरेसे टकराकर टूट गया। बिलासीने दौड़कर कटोरा उठा लिया और पछताते हुए बोली, तुम्हें आज क्या हो गया है? राम, राम, ऐसा सुन्दर कटोरा चूर कर दिया। कुछ सनक तो नहीं गये हो?

बलराज—हां, सनक ही गया हूं।

बिलासी—यह किस बातपर कटोरेको पटक दिया?

बलराज—इसलिये कि जो हमसे अधिक काम करता है उसे हमसे अधिक खाना चाहिए। हमने तुमसे बार बार कह दिया कि रसोईमें जो कुछ थोड़ा बहुत हो, वह सबके सामने आना चाहिए। अच्छा खायं तो सब खायं, बुरा खायं तो सब खायं। लेकिन तुम्हें न जानें क्यों यह बात भूल जाती है। अब याद रहेगी। रङ्गी कोई बेगारका आदमी नहीं है, घरका आदमी है। वह मुंहसे चाहे न कहे, पर मनमें अवश्य कहता होगा कि छाती फाड़कर काम मैं करूं और मोछोंपर ताव देकर खायं यह लोग। ऐसा दूध घी खानेपर लानत है।

रङ्गीने कहा—भैया, नित्त तो दूध खाता हूं, एक दिन न सही। तुम हक-नाहक इतने खफा हो गये।

इसके बाद तीनों आदमी चुपचाप खाने लगे। खा-पीकर बलराज और रङ्गी ऊखकी रखवाली करने मण्डियाकी तरफ चले। वहां बलराजने चरस निकाली और दोनोंने खूब दम लगाये। जब दोनों ऊखके छिलकेके बिछावनपर कम्बल ओढ़कर लेटे तो रङ्गी बोला, "काहे भैया, आज तुमसे लसकरके चपरासियोंसे कुछ कहा-सुनी हो गयी थी क्या?

बलराज—हां, हरतुज हो गयी। दादाने मने न किया होता तो दोनोंको मारता।

रङ्गी—तभी दोनों तुम्हें बुरा-भला कहते चले जाते थे। मैं उधरसे क्यारीमें पानी खोलकर आता था। मुझे देखकर दोनों चुप हो गये। मैंने इतना सुना, 'अगर यह लौंडा कल सड़कपर गाड़ियां पकड़नेमें कुछ तकरार करे तो बस चोरीका इलजाम लगाकर गिरफ्तार कर लो। एक पचास बेंत पड़ जायं तो इसकी शेखी उतर जाय।'

बलराज—अच्छा, यह सब यहांतक मेरे पीछे पड़े हुए हैं! तुमने अच्छा किया मुझे चेता दिया। मैं कल सवेरे ही डिप्टी साहेबके पास जाऊंगा।

रङ्गी—क्या करने जाओगे भैया? सुनते हैं अच्छा आदमी नहीं है। बड़ी कड़ी सजा देता है। किसीको छोड़ना तो जानता ही नहीं। तुम्हें क्या करना है? जिसकी गाड़ियां पकड़ी जायंगी, वह आप निबट लेगा।

बलराज—वाह, लोगोंमें इतना ही बूता होता तो किसीकी गाड़ियां पकड़ी ही क्यों जातीं? सीधेका मुंह कुत्ता चाटता है। यह चपरासी तो आदमी ही हैं।

रङ्गी—तो तुम काहेको दूसरोंके बीचमें पड़ते हो। तुम्हारे दादा आज बहुत उदास थे और अम्मा रोती रहीं।

बलराज—क्या जाने क्यों रङ्गी, जबसे दुनियाका थोड़ा-बहुत हाल जानने लगा हूं, मुझसे अन्याय नहीं देखा जाता। जब किसी जबरेको किसी गरीबका गला दबाते देखता हूं तो मेरे बदनमें आगसी लग जाती है। यही जी चाहता है कि चाहे अपनी जान रहे या जाय, इस जबरेका सिर नीचा कर दूं। सिरपर एक भूतसा सवार हो जाता है। जानता हूं कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, पर मन काबूसे बाहर हो जाता है।

इसी तरहकी बातें करते दोनों सो गये। प्रातःकाल बलराज

घर गया, कसरत की, दूध पिया और अपना ढीला कुर्ता पहने, पगड़ी बांध डिप्टी साहेबके पड़ावकी ओर चला। मनोहर अबतक उससे रूठे बैठे थे। अब जब्त न कर सके। पूछा, कहां जाते हो?

बलराज—जाता हूं डिप्टी साहेबके पास।

मनोहर—क्यों सिरपर भूत सवार है? अपना काम क्यों नहीं देखते?

बलराज—देखूंगा कि पढ़े-लिखे लोगोंका मिजाज कैसा होता है।

मनोहर—धक्के खाओगे, और कुछ नहीं।

बलराज—धक्के तो चपरासियोंके खाते हैं, इसकी क्या चिन्ता। कुत्ते की जात तो पहचानी जायगी।

मनोहरने उसकी ओर निराशापूर्ण स्नेहकी दृष्टिसे देखा और कन्धेपर कुदाल रखकर हारकी ओर चल दिया। बलराजको मालूम हो गया कि अब यह मुझे छोड़ा हुआ सांड़ समझ रहे हैं; पर वह अपनी धुनमें मस्त था। मनोहरका यह विचार कि इस समय समझानेका उतना असर न होगा जितना विरक्ति-भावका, निष्फल हो गया। वह ज्योंही घरसे बाहर निकला बलराजने भी लट्ठ कंधेपर रक्खा और कैम्पकी ओर चला। किसी हाकिमके सम्मुख जानेका उसको यह पहला ही अवसर था। मनमें अनेक विचार आते थे। मालूम नहीं मिलें या न मिलें, कहीं मेरी बातें सुनकर बिगड़ न जायं, मुझे देखते ही सामनेसे निकलवा न दें। चपरासियोंने मेरी शिकायत अवश्य की होगी। क्रोधमें भरे बैठे होंगे। बाबू ज्ञानशंकरसे इनकी दोस्ती भी तो है। उन्होंने भी हमलोगोंकी ओरसे उनके कान खूब भरे होंगे। मेरी सूरत देखते ही जल जायंगे। उंह, जो कुछ हो, एक नया अनुभव तो हो जायगा। यही पढ़े लिखे लोग तो हैं जो सभाओंमें और लाटसाहबके दरबारमें हमलोगोंकी भलाईकी रट लगाया करते हैं, हमारे नेता बनते हैं। देखूंगा कि यह लोग अपनी बातोंके कितने धनी हैं।

बलराज कैम्पमें पहुंचा तो देखा कि जगह जगह लकड़ीके अलाव जल रहे हैं, कहीं पानी गर्म हो रहा है, कहीं चाय बन रही है। एक ओर बूचड़ बकरेका मांस काट रहा रहा है, दूसरी ओर बिसेसर साह बैठे जिन्स तौल रहे हैं। चारों ओर घड़े और हांडियां टूटी पड़ी थीं। एक वृक्षकी छांहमें कितने ही आदमी सिकुड़े बैठे थे, जिनके मुकद्दमोंकी आज पेशी होनेवाली थी। बलराज पेड़ोंकी आड़में होता हुआ ज्वालासिंहके खेमेके पास जा पहुंचा। उसे यह धड़क लगा हुआ था, कि कहीं उन दोनों चपरासियोंकी निगाह मुझपर न पड़ जाय। वह खड़ा सोचने लगा कि डिप्टी साहेबके सामने कैसे जाऊं। उसपर इस समय एक रोब छाया हुआ था। खेमेके सामने जाते हुए पैर कांपते थे। अचानक उसे गौसखां और सुक्खू चौधरी एक पेड़के नीचे आग तापते हुए दिखायी पड़े। अब वह खेमेके पीछे खड़ा न रह सका। उनके सामने धक्के खाना या डांट सुनना मर जानेसे भी बुरा था। वह जी कड़ा करके खेमेके सामने चला गया और ज्वालासिंहको सलाम करके चुपचाप खड़ा हो गया।

बाबू ज्वालासिंह एक न्यायशील और दयालु मनुष्य थे, किन्तु इन दो-तीन महीनोंके दौरेमें उन्हें अनुभव हो गया था कि बिना कड़ाईके मैं सफलताके साथ अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं कर सकता। सौजन्य और शालीनता निजके कामोंमें चाहे कितनी ही सराहनीय हों लेकिन शासन-कार्य्यमें यह सद्गुण अवगुण बन जाते हैं। लोग उनसे अनुचित लाभ उठाने लगते हैं, उन्हें अपनी स्वार्थ-सिद्धिका साधन बना लेते हैं। अतएव न्याय और शीलमें परस्पर विरोध हो जाता है। रसद और बेगारके विषयमें भी अधीनस्थ कर्मचारियोंकी चापलूसियां उनकी न्यायनीतिपर विजय पा गयी थीं, और वह अज्ञातभावसे स्वेच्छाचारी अधिकारियोंके वर्त्तमान सांचेमें ढल गये थे। उन्हें अपने विवेकपर पहलेहीसे गर्व था, अब इसने आत्मश्लाघाका रूप धारण कर लिया था।

वह जो कुछ कहते या करते थे उसके विरुद्ध एक शब्द भी न सुनना चाहते थे। इससे उनकी रायपर कोई असर न पड़ता था। वह निस्पृह मनुष्य थे और न्यायमार्गसे एक जौ भर भी न टलते थे। उन्हें स्वाभाविक रूपसे यह विचार होता था कि किसीको मुझसे शिकायत न होनी चाहिये। अपने औचित्य-पालनका विश्वास और अपनी गौरवशील प्रकृति उन्हें प्रार्थियोंके प्रति अनुदार बना देती थी। बलराजको सामने देखकर बोले, कौन है? यहां क्यों खड़ा है?

बलराजने झुककर सलाम किया। उसकी उद्दण्डता लुप्त हो गयी थी। डरता हुआ बोला, हजूरसे कुछ बोलना चाहता हूं। तावेदारका घर इसी लखनपुरमें है।

ज्वालासिंह—क्या कहता है?

बलराज—कुछ नहीं, इतना ही पूछना चाहता हूं कि सरकारको आज कितनी गाड़ियोंकी जरूरत होगी?

ज्वाला—क्या तुम गाड़ियोंके चौधरी हो?

बलराज—जी नहीं, चपरासी लोग सड़कपर जाकर मुसाफिरोंकी गाड़ियां रोकते हैं और उन्हें दिक करते हैं। मैं चाहता हूं कि सरकारको जितनी गाड़ियां दरकार हों उतनी आसपासके गांवोंसे खोज लाऊं। उनका सरकारसे जो किराया मिलता हो वह दे दिया जाय तो मुसाफिरोंको रोकना न पड़े।

ज्वालासिंहने अपना सामान लादनेके लिये ऊंट रख लिये थे, किन्तु यह जानते थे, कि मातहतों और चपरासियोंको अपना असबाब लादनेके लिये गाड़ियोंकी जरूरत होती है। उन्हें इसका खर्च सरकारसे नहीं मिलता। अतएव वह लोग गाड़ियां न रोकें, तो उनका काम ही न चले। यह व्यवहार चाहे प्रजाको कष्ट पहुंचावे, पर क्षम्य है। उनके विचारमें यह कोई ऐसी ज्यादती न थी। संभव था कि यही प्रस्ताव किसी सम्मानित पुरुषने किया होता, तो वह उसपर विचार करते, लेकिन एक अक्खड़, गँवार

मूर्ख देहातीको उनसे यह शिकायत करनेका साहस हो, यह उन्हें न्यायका पाठ पढ़ानेका दावा करे, यह उनके आत्माभिमानके लिये असह्य था। चिढ़कर बोले, जाकर सरिश्तेदारसे पूछो।

बलराज—हजूर ही उन्हें बुलाकर पूछ लें, मुझे वह न बतावेंगे।

ज्वालासिंह—मुझे इस दर्दसरकी फुर्सत नहीं है।

बलराजके तोवरपर बल पड़ गये। शिक्षित समुदायकी नीतिपरायणता और सज्जनतापर उसको जो श्रद्धा थी, वह क्षणमात्रमें भंग हो गयी। इन सद्भावोंकी जगह उसे अधिकार और स्वेच्छाका अहंकार अकड़ता हुआ दीख पड़ा। अहंकारके सामने सिर झुकाना उसने न सीखा था। उसने निश्चय किया कि जो मनुष्य इतना अभिमानी हो, और मुझे इतना नीच समझे वह आदरके योग्य नहीं है। इनमें और गौसखां या मामूली चपरासीमें अन्तर ही क्या रहा? ज्ञान और विवेककी ज्योति कहां गयी? निश्शंक होकर बोला—सरकार इसे सिरदर्द समझते हैं और यहां हम लोगोंकी जानपर बनी हुई है। हजूर यहां धर्मके आसनपर बैठे हैं, और चपरासी लोग परजाको लूटते फिरते हैं। मुझे आपसे यह विनती करनेका हौसला हुआ, वो इसलिये कि मैं समझता था, आप दीनोंकी रक्षा करेंगे। अब मालूम हो गया कि हम अभागोंका सहायक परमात्माके सिवा और कोई नहीं।

यह कहकर वह बिना सलाम किये ही वहांसे चल दिया। उसे एक नशा-सा हो गया था। बातें अवज्ञापूर्ण थीं, पर उनमें स्वाभिमान और सदिच्छा कूट-कूटकर भरी हुई थी। ज्वालासिंहमें अभीतक सहृदयताका सम्पूर्णतः पतन न हुआ था, क्रोधकी जगह उनके मनमें सद्भावनाका विकास हुआ। अबतक इनके यहां स्वार्थी और खुशामदी आदमियोंहीका जमघट रहता था। ऐसे एक भी स्पष्टवादी मनुष्यसे उनका सम्पर्क न हुआ था। जिस प्रकार मीठे पदार्थ खानेसे ऊबकर हमारा मन कड़वी वस्तु-

ओंकी ओर लपकता है, उसी भांति ज्वालासिंहको यह कड़वी बातें प्रिय लगीं। इन्होंने उनके हृदय-नेत्रोंके सामनेसे पदाभिमान-का परदा हटा दिया। जीमें तो आया कि इस युवकको बुला-कर उससे खूब बातें करूं, किन्तु अपनी स्थितिका विचार करके रुक गये। वह बहुत देरतक बैठे हुए इन बातोंपर विचार करते रहे। अन्तिम शब्दोंने उनकी आत्माको एक ठोंका दिया था, और वह जागृत हो गयी थी। मनमें अपने कर्त्तव्यका निश्चय कर लेनेके बाद उन्होंने अहलमद साहेबको बुलाया। सैयद ईजाद हुसेनने बलराजको जाते देख लिया था। कलका सारा वृत्तान्त उन्हें मालूम ही था। ताड़ गये कि यह लौंडा डिप्टी साहेबके पास फरियाद लेकर आया होगा। पहले तो शङ्का हुई कहीं डिप्टी साहेब इसकी बातोंमें न आ गये हों। लेकिन जब उसकी बातोंसे ज्ञात हुआ कि डिप्टी साहेबने उल्टे और फटकार सुनायी तो धैर्य्य हुआ। बलराजको डांटने लगे। वह अपने अफसरोंके इशारेके गुलाम थे और उन्हींके इच्छानुसार अपने कर्त्तव्यका निर्णय किया करते थे।

बलराज इस समय ऐसा हताश हो रहा था कि पहले थोड़ी देरतक वह चुपचाप खड़ा ईजादहुसेनकी कठोर बातें सुनता रहा। अन्तमें गम्भीर भावसे बोला, आप क्या चाहते हैं कि हम लोगोंपर अन्याय भी हो और हम फरियाद भी न करें?

ईजादहुसेन—फरियादका मजा तो चख लिया। अब चालान होता है तो देखें कहां जाते हो। सरकारी आदमियोंसे मजाहिम होना कोई खालाजीका घर नहीं है। डिप्टी साहेबको तुम लोगों-की सरकशीका रत्ती-रत्ती हाल मालूम है। बाबू ज्ञानशङ्करने सारा कच्चा चिट्ठा उनसे बयान कर दिया है। वह तो मौकेकी तलाशमें थे। आज शामतक सारा गांव बंधा जाता है। गौसखां-को सीधा पा लिया है, इसीसे शेर हो गये हो। अब सारी कसर निकली जाती है। इतने बेत पड़ेंगे कि धज्जियां उड़ जायंगी।

बलराज—ऐसा कोई अंधेर है कि हाकिम लोग बेकसूर किसीको सजा कर दें।

ईजादहुसेन—हां हां, ऐसा ही अंधेर है। सरकारी आदमियों-को हमेशा बेगार मिली है और हमेशा मिलेगी। तुम गाड़ियां न दोगे तो वह क्या अपने सिरपर असबाब लादेंगे। हमें जिन-जिन चीजोंकी जरूरत होगी तुम्हींसे ली जायगी। हंसकर दो या रोकर दो। समझ गये·········!

इतनेमें एक चपरासीने आकर कहा, चलिये, आपको सरकार याद करते हैं। ईजादहुसेन पान खाये हुए थे। तुरन्त कुल्ली की, पगड़ी बांधी और ज्वालासिंहके सामने जाकर सलाम किया।

ज्वालासिंहने कहा, मीर साहब, चपरासियोंको ताकीद कर दीजिये कि अबसे कैम्पके लिये बेगार गाड़ियां न पकड़ा करें। आप लोग अपना सामान मेरे ऊंटोंपर रख लिया कीजिये। इससे आप लोगोंको चाहे थोड़ीसी तकलीफ हो, लेकिन यह मुनासिब नहीं मालूम होता कि अपनी आसाइशके लिये दूसरोंपर जब्र किया जाय।

ईजादहुसेन—हुजूर बहुत बजा फरमाते हैं। आजसे गाड़ियां पकड़नेकी सख्त मुमानियत कर दी जायगी। बेशक यह सरासर जुल्म है।

ज्वालासिंह—चपरासियोंसे कह दीजिये कि मेरे इजलासके खेमेमें रातको सो रहा करें। बेगारमें पुआल लेनेकी जरूरत नहीं, गरीब किसान यही पुआल काट-काटकर जानवरोंको खिलाते हैं इसलिये उन्हें इसका देना बहुत नागवार गुजरता है।

ईजादहुसेन—हुजूरका फर्माना बजा है। हुक्कामको ऐसा ही गरीबपरवर होना चाहिये। लोग जमींदारोंकी सख्तियोंसे योंही परेशान रहते हैं, उसपर हुक्कामकी बेगार तो और भी सितम हो जाती है।

ज्वालासिंहके हृदयमें ज्ञानशंकरके ताने अभीतक खटक रहे

थे। यदि थोड़ेसे कष्टसे उनपर छींटे उड़ानेकी सामग्री हाथ आ जाय तो क्या पूछना! ज्वालासिंह इस द्वेषके आवेगको न रोक सके। एक बार गांवमें जाकर उसकी दशा आंखोंसे देखनेका निश्चय किया।

८ बज चुके थे, किन्तु अभीतक चारों ओर कुहरा छाया हुआ था। लखनपुरके किसान आज छुट्टीसी मना रहे थे। जगह-जगह अलावके पास बैठे हुए लोग कलकी घटनाकी आलोचना कर रहे थे। बलराजकी धृष्टतापर टिप्पणियां हो रही थीं। इतनेमें ज्वालासिंह चपरासियों और कर्मचारियोंके साथ गांवमें आ पहुंचे। गौसखां और उनके दोनों चपरासी भी पीछे पीछे चले आते थे। उन्हें देखते ही स्त्रियां अपने अधमजे बर्तन छोड़-छोड़-कर घरोंमें घुसीं। बालक-वृद्ध भी इधर-उधर दुबक गये। कोई द्वारपरका कूड़ा उठाने लगा, कोई रास्तेमें पड़ी हुई खाक उठाने लगा। ज्वालासिंह गांवका भ्रमण करते हुए सुक्खू चौधरीके कोल्हुआड़ेमें आकर खड़े हो गये। सुक्खू चारपाई लेने दौड़े। गौसखांने एक आदमीको कुरसी लानेके लिये चौपाल दौड़ाया। लोगोंने चारों ओरसे आ-आकर ज्वालासिंहको घेर लिया। अमं-गलके भयसे सबके चेहरेपर हवाइयां उड़ रही थीं।

ज्वालासिंह—तुम्हारी खेती इस साल कैसी है?

सुक्खू चौधरीको नेतृत्वका पद प्राप्त था। ऐसे अवसरोंपर वही अग्रसर हुआ करते थे। पर वह अभीतक घरमेंसे चारपाई निकाल रहे थे जो बृहदाकार होनेके कारण द्वारोंसे निकल न सकती थी। इसलिये कादिरखांको प्रतिनिधिका आसन ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने विनीत भावसे उत्तर दिया, हजूर अभी-तक अच्छी है, आगे अल्लाह मालिक है।

ज्वालासिंह—यहां मुझे आबपाशीके कुएं बहुत कम नजर आते हैं, क्या जमींदारकी तरफसे इसका कोई इन्तजाम नहीं है?

कादिर—हमारे जमींदार तो हजूर हम लोगोंकी बड़ी परवस्ती

करते हैं, अल्लाह उन्हें सलामत रक्खे। हम लोग आप ही आलस-के मारे कोई फिकर नहीं करते।

ज्वालासिंह—मुंशी गौसखां तुम लोगोंकी सरकशीकी बहुत शिकायत करते हैं। बाबू ज्ञानशंकर भी तुम लोगोंसे खुश नहीं हैं। यह क्या बात है? तुम लोग वक्तपर लगान नहीं देते और जब तकाजा किया जाता है तो फिसादपर आमादा हो जाते हो। तुम्हें मालूम है कि जमींदार चाहे तो तुमसे एकके दो वसूल कर सकता है।

गजाधर अहीरने दबी जबानसे कहा, तो कौन कहे कि छोड़ देते हैं।

ज्वालासिंह—क्या कहते हो? सामने आकर कहो।

कादिर—कुछ नहीं हजूर, यही कहता है कि हमारी क्या मजाल है जो अपने मालिकोंके सामने सिर उठावें। हम तो उनके तावेदार हैं, उनका दिया खाते हैं, उनकी जमीनमें बसते हैं, भला उनसे सरकशी करके अल्लाहको क्या मुंह दिखावेंगे। रही बकाया, सो हजूर जहांतक होता है सालतमामतक कौड़ी-कौड़ी चुका देते हैं। हां, जब कोई काबू नहीं चलता तो कभी थोड़ी-बहुत बाकी रह भी जाती है।

ज्वालासिंहने इसी प्रकारसे और भी कई प्रश्न किये किन्तु उनका अभीष्ट पूरा न हो सका। किसीको जबानसे गौसखां या बाबू ज्ञानशङ्करके विरुद्ध एक शब्द भी न निकला। अन्तको हार मानकर वह पड़ावको चल दिये।

९

अपनी पारिवारिक सदिच्छाका, ऐसा उत्तम प्रमाण देनेके बाद ज्ञानशङ्करको बटवारेके विषयमें अब कोई असुविधा न रही। लाला प्रभाशङ्करने उन्हींके इच्छानुसार करनेका निश्चय कर लिया। दीवानखाना उनके लिये खाली कर दिया, लखनपुर मौसल्लम उनके हिस्सेमें दे दिया, और घरकी अन्य सामग्रियां भी उन्हींकी

ख्याल नहीं किया। दूकानोंका सालभरका किराया पेशगी लेकर हड़प कर चुके हैं। यह चाल इसलिये चल रहे हैं कि मैं मुंह भी न खोल सकूं और उनका बड़प्पन भी बना रहे। अपनी गांठसे करते तो मालूम होता।

विद्या—तुम दूसरोंकी कीर्तिको कभी कभी ऐसा मिटाने लगते हो कि मुझे तुम्हारी अनुदारतापर दुःख होता है। उन्होंने अपना समझकर उपहार दिया, तुम्हें इसमें उनकी चाल सूझ गयी।

ज्ञान—मुझे भी घरमें बैठे सुखभोगकी सामग्रियां मिलतीं तो मैं तुमसे अधिक उदार बन जाता। तुम्हें क्या मालूम है कि मैं आजकल कितनी मुश्किलसे गृहस्थीका प्रबन्ध कर रहा हूं? लखनपुरसे जो थोड़ा बहुत मिला उसीमें गुजर हो रहा है। किफायतसे न चलता तो अबतक सैकड़ोंका कर्ज हो गया होता। केवल अदालतके लिये सैकड़ों रुपयेकी जरूरत है। बेदखली और एजाफेके कागज-पत्र तैयार हैं, पर मुकदमे दायर करनेके लिये हाथमें कुछ भी नहीं। उधर गांववाले भी बिगड़े हुए हैं। ज्वालासिंहने अबको दौरेमें उन्हें ऐसा सिर चढ़ा दिया कि मुझे कुछ समझते ही नहीं। मैं तो इन चिन्ताओंमें मरा जाता हूं और तुम्हें एक न एक खुराफात सूझा करती है।

विद्या—मैं तुमसे रुपये तो नहीं मांगती।

ज्ञान—मैं अपने और तुम्हारे रुपयोंमें कोई भेद नहीं समझता। हां, जब रायसाहब तुम्हारे नाम कोई जायदाद लिख देंगे तो समझने लगूंगा।

विद्या—मैं तुम्हारा एक पैसा भी नहीं जानती।

ज्ञान—माना, लेकिन वहांसे भी तुम बोकड़ नहीं लाती हो। सालमें सौ-पचास रुपये मिल जाते होंगे, इतनेहीपर तुम्हारे पैर जमीनपर नहीं पड़ते। छिछले तालकी तरह उबलने लगती हो।

विद्या—तो क्या चाहते हो कि वह तुम्हें अपना घर उठाकर दे दें?



ज्ञान—वह बेचारे आप तो अघा लें, मुझे क्या देंगे ? मैं तो ऐसे आदमीको पशुसे भी गया गुजरा समझता हूं जो आप तो लाखों उड़ावे और अपने निकटतम सम्बन्धियोंकी बात भी न पूछे। वह तो अगर मर भी जायं तो मेरी आंखोंमें आंसू न आवे।

विद्या—तुम्हारी आत्मा इतनी संकुचित है, यह मुझे आज मालूम हुआ।

ज्ञान—ईश्वरको धन्यवाद दो कि मुझसे विवाह हो गया, नहीं तो कोई बात भी न पूछता। लाला बरसोंतक दुहाई-दुहाई हांक लगाते रहे; पर कोई सेंत भी न पूछता था।

विद्यावती इस मर्माघातको न सह सकी, क्रोधके मारे उसका चेहरा तमतमा उठा। वह झमककर वहांसे चली जानेको उठी कि इतनेमें महरीने एक तारका लिफाफा लाकर ज्ञानशंकरके हाथ रख दिया। लिखा था :—

पुत्रका स्वर्गवास हो गया जल्द आओ।

—कमलानन्द

ज्ञानशङ्करने तारका कागज जमीनपर फेंक दिया और लम्बी सांस खींचकर बोले, हा! शोक! परमात्मा, यह तुमने क्या किया!

विद्या ठिठक गयी।

ज्ञानशङ्करने विद्यासे कहा, विद्या, हम लोगोंपर वज्र गिर पड़ा, हमारा·········

विद्याने कातर नेत्रोंसे देखकर कहा, मेरे घरपर तो कुशल है ?

ज्ञानशङ्कर—हाय प्रिये, किस मुंहसे कहूं कि सब कुशल है। वह घर उजड़ गया, उस घरका दीपक बुझ गया। बाबू रामानन्द अब इस संसारमें नहीं हैं। हा, ईश्वर !!

विद्याके मुंहसे सहसा एक चीख निकल गयी। विह्वल होकर भूमिपर गिर पड़ी और छाती पीट-पीटकर विलाप करने लगी। श्रद्धा दौड़ी हुई आयी। महरियां जमा हो गयीं। बड़ी बहूने रोना

सुना तो वह अपनी बहू और पुत्रियोंके साथ आ पहुँचीं। कमरेमें स्त्रियोंकी भीड़ लग गयी। मायाशङ्कर माताको रोते देखकर चिल्लाने लगा। सभी स्त्रियोंके मुखपर शोककी आभा थी और नेत्रोंसे करुणाका जल। कोई ईश्वरको कोसती थी; कोई समयकी निन्दा करती थी। अकालमृत्यु कदाचित् हमारी दृष्टिमें ईश्वरका सबसे बड़ा अन्याय है। यह विपत्ति हमारी श्रद्धा और भक्तिका नाश कर देती है, हमें ईश्वरद्रोही बना देती है। संसारमें हम नित्य घोर-से-घोर और विषम-से-विषम अन्याय देखा करते हैं। हमें उसकी सहन पड़ गयी है। लेकिन हमारी अन्याय पीड़ित आंखें भी यह दारुण दृश्य सहन नहीं कर सकतीं। अकालमृत्यु हमारे हृदयपर सबसे कठोर दैवी आघात है। यह हमारे न्याय-ज्ञानपर सबसे भयंकर बलात्कार है।

पर हा स्वार्थ-संग्राम! यह निर्दय वज्रप्रहार ज्ञानशङ्करको सुखद पुष्पवर्षाके तुल्य जान पड़ा। उन्हें क्षणिक शोक अवश्य हुआ, किन्तु तुरन्त ही हृदयमें नयी-नयी आकांक्षाएं तरंगें मारने लगीं। अबतक उनका जीवन लक्ष्यहीन था। अब उसमें एक महान् लक्ष्यका विकास हुआ। विपुल सम्पत्तिका मार्ग निश्चित हो गया। ऊसर भूमिमें हरियाली लहरें मारने लगीं। राय कमलानन्दके अब और कोई पुत्र न था। दो पुत्रियोंमें एक विधवा और निस्सन्तान थी। विद्याको ही ईश्वरने संतान दी थी और मायाशङ्कर अब रायसाहबका वारिस था। कोई आश्चर्य नहीं कि ज्ञानशङ्करको यह शोकमय व्यापार अपने सौभाग्यकी ईश्वरकृत व्यवस्था जान पड़ती थी। वह मायाशङ्करको गोदमें लेकर नीचे दीवानखानेमें चले आये और विरासतके सम्बन्धमें स्मृतिकारोंकी व्यवस्थाका अवलोकन करने लगे। वह अपनी आशाओंकी पुष्टि और शङ्काओंका समाधान करना चाहते थे। कुछ दिनों तक कानून पढ़ा था, कानूनी किताबोंका उनके पास अच्छा संग्रह था। पहले मनुस्मृति खोली, संतोष न हुआ। मिताक्षराका

विधान देखा, शङ्का और भी बढ़ी, याज्ञवल्क्यने भी विषयका कुछ संतोषप्रद स्पष्टीकरण न किया। किसी वकीलकी सम्मति आवश्यक जान पड़ी। वह इतने उतावले हो रहे थे कि तत्काल कपड़े पहनकर चलनेको तैयार हो गये। कहारसे कहा, मायाको ले जा, बाज़ारकी सैर करा ला। कमरेसे बाहर निकले ही थे कि याद आया, तारका जवाब नहीं दिया। फिर कमरेमें गये, समवेदनाका तार लिखा। इतनेमें लाला प्रभाशङ्कर और दयाशङ्कर आ पहुंचे। ज्ञानशङ्करको इस समय उनका आना ज़हर-सा लगा। प्रभाशङ्कर बोले, मैंने तो अभी सुना। सन्नाटेमें आ गया। बेचारे रायसाहबको बुढ़ापेमें यह बुरा धक्का लगा। घर ही वीरान हो गया।

ज्ञानशङ्कर—ईश्वरकी लीला विचित्र है!

प्रभाशङ्कर—अभी उम्र ही क्या थी! बिलकुल लड़का था। तुम्हारे विवाहमें देखा था, चेहरेसे तेज बरसता था। ऐसा प्रतापी लड़का मैंने नहीं देखा।

ज्ञानशंकर—इसीसे तो ईश्वरके न्याय-विधानपरसे विश्वास उठ जाता है।

दयाशङ्कर—आपकी बड़ी सालीके तो कोई लड़का नहीं है न?

ज्ञानशङ्करने विरक्त भावसे कहा, नहीं।

दयाशङ्कर—तब तो चाहे माया ही वारिस हो।

ज्ञानशंकरने उनका तिरस्कार करते हुए कहा, कैसी बातें करते हो! कहां कौन-सी बात कहां कौन-सी बात? ऐसी बातोंका यह समय नहीं है।

दयाशंकर लज्जित हो गये। ज्ञानशंकरको अब यह विलम्ब असह्य होने लगा। पैरगाड़ी उठायी और दोनो आदमियोंको बरामदेहीमें छोड़कर डाक्टर इरफ़ानअलीके बङ्गलेकी ओर चल दिये, जो नामी वकील थे।

बैरिस्टर साहेबका बङ्गला खूब सजा हुआ था। शाम हो

गयी थी, वह हवा खाने जा रहे थे। मोटर तैयार थी। लेकिन मुवक्किलोंसे जान न छूटती थी। वह इस समय अपने आफिसमें आराम-कुर्सीपर लेटे हुए सिगार पी रहे थे और अपने छोटे टेरियरको गोदमें लिये उसके सिरमें थपकियां देते जाते थे। मुवक्किल लोग दूसरे कमरेमें बैठे थे। वह बारी-बारीसे डाक्टर साहेबके पास आकर अपना वृत्तान्त कहते जाते थे। ज्ञानशङ्करको बैठे बैठे ८ बज गये। तब जाकर उनकी बारी आयी। उन्होंने आफिसमें जाकर अपना मामला सुनाना शुरू किया। क्लर्कने उनकी सब बातें नोट कर लीं। इसकी फीस ५) हुई। डाक्टर साहेबकी सम्मतिके लिये दूसरे दिन बुलाया। उसकी फीस ५००) थी। यदि उस सम्मतिपर कुछ शंकाएं हों तो उनके समाधानके लिये प्रति घण्टा २००) देने पड़ेंगे। ज्ञानशंकरको मालूम न था कि डाक्टर साहेबके समयका मूल्य इतना अधिक है। मनमें पछताये कि नाहक इस झमेलेमें फंसा। क्लार्कको फीस तो उसी दम दे दी और घरसे रुपये लानेका बहाना करके वहांसे निकल आये। लेकिन रास्तेमें सोचने लगे, इनकी राय जरूर पक्की होती होगी, तभी तो उसका इतना मूल्य है। नहीं तो इतने आदमी उन्हें घेरे क्यों रहते? कदाचित् इसीलिये कल बुलाया है, खूब छान-परताल करके तब राय देंगे। अटकलपच्चू बात कहनी होती तो अभी न कह देते। अंग्रेजी नीतिमें यही तो गुण है कि दाम चोकस लेते हैं, पर माल खरा देते हैं। सैकड़ों नजीरें देखनी पड़ेंगी, हिन्दू-शास्त्रोंका मथन करना पड़ेगा, तब जाके तत्व हाथ आयेगा। रुपयेका कोई प्रबन्ध करना चाहिये। उसका मुंह देखनेसे काम न चलेगा। एक बात निश्चित रूपसे मालूम तो हो जायगी। यह नहीं कि मैं तो धोखेमें निश्चिन्त बैठा रहूं और वहां दाल न गले, सारी आशायें नष्ट हो जायं, मगर यह व्यवसाय है उत्तम। आदमी चाहे तो सोनेकी दीवार खड़ी कर दे। मुझे शामत सवार हुई कि इसे छोड़ बैठा, नहीं तो आज क्या मेरी आमदनी दो हजार मासिकसे कम होती?

जब निरे काठके उल्लूतक हजारोंपर हाथ साफ करते हैं तो क्या मेरी ही न चलती ? इस जमींदारीका बुरा हो ! इसने मुझे कहीं का न रखा !

वह घर पहुंचे तो ६ बज चुके थे। विद्या अपने कमरेमें अकेले उदास पड़ी थी, महरियां काम-धन्धेमें लगी हुई थीं और पड़ोसिनें विदा हो गयी थीं। ज्ञानशंकरने विद्याका सिर उठाकर अपनी गोदमें रख लिया और गद्गद स्वरसे बोले, मुंह देखना भी न बदा था।

विद्याने रोते हुए कहा, उनकी सूरत एक क्षणके लिये भी आंखोंसे नहीं उतरती। ऐसा जान पड़ता है वह मेरे सामने खड़े मुस्कुरा रहे हैं।

ज्ञान—मेरा तो अब सांसारिक वस्तुओंपर भरोसा ही नहीं रहा। यही जी चाहता है कि सब कुछ छोड़छाड़के कहीं चल दूं।

विद्या—कल शामकी गाड़ीसे चलो। कुछ रुपये लेते चलने होंगे। मैं उनके षोड़शेमें कुछ दान करना चाहती हूं।

ज्ञान—हां हां, जरूर। अब उनकी आत्माको सन्तुष्ट करनेका हमारे पास यही तो एक साधन रह गया है।

विद्या—उन्हें घोड़ेकी सवारीका बहुत शौक था। मैं एक घोड़ा उनके नामपर देना चाहती हूं।

ज्ञान—बहुत अच्छी बात है। दो-ढाई सौमें घोड़ा मिल जायगा।

विद्यावतीने डरते-डरते यह प्रस्ताव किये थे। ज्ञानशंकरने उन्हें सहर्ष स्वीकार करके उसे मुग्ध कर दिया।

ज्ञानशंकर इस अपव्ययको इस समय काटना अनुचित समझते थे। यह अवसर ही ऐसा था। अब वह विद्याका निरादर तथा अवहेला न कर सकते थे।

१०

राय कमलानन्द बहादुर लखनऊके एक बड़े रईस और ताल्लुकेदार थे। वार्षिक आय एक लाखके लगभग थी। अमीनाबादमें उनका विशाल भवन था। शहरमें उनकी और भी कई कोठियां थीं, पर वह अधिकांश नैनीताल या मसूरीमें रहा करते थे। यद्यपि उनकी पत्नीका देहान्त उनकी युवावस्थामें हो गया, पर उन्होंने दूसरा विवाह न किया था। मित्रों और हितसाधकोंने बहुत घेरा, पर वह पुनर्विवाहके बंधनमें न पड़े। विवाहका उद्देश्य सन्तान है और जब ईश्वरने उन्हें एक पुत्र और दो पुत्रियां प्रदान कर दीं तो फिर विवाह करनेकी क्या जरूरत? उन्होंने अपनी बड़ी लड़की गायत्रीका विवाह गोरखपुरके एक बड़े रईससे किया। उत्सवमें लाखों रुपये खर्च कर दिये। पर जब विवाहके दो ही साल पीछे गायत्री विधवा हो गयी—उसके पतिको किसी धनहीके प्राणीने लोभवश विष दे दिया—तो रायसाहबने विद्याको किसी साधारण कुटुम्बमें ब्याहनेका निश्चय किया, जहां जीवन इतना कंटकमय न हो। यही कारण था कि ज्ञानशङ्करको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वर्गीय बाबू रामानन्द अभीतक कुंवारे ही थे। उनकी अवस्था २० वर्षसे अधिक हो गयी थी, पर रायसाहब उनका विवाह करनेके कभी उत्सुक न हुए। वह उनके मानसिक तथा शारीरिक विकासमें कोई कृत्रिम बाधा न डालना चाहते थे। पर शोक! रामानन्द घुड़दौड़में सम्मिलित होनेके लिये पूना गये हुए थे। वहां घोड़ेपरसे गिर पड़े, मर्मस्थानोंपर कड़ी चोट आ गयी। लखनऊ पहुंचनेके दो ही दिन बाद उनका प्राणान्त हो गया। रायसाहबकी सारी सदुकल्पनायें विनष्ट हो गयीं, आशाओंका दीपक बुझ गया।

किन्तु रायसाहब उन प्राणियोंमें न थे, जो शोक-सन्तापके ग्रास बन जाते हैं। इसे विराग कहिये, चाहे प्रेमशिथिलता, या

चित्तकी स्थिरता। दो ही चार दिनमें उनका पुत्रशोक जीवनकी अविश्रान्त कर्मधारामें विलीन हो गया।

रायसाहेब बड़े रसिक पुरुष थे। घुड़दौड़ और शिकार, सरोद और सितारसे उन्हें समान प्रेम था। साहित्य और राजनीतिके भी ज्ञाता थे। अवस्था ६० वर्षके लगभग थी, पर इन विषयोंमें उनका उत्साह लेशमात्र भी क्षीण न हुआ था। अस्तबलमें दस बारह चुने हुए घोड़े थे, विविध प्रकारकी कई बग्गियां, दो मोटरकार, दो हाथी। दरजनों कुत्ते पाल रखे थे। इनके अतिरिक्त बाज, शिकरे, जुर आदि शिकारी चिड़ियोंकी एक हवाई सेना भी थी। उनके दीवानखानेमें अस्त्र-शस्त्रोंकी श्रृंखला देखकर जान पड़ता था मानों शस्त्रालय है। घुड़दौड़में वह अच्छे-अच्छे शहसवारोंसे पाला मारते थे। शिकारमें उनके निशाने अचूक पड़ते थे। पोलोके मैदानमें उनकी चपलता और हाथोंकी सफाई देखकर आश्चर्य होता था। दिव्य कलाओंमें भी वह इससे कम प्रवीण न थे। शामको जब वह सितार लेकर बैठते तो उनकी सिद्धिपर अच्छे-अच्छे उस्ताद भी चकित हो जाते थे। उनके स्वरमें अलौकिक माधुर्य था, संगीतके सूक्ष्म तत्वोंके वेत्ता थे। उनके ध्रुपदकी अलाप सुनकर बड़े-बड़े कलावन्त भी सिर धुनने लगते थे। काव्य-कलामें भी उनकी कुशलता और मार्मिकता कवियोंको लज्जित कर देती थी, उनकी रचनाएं अच्छे-अच्छे कवियोंसे टक्कर खाती थीं। संस्कृत, फारसी, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, सभी भाषाओंके पण्डित थे। स्मरण-शक्ति विलक्षण थी। कविजनोंके सहस्रों शेर, दोहे, कवित्त, पद्य कण्ठस्थ थे, और बातचीतमें वह उनका बड़ी सुरुचिसे उपयोग करते थे। इसीलिये उनकी बातें सुननेमें लोगोंको आनन्द मिलता था। इधर १०, १२ वर्षोंसे राजनीतिमें भी प्रविष्ट हो गये थे। कौंसिल-भवनमें उनका स्थान प्रथम श्रेणीमें था। उनकी राय सदैव निर्भीक होती थी। वह अवसर या समयके भक्त न थे। राष्ट्र या शासनके दास

न बनकर सर्वदा अपनी विचार-शक्तिसे काम लेते थे। इसी कारण कौंसिलमें उनकी बड़ी शान थी। यद्यपि वह बहुत कम बोलते थे और राजनीति-भवनके बाहर उनकी आवाज कभी न सुनायी देती थी, किन्तु जब बोलते थे तो अच्छे ही बोलते थे। उनके शब्द चाहे बहुत ललित न हों, पर विचारपूर्ण होते थे। ज्ञानशङ्करको उनके बुद्धि-चमत्कार और ज्ञान-विस्तारपर अचंभा होता था। यदि आंखों देखी बात न होती तो किसी एक व्यक्तिमें इतने गुणोंकी चर्चा सुनकर उन्हें कभी विश्वास न होता। इस सत्संगसे उनकी आंखें खुल गयीं। उन्हें अपनी योग्यता और चतुरतापर बड़ा गर्व था। इन सिद्धियोंने उसे चूर-चूर कर दिया। पहले दो सप्ताहतक तो उनपर श्रद्धाका एक नशा-सा छाया रहा। रायसाहेब जो कुछ करते, जो कुछ कहते, वह सब उन्हें प्रामाणिक जान पड़ता था। पग-पगपर, बात-बातमें, उन्हें अपनी त्रुटियां दिखायी देतीं और लज्जित होना पड़ता। यहांतक कि साहित्य और दर्शनमें भी जो उनके मुख्य विषय थे, रायसाहेबके विचारोंपर मनन करनेके लिये उन्हें बहुत कुछ सामग्री मिल जाती थी। सबसे बड़े कुतूहलकी बात तो यह थी कि ऐसे दारुण शोकके बोझके नीचे रायसाहेब क्योंकर सीधे खड़े रह सकते थे। उनके विलास-उपवनपर इस दुस्सह झोंकेका जरा भी असर न दिखायी देता था।

किन्तु शनैः शनैः ज्ञानशङ्करको रायसाहेबकी इस बहुज्ञतासे अश्रद्धा होने लगी। आठोंपहर अपनी हीनताका अनुभव करना असह्य था। उनके विचारमें अब रायसाहेबका इन आमोद विषयोंमें लिप्त रहना शोभा नहीं देता था। यावज्जीवन विलासितामें लीन रहनेके बाद अब उन्हें विरक्त हो जाना चाहिये था। इस आमोदलिप्साकी भी कोई सीमा है? इसे सजीविता नहीं कह सकते, यह निश्चलता नहीं, इसे धैर्य्य कहना ही उपयुक्त है। धैर्य्य कभी सजीविता और वासनाका रूप नहीं धारण

करता। वह हृदयपर विरक्ति, उदासीनता और मलिनताका रङ्ग फेर देता है। वह केवल हृदयदाह है, जिससे आँसूतक सूख जाता है। वह शोककी अन्तिम अवस्था है। कोई योगी, सिद्ध महात्मा भी जवान बेटेका दाग दिलपर रखते हुए इतना अविचलित नहीं रह सकता। यह नग्न इन्द्रियोपासना है। अहंकारने आत्माका दमन कर दिया है, ममत्वने हृदयके कोमल भावोंका सर्वनाश कर दिया है। ज्ञानशङ्करको अब रायसाहबकी एक एक बातमें क्षुद्र-विलासिताकी झलक दिखायी देती। वह उनके प्रत्येक व्यवहार-को तीव्र समालोचनाकी दृष्टिसे देखते।

परन्तु एक महीना गुजर जानेपर भी ज्ञानशङ्करने कभी बनारस जानेकी इच्छा नहीं प्रकट की। यद्यपि विद्यावतीका उनके साथ जानेपर राजी न होना उनके यहाँ पड़े रहनेका अच्छा बहाना था, पर वास्तवमें इसका एक दूसरा ही कारण था, जिसे अन्तः-करणमें भी व्यक्त करनेका उन्हें साहस न होता था। गायत्रीके कोमल भाव और मृदुल रसमय बातोंका उनके चित्तपर आकर्षण होने लगा था। उसका विकसित-लावण्यमय सौन्दर्य अज्ञात रूप-से उनके हृदयको खींचता जाता था, और वह पतंगकी भाँति, परिणामसे बेखबर, इस दीपककी ओर बढ़ते चले आते थे। उन्हें गायत्री प्रेमाकांक्षा और प्रेमानुरोधकी मूर्त्ति दिखायी देती थी, और यह भ्रम उनकी लालसाको और भी उत्तेजित करता रहता था। घरमें किसी बड़ी बूढ़ी स्त्रीके न होनेके कारण उनका आदर सत्कार गायत्री ही करती थी और ऐसे स्नेह और अनुरागके साथ कि ज्ञानशङ्करको इसमें किसी प्रेमादेशका रसमय आनन्द मिलता था। सुखद कल्पनाएं मनोहर रूप धारण करके उनकी दृष्टिके सामने नृत्य करने लगती थीं। उन्हें अपना जीवन कभी इतना सुखमय न मालूम हुआ था। हृदय-सागरमें कभी ऐसी प्रबल तरङ्गें न उठी थीं। उनका मन केवल प्रेमवासनाओंका आनन्द न उठता था। वह गायत्रीकी अतुल सम्पत्तिका भी सुख

भोग करता था। उनकी भावी उन्नतिका भवन निर्माण हो चुका था, यदि वह इस उद्यानसे सुसज्जित हो जाय, तो उसकी शोभा कितनी अपूर्व होगी! उसका दृश्य कितना विस्तृत कितना मनोहर!

ज्ञानशङ्करकी दृष्टिमें आत्मसंयमका महत्व बहुत कम था। उनका विचार था कि संयम और नियम मानव-चरित्रके स्वाभाविक विकासके बाधक हैं। वही पौधा सघन वृक्ष हो सकता है जो समीर और लू, वर्षा और पालेमें समान रूपसे खड़ा रहे। उसकी वृद्धिके लिये अग्निमय प्रचण्ड वायु उतनी ही आवश्यक है, जितनी शीतल मन्द समीर, शुष्कता उतनी ही प्राणपोषक है जितनी आर्द्रता। चरित्रोन्नतिके लिये भी विविध प्रकारकी परिस्थितियां अनिवार्य्य हैं। दरिद्रताको काला नाग क्यों समझें? चरित्र-संगठनके लिये यह सम्पत्तिसे कहीं महत्वपूर्ण है। यह मनुष्यमें दृढ़ता और संकल्प, दया और सहानुभूतिके भाव उदय करती है। प्रत्येक अनुभव चरित्रके किसी न किसी अङ्गकी पुष्टि करता है। यह प्राकृतिक नियम है। इसमें कृत्रिम बाधाओंके डालनेसे चरित्र विषम हो जाता है। यहांतक कि क्रोध और ईर्षा, असत्य और कपटमें भी बहुमूल्य शिक्षाके अंकुर छिपे रहते हैं। जबतक सितारका प्रत्येक तार चोट न खाय, सुरीली ध्वनि नहीं निकल सकती। मनोवृत्तियोंको रोकना ईश्वरीय नियमोंमें हस्तक्षेप करना है। इच्छाओंका दमन करना आत्महत्याके समान है। इससे चरित्र संकुचित हो जाता है। बन्धनोंके दिन अब नहीं रहे। यह अबाध, उदार, विराट उन्नतिका समय है। त्याग और बहिष्कार उस समयके लिये उपयुक्त था; जब लोग संसारको असार, स्वप्नवत् समझते थे। यह सांसारिक उन्नतिका काल है। धर्माधर्मका विचार संकीर्णताका द्योतक है। सांसारिक उन्नति हमारा अभिष्ट है। प्रत्येक साधन जो अभीष्ट सिद्धिमें हमारा सहायक हो ग्राह्य है। इन विचारोंने ज्ञानशंकरको विवेकशून्य बना दिया था। हां, वर्त्तमान अवस्थाका यह

प्रभाव था कि वह निन्दा और उपहाससे डरते थे, हालांकि यह भी उनके विचारमें मानसिक दुर्बलता थी।

गायत्री उन स्त्रियोंमें न थी, जिनके लिये पुरुषोंका हृदय एक खुला हुआ पृष्ठ होता है। उसका पति एक दुराचारी मनुष्य था, पर गायत्रीका कभी उसपर सन्देह नहीं हुआ, उसके मनोभावोंकी तहतक कभी नहीं पहुंची और यद्यपि उसे मरे हुए तीन साल बीत चुके थे पर वह अभीतक आध्यात्मिक श्रद्धासे उसकी स्मृतिको आराधना किया करती थी। उसका निष्कपट हृदय वासनायुक्त प्रेमके रहस्योंसे अनभिज्ञ था। किन्तु इसके साथ ही सगर्वता उसके स्वभावका प्रधान अङ्ग थी। वह अपनेको उससे कहीं ज्यादा विवेकशील और मर्मज्ञ समझती थी, जितनी वह वास्तवमें थी। उसके मनोवेग और विचार जलके नीचे बैठनेवाले रोड़े नहीं, स्थलपर तैरनेवाले बुलबुले थे। ज्ञानशंकर एक रूपवान, सौम्य, मृदुमुख मनुष्य थे। गायत्री सरलभावसे इन गुणोंपर मुग्ध थी। वह उनसे मुस्कुरा कर कहती, तुम्हारी बातोंमें जादू है, तुम्हारी बातोंसे कभी मन तृप्त नहीं होता। वह ज्ञानशंकरके सम्मुख विद्यासे कहती, ऐसा पति पाकर भी तू अपने भाग्यको नहीं सराहती? यद्यपि ज्ञानशंकर उससे दो चार ही मास छोटे थे, पर उसकी छोटी बहनके पति थे, इसलिए वह उन्हें छोटे भाईके तुल्य समझती थी। वह उनके लिये अच्छे-अच्छे भोज्य पदार्थ आप बनाती, दिनमें कई बार जलपान करनेके लिये घरमें बुलाती। उसे धार्मिक और वैज्ञानिक विषयोंसे विशेष रुचि थी। ज्ञानशंकरसे इसी विषयकी बातें करने और सुननेमें उसे हार्दिक आनन्द प्राप्त होता था। वह सालीके नातेसे प्रथानुसार उनसे दिल्लगी भी करती, उनपर भावमय चोटें करती और हंसती थी। मुंह लटकाकर उदास बैठना उसकी आदत न थी। वह हंसमुख, विनयशीला, सरल-हृदया, विनोदप्रिय रमणी थी, जिसके हृदयमें लीला और क्रीड़ाके लिए कहीं जगह न थी।

किन्तु उसका यह सरल सीधा व्यवहार ज्ञानशंकरकी मलिन दृष्टिमें परिवर्तित हो जाता था, उज्ज्वलतामें वैचित्र्य और समतामें विषमता दीख पड़ती थी। उन्हें गायत्री संकेत द्वारा कहती हुई मालूम होती, "आओ, इस उजड़े हुए हृदयको आबाद करो, आओ, इस अन्धकारमय कुटीरको आलोकित करो।" इस प्रेमोपहारका अनादर करना उनके लिए असाध्य था। परन्तु स्वयं उनके हृदयने गायत्रीको यह निमंत्रण नहीं दिया, कभी अपना प्रेम उसपर अर्पण नहीं किया। उन्हें बहुधा क्लबमें देर हो जाती, ताशकी बाज़ी अधूरी न छोड़ सकते थे, कभी सैर-सपाटेमें विलम्ब हो जाता, किन्तु वह स्वयं विकल न होते, यही सोचते कि गायत्री विकल हो रही होगी। अग्नि गायत्रीके हृदयमें जलती थी, उन्हें केवल उसमें हाथ सेंकना था। उन्हें इस प्रयासमें वही उल्लास होता था, जो किसी शिकारीको शिकारमें, किसी खिलाड़ीको बाज़ीकी जीतमें होता है। यह प्रेम न था, वशीकरणकी इच्छा थी। इस इच्छा और प्रेममें बड़ा भेद है, इच्छा अपनी ओर खींचती है, प्रेम स्वयं खिंच जाता है। इच्छामें ममत्व है, प्रेममें आत्मसमर्पण। ज्ञानशंकरके हृदयस्थलमें यही वशीकरण चेष्टा किलोल कर रही थी।

गायत्री भोली सही, अज्ञान सही, पर शनैः शनैः उसे ज्ञानशंकरसे लगाव होता जाता था। यदि कोई भूलकर भी विष खा ले तो उसका असर कुछ क्या कम होगा? ज्ञानशंकरको बाहरसे आनेमें देर होती, तो उसे बेचैनी होने लगती, किसी काममें जी न लगता, वह अटारीपर चढ़कर उनकी बाट जोहती। वह पहले विद्यावतीके सामने हंस-हंसकर उनसे बातें करती थी, कभी अकेले उनसे भेंट हो जाती, तो उसे कोई बात ही न सूझती थी। अब वह अवस्था न थी। उसकी बातें अब एकान्तकी खोजमें रहतीं। विद्याकी उपस्थिति उन दोनोंको मौन बना देती थी, अब वह केवल वैज्ञानिक तथा धार्मिक चर्चाओंपर आबद्ध न होते।

बहुधा स्त्री-पुरुषके पारस्परिक संबन्धकी मीमांसा किया करते और कभी कभी ऐसे मार्मिक प्रसङ्गोंका सामना करना पड़ता कि गायत्री लज्जासे सिर झुका लेती।

एक दिन संध्या समय गायत्री बगीचेमें एक आराम-कुरसी-पर लेटी हुई एक पत्र पढ़ रही थी, जो अभी डाकसे आया था। यद्यपि लूका चलना बन्द हो गया था, पर गरमीके मारे बुरा हाल था, प्रत्येक वस्तुसे ज्वाला-सी निकल रही थी। वह पत्रको उठाती थी और फिर गरमीसे विकल होकर रख देती थी। अन्तमें उसने एक परिचारिकाको पंखा झलनेके लिये बुलाया और अब पत्रको पढ़ने लगी। उसके मुख्तार-आमने लिखा था, सरकार यहां जल्द आवें। यहां कई ऐसे मामले आ पड़े हैं जो आपकी अनुमति-के बिना तै नहीं हो सकते। हरिहरपुरके इलाकेमें बिलकुल वर्षा नहीं हुई, यह आपको ज्ञात ही है। अब वहांके असामियोंसे लगान वसूल करना अत्यन्त कठिन हो रहा है। वह सोलहों आना छूटकी प्रार्थना करते हैं। मैंने जिलाधीशसे इस विषयमें अनुरोध किया, पर उसका कुछ फल न हुआ। वह अवश्य छूट कर देंगे। यदि आप आकर स्वयं जिलाधीशसे मिलें तो शायद सफलता हो। यदि श्रीमान रायसाहेब यहां पधारनेका कष्ट उठावें, तो निश्चय ही उनका प्रभाव कठिनको सुलभ कर दे। असामियोंके इस आन्दोलनसे अधिकारियोंमें हलचल मची हुई है। शंका है, कि छूट न हुई तो उत्पात होने लगेगा। इसलिये आपका जिलाधीशसे साक्षात् करना परमावश्यक है।

गायत्री सोचने लगी, यह जमींदारी क्या है, जीका जञ्जाल है। महीने आध महीनेके लिये भी कहीं चली जाऊं तो हाय हत्या होने लगती है। असामियोंमें यह धुन न जाने कैसे समा गयी, कि जहां देखो वहीं उपद्रव करनेपर तत्पर दिखायी देते हैं। सर-कारको इनपर कड़ा हाथ रखना चाहिए। जरा भी शह मिली और यह काबूसे बाहर हुए। अगर इस इलाकेमें असामियोंकी

छूट हो गयी तो मेरा २०, २५ हज़ारका नुकसान हो जायगा। इसी तरह और इलाकोंमें भी उपद्रवके डरसे छूट हो जाय, तो मैं तो कहींकी न रहूं। कुछ वसूल न होगा तो मेरा खर्च कैसे चलेगा? माना कि मुझे उस इलाकेकी मालगुजारी न देनी पड़ेगी पर और भी तो कितने ही रुपये पृथक्-पृथक् नामोंसे देने पड़ते हैं। वह तो देने ही पड़ेंगे। वह किसके घरसे आवेंगे? छूट भी हो जाय, मगर लूंगी असामियोंहीसे।

पर मेरा जी वहां कैसे लगेगा! यह बातें वहां कहां सुननेको मिलेंगी, अकेले पड़े पड़े जी उकताया करेगा। जबतक ज्ञानशङ्कर यहां रहेंगे तबतक तो मैं गोरखपुर जाती नहीं। हां, जब वह चले जायंगे तो मजबूरी है। नुकसान हो न होगा? बलासे, जीवनके दिन आनन्दसे तो कट रहे हैं, धर्म और ज्ञानकी चर्चा तो सुननेमें आती है। कल बाबूसाहब मुझसे चिढ़ गये होंगे, लेकिन मेरा मन तो अब भी स्वीकार नहीं करता कि विवाह केवल एक शारीरिक सम्बन्ध और सामाजिक व्यवस्था है। वह स्वयं कहते हैं कि मानव-शरीरका कई सालोंमें सम्पूर्णतः रूपान्तर हो जाता है। शायद ८ वर्ष कहते थे। यदि विवाह केवल दैहिक सम्बन्ध हो तो इस नियमित समयके बाद उसका अस्तित्व हो नहीं रहता। इसका तो यह आशय है कि ८ वर्षोंके बाद पति और पत्नी इस धर्म-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं; एकका दूसरेपर कोई अधिकार नहीं रहता। आज फिर यही प्रश्न उठाऊंगी। लो, यह आप ही आ गये। कहिये बाबूजी, कहीं जानेको तैयार हैं क्या?

ज्ञान—आज यहां थियेट्रिकल कम्पनीका तमाशा होनेवाला है आपसे पूछने आया हूं कि आपके लिए भी जगह रिजर्व करता आऊँ। आज बड़ी भीड़ होगी।

गायत्री—विद्यासे पूछा, वह जायगी?

ज्ञान—वह तो कहती है कि मायाको साथ लेकर जानेमें तकलीफ होगी। मैंने भी आग्रह नहीं किया।

गायत्री—तो अकेले तो मुझे भी कुछ आनन्द न आयेगा।

ज्ञान—आप न जायेंगी तो मैं भी न जाऊंगा।

गायत्री—तब तो मैं कदापि न जाऊंगी। आपकी बातोंमें मुझे थियेटरसे अधिक आनन्द मिलता है। आइये, बैठिये। कलकी बात अधूरी रह गयी थी। आप कहते थे, स्त्रियोंमें आकर्षणशक्ति पुरुषोंसे अधिक होती है; पर आपने इसका कोई कारण न बताया था।

ज्ञान—इसका कारण तो स्पष्ट ही है। स्त्रियोंका जीवनक्षेत्र परिमित होता है और पुरुषोंका विस्तृत। इसीलिए स्त्रियोंकी सारी शक्तियां केन्द्रस्थ हो जाती हैं और पुरुषोंकी विच्छिन्न।

गायत्री—लेकिन ऐसा होता तो पुरुषोंको स्त्रियोंके अधीन रहना चाहिए था। वह उनपर शासन क्योंकर करते?

ज्ञान—तो क्या आप समझती हैं कि मर्द स्त्रियोंपर शासन करते हैं? ऐसी बात नहीं है। वास्तवमें मर्द ही स्त्रियोंके अधीन होते हैं। स्त्रियां उनके जीवनकी विधाता होती हैं। देहपर उनका शासन चाहे न हो, पर हृदयपर उन्हींका साम्राज्य होता है।

गायत्री—तो फिर मर्द इतने निष्ठुर क्यों हो जाते हैं?

ज्ञान—मर्दोंपर निष्ठुरताका दोष लगाना न्याय-विरुद्ध है। वह उस समयतक सिर नहीं उठा सकते जबतक या तो स्त्री स्वयं उन्हें मुक्त न कर दे, अथवा किसी दूसरी स्त्रीकी प्रबल विद्युत-शक्ति उनपर प्रभाव न डाले।

गायत्री—(हंसकर) आपने तो सारा दोष स्त्रियोंके ही सिर रख दिया।

ज्ञानशङ्करने भावुकतासे उत्तर दिया, अन्याय तो वह करती हैं, फ़रियाद कौन सुनेगा?

इतनेमें विद्यावती मायाशङ्करको गोदमें लिये आकर खड़ी हो गयीं। माया चार वर्षका हो चुका था, पर अभीतक कोई और बच्चा न होनेके कारण वह शैशवावस्थाके आनन्द भोगता था।

गायत्रीने पूछा, क्यों विद्या, आज थियेटर देखने चलती हो ?

विद्या—कोई अनुरोध करेगा तो चली चलूंगी, नहीं तो मेरा जी नहीं चाहता।

ज्ञान—तुम्हारी इच्छा हो तो चलो, मैं अनुरोध नहीं करता।

विद्या—तो फिर मैं भी नहीं जाती।

गायत्री—मैं अनुरोध करती हूं, तुझे चलना पड़ेगा। बाबूजी, आप जगहें रिजर्व करा लीजिए।

नौ बजे रातको तीनों एक फिटनपर बैठकर थियेटरको चले। माया भी साथ था। फिटन कुछ दूर चली तो वह पानी पानी चिल्लाने लगा। ज्ञानशङ्करने विद्यासे कहा, लड़केको लेकर चलो थीं तो पानीकी एक सुराही क्यों न रख ली ?

विद्या—क्या जानती थी कि घरसे निकलते ही इसे पानीकी चाट लग जायगी ?

ज्ञान—पानदान रखना तो न भूल गयीं।

विद्या—इसीसे तो मैं कहती थी कि मैं न चलूंगी।

गायत्री—थियेटरके हातेमें बर्फ पानी सब कुछ मिल जायगा।

माया यह सुनकर और भी अधीर हो गया। रो-रोकर दुनिया सिरपर उठा ली। ज्ञानशङ्करने उसे बढ़ावा दिया। और भी गला फाड़-फाड कर बिलबिलाने लगा।

ज्ञान—जब अभीसे यह हाल है तो दो बजे राततक न जाने क्या होगा !

गायत्री—कौन जागता रहेगा ? जाते-ही-जाते तो सो जायगा।

ज्ञान—गोदमें आरामसे तो सो सकेगा नहीं, रह-रहकर चौंकेगा और रोयेगा। सारी सभा घबरा जायगी। लोग कहेंगे, यह पुछल्ला अच्छा साथ लेते आये।

विद्या—कोचवानसे कह क्यों नहीं देते कि गाड़ी लौटा दे, मैं न जाऊंगी।

ज्ञान—यह सब बातें पहले ही सोच लेनी चाहिये थीं न? गाड़ी यहांसे लौटेगी तो आते-आते दस बज जायंगे। आधा तमाशा ही गायब हो जायगा। वहां पहुंच जायं तो जी चाहे मजेसे तमाशा देखना, मायाको इसी गाड़ीमें पड़े रहने देना, या उचित समझना तो लौट आना।

गायत्री—वहांतक जाकर तो लौटना अच्छा नहीं लगता।

ज्ञान—मैंने तो सब कुछ इन्हींकी इच्छापर छोड़ दिया।

गायत्री—क्या वहां कोई आरामकुरसी न मिल जायगी?

विद्या—यह सब झंझट करनेकी जरूरत ही क्या है? मैं लौट जाऊंगी। मैं तमाशा देखनेके लिये ऐसी उत्सुक न थी, तुम्हारी खातिरसे चली आयी थी।

थियेटरका पण्डाल आ गया। खूब जमाव था। ज्ञानशंकर उतर पड़े। गायत्रीने विद्यासे उतरनेको कहा, पर वह बहुत आग्रह करनेपर भी न उठी। कोचवानको पानी लानेको भेजा। इतनेमें प्रेमशंकर लपके हुए आये और बोले, भाभी, जल्दी कीजिये, तैयारी हो गई, तमाशा आरम्भ होनेवाला है। जबतक यह माया-को पानी पिलाती है, आप चलकर बैठ जाइये, नहीं तो शायद जगह ही न मिले।

यह कहकर वह गायत्रीको लिए हुए पण्डालमें घुस गये। अपना कोठा मरदाने और जनाने भागोंके बीचमें केवल एक चिकके इच्छानुसार। चिकके बाहर ज्ञानशङ्कर बैठे और चिकके सहयोगका भी स्त्रीको बैठाया। यही दोनों जगहें उन्होंने रिजर्व राजी हो जाना, विद्याके थीं।

बग्गीमें बैठना इसके प्रत्यक्ष उतरकर ज्ञानशङ्करके साथ चली देनेके ही लिये वह इतनी जल्द लौपह उसे निश्चय था। लेकिन पर लौटनेसे काममें विघ्न पड़नेका भय न दिखाई दी और अन्त-आगा-पीछा करना उनके विचारमें यह कार्य उसे बड़ा क्षोभ सिद्धिकी घातक है। उन्होंने किताबोंमें पढ़ा थी। अपने मनमें

मुझे ओछी, निठुर समझ रही होगी। मुझे भी उसीके साथ लौट जाना चाहिये था। उसके साथ तमाशा देखनेमें बहुत हर्ज नहीं था। लोग यही अनुमान करते कि मैं उसकी खातिरसे आयी हूं। किन्तु उसके लौट जानेपर मेरा यहां रहना सर्वथा अनुचित है। घरकी लौंडिया और महरियांतक हँसेंगी और उनका हँसना यथार्थ है। दादाजी न जाने मनमें क्या सोचेंगे। मेरे लिये अब तीर्थयात्रा, गंगास्नान, पूजापाठ, दान और व्रत है। यह विहार और विलास सोहागिनीके लिये हैं। मुझे अवश्य लौटना चाहिये। लेकिन बाबूजीसे इतना जल्द लौटनेको कहूंगी तो वह मुझपर अवश्य झुंझलायेंगे, पछतायेंगे, कि नाहक इसके साथ आया। बुरी फँसी। कुछ देर यहां बैठे बिना छुटकारा न मिलेगा।

यह निश्चय करके वह बैठी। लेकिन जब अपने आगे पीछे दृष्टि पड़ी, तो उसे वहां एक पलभर भी बैठना दुस्तर जा[न] पड़ा। समस्त जनाना भाग वेश्याओंसे भरा हुआ था। एक[से] एक सुन्दर, एकसे एक रंगीन, चारों ओरसे खस और मेंहदी [की] लपटें आ रही थीं। उनका आभरण और शृंगार, उनका [ठाट-] बाट, उनके हाव-भाव, उनका मृदु-मुस्क्यान, सब गायत्र[ीको] घृणोत्पादक प्रतीत होते थे। उसे अपने रूप-लावण्यपर भी घ[मंड] था, पर इस सौन्दर्य्य-सरोवरमें वह एक जल-क[ण] विलीन हो गयी थी। अपनी तुच्छताका ज्ञान उसे [...] व्यस्त करने लगा। यह कुटिलाएं कितनी [...] हैं। इनको शिकायत नहीं, कि इन्होंने [...] नारकीय पथपर पग रखा। यह अ[...] वस्था जो न कराये थोड़ा है [...] अठिलाती किस बिरतेपर [...] बजादियां हैं। इन्हें [...] इनके रोम रोमसे [...]

यह ऐसी प्रसन्न हैं मानों संसारमें इनसे सुखी और कोई है ही नहीं। पाप एक करुणाजनक वस्तु है, मानवीय विवशताका द्योतक है। उसे देखकर दया आती है। लेकिन पापके साथ निर्लज्जता और मदान्धता एक पैशाचिक लीला है, दया और धर्मकी सीमासे बाहर।

गायत्री अब पलभर भी न ठहर सकी। ज्ञानशङ्करसे बोली, मैं बाहर जाती हूं, यहां नहीं बैठा जाता, मुझे घर पहुंचा दीजिये।

उसे संशय था, कि ज्ञानशङ्कर वहां ठहरनेके लिये आग्रह करेंगे। चलेंगे भी तो क्रुद्ध होकर। पर यह बात न थी। ज्ञानशङ्कर सहर्ष उठ खड़े हुए। बाहर आकर एक बग्गी किराये की और घर चले।

गायत्रीने इतना जल्द थियेटरसे लौट आनेके लिये क्षमा मांगी। फिर वेश्याओंकी बेशरमीकी चर्चा की, पर ज्ञानशङ्करने कुछ उत्तर न दिया। उन्होंने आज मनमें एक विषम कल्पना की थी और इस समय उसे कार्यरूपमें लानेके लिए अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंको इस प्रकार एकाग्र कर रहे थे मानों किसी नदीमें कूद रहे हों। उनका हृदयाकाश मनोविकारकी काली घटाओंसे आच्छादित हो रहा था, जो इधर महीनोंसे जमा हो रही थीं। उनका मौन वायुमंडलकी प्रचण्डताका सूचक था। वह ऐसे ही अवसरकी ताकमें थे। अपना कार्य्यक्रम निश्चित कर लिया था। अबतक सारी बातें उनके इच्छानुसार पूरी होती जाती थीं। लक्षणोंसे उन्हें गायत्रीके सहयोगका भी निश्चय होता जाता था। उसका थियेटर देखनेपर राजी हो जाना, विद्याके साथ घर न लौटना, उनके साथ अकेले बग्गीमें बैठना इसके प्रत्यक्ष प्रमाण थे। कदाचित् उन्हें अवसर देनेके ही लिये वह इतनी जल्द लौटी थी; क्योंकि सबकी फिरनेपर लौटनेसे काममें विघ्न पड़नेका भय था। ऐसी अनुकूल दशामें आगा-पीछा करना उनके विचारमें वह कापुरुषता थी, जो अभीष्टसिद्धिकी घातक है। उन्होंने किताबोंमें पढ़ा था कि पुरुषोचित

उद्दण्डता वशीकरणका सिद्धमन्त्र है। तत्क्षण उनकी विकृत चेष्टा प्रज्वलित हो गयी, आंखोंसे ज्वाला निकलने लगी, रक्त खौलने लगा, सांस वेगसे चलने लगी। उन्होंने अपने घुटनेसे गायत्रीकी जांघमें एक ठोंका दिया। गायत्रीने तुरत पैर समेट लिये, उसे कुचेष्टाकी लेशमात्र भी शङ्का न हुई। किन्तु एक क्षणके बाद ज्ञानशंकरने अपने जलते हुए हाथसे उसकी कलाई पकड़कर जोरसे दबा दी। गायत्रीने चौंककर हाथ खींच लिया, मानों किसी विष-धरने काट खाया हो, और भयभीत नेत्रोंसे ज्ञानशंकरको देखा। सड़कपर बिजलीकी लालटेनें जल रही थीं। उनके प्रकाशमें ज्ञान-शंकरके चेहरेपर एक संतप्त उग्रता, एक प्रदीप्त दुस्साहस दिखायी दिया। उसका चित्त अस्थिर हो गया, आंखोंमें अन्धेरा छा गया। सारी देह पसीनेसे तर हो गयी। उसने कातर नेत्रोंसे बाहरकी ओर झांका। समझ न पड़ा कि कहां हूं, कब घर पहुंचूंगी। निर्बल क्रोधकी एक लहर नसोंमें दौड़ गयी और आंखोंसे बह निकली। उसे फिर ज्ञानशंकरकी ओर ताकनेका साहस न हुआ। उनसे कुछ कह न सकी। उसका क्रोध भी शांत हो गया। वह संज्ञाशून्य हो गयी, सारे मनोवेग शिथिल पड़ गये। केवल आत्म-वेदनाका ज्ञान आरेके समान हृदयको चीर रहा था। उसकी वह वस्तु लुट गयी जो उसे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी, जो उसके मानकी रक्षक, उसके आत्मगौरवकी पोषक, उसके धैर्य्यका आधार और उसके जीवनका अवलम्ब थी। उसका जी डूबा जाता था। सहसा उसे याद आयी कि अब मैं किसीको मुंह दिखानेके योग्य नहीं रही। अबतक उसका ध्यान अपने अपमानके इस बाह्य रूप-रूपकी ओर नहीं गया था। अब उसे ज्ञात हुआ कि यह केवल मेरा आत्मिक पतन ही नहीं है, इसने केवल मेरी आत्माको ही कलुषित नहीं किया, वरन् मेरी बाह्य प्रतिष्ठाका भी सर्वनाश कर दिया इस अवगतिने उसके डूबते हुए हृदयको थाम लिया। गोली खाकर दम तोड़ता हुआ पक्षी भी छुरीको देखकर तड़प जाता है।

गायत्री जरा सम्भल गयी, उसने ज्ञानशंकरकी ओर सजल आंखों-से देखा। कहना चाहती थी; जो कुछ तुमने किया उसका बदला तुम्हें परमात्मा देंगे। लेकिन यदि सौजन्यका अल्पांश भी रह गया है तो मेरी लाज रखना, सतीत्वका नाश तो हो ही गया, पर लोकसम्मानकी रक्षा करना......किन्तु शब्द न निकले, अश्रु-प्रवाहमें विलीन हो गये।

ज्ञानशंकरको भी मालूम हो गया कि मैंने धोखा खाया। मेरी उद्विग्नताने सारा काम चौपट कर दिया। अभीतक उन्हें अपनी अधोगतिपर लज्जा न आयी थी। पर गायत्रीकी सिसकियां सुनीं तो हृदयपर चोटसी लगी। अन्तरात्मा जागृत हो गयी। शर्मसे गर्दन झुक गयी। कुवासना लुप्त हो गयी। अपने पापकी अधमता, घोरताका ज्ञान हुआ। ग्लानि और अनुतापके भी शब्द मुंहतक आये, पर व्यक्त न हो सके। गायत्रीकी ओर देखनेका भी हौसला न पड़ा। अपनी मलिनता और दुष्टता अपनी ही दृष्टिमें घृणित मालूम होने लगी। हा! मैं कैसा दुरात्मा हूं। मेरे विवेक, ज्ञान और सद्विचारने आत्महिंसाके सामने सिर झुका दिया। मेरी उच्चशिक्षा और उच्चादर्शका यही परिणाम होना था! अपने नैतिक पतनके ज्ञानने आत्मवेदनाका सञ्चार कर दिया। उनकी आंखोंसे आंसूकी धारा प्रवाहित हो गयी।

दोनों प्राणी खिड़कियोंसे सिर निकाले रोते रहे, यहांतक कि गाड़ी घरपर पहुंच गयी।

११

आंधीका पहला वेग जब शांत हो जाता है तो वायुके प्रचंड झोंके, बिजलीकी चमक और कड़क भी बन्द हो जाती है और मूसलधार वर्षा होने लगती है। गायत्रीके चित्तकी अशान्ति भी द्रवीभूत हो गयी थी। हृदयमें रुधिरकी जगह आंसुओंका सञ्चार हो रहा था।

आधी रात बीत गयी, पर उसके आंसू न थमे। उसका

आत्मगौरव आज नष्ट हो गया। पतिवियोगके बाद उसकी सुहृढ़ स्मृति ही गायत्रीके जीवन-सुखकी मूल थी। वही साधु कल्पना उसकी उपास्य थी। वह इस हृदयकोषको, जहां यह अमूल्य रत्न सञ्चित था, कुटिल आकांक्षाओंकी दृष्टिसे बचाती रहती थी। इसमें सन्देह नहीं कि वह वस्त्राभूषणोंसे प्रेम रखती थी, उत्तम भोजन करती थी, और सदैव प्रसन्नचित्त रहती थी, किन्तु इसका कारण उसकी विलासप्रियता नहीं, वरन् अपने सतीत्वका अभिमान था। उसे संयम और आचारका स्वांग भरनेसे घृणा थी। वह थियेटर भी देखती थी, आनन्दोत्सवोंमें भी शरीक होती थी। आभरण, सुरुचि और मनोरञ्जनकी सामग्रियोंका त्याग करनेकी वह आवश्यकता न समझती थी; क्योंकि उसे अपनी चित्तस्थितिपर विश्वास था। वह एकाग्र होकर अपने इलाक़ेका प्रबन्ध करती थी।

जब उसके आंसू थमे, तो वह इस दुर्घटनाके कारण और उत्पत्तिपर विचार करने लगी, और शनैः शनैः उसे विदित होने लगा कि इस विषयमें मैं सर्वथा निरपराध नहीं हूं। ज्ञानशंकर कदापि यह दुस्साहस न कर सकते, यदि उन्हें मेरी दुर्बलतापर विश्वास न होता। उन्हें यह विश्वास क्योंकर हुआ? मैं इन दिनों उनसे बहुत स्नेह करने लगी थी। यह अनुचित था। कदाचित् इसी सम्पर्कने उनके मनमें यह भ्रम अंकुरित किया। तब उसे वह बातें याद आतीं जो उन सङ्गतोंमें हुआ करती थीं। उनका झुकाव उन्हीं विषयोंकी ओर होता था, जिन्हें एकान्त और सद्भावकी जरूरत है! उस समय वह बातें सर्वथा दोषरहित जान पड़ती थीं। पर अब उनके विचारसे ही गायत्रीको लज्जा आती थी। उसे अब ज्ञान हुआ कि मैं अज्ञान दशामें धीरे-धीरे ढालकी ओर चली जाती थी, और अगर यह गहरी खाई सहसा सामने न आ पड़ती, तो मुझे अपने पतनका अनुभव ही न होता। उसे आज मालूम हुआ कि मेरा पतिप्रेम-बन्धन जर्जर हो गया,

नहीं तो मैं इन वार्ताओंके आकर्षणसे सुरक्षित रहती। वह अधीर होकर उठी, और अपने पतिके चित्रके सम्मुख जाकर खडी हो गयी। इस चित्रको वह सदैव अपने कमरेमें लटकाये रहती थी। उसने ग्लानिमय नेत्रोंसे चित्रको देखा, और तब कांपते हुए हाथोंसे उतारकर उसे छातीसे लगाये देरतक खड़ी रोती रही। इस आत्मिक आलिङ्गनसे उसे एक विचित्र संतोष प्राप्त हुआ। ऐसा मालूम हुआ मानो कोई तड़पते हुए हृदयपर मरहम रख रहा है और कितने कोमल हाथोंसे। वह इस चित्रको अलग न कर सकी, उसे छातीसे लगाये हुए बिछावनपर लेट गयी। उसका हृदय इस समय पतिप्रेमसे आलोकित हो रहा था। वह एक समाधिकी अवस्थामें थी। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि यद्यपि पतिदेव यहां अदृश्य हैं, पर उनकी आत्मा अवश्य यहां भ्रमण कर रही है। शनैः शनैः उसकी कल्पनाएं सचित्र हो गयीं। वह भूल गयी कि मेरे स्वामीको मरे तीन वर्ष व्यतीत हो गये। वह अकुलाकर उठ बैठी। उसे ऐसा जान पड़ा कि उनके वक्षसे रक्त स्रावित हो रहा है और वह कह रहे हैं, "यह तुम्हारी कुटिलताका घाव है। तुम्हारी पवित्रता और सत्यता मेरे लिये रक्षाल थी। वह ढाल आज टूट गयी और बेवफाईकी कटार हृदयमें घुस गयी। मुझे तुम्हारे सतीत्वपर अभिमान था। वह अभिमान आज चूर-चूर हो गया। शोक! मेरी हत्या उन्हीं हाथोंसे हुई जो कभी मेरे गलेमें पड़े थे। आज तुमसे नाता टूटता है, भूल जाओ कि मैं कभी तुम्हारा पति था।" गायत्री स्वप्न-दशामें उसी कल्पित व्यक्तिके सम्मुख हाथ फैलाये हुए विनय कर रही थी। शङ्कासे उसके हाथ-पांव फूल गये और वह चीख मारकर भूमिपर गिर पड़ी।

वह कई मिनटतक बेसुध पड़ी रही। जब होश आया तो देखा कि चिया लौंडियां महरियां सब जमा हैं और डाक्टरको बुलानेके लिये आदमी दौड़ाया जा रहा है।

उसे आंखें खोलते देखकर विद्या झपटकर उसके गलेसे लिपट गयी और बोली, बहन, तुम्हें क्या हो गया था? और तो कभी ऐसा न होता था!

गायत्री—कुछ नहीं, एक बुरा स्वप्न देख रही थी। लाओ, थोड़ा-सा पानी पीऊंगी, गला सूख रहा है।

विद्या—थियेटरमें कोई भयावना दृश्य देखा होगा।

गायत्री—नहीं, मैं भी तुम्हारे आनेके थोड़ी ही देर पीछे चली आयी थी। जी न लगा। अभी थोड़ी ही रात गयी है क्या? बाबूजी ध्रुपद अलाप रहे हैं।

विद्या—बारह तो कबके बज चुके, पर उन्हें किसीके मरने-जीनेकी क्या चिन्ता! उन्हें तो अपने राग-रङ्गसे मतलब है। महरीने जाकर तुम्हारा हाल कहा, तो एक आदमीको डाक्टरके यहां दौड़ा दिया और फिर गाने लगे।

गायत्री—यह तो उनकी पुरानी आदत है, कोई नई बात थोड़ी ही है। रमन बाबूका यहां बुरा हाल हो रहा था, और वह डिनरमें गये हुए थे। जब दूसरे दिन मैंने बातों-बातों इसकी चर्चा की तो बोले, मैं वचन दे चुका था और जाना मेरा कर्त्तव्य था। मैं अपने व्यक्तिगत विषयोंको सार्वजनिक जीवनसे बिलकुल पृथक् रखना चाहता हूं।

विद्या—उस साल जब अकाल पड़ा और प्लेग भी फैला तब हम लोग इलाकेपर गये। तुम गोरखपुर थीं। उन दिनों बाबूजी-की निर्दयता देखकर मेरे रोएं खड़े हो जाते थे। असामियोंसे रुपये वसूल न होते और हमारे यहां नित्य नाच-रङ्ग होता रहता था। बाबूजीको उड़ानेके लिये रुपये न मिलते तो वह चिढ़कर असामियोंपर गुस्सा उतारते। सौ-सौ मनुष्योंको एक पांतिमें खड़ा करके हण्टरसे मारने लगते। बेचारे तड़प तड़प कर रह जाते; पर उन्हें तनिक भी दया न आती थी। इसी मार-पीटने उन्हें निर्दय बना दिया है। जीवन-मरण तो परमात्माके हाथ

है," लेकिन मैं इतना अवश्य कहूंगी कि भैयाकी अकाल मृत्यु इन्हीं दोनोंको हायका फल है।

गायत्री—तुम बाबूजीपर अन्याय करती हो। उनका कोई कसूर नहीं। आखिर रुपये कैसे वसूल होते? निर्दयता अच्छी बात नहीं, किन्तु जब इसके बिना काम ही न चले तो क्या किया जाय? तुम्हारे जीजा कैसे सज्जन थे, द्वारपरसे किसी भिक्षुकको निराश न लौटने देते। सत्काय्यों में हजारों रुपये खर्च कर डालते थे। कोई ऐसा दिन न जाता कि सौ-पचास साधुओंको भोजन न कराते हों। हजारों रुपये तो चन्दोंमें दे डालते थे। लेकिन उन्हें भी असामियोंपर सख्ती करनी पड़ती थी। मैंने स्वयं उन्हें असामियोंको मुश्कें कसके पिटवाते देखा है। जब कोई और उपाय न सूझता तो उनके घरोंमें आग लगवा देते थे और अब मुझे भी वही करना पड़ता है। उस समय मैं समझती थी, कि यह व्यर्थ इतना जुल्म करते हैं। उन्हें समझाया करती थी, पर जब अपने माथे पड़ गयी तो अनुभव हुआ कि यह नीच बिना मार खाये रुपये नहीं देते। घरमे रुपये रखे रहते हैं; पर जबतक दो-चार लात घूंसे न खा लें, या गालियां न सुन लें, देनेका नाम नहीं लेते। यह उनकी आदत है।

विद्या—मैं यह न मानूंगी। किसीको मार खानेकी आदत नहीं हुआ करती।

गायत्री—लेकिन किसीको मारनेकी भी आदत नहीं होती। यह सम्बन्ध ही ऐसा है कि एक ओर तो प्रजामें भय, अविश्वास और आत्महीनताके भावोंको पुष्ट करता है और दूसरी ओर जमींदारोंको अभिमानी, निर्दय और निरङ्कुश बना देता है।

विद्याने इसका कुछ जवाब न दिया। दोनों बहनें एक ही पलङ्गपर लेटीं। गायत्रीके मनमें कई बार इच्छा हुई कि आजकी घटनाको विद्यासे बयान कर दूं। उसके हृदयपर एक बोझसा रखा हुआ था। इसे वह हल्का करना चाहती थी। ज्ञानशङ्करको

विद्याकी दृष्टिमें गिराना भी अभीष्ट था। यद्यपि उसका स्वयं अपमान होता था, लेकिन ज्ञानशङ्करको लज्जित और निन्दित करनेके लिये वह इतना मूल्य देनेपर तैयार थी; किन्तु बात मुंह-तक आकर लौट गयी। थोड़ी देरतक दोनों चुपचाप पड़ी रहीं। विद्याकी आंखें तो नींदसे झपकी जाती थीं और गायत्रीको कोई बात न सूझती थी। अकस्मात् उसे एक विचार सूझ पड़ा। उसने विद्याको हिलाकर कहा, क्या सोने लगी? मेरा जी चाहता है कि कल-परसोंतक यहांसे चली जाऊं।

विद्याने कहा, इतना जल्द! भला जबतक मैं रहूं तबतक तो रहो।

गायत्री—नहीं, अब यहां जी नहीं लगता। वहांका काम-काज भी तो देखना है।

विद्या—लेकिन अभीतक तो तुमने बाबूजीसे इसकी चर्चा भी नहीं की।

गायत्री—उनसे क्या कहना है? जाऊं चाहे रहूं, दोनों एक ही है।

विद्या—तो फिर मैं भी न रहूंगी, तुम्हारे साथ ही चली जाऊंगी।

गायत्री—तुम कहां जाओगी? अब यही तुम्हारा घर है, तुम्हीं यहांकी रानी हो। ज्ञानबाबूसे कहो, इलाकेका प्रबन्ध करें। दोनों प्राणी यहीं सुखपूर्वक रहो।

विद्या—समझा तो मैंने भी यही था, लेकिन विधाताकी इच्छा कुछ और ही जान पड़ती है। कई दिनसे बारबार देख रही हूं कि पण्डित परमानन्द नित्य आते हैं। चिन्ताराम भी आते जाते रहते हैं। यह लोग कोई न कोई षड्यन्त्र रच रहे हैं। तुम्हारे चले जानेसे इन्हें और भी अवसर मिल जायगा।

गायत्री—तो क्या बाबूजीको फिर विवाह करनेकी सूझी है क्या?

विद्या—मुझे तो ऐसा ही मालूम होता है।

गायत्री—अगर यह विचार उनके मनमें आया है तो वह किसीके रोके न रुकेंगे। मेरा लिहाज वह करते हैं, पर इस विषयमें वह शायद ही मेरी राय लें। उन्हें मालूम है कि मैं उन्हें क्या राय दूंगी।

विद्या—तुम रहती तो उन्हें कुछ-न-कुछ सङ्कोच अवश्य होता।

गायत्री—मुझे इसकी आशा नहीं। वहां रहूंगी तो कम-से-कम वहांकी देखरेख तो करती रहूंगी। तीन महीने आये हो गये, लोगोंने न जाने क्या क्या उपद्रव खड़े किये होंगे। एक दर्जन नातेदार द्वारपर डटे पड़े रहते हैं। एक महाशय नातेमें मेरे मामू होते हैं, वह सुबहसे शामतक मछलियोंका शिकार किया करते हैं। दूसरे महाशय मेरी फूफीके सुपुत्र हैं, वह मेरे ससुरके समयसे ही वहां रहते हैं। उनका काम मुहल्लेभरकी स्त्रियोंको घूरना और उनसे दिल्लगी करना है। एक तीसरे महाशय मेरी ननदके छोटे देवर हैं। वह रिशवतके बाजारके दलाल हैं। इस कामसे जो समय बचता है वह भङ्ग पीने पिलानेमें लगाते हैं। इन लोगोंमें बड़ा भारी गुण यह है कि सन्तोषी हैं। आनन्दसे भोजन-वस्त्र मिलता जाय इसके सिवा उन्हें कोई चिन्ता नहीं। हां, जमींदारीका घमण्ड सबको है, सभी असामियोंपर रोब जमाना चाहते हैं, उनका गला दबानेके लिये सब तत्पर रहते हैं। बेचारे किसानोंको जो अपने परिश्रमको रोटियां खाते हैं, इन निठल्लोंका अत्याचार केवल इसलिये सहना पड़ता है कि वह मेरे दूरके नातेदार हैं। मुफ्तखोरीने उन्हें इतना आत्मशून्य बना दिया है कि चाहे जितनी रुखाईसे पेश आओ टलनेका नाम न लेंगे। अधिक नहीं तो दस परिवार ऐसे होंगे जो मेरी मृत्युका स्वप्न देखनेमें जीवनके दिन काट रहे हैं। उनका बस चले तो मुझे विष दे दें। किसीके यहांसे कोई सौगात आये, मैं उसे हाथतक नहीं लगाती। उनका काम बस

यही है कि बैठे-बैठे उत्पात किया करें, मेरे काममें विघ्न डाला करें। कोई असामियोंको फोड़ता है, कोई मेरे नौकरोंको तोड़ता है, कोई मुझे बदनाम करनेपर तुला हुआ है। तुम्हें सुनकर हंसी आयेगी, कई महाशय तो विरासतकी आशामें डेवढ़े-दूने सूदपर ऋण लेकर पेट पालते हैं, कुछ नहीं बन पड़ता तो उपावास करते है, किन्तु विरासतका अभिमान जीविकाको कोई आयोजना नहीं करने देता। इन लोगोंने मेरी अनुपस्थितिमें न जाने क्या-क्या गुल खिलाये होंगे। अभी मुझे जाने दो। बाबूजी भी जल्द ही पहाड़पर चले जायेंगे। यदि ऐसी ही कोई जरूरत आ पड़े तो मुझे पत्र लिखना, चली आऊंगी।

दो दिन गायत्रीने किसी प्रकार काटे। ज्ञानशंकरसे फिर बात-चीतकी नौबत नहीं आयी। तीसरे दिन वह विदा हुई। रायसाहब स्टेशनतक उसे पहुंचाने आये। ज्ञानशङ्कर भी साथ थे। गायत्री गाड़ीमें बैठी। रायसाहब खिड़कीपर झुके हुए आम और खर्बूजे, लीचियां और अंगूर ले लेकर गाड़ीमें भरते जाते थे। गायत्री बार-बार कहती थी कि इतने फल क्या होंगे, कौन-सी बड़ी यात्रा है, किन्तु रायसाहब एक न सुनते थे। यह भी रियासतकी एक आन थी। ज्ञानशङ्कर एक बेञ्चपर उदास बैठे हुए थे। गायत्रीको उनपर दया आ गयी। वियोगके समय हम सहृदय हो जाते हैं। चलते-चलाते हम किसीपर अपना ऋण चाहे छोड़ जायं, किन्तु ऋण लेकर जाना नहीं चाहते। जब गाड़ीने सीटी दी, तो ज्ञानशङ्कर चौंककर बेञ्चपरसे उठे और गायत्रीके सम्मुख आकर उसे लज्जित और प्रार्थी नेत्रोंसे देखा, उनमें आंसू भरे हुए थे। पश्चात्तापकी सजीव मूर्ति थी। गायत्री भी खिड़कीपर आयी, कुछ कहना चाहती थी, पर गाड़ी चलने लगी।

ज्ञानशङ्करकी विनयमूर्ति रास्तेभर उसकी आंखोंके सामने फिरती रही।

१२

गायत्रीके जानेके बाद ज्ञानशङ्करको भी वहां रहना दूभर हो गया। सौभाग्य उन्हें हवाके घोड़ेपर बैठाये ऋद्धि और सिद्धिके स्वर्गमें लिये जाता था, किन्तु एक ही ठोकरमें वह चमकते हुए नक्षत्र अदृश्य हो गये ; वह प्राणपोषक शीतल वायु, वह विस्तृत नभमण्डल और सुखद कामनाएं लुप्त हो गयीं ; और वह निराश और विडम्बित फिर उसी अन्धकारमें पड़े हुए थे। उन्हें लक्षणोंसे विदित होता जाता था कि रायसाहब विवाह करनेपर तुले हुए हैं और उनका दुर्बल क्रोध दिनोंदिन अदम्य होता जाता था। वह रायसाहबकी इन्द्रिय-लिप्सापर उनकी क्षुद्रतापर झल्ला-झल्ला कर रह जाते थे। कभी-कभी अपनेको समझाते कि मुझे बुरा मानने-का कोई अधिकार नहीं, रायसाहब अपनी जायदादके मालिक हैं, उन्हें विवाह करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता है, वह अभी हृष्ट-पुष्ट हैं, उम्र भी ज्यादा नहीं। उन्हें ऐसी क्या पड़ी है कि मेरे लिये इतना त्याग करें। मेरे लिये यह कितनी लज्जाकी बात है कि अपने स्वार्थके लिये उनका बुरा चेतूं, उनके कुलके अन्त होनेकी अमङ्गल-कामना करूं। यह मेरी घोर नीचता है। लेकिन विचारोंको इस उद्देश्यसे हटानेका प्रयत्न एक प्रतिक्रियाका रूप धारण कर लेता था, जो अपने बहावमें धैर्य और सन्तोषके बांधको तोड़ डालता था। तब उनका हृदय उस शुभ मुहूर्त्तके लिये विकल हो जाता था जब यह अतुल सम्पत्ति अपने हाथोंमें आ जायगी, जब वह यहां मेहमानके अस्थायी रूपसे नहीं, स्वामीके स्थायी रूपसे निवास करेंगे। वह नित्य इसी कल्पित सुखको भोगनेमें मग्न रहते थे। प्रायः रात रातभर जागते रह जाते और आनन्दके स्वप्न देखा करते। उन्नति और सुधारके कितने ही प्रस्ताव उनके मस्तिष्क-में चक्कर लगाया करते। सैर करनेमें उनको अब कुछ आनन्द न मिलता, अधिकतर अपने कमरेमें ही पड़े रहते। यहांतक कि आशा और भयकी अवस्था उनके लिये असह्य हो गयी। इस दुविधामें

पड़े जेठका महीना भी बीत गया और आषाढ़ आ पहुंचा।

रायसाहबको अबकी पुत्रशोकके कारण पहाड़पर जानेमें विलम्ब हो गया था। पहला छींटा पड़ते ही उन्होंने सफ़रकी तैयारी शुरू कर दी। ज्ञानशंकरसे अब जब्त न हो सका। सोचा, कौन जाने यह नैनीतालमें ही किसी नये विचारोंकी लेडीसे विवाह कर लें। यहां कानोंकान किसीको ख़बर भी न हो। अतएव उन्होंने इस शंकाका अन्त करनेका निश्चय कर लिया।

संध्या हो गयी थी। वह मनको दृढ़ किये हुए रायसाहबके कमरेमें गये, किन्तु देखा तो वहां एक और महाशय विद्यमान थे। यह किसी कम्पनीका प्रतिनिधि था और रायसाहबसे उसके हिस्से लेनेका अनुरोध कर रहा था। किन्तु रायसाहबकी बातोंसे ज्ञात होता था कि वह हिस्से लेनेको तैयार नहीं है। अन्तमें एजेण्टने पूछा, आखिर आपको इतनी शंका क्यों है? क्या आपका विचार है कि कम्पनीकी जड़ मजबूत नहीं है?

रायसाहब—जिस काममें सेठ जगतराम और मिस्टर मनचूरजी शरीक हों उसके विषयमें यह सन्देह नहीं हो सकता।

एजेण्ट—तो क्या आप समझते हैं कि कम्पनीका संचालन उत्तम रीतिपर न होगा?

रायसाहब—कदापि नहीं, मुझे उसकी सफलताके विषयमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है।

एजेण्ट—तो फिर आपको उसका सहकारी बननेमें क्या आपत्ति है? मैं आपकी सेवामें कम-से-कम ५०० हिस्सोंकी आशा लेकर आया था। जब आप-जैसे विचारशील सज्जन व्यापारिक उद्योगसे यों पृथक् रहेंगे तो इस अभागे देशकी उन्नति सदैव एक मनोहर स्वप्न ही रहेगी।

रायसाहब—मैं ऐसी व्यापारिक संस्थाओंको देशोद्धारकी कुंजी नहीं समझता।

एजेण्ट—(आश्चर्य्यसे) क्यों?

राय—इसलिये कि सेठ जगतराम और मिस्टर मनचूरजीका विभव देशका विभव नहीं है। आपकी यह कम्पनी धनवानोंको और भी धनवान बनायेगी, जनताको इससे बहुत लाभ पहुंचनेकी संभावना नहीं। निस्सन्देह आप कई हजार कुलियोंको काममें लगा देंगे, पर यह मजूरे अधिकांश किसान ही होंगे और मैं किसानोंको कुली बनानेका कट्टर विरोधी हूं। मैं नहीं चाहता कि वह लोभके वश अपने बाल-बच्चोंको छोड़कर कम्पनीकी छावनियोंमें जाकर रहें और अपना आचरण भ्रष्ट करें। अपने गांवमें उनकी एक विशेष स्थिति होती है। उसमें आत्मप्रतिष्ठाका भाव जागृत रहता है। बिरादरीका भय उन्हें कुमार्गसे बचाता है। कम्पनीकी शरणमें जाकर वह अपने घरके स्वामी नहीं, दूसरेके गुलाम हो जाते हैं, और बिरादरीके बन्धनोंसे मुक्त होकर नाना प्रकारकी बुराइयां करने लगते हैं। कम-से-कम मैं अपने किसानोंको इस परीक्षामें नहीं डालना चाहता।

एजेण्ट—क्षमा कीजियेगा, आपने एक ही पक्षका चित्र खींचा है। कृपा करके दूसरे पक्षका भी अवलोकन कीजिये। हम कुलियोंको जैसे वस्त्र, जैसा भोजन, जैसे घर देते हैं, वैसे गांवमें रहकर उन्हें कभी नसीब नहीं हो सकते। हम उनकी दवा-दर्पनका, उनकी संतानोंकी शिक्षाका, उन्हें बुढ़ापेमें सहारा देनेका उचित प्रबन्ध करते हैं। यहांतक कि हम उनके मनोरंजन और व्यायामकी भी व्यवस्था कर देते हैं। वह चाहें तो टेनिस और फुटबाल खेल सकते हैं, चाहें तो पार्कोंमें सैर कर सकते हैं। सप्ताहमें एक दिन गाने बजानेके लिये समयसे कुछ पहले ही छुट्टी दे दी जाती है। जहांतक मैं समझता हूं कि हमारी बाकोंमें रहनेके बाद कोई कुली फिर खेती करनेकी परवा न करेगा।

रायसाहब—न, मैं इसे कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। किसान कुली बनकर कभी अपने भाग्यविधाताको धन्यवाद नहीं दे सकता, उसी प्रकार जैसे कोई आदमी व्यापारका 'स्वतंत्र

सुख भोगनेके बाद नौकरीकी पराधीनताको पसन्द नहीं कर सकता। संभव है कि अपनी दीनता उसे कुली बने रहनेपर मजबूर करे, पर मुझे विश्वास है कि वह इस दासतासे मुक्त होनेका अवसर पातेही तुरन्त अपने घरकी राह लेगा और फिर उसी टूटे-फूटे झोपड़ेमें अपने बाल-बच्चोंके साथ रहकर संतोषके साथ कालक्षेप करेगा। आपको इसमें कुछ सन्देह हो तो आप कृषक-कुलियोंसे एकान्तमें पूछकर अपना समाधान कर सकते हैं। मैं अपने अनुभवके आधारपर यह बात कहता हूं। आप लोग इस विषयमें युरोपवालोंका अनुकरण करके हमारे जातीय जीवनके सद्गुणोंका सर्वनाश कर रहे हैं। युरोपमें In::ustrialism की जो उन्नति हुई उसके विशेष कारण थे। वहांके किसानोंकी दशा उस समय गुलामोंसे भी गयी गुजरी थी, वह जमींदारके बन्दी होते थे। इस कठिन कारावासके देखते हुए धनपतियोंकी कैद गनीमत थी। हमारे किसानोंकी आर्थिक दशा चाहे कितनी ही बुरी क्यों न हो, पर वह किसीके गुलाम नहीं हैं। अगर कोई उनपर अत्याचार करे तो वह अदालतोंमें उससे मुक्त हो सकते हैं। नीतिकी दृष्टिमें किसान और जमींदार दोनों बराबर हैं।

एजेण्ट—मैं श्रीमानसे विवाद करनेका सामर्थ्य तो नहीं रखता, पर मैं स्वयं छोटा-मोटा किसान हूं और मुझे किसानोंकी दशाका यथार्थ ज्ञान है। आप युरोपके किसानोंको गुलाम कहते हैं, लेकिन यहांके किसानोंकी दशा उससे अच्छी नहीं है। नैतिक बन्धनोंके होते हुए भी जमींदार लोग कृषकोंपर नाना प्रकारके अत्याचार करते हैं और यदि कृषकोंको जीविकाका और कोई द्वार हो तो वह इन आपत्तियोंको भी कभी न झेल सकें।

रायसाहब—जब नैतिक व्यवस्थाएं विद्यमान हैं तो विदित है कि उनका उपयोग करनेके लिये किसानोंको केवल उचित शिक्षाकी जरूरत है। और शिक्षाका प्रचार दिनोंदिन बढ़ रहा है। मैं

मानता हूं कि जमींदारके हाथों किसानोंकी बड़ी दुर्दशा होती है, मैं स्वयं इस विषयमें सर्वथा निर्दोष नहीं हूं, बेगार लेता हूं, डांड़बांध भी लेता हूं, बेदखली या इजाफेका कोई अवसर हाथसे नहीं जाने देता, असामियोंपर अपना रोब जमानेके लिये अधिकारियोंकी खुशामद भी करता हूं, साम दाम दण्ड भेद सभी से काम लेता हूं, पर इसका कारण क्या है? वही पुरानी प्रथा, किसानोंकी मूर्खता और नैतिक अज्ञान। शिक्षाका यथेष्ट प्रचार होते ही जमींदारोंके हाथोंसे यह सब मौके निकल जायंगे। मनुष्य स्वार्थी जीव है और यह असंभव है कि जबतक उसे धींगाधींगीके मौके मिलते रहें, वह उनसे लाभ न उठाये। आपका यह कथन सत्य है कि किसानोंको यह विडम्बनाएं इसलिये सहनी पड़ती हैं कि उनके लिये जीविकाके और सभी द्वार बन्द हैं। निश्चय उनके लिये जीवननिर्वाहके अन्य साधनोंका अवतरण होना चाहिये, नहीं तो उनका पारस्परिक द्वेष और संघर्ष उन्हें हमेशा जमींदारोंका गुलाम बनाये रखेगा, चाहे कानून उनकी कितनी ही रक्षा और सहायता क्यों न करे। किन्तु यह साधन ऐसे होने चाहिए, जो उनके आचार और व्यवहारको भ्रष्ट न करें, उन्हें घरसे निर्वासित करके दुर्व्यसनोंके जालमें न फंसाएं, उनके आत्माभिमानका सर्वनाश न करें। और यह उसी दशामें हो सकता है जब घरेलू शिल्पका प्रचार किया जाय और वह अपने गांवमें कुल और बिरादरीकी तीव्र दृष्टिके सम्मुख अपना-अपना काम करते रहें।

एजेण्ट—आपका अभिप्राय Cottage industry से है। समाचारपत्रोंमें कहीं-कहीं इसकी चर्चा भी हो रही है, किन्तु इसका सबसे बड़ा पक्षपाती भी यह दावा नहीं कर सकता कि इसके द्वारा आप विदेशी वस्तुओंका सफलताके साथ अवरोध कर सकते हैं।

रायसाहब—इसके लिये हमें विदेशी वस्तुओंपर कर लगाना

पड़ेगा। युरोपवाले दूसरे देशोंमें कच्चा माल ले जाते हैं, जहाज़ किराया देते हैं, उन्हें मजूरोंको कड़ी मजूरी देनी पड़ती है, उसपर हिस्सेदारोंको नफा भी खूब चाहिये। हमारा घरेलू शिल्प इन समस्त बाधाओंसे मुक्त रहेगा और कोई कारण नहीं कि उचित सङ्गठनके साथ वह विदेशीय व्यापारपर विजय न पा सके। वास्तव में हमने कभी इस प्रश्नपर ध्यान ही नहीं दिया। पूंजीवाले लोग इस समस्यापर विचार करते हुए डरते हैं। वह जानते हैं कि घरेलू शिल्प हमारे प्रभुत्वका अन्त कर देगा, इसीलिये वह इसका विरोध करते रहते हैं।

ज्ञानशङ्करने इस वादमें भाग न लिया। रायसाहबकी युक्तियां अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंके प्रतिकुल थीं, पर इस समय उन्हें उनका खण्डन करनेका अवकाश न था। जब एजेण्ट साहबने अपनी दाल गलते न देखी तो विदा हो गये। रायसाहब ज्ञानशङ्करको उत्सुक देखकर समझ गये कि यह कुछ कहना चाहते हैं, पर सङ्कोचवश चुप हैं। बोले, आप कुछ कहना चाहते हैं, तो कहिये, मुझे फुर्सत है।

ज्ञानशङ्करकी ज़बान न खुल सकी। उन्हें अब ज्ञात हो रहा था कि मैं जो कथन करने आया हूं वह सर्वथा असङ्गत है, सज्जनताके बिलकुल विरुद्ध। रायसाहबको कितना दुःख होगा और वह मुझे मनमें कितना लोभी और क्षुद्र समझेंगे। बोले, कुछ नहीं, मैं केवल यह पूछने आया था कि आप नैनीताल जानेका कबतक विचार करते हैं?

रायसाहब—आप मुझसे उड़ रहे हैं; आपकी आंखें कह रही हैं कि आपके मनमें कोई और बात है, साफ़ कहिये। मैं आपसमें बिलकुल सचाई चाहता हूं।

ज्ञानशङ्कर बड़े असमञ्जसमें पड़े। अन्तमें सकुचाते हुए बोले, यही तो मेरी भी इच्छा है, पर वह बात ऐसी नहीं है कि आपसे कहते हुए लज्जा आती है।

रायसाहब—मैं समझ गया। आपके कहनेकी जरूरत नहीं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जिन गप्पोंको सुनकर आपको यह शङ्का हुई है वह बिलकुल निस्सार है। मैं स्वच्छन्दवादी अवश्य हूँ, पर अपने मुँहदेखे हितैषियोंकी अवज्ञा करना मेरे सामर्थ्यसे बाहर है। पर जैसा आपसे कह चुका हूँ यह किम्वदन्तियां सर्वथा असार हैं। यह तो आप जानते हैं कि मैं पिण्ड पानीका कायल नहीं और न यही समझता हूँ कि मेरी सन्तानके बिना संसार सूना हो जायगा। रहा इन्द्रिय सुखभोग, उसके लिये मेरे पास इतने साधन हैं कि मैं पैरोंमें लोहेकी बेड़ियां डाले बिनाही उसका आनन्द उठा सकता हूँ। और फिर मैं कभी कामवासनाका गुलाम नहीं रहा, नहीं तो इस अवस्थामें आप मुझे इतना हृष्टपुष्ट न देखते। मुझे लोग कितना ही विलासी समझते हों, पर वास्तवमें मैंने युवावस्थासे ही संयमका पालन किया है। मैं समझता हूँ कि इन बातोंसे आपकी शङ्का निवृत्त हो गयी होगी। लेकिन बुरा न मानियेगा, उड़ती खबरोंको सुनकर इतना व्यग्र हो जाना मेरी दृष्टिमें आपका सम्मान नहीं बढ़ाता। मान लीजिए मैंने विवाह करनेका निश्चय ही कर लिया हो तो यह आवश्यक नहीं कि उससे सन्तान भी हो और हो भी तो पुत्र ही, और पुत्र भी हो तो जीवित रहे। फिर मायाशङ्कर अभी सर्वथा बालक है। विधाताने उसके भाग्यमें क्या लिख दिया है, इसे हम या आप नहीं जानते। यह भी मान लीजिए कि वह वयस्क होकर मेरा उत्तराधिकारी भी हो जाय तो यह आवश्यक नहीं कि वह इतना कर्त्तव्यपरायण और सच्चरित्र हो जितना आप चाहते हैं। यदि वह समझदार होता और उसके मनमें यह शङ्काएँ पैदा होतीं तो मैं इन्हें क्षम्य समझता, लेकिन आप जैसे बुद्धिमान मनुष्यका एक निर्मूल और कल्पित सम्भावनाके पीछे मेरे ऊपर दाना-पानी हराम कर लेना बड़े खेदकी बात है।

इस उत्तरके पहले ही ज्ञानशङ्करको सन्तोष हुआ था।

अन्तिम भागको सुनकर निराशा हुई। समझ गये कि यह चर्चा इन्हें अच्छी नहीं लगती और यद्यपि युक्तियोंसे यह मुझे शान्त करना चाहते हैं, पर वास्तवमें इन्होंने विवाह करनेका निश्चय कर लिया है। इतना ही नहीं, इन्हें यहां मेरा रहना भी अखर रहा है। मुझे यह अपना आश्रित न समझते तो मुझे कदापि इस तरह आड़े हाथों न लेते। उनका गौरवशील हृदय प्रत्युत्तर देनेके लिये विकल हो उठा, पर उन्होंने जप्त किया। इस कड़वी दवाको पान कर लेना ही उचित समझा। मनमें कहा, आप मेरे साथ दोरङ्गी चाल चल रहे हैं। मैं साबित कर दूंगा कि कम-से-कम इस व्यवहारमें मैं आपसे हेठा नहीं हूं।

उन्होंने कुछ जवाब न दिया। रायसाहबको भी इन बातोंके कहनेका खेद हुआ। ज्ञानशङ्करका मन रखनेके लिये इधर-उधरकी बातें करने लगे, नैनीतालका भी ज़िक्र आ गया। उन्हें अपने साथ चलनेको कहा। ज्ञानशङ्कर राजी हो गये। इसमें दो लाभ थे। एक तो वह रायसाहबको नजरबन्द कर सकेंगे, दूसरे वह उच्चाधिकारियोंपर अपनी योग्यताका सिक्का बिठा सकेंगे। सम्भव है, रायसाहबकी सिफारिश उन्हें किसी ऊँचे पदपर पहुंचा दे। यात्राकी तैयारियां करने लगे।

१२

यद्यपि गांववालोंने गौसखांपर ज़रा भी आंच न आने दी थी, लेकिन ज्वालासिंहका उनके बर्तावके विषयमें पूछताछ करना उनके शान्तिहरणके लिये काफी था। चपरासी, नाज़िर, मुंशी सभी चकित हो रहे थे कि इस अक्खड़ लौंडेने डिप्टी साहबपर न जाने क्या जादू कर दिया कि उनकी कायापलट हो गयी। ईंधन, पुआल, हांड़ी बर्तन, दूध दही, मांस मछली, साग भाजी सभी चीजें बेगारमें लेनेको मना करते हैं। तब तो हमारा गुजर हो चुका। ऐसा भत्ता ही कौन बहुत मिलता है। यह लौंडा एक ही पाजी निकला। एक तो हमें फटकारें सुनायीं, उसपर यह और

रहा जमा गया। चलकर डिप्टीसाहबसे सब माजरा कह देना चाहिये। आज यह दुर्दशा हुई है, दूसरे गांवोंमें इससे भी बुरा हाल होगा। हम लोग पानीको तरस जायंगे। अतएव ज्योंही ज्वालासिंह लौटकर आये सब-के-सब उनके सामने जाकर खड़े हो गये। ईजादहुसेनको फिर उनका मुखपात्र बनाना पड़ा।

ज्वालासिंहने रुष्ट भावसे उन्हें देखकर पूछा, कहिए आप लोग कैसे चले? कुछ कहना चाहते हैं? मीरसाहब आपने इन लोगोंको मेरा हुक्म सुना दिया है न?

ईजादहुसेन—जी हां, यही हुक्म सुनकर तो यह लोग घबराये हुए आपकी खिदमतमें हाजिर हुए हैं। कल इस गांवमें एक सख्त वारदात हो गयी। गांवके लोग चपरासियोंसे लड़नेपर आमादा हो गये। यह लोग जान बचाकर चले न आये होते तो फौजदारी हो जाती। इन लोगोंने इसको इत्तला करके हुजूरके आराममें खलल डालना मुनासिब नहीं समझा, लेकिन आजकी मुमानियत सुनकर इनके होश उड़ गये हैं। पहले ही बेगार आसानीसे न मिलती थी, अब जो लोग इस हुक्मको खबर पायेंगे तो और भी शेर हो जायेंगे। कल जो हंगामा हुआ उसका बानी मबानी वही नौजवान था, जो सुबह हुजूरकी खिदमतमें हाजिर हुआ था। उसकी कुछ तम्बीह होनी निहायत जरूरी है।

ज्वालासिंह—उसकी बातोंसे मालूम होता था कि चपरासियोंने ही उसके साथ सख्ती की थी।

एक चपरासी—यह तो कहेहीगा, लेकिन हुजूर, खुदा गवाह है, हम लोग भाग न आये होते तो जानकी खैर न थी। ऐसी जिल्लत आजतक कभी न हुई थी। हम लोग चार-चार पैसेके मुलाजिम हैं, पर हाकिमोंके इकबालसे बड़े-बड़ोंकी कोई हकीकत नहीं समझते।

गौसखां—हुजूर, वह लौंडा इन्तहा दर्जेका शरीर है। उसके मारे हम लोगोंका गांवमें रहना दुशवार हो गया है, रोज एक-न-एक तूफान खड़ा किये रहता है।

दूसरा चपरासी—हुजूर हो लोगोंकी गुलामीमें उम्र कटी, लेकिन कभी ऐसी दुर्गति न हुई थी।

ईजादहुसेन—हुजूरकी रिआयापरवरीमें कोई शक नहीं। हुक्कामको रहमदिल होना ही चाहिये, लेकिन हक तो यह है कि बेगार बन्द हो जाय तो इन टकेके आदमियोंका किसी तरह गुजर ही न हो।

ज्वालासिंह—नहीं, मैं इन्हें तकलीफ नहीं देना चाहता। मेरा मंशा सिर्फ यह है कि रिआयापर बेजा सख्ती न हो। मैंने इन लोगोंको जो हुक्म दिया है उसमें इनकी जरूरतोंका काफी लिहाज रखा है। मैं यह मुनासिब नहीं समझता कि सदरमें यह लोग जिन चीजोंके बगैर गुजर कर सकते हैं उनकी देहातमें आकर क्यों जरूरत पड़ती है।

चपरासी—हुजूर, हम लोगोंको जैसे चाहे रखें, आपके गुलाम हैं, पर इसमें हुजूरकी बेरोबी होती है।

गौसखां—जी हां, यह देहाती लोग उसे हाकिम ही नहीं समझते जो इनके साथ नरमीसे पेश आये। हुजूरको हिन्दुस्तानी समझकर ही यह लोग ऐसी दिलेरी करते हैं। अङ्गरेज हुक्काम आते हैं तो कोई चूं भी नहीं करता। अभी दो हफ्ते होते हैं पादरी साहब तशरीफ लाये थे और हफ्ते भर रहे, लेकिन सारा गांव हाथ बांधे खड़ा रहता था।

ईजादहुसेन—आप बिलकुल दुरुस्त फरमाते हैं, हिन्दुस्तानी हुक्कामको यह लोग हाकिम ही नहीं समझते, जबतक वह इनके साथ सख्ती न करें।

ज्वालासिंहने अपनी मर्यादा बढ़ानेके ही लिये अंगरेजी रहन-सहन ग्रहण किया था। वह अपनेको किसी अंगरेजसे कम न समझते थे। अंगरेजोंसे मिलने जाते तो टोपी हाथमें ले लेते। जूते उतारनेके अपमानसे बच जाते। रेलगाड़ीमें अंगरेजोंके ही साथ बैठते थे। लोग अपनी बोलचालमें उन्हें साहब ही कहा

करते थे। हिन्दुस्तानी समझना उन्हें गाली देना था। गौसखां और ईजादहुसेनकी बातें निशानेपर बैठ गयीं। अकड़कर बोले, अच्छा, यह बात है तो मैं भी दिखा देता हूं कि मैं किसी अंगरेज-से कम नहीं हूं। यह लोग भी क्या समझेंगे कि किसी हिन्दुस्तानी हाकिमसे काम पड़ा था। अबतक तो मैं यही समझता था कि सारी खता हमीं लोगोंकी है। अब मालूम हुआ कि यह देहातियोंकी शरारत है। अहलमद साहब, आप हलकेके सबइन्सपेक्टरको रूबकार लिखिये कि वह फौरन इस मामलेकी तहकीकात करके अपनी रिपोर्ट पेश करें।

चपरासी—ज्यादा नहीं तो हुजूर, इन लोगोंसे मुचलका तो जरूर ही ले लिया जाय।

गौसखां—इस लौंडेकी गोशमाली जरूरी है।

ज्वालासिंह—जबतक रिपोर्ट न आ जाय मैं कुछ नहीं करना चाहता।

परिणाम यह हुआ कि सन्ध्या समय बाबू दयाशङ्कर जो फिर बहाल होकर इसी हलकेमें नियुक्त हुए थे लखनपुर आ पहुंचे। कई कान्सटेबल भी साथ थे। इन लोगोंने चौपालमें आसन जमाये। गांवके सब आदमी जमा किये गये। मगर बलराजका पता न था। वह और रंगी दोनों नीलगायोंको भगाने गये थे। दारोगाजीने बिगड़कर मनोहरसे कहा, तेरा बेटा कहां है। सारे फिसादकी जड़ तो वही है, तूने कहीं भगा तो नहीं दिया। उसे जल्द हाजिर कर, नहीं तो मैं वारण्ट जारी कर दूंगा।

मनोहरने अभी उत्तर न दिया था कि किसीने कहा, वह बलराज आ गया। सबकी आंखें उसकी ओर उठ गयीं। दो कान्सटेबलोंने लपककर उसे पकड़ लिया और दूसरे दो कान्सटेबलोंने उसकी मुश्कें कसनी चाहीं। बलराजने दीन भावसे मनोहरकी ओर देखा। उसकी आंखोंमें भयङ्कर संकल्प तिलमिला रहा था।

वह कह रही थीं कि यह अपमान मुझसे नहीं सहा जा

सकता। मैं अब जानपर खेलता हूं। आप क्या कहते हैं? मनोहरने बेटेकी यह दशा देखी तो रक्त खौल उठा। बावलासा हो गया। कुछ न सूझा कि मैं क्या कर रहा हूं। बाजकी तरह टूटकर बलराजके पास पहुंचा और दोनों कान्सटेबलोंको धक्का देकर बोला, छोड़ दो, नहीं तो अच्छा न होगा।

इतना कहते-कहते उसकी जबान बन्द हो गयी और आंखोंसे आंसू निकल पड़े। सुक्खू चौधरी मनमें फूले न समाते थे। उन्हें वह दिन निकट दिखाई दे रहा था, जब मनोहरके दसों बीघे खेतपर उनके हल चलेंगे। दुखरन भगत कांप रहे थे कि मालूम नहीं क्या आफत आयेगी। डपटसिंह सोच रहे थे कि भगवान करे मारपीट हो जाय तो इन लोगोंको खूब कुन्दी की जाय और बिसेसर साह थरथर कांप रहे थे, केवल कादिरखांको मनोहरसे सच्ची सहानुभूति थी। मनोहरकी उद्दण्डतासे उसके हृदयपर एक चोटसी लगी। सोचा मारपीट हो गयी तो फिर कुछ बनाये न बनेगी। तुरंत जाकर दयाशंकरके कानमें कहा, हुजूर हमारे मालिक हैं। हम लोग आपहीको रिआया हैं। सिपाहियोंको मने कर दें, नहीं तो खून हो जायगा। आप जो हुक्म देंगे उसके लिये मैं हाजिर हूं। दयाशंकर उन आदमियोंमें न थे जो खोकर भी कुछ नहीं सीखते। उन्हें अपने अभियोगने एक बड़ी उपकारी शिक्षा दी थी। पहले वह यथासंभव रिश्वत अकेले ही हजम कर लिया करते थे। इससे थानेके अन्य अधिकारी उनसे द्वेष किया करते थे। अब उन्होंने बांटकर खाना सीखा था। इससे सारा थाना उनपर जान देता था। इसके अतिरिक्त अब वह पहलेकी भांति अश्लील शब्दोंका व्यवहार न करते थे। उन्हें अब अनुभव हो रहा था कि सज्जनता केवल नैतिक महत्वकी वस्तु नहीं है, उसका आर्थिक महत्व भी कम नहीं है, सारांश यह कि अब उनके स्वभावमें अनर्गलताकी जगह गम्भीरताका समावेश हो गया था। वह इस झमेलेमें सारे गांवको समेटकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना

चाहते थे। कान्सटेबलोंका अत्याचार इस उद्देश्यमें बाधक हो सकता था। अतएव उन्होंने सिपाहियोंको शान्त किया और बयान लिखने लगे। पहले चपरासियोंके बयान हुए। उन्होंने अपना सारा क्रोध बलराजपर उतारा। गौसखां और उनके दोनों शहनोंने भी इसीसे मिलता-जुलता बयान दिया। केवल बिन्दा महाराजका बयान कुछ कमजोर था। अब गांववालोंके इजहार-की बारी आयी। पहले तो इन लोगोंने समझा था कि सारे गांवपर आफत आनेवाली है, लेकिन विपक्षियोंके बयानसे विदित हुआ कि सब उद्योग बलराजको फंसानेके लिये किया जा रहा है। बलराजपर उसकी सहृदयताके कारण समस्त गांव जान देता था। पारस्परिक स्नेह और सहृदयता भी ग्राम्य जीवनका एक शुभ लक्षण है। इस अवसरपर केवल सच्ची बात कहनेहीसे बलराजकी जान बचती थी, अपनी ओरसे कुछ घटाने या बढ़ाने-की जरूरत न थी। अतएव लोगोंने साहससे काम लिया और सारी घटना सच-सच कह सुनायी। केवल बलराजके कठोर शब्दोंपर परदा डाल दिया। विपक्षियोंने उन्हें फोड़नेमें कोई बात उठा नहीं रखी, पर कादिरखांकी दृढ़ताने किसीको विच-लित न होने दिया।

८ बजते-बजते तहक़ीकात समाप्त हो गयी। बलराजको हिरा-सतमें लेनेके लिये प्रमाण न मिले। गौसखां दांत पीसकर रह गये। दारोगाजी चौपालसे उठकर अन्दरके कमरेमें जा बैठे। गांवके लोग एक-एक करके सरकने लगे। डपटसिंहने अकड़कर कहा, गांवमें फूट न हो तो कोई कुछ नहीं कर सकता। दारोगा-जी कैसी जिरह करते थे कि कोई फूट जाय।

दुखरन—भगवान चाहेंगे तो अब कुछ न होगा। मेल बड़ी चीज है।

मनोहर—भाई, तुम लोगोंने मेरी आबरू रख ली, नहीं तो कुशल नहीं थी।

डपटसिंह—लस्करवालोंने समझा था जैसे दूसरे गांववालों-को दवा लेते हैं वैसे ही इन लोगोंको भी दवा लेंगे।

दुखरन—इस गांवपर महावीर स्वामीका साया है, इसे कोई क्या खाके दबायेगा ?

मनोहर—कादिर भैया, जब दोनों कान्सटेबलोंने बालूका हाथ पकड़ा तो मेरे बदनमें जैसे आग लग गयी। अगर वह छोड़ न दें तो चाहे जानसे जाता पर एककी तो जान ही लेकर छोड़ता।

डपट-अचरज तो यह है कि बलराजसे इतना जब्त कैसे हुआ।

बलराज—मेरी तो जैसे सिट्टी पिट्टी भूल गयी थी। मालूम होता था हाथोंमें दम ही नहीं है। हां, जब वह सब दादासे हाथा-पाई करने लगे तब मुझसे जब्त न हो सका।

दुखरन—चलो, भगवानकी दयासे सब अच्छा ही हुआ। अब कोई चिन्ता नहीं है।

यह बातें करते हुए लोग अपने-अपने घर गये। मनोहर अभी भोजन करके चिलम ही पी रहा था कि बिन्दा महाराज आकर बैठ गये। यह बड़ा सहृदय मनुष्य था। था तो जमींदारका नौकर पर उसकी सहानुभूति सदैव असामियोंके साथ रहती थी। मनो-हर उसे देखते ही खाटपरसे उठ बैठा, बिलासी घरमेंसे निकल आयी और बलराज, जो ऊखकी गंडेरियां काट रहा था, हाथमें गड़ासा लिये आकर खड़ा हो गया। आजकल ऊख पेली जाती थी। पहर रात रहे कोल्हू खड़े हो जाते थे।

मनोहरने पूछा, कहो महाराज कैसे चले ? चौपालमें क्या हो रहा है ?

बिन्दा—तुम्हारा गला रेतनेकी तैयारियां हो रही हैं। दारोगा-जीने गांवके मुखिया लोगोंको बुलाया और सबसे अपना-अपना बयान बदलनेके लिये कह रहे हैं। धमका रहे हैं कि बयान न बदलोगे तो सबसे मुचलका ले लेंगे। उसपर सौ रुपयेकी थैली अलग मांगते हैं। डरके मारे सबकी नानी मर रही है। बयान

बदलनेपर तैयार हैं। मैंने सोचा चलकर तुम्हें खबर तो दे दूं। जमींदारके चाकर हैं तो क्या, पर हैं तो हम और तुम एक।

मनोहरके पांव तलेसे मिट्टी निकल गयी। विलासी सन्नाटेमें आ गयी, बलराजके भी होश उड़ गये। गरीबोंने समझा था बला टल गयी। अपने काम धन्धेमें लगे हुए थे। इस समाचारने आंधीके झोंकेकी तरह आकर नौकाको डांवाडोल कर दिया। किसीके मुंहसे आवाज न निकली।

बिन्दाने फिर कहा, सबोंने कैसा अच्छा बयान दिया था। मैंने समझा था यह अपनी बातपर अड़ेंगे, पर सब कायर निकले, एक ही धमकीमें पानी हो गये।

मनोहर—मेरे ऊपर कोई गरह दशा आयी हुई है और क्या? इस लौंडेके पीछे देखें क्या क्या दुर्गति होती है।

बिन्दा—रात तो बहुत हो गयी है, पर बन पड़े तो लोगोंके पास जाओ। अरज बिनती करो। कौन जाने मान ही जायँ।

बलराजने तनकर कहा, न! किसी भकुयेके पास जानेका काम नहीं। यही न होगा मेरी सजा हो जायगी। ऐसे कायरोंसे भगवान बचावें। मुचलकेके नामसे जिनके प्राण सूख जाते हैं उनका कोई भरोसा नहीं। यहां मर्द हैं, सजासे नहीं डरते, कोई चोरी नहीं की है, डाका नहीं मारा है, सच्ची बातके पीछे सजा नहीं, गला कट जाय तब भी डरनेवाले नहीं हैं।

मनोहर—अरे बाबा, चुप भी रह, आया है बड़ा मर्द बनके। जब तेरी उमिर थी तो हम भी आकासपर दिया जलाते थे, पर अब वह कलेजा कहांसे लायें।

बिन्दा—इन लड़कोंकी बातें ऐसी ही होती हैं। यह क्या जाने, मां बापके दिलपर क्या गुजरती है। जाओ, कहो सुनो, धिक्कारो, आंखें चार होनेपर कुछ-न-कुछ मुरौवत आ ही जाती है।

विलासी—हां, अपनी चाली कर लो। आगे जो भागमें बदा है वह तो होगा ही।

नौ बज चुके थे। प्रकृति कुहिर-सागरमें डूबी हुई थी। घरोंके द्वार बन्द हो चुके थे। अलाव भी ठंढे हो गये थे। केवल सुक्खू चौधरीके कोल्हाड़ेमें गुड़ पक रहा था। कई आदमी भट्ठे के सामने आग ताप रहे थे। गांवकी गरीब स्त्रियां अपने-अपने घड़े लिये गर्म रसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। इतनेमें मनोहर आकर सुक्खूके पास बैठ गया। चौधरी अभी चौपालसे लौटे थे और अपने मेलियोंसे दारोगाजीकी सज्जनताकी प्रशंसा कर रहे थे। मनोहरको देखते ही बात बदल दी और बोले, आओ मनोहर, बैठो, मैं तो आपही तुम्हारे पास आनेवाला था। कड़ाहकी चासनी देखने लगा। इन लोगोंको चासनीकी परख नहीं है। कल एक पूरा ताव बिगड़ गया। दारोगाजी तो बहुत मुंह फैला रहे हैं। कहते हैं सबसे मुचलका लेंगे। उस-पर सौकी थैली अलग मांगते हैं। हाकिमोंके बीचमें बोलना जान जोखिम है। जरासी सुईका पहाड़ हो गया। मुचलका-का नाम सुनते ही सब लोग थरथरा रहे हैं, अपने-अपने बयान बदलनेपर तैयार हैं।

मनोहर—तब तो बलूके फंसनेमें कोई कसर ही नहीं रही।

सुक्खू—हां, बयान बदल जायंगे तो उसका बचना मुश्किल है। इसी मारे मैंने अपना बयान न दिया था। खांसाहब बहुत दम-भरोसा देते रहे, पर मैंने कहा, मैं न इधर हूं, न उधर हूं। न आपसे बिगाड़ करूंगा, न गांवसे बुरा बनूंगा। इस-पर बुरा मान गये। सारा गांव समझता है कि मैं खांसाहबसे मिला हुआ हूं, पर कोई बता दे कि उनसे मिलकर गांवकी क्या बुराई की। हां, उनके पास उठता-बैठता हूं। इतनेसे ही जब मेरा बहुत-सा काम निकलता है तब व्यवहार क्यों तोड़ूं? मेल-से जो काम निकलता है वह बिगाड़ करनेसे नहीं निकलता। हमारा सिर जमींदारके पैरों तले रहता है। ऐसे देवताको राजी रखनेहीमें अपनी भलाई है।

मनोहर—तो अब मेरे लिये कौनसी राह निकालते हो?

सुक्खू—मैं क्या कहूं, गांवका हाल तो जानते ही हो। तुम्हारी खातिर मोचलका देनेपर कौन राजी होगा? कोई न मानेगा, बस, या तो भगवानका भरोसा है या अपनी गांठका।

मनोहरने सुक्खूसे ज्यादा बातचीत नहीं की। समझ गया कि यह मुझे मुंड़वाना चाहते हैं। कुछ दारोगाको देंगे, कुछ गौसखांके साथ मिलकर आप खा जायंगे। इन दिनों उसका हाथ बिलकुल खाली था। नयी गोईं लेनी पड़ीं, सब रुपये हाथसे निकल गये। खांसाहबने सिकमी खेत निकाल लिये थे। इसलिये रब्बीकी आशा भी कम थी। केवल ऊखका भरोसा था, लेकिन बिसेशर साहके रुपये चुकाने थे और लगान भी बेबाक करना था। गुड़में इससे अधिक और कुछ न हो सकता था। दूसरा ऐसा कोई महाजन न था जिससे रुपये उधार मिल सकते। वह यहांसे उठकर डपटसिंहके घरकी ओर चला, पर अभीतक कुछ निश्चय न कर सका था कि उनसे क्या कहूंगा। वह भटके हुए पथिककी भांति एक पगडण्डीपर चला जा रहा था, बिलकुल बेखबर कि यह रास्ता मुझे कहां लिये जाता है, केवल इसलिये कि एक जगह खड़े रहनेसे चलते रहना अधिक सन्तोषप्रद था। क्या हानि है यदि लोग मुचलका देनेपर राजी हो जायं, यह विधान इतना दूरस्थ था कि वहांतक उसका विचार भी न पहुंच सकता था।

डपटसिंहके दालानमें एक मिट्टीके तेलकी कुप्पी जल रही थी। भूमिपर पुआल बिछी हुई थी और कई आदमी और लड़के एक मोटे टाटका टुकड़ा ओढ़े सिमटे पड़े थे। एक-एक कोनेमें एक-एक कुतिया बैठी हुई पिल्लोंको दूध पिला रही थी, दूसरेमें एक गाय खड़ी जुगाली कर रही थी। डपटसिंह अभी सोये न थे। सोच रहे थे कि सुक्खूके कोल्हाड़ेसे गर्म रस आ जाय तो पीकर सोयें। उनके छोटे भाई झपटसिंह कुप्पीके सामने

रामायण लिये आंखें गड़ा-गड़ाकर पढ़नेका उद्योग कर रहे थे। मनोहरको देखकर बोले, आओ महतो, तुम तो बड़े झमेलेमें पड़ गये।

मनोहर—अब तो तुम्हीं लोग बचाओ तो बच सकते हैं।

डपट—तुम्हें बचानेके लिये हमने कौनसी बात उठा रखी? ऐसा बयान दिया कि बलराजपर कोई दाग ही न आ सकता था, पर भाई अब मुचलका तो नहीं दे सकते। आज मुचलका दे दें, कलको गौसखां झूठों कोई सवाल दे दें तो सजा हो जाय।

मनोहर—नहीं भैया, मुचलका देनेको मैं आप ही न कहूंगा। डपटसिंह मनोहरके सदिच्छुक थे। पर इस समय उसे प्रकट न कर सकते थे। बोले, परमात्मा वैरीको भी कपूत सन्तान न दे। बलराजने कल झूठ-मूठ बतबढ़ाव न किया होता तो आज तुम्हें क्यों इस तरह लोगोंकी चिरौरी करनी पड़ती।

हठात् कादिरखांकी आवाज यह कहते हुए सुनाई दी, बड़ा न्याय करते हो ठाकुर। बलराजने झूठ-मूठ बतबढ़ाव किया था तो उसी घड़ी डांट क्यों न दिया? तब तो तुम भी बैठे मुस्कुराते रहे और आंखोंसे इशअलुक देते रहे। आज जब बात बिगड़ गयी है तो कहते हो, झूठ-मूठ बतबढ़ाव किया था। पहले तुम्हींने अपनी लकड़ीका रोना रोया था, मैंने अपनी रामकहानी कही थी। यही सब सुन सुनकर बलराज भरा बैठा था। ज्योंही मौका मिला खुल पड़ा। हमने और तुमने रो-रोकर बेगार दी, पर डरके मारे मुंह न खोल सके। वह हिम्मतका जवान है, उससे बरदास न हुई। जब वह हम सभी लोगोंके खातिर आगे बढ़ा तो यह कहांका न्याय है कि मुचलकेके डरसे आगमें झोंक दें?

डपटसिंहने विस्मित होकर कहा, तो क्या तुम्हारी सलाह है कि मुचलका दे दिया जाय?

कादिर—नहीं, मेरी यह सलाह नहीं है। मेरी सलाह है कि हम लोग अपने-अपने बयानपर डटे रहें। अभी कौन जानता है

कि मुचलका देना ही पड़ेगा। लेकिन अगर ऐसा हो तो हमें पीठ न फेरनी चाहिए। भला सोचो, कितना बड़ा अन्धेर है कि हम लोग मुचलकेके डरसे अपने बयान बदल दें और अपने ही लड़केको कुएंमें ढकेल दें।

मनोहरने कादिरमियांको अग्निपूर्ण नेत्रोंसे देखा। उसे ऐसा जान पड़ा मानों यह कोई देवता है। कादिरकी सम्मति जो साधारण न्यायपर स्थित थी उसे अलौकिक प्रतीत हुई। डपटसिंहको भी यह सलाह सयुक्तिक ज्ञात हुई। मुचलकेकी शंका कुछ कम हुई। मनमें अपनी स्वार्थपरतापर लज्जित हुए, तिसपर भी मनसे यह विचार न निकल सका कि प्रस्तुत विषयका सारा भार बलराजके सिर है। बोले, कादिर भाई, यह तो तुम नाहक कहते हो कि मैंने बलराजको इस्तालुक दिया। मैंने बलराजसे कब कहा कि तुम लसकरवालोंसे तूल कलाम करना। यह राड़ तो उसने आप ही बढ़ाया। उसका सुभाव ही ऐसा कड़ा ठहरा। आजको सिपाहियोंसे उलझा है, कलको किसीपर हाथ ही चला दे तो हमलोग कहांतक उसकी हिमायत करते फिरेंगे।

कादिर—तो मैं तुमसे कब कहता हूं कि उसकी हिमायत करो। वह बुरी राह चलेगा तो आप ठोकर खायगा। मेरा कहना यही है कि हम लोग अपनी आंखोंकी देखी और कानोंकी सुनी बातोंमें किसीके भयसे उलट-फेर न करें। सचाईपर रहें। अपनी जान बचानेके लिये फरेब न करें। मुचलकेकी तो बात ही क्या, हमारा धरम है कि अगर सच कहनेके लिये जेहल भी जाना पड़े तो सचसे मुंह न मोड़ें।

डपटसिंहको अब निकलनेका कोई रास्ता न रहा, किन्तु फिर भी इस निश्चयके व्यावहारिक रूपमें भागनेका कोई सम्भावित मार्ग निकल आनेकी आशा बनी हुई थी। बोले, अच्छा मान लो, हम और तुम अपने बयानपर अड़े, लेकिन बिसेशर और दुखरनको क्या करोगे, वह किसी विध न मानेंगे।

कादिर—इनको भी खींचे लाता हूं। मानेंगे कैसे नहीं? अगर अल्लाहका डर है तो कभी निकल ही नहीं सकते।

यह कहकर कादिरखां चले गये और थोड़ी देरमें दोनों आदमियोंको साथ लिये हुए आ पहुंचे। बिसेशर साहने आते ही डपटसिंहकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टिसे देखा, मानो पूछना चाहते थे कि तुम्हारी क्या सलाह है, और दुखरन भगत, जो दोनों जून मंदिरमें पूजा करने जाया करते थे और जिन्हें रामचर्चासे कभी तृप्ति न होती थी, इस तरह सिर झुकाकर बैठ गये, मानों उनपर वज्रपात हो गया है, या कादिरखां उन्हें किसी गहरी खोहमें गिरा रहे हैं।

इन्हें यहां बैठाकर कादिरखांने अपनी पगड़ीसे थोड़ीसी तमाखू निकाली, अलावसे आग रख लाये और दो तीन दम लगाकर चिलमको डपटसिंहकी ओर बढ़ाते हुए बोले, कहो भगत, कल दारोगाजीके पास चलकर क्या करना होगा?

दुखरन—जो तुम लोग करोगे वही मैं भी करूंगा। हां, मुचलका न देना पड़े। कादिरने फिर उसी युक्तिसे काम लिया, जो डपटसिंहको समाधान करनेमें सफल हुई थी। सीधे सादे किसान वितण्डावादी नहीं होते। वास्तवमें इन लोगोंके ध्यानमें यह बात ही न आयी थी कि बयानका बदलना प्रत्यक्ष जाल है। कादिरखांने इस विषयका निदर्शन किया तो उन लोगोंकी सरल सत्यभक्ति जागृत हो गयी। दुखरन शीघ्र ही उनसे सहमत हो गये। लेकिन बिसेशरपर उनके भाषणका कुछ असर न हुआ। साहजीके यहां शक्कर और अनाजका कारबार होता था। डेवढ़ी सवाई चलती थी, लेन-देन करते थे, दो हलकी खेती होती थी; गांजा, भङ्ग, चरस आदिका ठोका भी ले लिया था। पर उनका मेषभाव उन्हें कराधिकारियोंके पञ्जेसे बचाता रहता था। बोले, भाई तुम लोगोंका साथ देनेमें मैं कहींका न रहूंगा, चार पैसेका लेन-देन है। नरमी, गरमी, डांट-डपट किये बिना काम नहीं चल सकता।

रुपये लेते समय तो लोग सगे बन जाते हैं, पर देनेकी बारी आती है तो कोई सीधे मुंह बात नहीं करता। यह रोजगार ही ऐसा है कि अपने घरका जमा देकर दूसरोंसे वैर मोल लेना पड़ता है। आज मुचलका हो जाय, कलको कोई मामला खड़ा हो जाय, तो गांवमें सफाईके गवाहतक न मिलेंगे। और फिर संसारमें रहकर अधर्मसे कहांतक बचेंगे? यह तो कपटलोक है। अपने मतलबके लिये दगा, फरेब, जाल सभी कुछ करना पड़ता है। आज धरमका विचार करने लगूं तो कल ही सौ रुपये सालका टिकस बंध जाय, असामियोंसे कौड़ी न वसूल हो और सारा कारबार मिट्टीमें मिल जाय। इस जमानेमें जो रोजगार रह गया है इसी बेईमानीका रोजगार है। क्या हम हुए, क्या तुम हुए—सबका एक ही हाल है, सभी सनकी गांठोंमें मिट्टी और लकड़ी भरते हैं, तेलहन और अनाजमें मिट्टी और कङ्कर मिलाते हैं। क्या यह बेईमानी नहीं है? बेउचित बात कहता हूं तो मेरे मुंहपर थप्पर मारो। तुम लोगोंको जैसा गौं पड़े वैसा करो, पर मैं मुचलका देनेपर किसी तरह राजी नहीं हो सकता।

स्वार्थनीतिका जादू निर्बल आत्माओंपर खूब चलता है। दुखरन और डपटसिंहको यह बातें अतिशय न्यायसङ्गत जान पड़ीं। यही विचार उनके हृदयमें भी थे, पर किसी कारणसे व्यक्त न हो सके थे। दोनोंने एक-दूसरेको मार्मिक दृष्टिसे देखा। डपटसिंह बोले, भाई, बात तो सच्ची कहते हो, संसारमें रहकर सीधी राहपर कोई नहीं चल सकता। अधर्मसे बचना चाहे तो किसी जङ्गल-पहाड़में जाकर बैठे। यहां निवाह नहीं।

कादिरखां समझ गये कि साहुजीपर धर्म और न्यायका कुछ बस न चलेगा। यह उस वक्ततक काबूमें न आयेंगे जबतक इन्हें यह न सूझेगा कि बयान बदलनेमें कौन-कौनसी बाधाएं उपस्थित हो सकती हैं। बोले, साहुजी तुम जो बात कहते हो बेलाग कहते हो। संसारमें रहकर अधर्मसे कहांतक कोई

बचेगा ? रात-दिन तो छल-कपट करते रहते हैं। जहां इतने पापोंका दण्ड भोगना है, एक पाप और सही। लेकिन यहां धर्मका ही विचार नहीं है न ? डर तो यह है कि बयान बदलकर हम लोग और किसी सकटमें न फंस जायं। पुलिसवाले किसी-के नहीं होते। हम लोगोंका पहला बयान दारोगाजीके पास रखा हुआ है। उसपर हमारे दसखत और अंगूठेके निसान हैं। दूसरा बयान लेकर वह हम लोगोंको जालसाजीमें गिरफ्तार कर लें तो सोचो क्या हो। सात बरससे कमकी सजा न होगी। न भैया, इससे तो मुचलका ही अच्छा। आंखसे देखकर मक्खी क्यों निकले'!

बिसेसर साहकी आंखें खुलीं। और लोग भी चकराये। कादिरखाकी यह युक्ति काम कर गयी। लोग समझ गये कि हम लोग बुरे फंस गये हैं और किसी तरह निकल नहीं सकते। बिसेसरका मुंह ऐसा लटक गया मानों रुपयेकी थैली गिर गयी हो। बोले, दारोगाजी ऐसे आदमी तो नहीं जान पड़ते। कितना ही है तो हमारे मालिक हैं, कुछ-न-कुछ मुलाहिजा तो करेंगे ही, लेकिन किसीके मनका हाल परमात्मा ही जान सकता है। कौन जाने, उनके मनमें कपट समा जाय। तब तो हमारा सत्यानास ही हो जाय। तो यही सलाह पक्की कर लो न कि न बयान बदलेंगे, न दारोगाजीके पास जायेंगे। अब तो जालमें फंस गये हैं। फड़फड़ानेसे फन्दे और भी बन्द हो जायेंगे। चुपचाप रामआसरे बैठे रहना ही अच्छा है।

इस प्रकार आपसमें सलाह करके लोग अपने-अपने घर गये। कादिरखांकी व्यवहारपटुताने विजय पायी।

बाबू दयाशंकर नियमानुसार ८ बजे सोकर उठे और रातकी खुमारी उतारनेके बाद इन लोगोंकी राह देखने लगे। जब ९ बजेतक किसीकी सूरत न दिखाई दी तो गौसखांसे बोले, कहिये खांसाहब, यह सब न आयेंगे क्या ? देर बहुत हुई।

गौसखां—क्या जाने कल सभोंमें क्या मिस्कौट हुई। क्यों सुक्खू, रात मनोहर तुम्हारे पास आया था न?

सुक्खू—हां, आया तो था, पर कुछ मामलेकी बातचीत नहीं हुई। कादिरमियां बड़ी राततक सबके घर-घर घूमते रहे। उन्हीं-ने सभोंको मंत्र दिया होगा।

गौसखां—जरूर उसीकी शरारत है। कल पहर राततक सब लोग बयान बदलनेपर आमादा थे। मालूम होता है जब लोग यहांसे गये हैं तो उसे पट्टी पढ़ानेका मौका मिल गया। मैं जानता तो सभोंको यहीं सुलाता। यह मलऊन कभी अपनी हरकतसे बाज नहीं आता। हमेशा मांजी मारा करता है।

दया—अच्छी बात है, तो मैं अब रिपोर्ट लिख डालता हूं। मुझे गांववालोंकी तरफसे किसी किस्मकी ज्यादतीका सबूत नहीं मिलता।

गौसखां—हुजूर खुदाके लिये ऐसी रिपोर्ट न लिखें, वरना यह सब और शेर हो जायंगे। हुजूर, महज अफसर नहीं हैं। मेरे आका भी तो हैं। गुलामने बहुत दिनोंतक हुजूरका नमक खाया है। ऐसा कुछ कीजिए कि यहां मेरा रहना दुश्वार न हो जाय। मैं तो हुजूर और बाबू ज्ञानशंकरको एक ही समझता हूं। मैं यही चाहता हूं कि बलराजको कम-से-कम एक माहकी सजा हो जाय और बाकोंसे मुचलका ले लिया जाय। यह इनायत खास मुझपर होगी। मेरी धाक बंध जायगी और आइन्दासे हुक्काम-की बेगारमें जरा भी दिक्कत न होगी।

दयाशङ्कर—आपका फरमाना बजा है; पर मैं इस वक्त न आपके आकाकी हैसियतमें हूं और न मेरा काम हुक्कामके लिए बेगार पहुंचाना है। मैं तसफीस करने आया हूं और किसीके साथ रूरियायत नहीं कर सकता। यह तो आप जानते ही हैं कि मैंने मुफ्तमें कलम उठानेका सबक नहीं पढ़ा। किसीपर जब्र नहीं करता, सख्ती नहीं करता, सिर्फ कामकी मजदूरी चाहता हूं और

खुशीसे जो कोई मुझसे काम लेना चाहे मेरी उजरत पेश करे। और मुझे महज़ अपनी फिक्र तो नहीं। मेरे मातहत और भी तो कितने ही छोटी-छोटी तनखाहोंके लोग हैं। उनका गुज़र कैसे हो? गांवमें आपको धाक बँध जायगी, इससे मेरा फ़ायदा? आप असामियोंको लूटेंगे, मेरी गरज़? गांववालोंसे मेरी कोई दुश्मनी नही, बल्कि वह गरीब तो मेरे पुराने वफादार असामी हैं। मच्छर नहीं कि डङ्क मारता फिरूं। कसम खा चुका हूं कि अब एक सौसे कमकी तरफ़ निगाह न उठाऊंगा, यह रकम मुझे चाहे आप दें या काला चोर दे। मेरे सामने रकम आनी चाहिए। गुनाह बेलज़्ज़त नही कर सकता।

गौसखांने बहुत मिन्नत समाजत की, अपनी हीन दशाका रोना रोया, अपनी दुरवस्थाका पचड़ा गाया, पर दारोगाजी टससे मस न हुए। खांसाहबने लोगोंको नीचा दिखानेका निश्चय किया था, इसीमें उनका कल्याण था। दारोगाजीके पूजार्पणके सिवा अन्य कोई उपाय न था। सोचा, जब मेरी धाक जम जायगी तो ऐसे-ऐसे कई सौका वारा न्यारा कर दूंगा। कुछ रुपये अपने सन्दूकसे निकाले, कुछ सुक्खू चौधरीसे लिये और दारोगाजीकी खिदमतमें पेश किये। यह रुपये उन्होंने अपने गांवमें एक मसजिद बनवानेके लिये जमा किये थे। निकालते हुए हार्दिक वेदना हुई, पर समस्याने विवश कर दिया था। दयाशङ्करने काले-काले रुपयोंका ढेर देखा तो चेहरा खिल उठा। बोले, अब आपकी फतह है, वह रिपोर्ट लिखता हूं कि मिस्टर ज्वालासिंह भी फड़क जायें। मगर क्या आपने यह रुपये जमीनमें दफन कर रखे थे क्या?

गौसखां—अब हुजूर कुछ न पूछें। बरसोंकी कमाई है। यह पसीनेके दाग हैं।

दयाशङ्कर—(हंसकर) आपके पसीनेके दाग तो न होंगे, हां, असामियोंके खूने-जिगरके दाग हैं।

१० बजे रिपोर्ट तैयार हो गयी, दो दिनतक सारे गांवमें कुह-

राम मचा रहा। लोग तलब हुए, फिर सबके बयान हुए। अन्तमें सबसे सौ-सौ रुपयेके मुचलके ले लिये गये। कादिरखांको घरसे बाहर निकलना मुश्किल हो गया।

शाम हो गयी थी। बाबू ज्वालासिंह शिकार खेलने गये हुए थे। फैसला कल सुनाया जानेवाला था। गौसखां ईजादहुसेनके पास आकर बैठ गये और बोले, क्या डिप्टी साहब अभी शिकार-से वापस नहीं आये?

ईजादहुसेन—कहीं बड़ी राततक लौटेंगे। हुकूमतका मजा तो दौरेमें ही मिलता है। घण्टे आध घण्टे कचहरी की, बाकी सारे दिन मटरगश्त करते रहे। रोजनामचा भरनेको लिख दिया, पर-ताल करते रहे।

गौसखां—आपको तो मालूम ही हुआ होगा, दारोगाजीने मुझे आज खूब पथा।

ईजाद—इन हिन्दुओंसे खुदा समझे। यह बलाके मुतअस्सिब होते हैं। हमारे साहब बहादुर भी बड़े मुन्सिफ बनते हैं, मगर जब कोई जगह खाली होती है तो वह हिन्दूको ही देते हैं। अर्दलीके चपरासी मजीदको आप जानते होंगे। अभी हालमें उसने जिल्द बन्दीकी दूकान खोल ली, नौकरीसे इस्तीफा दे दिया। आपने उसकी जगहपर एक गंवार अहीरको मुकर्रर कर लिया। है तो अर्दलीका चपरासी, पर उसका काम है गायें दुहना, उन्हें चारा पानी देना। दौरेके चौकीदारोंमें दो कहार रख लिये हैं। उनसे खिदमतगारीका काम लेते हैं। जब इन हथकण्डोंसे काम चले तो बेगारकी जरूरत ही क्या? हम लोगोंको अलबत्ता हुक्म मिला है कि बेगार न लिया करो।

सूर्य्य अस्त हुए, खांसाहबको याद आ गया कि नमाजका वक्त गुजरा जाता है। वजू किया और एक पेड़के नीचे नमाज पढ़ने लगे।

इतनेमें चिरौंजर साहने रावटीके द्वारपर आकर अहलमद साह-

वको अदबसे सलाम किया। स्थूल शरीर, गाढ़ेकी मिर्जई, उसपर गाढ़ेकी दोहर, सिरपर एक मैलीसी पगड़ी, नंगे पांव, मुख मलीन स्वार्थपूर्ण विनयकी मूर्त्ति बने हुए थे। एक चपरासीने डांटकर कहा, यहां कहां घुसे चले आते हो? कुछ अफसरोंका अदब लिहाज भी है?

विशेशर साह दो तीन पग पीछे हट गये और हाथ बांधकर बोले, सरकार, मेरी एक विनती है। हुक्म हो तो अरज करूं।

ईज़ाद—क्या कहते हो? तुम लोगोंके मारे तो दम मारनेकी भी फुर्सत नहीं। जब देखो, एक न एक आदमी शैतानकी तरह सिरपर सवार रहता है।

विशेशर—हुजूर, बड़ी देरसे खड़ा हूं।

ईज़ाद—अच्छा, खैर अपना मतलब कहो।

विशेशर—यही अरज है हुजूर, कि मुझसे मुचलका न लिया जाय। बड़ा गरीब हूं सरकार, मिट्टीमें मिल जाऊंगा।

अहलमद साहबके यहां ऐसे ग़रज़के बावले, आंखके अन्धे गांठके पूरे, नित्य ही आया करते थे। वह उनके कल पुरजे खूब जानते थे। पहले मुंह फेरा, फिर अपनी विवशता प्रकट की, पर भाव ऐसा शीलपूर्ण बनाये रखा कि शिकार हाथसे निकल न जाय। अन्तमें मामलेपर आये। रुपये लेते हुए ऐसा मुंह बनाया मानो दे रहे हों। साहजीको दिलासा देकर विदा किया।

चपरासीने पूछा, क्या इससे मोचलका न लिया जायगा?

ईजाद—लिया क्यों न जायगा? फैसला लिखा हुआ तैयार है। इसके लिये जैसे सौ, वैसे एक सौ बीस। मैंने उससे यह हर्गिज नहीं कहा कि तुम्हें मुचलकेसे निजात दिला दूंगा। महज इतना कह दिया, कि तुम्हारे लिये अपने इमकानभर कोशिश करूंगा। उसकी तसकीन इतनेहीसे हो गयी तो मुझे ज्यादा दर्द सरकी क्या जरूरत थी? रिश्वतको लोग नाहक बदनाम करते हैं। इस वक्त मैं इससे रुपये न ले लेता तो इसको न जाने क्या

हालत होती। मालूम नहीं, कहां कहां दौड़ता और क्या क्या करता? रुपये देकर इसके सिरका बोझ हलका हो गया और दिलपरसे बोझ उतर गया। इस वक्त आरामसे खायगा और मीठी नींद सोयेगा। कल कह दूंगा, भाई क्या करूं, बहुत हाथ पैर मारे, पर डिप्टीसाहब राजी ही न हुए। मौका देखूंगा तो एक चाल और चलूंगा। कहूंगा, डिप्टी साहबको कुछ नजर दिये बिना काम पूरा न होगा। सौ रुपये पेश करो तो तुम्हारा मुचलका रद्द करा दूं। यह चाल चल गयी तो पौ बारह हैं। इसीका नाम हम खुर्मा वहम सवाब है। मैंने कोई ज्यादती नहीं की, कोई जब्र नहीं किया। यह गुवो इमदाद है। इसीसे मैं हिन्दुओंके मसलये तनासुखका क़ायल हूं। जरूर इससे पहलेकी जिन्दगीमें इस आदमीपर मेरे कुछ रुपये आते होंगे, खुदाने उसके अदा होनेकी यह सूरत पैदा कर दी। देखते तो हो, आये दिन ऐसे शिकार फंसा करते हैं, गोया उन्हें रुपयोंसे कोई चिढ़ है। दिलमें उनकी हिमाकतपर हंसता हूं और अल्लाहका शुक्र अदा करता हूं कि ऐसे बन्दे न पैदा करता तो हम जैसोंका गुजर क्यों कर होता।

१४

रायसाहबको नैनीताल आये हुए एक महीना हो गया है। एक सुरम्य सागरके किनारे हरे-भरे वृक्षोंके कुञ्जमें उनका बङ्गला स्थित है, जिसका एक हजार रुपया मासिक किराया देना पड़ता है। कई घोड़े हैं, कई मोटरगाड़ियां, बहुतसे नौकर। यहां वह राजाओंकी भाँति शानसे रहते हैं। कभी हिमराशियोंकी सैर कभी शिकार, कभी सागरमें बजरोंकी बहार, कभी पोलो और गल्फ़, कभी सरोद और सितार, कभी पिकनिक और पार्टियां नित्य नये जलसे, नये प्रमोद होते रहते हैं। रायसाहब बड़े उमङ्गके साथ इन विनोदोंकी बहारें लूटते हैं। उनके बिना किसी महफिल, किसी जलसेका रंग नहीं जमता। वह सभी बरातोंके दूल्हे हैं। व्यवस्थापक सभाकी बैठकें नियमित समयपर हुआ करती

हैं, पर मेम्बरोंके राग-रंगको देखकर यह अनुमान करना कठिन नहीं है कि वह आमोदको अधिक महत्वका विषय समझते हैं या व्यवस्थाओंके सम्पादनको।

किन्तु ज्ञानशङ्करके हृदयकी कली यहां भी न खिली। रायसाहबने उन्हें यहांके समाजसे परिचित करा दिया, उन्हें नित्य दावतों और जलसोंमें अपने साथ ले जाते, अधिकारियोंसे उनके गुणोंकी प्रशंसा करते, यहांतक कि उन्हें लेडियोंसे भी इन्ट्रोड्यूस कराया। इससे ज्यादा वह और क्या कर सकते थे? इस भित्तिपर दीवार उठाना उनका काम था, पर उनकी दशा उस पौधेकी-सी थी जो प्रतिकूल परिस्थितिमें जाकर मालीके सुव्यवस्था करनेपर भी दिनोंदिन सूखता जाता है। ऐसा जान पड़ता था कि वह किसी गहन घाटीमें रास्ता भूल गये हैं। रत्नजटित लेडियोंके सामने वह शिष्टाचारके नियमोंके ज्ञाता होनेपर भी झेंपने लगते थे। रायसाहब उन्हें प्रायः एकान्तमें सभ्य व्यवहारके उपदेश किया करते, स्वयं नमूना बनकर उन्हें दिखाते, पुरुषोंसे क्योंकर बिना प्रयोजन ही मुस्कुराकर बातें करनी चाहिये, महिलाओंके रूप लावण्यकी क्योंकर सराहना करनी चाहिये, किन्तु अवसर पड़नेपर ज्ञानशङ्करका मतिहरण हो जाता था। उन्हें आश्चर्य होता था कि रायसाहब इस वृद्धावस्थामें भी लेडियोंके साथ कैसे घुल मिल जाते हैं, किस अन्दाजसे बातें करते हैं कि बनावटका ध्यान भी नहीं हो सकता, मानो इसी जलवायुमें उनका पालन-पोषण हुआ है।

एक दिन वह सागरके किनारे एक बेंचपर बैठे हुए थे। कई लेडियां एक बजरेपर जल-क्रीड़ा कर रही थीं। इन्हें पहचानकर उन्होंने इशारेसे बुलाया और सैर करनेको दावत दी। इस समय ज्ञानशङ्करकी मुखाकृति देखते ही बनती थी। उन्हें इन्कार करनेके शब्द न मिले। भय हुआ कि यह कहीं असभ्यता न समझी जाय। झेंपते हुए बजरेमें जा बैठे, पर सूरत बिगड़ी हुई, खेद और ग्लानि-

की सजीव मूर्ति। हृदयपर एक पहाड़का बोझ रखा हुआ था। लेडियोंने उनकी यह दशा देखी तो आड़े हाथों लिया और इतनी फबतियां उड़ाईं, इतना बनाया कि इस समय कोई ज्ञानशङ्करको देखता तो पहचान न सकता। मालूम होता था, आकृति ही बिगड़ गयी है, मानों कोई बन्दरका बच्चा नटखट लड़कोंके हाथों पड़ गया हो। आंखोंमें आंसू भरे एक कोनेमें दबके सिमटे बैठे हुए अपने दुर्भाग्यको रो रहे थे। बारे किसी तरह इस विपत्तिसे मुक्ति हुई, जानमें जान आयी। कान पकड़े कि फिर लेडियोंके निकट न जाऊंगा।

शनैः शनैः ज्ञानशङ्करको इन खेल-तमाशोंसे अरुचि होने लगी। अंगूर खट्टे हो गये। ईर्षा जो अपनी क्षुद्रताओंका स्वीकार है, हृदयका कांटा बन गयी। रात दिन इसकी टीस रहने लगी। उच्चाकांक्षायें उन्हें पर्वतके पदस्थलतक ले गयीं, लेकिन ऊपर न ले जा सकीं। वहीं हिम्मत हारकर बैठ गये और उन धुनके पूरे, साहसी पुरुषोंकी निन्दा करने लगे जो गिरते-पड़ते ऊपर चढ़ते चले जाते थे। यह क्या पागलपन है! लोग ख्वामख्वाह अङ्गरेजियतके पीछे लट्ठ लिये फिरते हैं। थोड़ीसी ख्याति और सत्ताके लिये इतना झंझट और इतने रंगरोगनपर भी असलियतका कहीं पता नहीं। सब-के-सब बहुरूपिये मालूम होते हैं। अङ्गरेज लोग इनके मुंहपर चाहे न हँसे, पर मित्रमंडलोंमें इनपर सब तालियां बजाते होंगे। और तो और, लोग लेडियोंके साथ नाचनेपर भी मरते हैं। कैसी निर्लज्जता है, कैसी बेहयाई, जातिके नामपर धब्बा लगानेवालो! रायसाहब भी विचित्र जीव हैं, इस अवस्थामें आपको भी नाचनेकी धुन है। ऐसा मालूम होता है मानों उच्छृङ्खलता सदेह होकर दूसरोंका मुंह चिढ़ा रही है। डाक्टर चन्द्रशेखर कहनेको तो दर्शनके ज्ञाता हैं, पुरुष और प्रकृति जैसे गहन विषयोंपर लच्छेदार वक्तृताएं देते हैं, लेकिन नाचने लगते हैं तो सारा पाण्डित्य धूलमें मिल जाता है। वह जो राजा साहब

हैं इन्द्रकुमारसिंह, मरकेकी भांति तोंद निकली हुई है, लेकिन आप भी अपना नृत्य-कौशल दिखानेपर उधार खाये हुए हैं। और तुर्रा यह कि सबके सब जातिके सेवक और देशके भक्त बनते हैं। जिसे देखिये भारतकी दुर्दशापर आंसू बहाता नजर आता है। यह लोग विलासमय होटलोंमें शराब और लेमनेड पीते हुए देश-की दरिद्रता और अधोगतिका रोना रोते हैं। यह भी फैशनमें दाखिल हो गया है।

इस भांति ज्ञानशङ्करकी ईर्ष्या देशानुरागके रूपमें प्रकट हुई। असफल लेखक समालोचक बन बैठा। अपनी असमर्थताने साम्य-वादी बना दिया। यह सभी रंगे हुये सियार हैं, लुटेरोंका जत्था है, किसीको खबर नहीं कि गरीबोंपर क्या बीत रही है, किसीके हृदयमें दया नहीं; कोई राजा है, कोई ताल्लुकेदार, कोई महाजन। सभी गरीबोंका खून चूसते हैं, गरीबोंके झोपड़ोंमें सेंद मारते हैं और यहां आकर देशकी अवनतिका पवड़ा गाते हैं, भला ही है कि अधिकारिवर्ग इन महानुभावोंको मुंह नहीं लगाते। कहीं वह इनकी बातोंमें आ जायं और देशका भाग्य इनके हाथोंमें दे दें तो जातिका कहीं निशान भी न रहे। यह सब दिन दहाड़े उसे लूट जायं। कोई इन भलेमानुसोंसे पूछे, आप जो यहां लाखों रुपये सैर सपाटोंमें उड़ा रहे हैं उससे जातिको क्या लाभ हो रहा है। यही धन यदि जातिपर अर्पण करते तो जाति तुम्हें धन्यवाद देती और तुम्हें पूजती, नहीं तो उसे खबर भी नहीं कि तुम कौन हो और क्या करते हो। उसके लिये तुम्हारा होना न होना दोनों बराबर है। प्रार्थीको इस बातसे संतोष नहीं होता कि तुम दूसरों से सिफारिश करके उसे कुछ दिला दोगे, उसे संतोष होगा जब तुम स्वयं अपने रासरो थोड़ासा निकालकर उसे दे दो।

ये द्रोहात्मक विचार ज्ञानशङ्करके चित्तको मथने लगे। वाणी उन्हें प्रकट करनेके लिये व्याकुल होने लगी। एक दिन वह डाक्टर चन्द्रशेखरसे उलझ पड़े। इसी प्रकार एक दिन राजा इन्द्रकुमारसे

विवाद कर बैठे और मिस्टर हरिदास बैरिस्टरसे तो एक दिन हाथापाईकी नौबत आ गयी। परिणाम यह हुआ कि लोगोंने ज्ञानशङ्करका बहिष्कार करना शुरू किया। यहांतक कि रायसाहेबके बङ्गलेपर आना भी छोड़ दिया। किन्तु जब ज्ञानशङ्करने अपने विचारोंको एक प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रिकामें प्रकाशित कराया तो सारे नैनीतालमें हलचल मच गयी। जिसके मस्तिष्कसे ऐसे उत्कृष्ट भाव प्रकट हो सकते थे उसे झक्की या बक्की समझना असम्भव था। शैली ऐसी सजीवन, चुटकियां ऐसी तीव्र, व्यंग्य ऐसे मीठे और उक्तियां ऐसी मार्मिक थीं कि लोगोंको उसकी चोटोंमें भी आनन्द आता था। नैनीताल समाजका एक बृहद् चित्र था। चित्रकारने प्रत्येक चित्रके मुखपर उसका व्यक्तित्व ऐसी कुशलतासे अङ्कित कर दिया था कि लोग मन-ही-मन फटकर रह जाते थे। लेखमें ऐसे कटाक्ष थे कि उसके कितने ही वाक्य लोगोंकी जबानपर चढ़ गये।

ज्ञानशङ्करको शङ्का थी कि यह लेख छपते ही समस्त नैनीताल उनके सिर हो जायगा, किन्तु यह शङ्का निस्सार सिद्ध हुई। जहां लोग उनका निरादर और अपमान करते थे, वहां अब उनका आदर और मान करने लगे। एक-एक करके लोगोंने उनके पास आकर अपनी अविनयकी क्षमा मांगी। सब-के सब एक दूसरेपर की गयी चोटोंका आनन्द उठाते थे। डाक्टर चन्द्रशेखर और राजा इन्द्रकुमारमें बड़ी घनिष्ठता थी, किन्तु राजा साहबपर दोमुंहे सांपकी फबती डाक्टर महोदयको लोट-पोट कर देती थी। राजा साहब भी डाक्टर महाशयकी ओझासे उपमापर मुग्ध हो जाते थे। उनकी घनिष्ठता इस समय आनन्दमें बाधक न होती थी। यह चोटें और चुटकियां सर्वथा निष्फल न हुईं। सैर-तमाशोंमें लोगोंका उत्साह कुछ कम हो गया। अगर अन्तःकरणसे नहीं तो केवल ज्ञानशङ्करको खुश करनेके लिए लोग उनसे सार्वजनिक प्रस्तावोंमें सम्मति लेने लगे। ज्ञानशङ्करका साहस और भी बढ़ा।

वह खुल्लमखुल्ला लोगोंको फटकारें सुनाने लगे। निन्दकसे उपदेशक बन बैठे। उनमें आत्मगौरवका भाव उदय हो गया। अनुभव हुआ कि इन बड़े-बड़े उपाधिधारियों और अधिकारियोंपर कितनी सुगमतासे प्रभुत्व जमाया जा सकता है। केवल एक लेखने उनकी धाक बिठा दी। सेवा और दयाके जो पवित्र भाव उन्होंने चित्रित किये थे, उनका स्वयं उनकी आत्मापर भी असर हुआ। पर शोक! इस अवस्थाका शीघ्र ही अन्त हो गया। क्वारका आरम्भ होते ही नैनीतालसे डेरे कूच होने लगे और आधे क्वारतक वह बस्ती उजाड़ हो गयी। ज्ञानशङ्कर फिर उसी कुटिल स्वार्थकी उपासना करने लगे। उनका हृदय दिनोंदिन कृपण होने लगा। नैनीतालमें भी वह मन-ही-मन रायसाहबकी फ़ज़ूलखर्चियोंपर कुड़बुड़ाया करते थे। लखनऊ आकर उनकी संकीर्णता शब्दोंमें व्यक्त होने लगी। जुलाहेका क्रोध दाढ़ीपर उतरता। कभी मुख्तारसे, कभी मुहर्रिरसे, कभी नौकरोंसे उलझ पड़ते तुम लोग रियासतको लूटनेपर तुले हुए हो, जैसे मालिक वैसे उसके नौकर, सभीकी आंखोंमें सरसों फूली हुई है, मुफ्तका माल उड़ाते क्या लगता है? जब पसीना मारकर कमाते तो खर्च करते भी अखर होती। रायसाहब रामलीला सभाके प्रधान थे। इस अवसरपर हजारों रुपये खर्च करते, नौकरोंको नयी नयी वरदियां मिलतीं, रईसोंकी दावत की जाती, राजगद्दीके दिन ब्रह्मभोज किया जाता। ज्ञानशंकर धनका यह अपव्यय देखकर जलते रहते थे। दीपमालिकाके उत्सवकी तैयारियां देखकर तो वह ऐसे हताश हुए कि एक सप्ताहके लिये इलाकेकी सैर करने चले गये।

दिसम्बरका महीना था और क्रिसमसके दिन। रायसाहब अंग्रेज अधिकारियोंको डालियां देनेकी तैयारियोंमें तल्लीन हो रहे थे। ज्ञानशंकर उन्हें डालियां सजाते देखकर इस तरह मुंह बनाते मानों वह कोई महा घृणित काम कर रहे हैं। कभी-कभी दबी जबानसे उनकी चुटकी भी ले लेते। उन्हें छेड़कर तर्क-वितर्क

करना चाहते थे। रायसाहबपर इन भावोंका जराभी असर न होता। वह ज्ञानशंकरकी मनोवृत्तियोंसे परिचित जान पड़ते थे। कदाचित् उन्हें जलानेहीके लिये वह इस समय इतने उत्साहशील हो गये थे!

यह चिन्ता ज्ञानशंकरकी नींद हराम करनेके लिये काफी थी। उसपर जब उन्हें विश्वस्त सूत्रसे मालूम हुआ कि रायसाहबपर कई लाखका कर्ज है तो वह नैराश्यसे विह्वल हो गये। एक उद्विग्न दशामें विद्याके पास आकर बोले, मालूम होता है यह मरते दम-तक कौड़ी-कफनको न छोड़ेंगे। मैं आज ही इस विषयमें इनसे साफ-साफ बातें करूंगा और कह दूंगा कि यदि आप अपना हाथ न रोकेंगे तो मुझसे भी जो कुछ बन पड़ेगा कर डालूंगा।

विद्या—उनकी जायदाद है, तुम्हें रोक-टोक करनेका क्या अधिकार है। कितना ही उड़ायेंगे तब भी हमारे खानेभरको बच ही रहेगा। भाग्यमें जितना बदा है, उससे अधिक थोड़े ही मिलेगा!

ज्ञान—भाग्यके भरोसे बैठकर अपनी तबाही तो नहीं देखी जाती।

विद्या—भैया जीते होते तब?

ज्ञान—तब दूसरी बात थी। मेरा इस जायदादसे कोई सम्बन्ध न रहता। मुझको उसके बनने-बिगड़नेकी चिन्ता न रहती। किसी चीजपर अपनेकी छाप लगते ही हमारा उससे आत्मिक सम्बन्ध हो जाता है।

किन्तु हा दुर्दैव! ज्ञानशङ्करकी विपाद चिन्ताओंका यहींतक अन्त न था। अभीतक उनकी स्थिति एक आक्रमणकारी सेनाकी सी थी। अपने घरका कोई खटका न था। अब दुर्भाग्यने उनके घरपर छापा मारा। उनकी स्थिति रक्षाकारिणी सेनाकीसी हो गयी। उनके बड़े भाई प्रेमशङ्कर कई वर्षसे लापता थे। ज्ञानशङ्कर-को निश्चय हो गया था कि वह अब संसारमें नहीं हैं। फाल्गुन-का महीना था। अनायास प्रेमशंकरका एक पत्र अमेरिकासे

आ पहुंचा कि मैं पहली अप्रेलको बनारस पहुंच जाऊंगा। यह पत्र पाकर पहले तो ज्ञानशङ्कर प्रेमोल्लासमें मग्न हो गये। इतने दिनोंके वियोगके बाद भाईसे मिलनेकी आशाने चित्तको गद्गद् कर दिया। पत्र लिये हुए विद्याके पास आकर यह शुभ समाचार सुनाया। विद्या बोली, धन्य भाग! मामीजीकी मनोकामना ईश्वरने पूरी कर दी। इतने दिनों कहां थे?

ज्ञान—वहीं अमेरिकामें कृषिशास्त्रका अभ्यास करते रहे। दो सालतक एक कृषिशालामें काम भी किया है।

विद्या—तो आज अभी २५ तारीख है। हमलोग कल-परसों तक यहांसे चल दें। ज्ञानशङ्करने केवल इतना कहा,—"हां, और क्या" और बाहर चले गये। उनकी प्रफुल्लता एक ही क्षणमें लुप्त हो गयी थी और नयी चिन्तायें आंखोंके सामने फिरने लगी थीं, जैसे कोई जीर्ण रोगी किसी उत्तेजक औषधिके असरसे एक क्षणके लिये चैतन्य होकर फिर उसी जीर्णावस्थामें विलीन हो जाता है। उन्होंने अबतक जो मन्सूबे बांधे थे, जीवनका जो मार्ग स्थिर किया था, उसमें अपने सिवा किसी अन्य व्यक्तिके लिये जगह न रखी थी। वह सब कुछ अपने लिये चाहते थे। अब इन व्यवस्थाओंमें बहुत कुछ काट-छांट करनेकी आवश्यकता मालूम होती थी। संभव है जायदादका फिरसे बटवारा करना पड़े। दीवानखानेमें दो परिवारोंका निर्वाह होना कठिन था। लखनपुर के भी दो हिस्से करने पड़ेंगे। ज्यों-ज्यों वह इस विषयपर विचार करते थे, समस्या और भी जटिल होती जाती थी, चिन्तायें और भी विषम होती जाती थीं। यहांतक कि शाम होते-होते उन्हें अपनी अवस्था असह्य प्रतीत होने लगी। वह अपने कमरेमें उदास बैठे हुए थे कि रायसाहब आकर बोले, वाह तुमने तो अभी कपड़े भी नहीं पहने, क्या सैर करने न चलोगे?

ज्ञान—जी नहीं, आज जी नहीं चाहता।

राय—कैसरबागमें आज बैंड होगा। हवा कितनी प्यारी है!

ज्ञान—मुझे आज क्षमा कीजिये।

राय—असली बात है, मैं भी न जाऊंगा। आजकल कोई लेख लिख रहे हो या नहीं?

ज्ञान—जी नहीं, इधर तो कुछ नहीं लिखा।

राय—तो अब कुछ लिखो। विषय और सामग्री मैं देता हूं। सिपाहीको तलवारमें मोरचा न लगना चाहिए। पहला लेख तो इस सालके बजटपर लिख दो और दूसरा गायत्रीपर।

ज्ञान—मैंने तो आजतक कोई बजट-सम्बन्धी लेख आद्योपान्त पढ़ातक नहीं। उसपर कलम क्योंकर उठाऊं?

राय—अजी, तो उसमें करना ही क्या है। बजटको कौन पढ़ता है और कौन समझता है। आप केवल शिक्षाके लिये और धनकी आवश्यकता दिखाइये और शिक्षाके महत्वका थोड़ा सा उल्लेख कीजिये, स्वास्थ्य-रक्षाके लिये और धन मांगिये और उसके मोटे-मोटे नियमोंपर दो-चार टिप्पणियां कर दीजिये। पुलिसके व्ययमें वृद्धि अवश्य ही हुई होगी, मानी हुई बात है। आप उसमें कमीपर जोर दीजिये और नयी नहरें निकालनेकी आवश्यकता दिखाकर लेख समाप्त कर दीजिये। बस, अच्छी खासी बजटकी समालोचना हो गयी। लेकिन यह बातें ऐसे विनम्र शब्दोंमें लिखिये और अर्थसचिवकी योग्यता और कार्य्यपटुताकी ऐसी प्रशंसा कीजिये कि वह उलबुल हो जाय और समझे कि मैंने उसके मन्तव्योंपर खूब विचार किया है। शैली तो आपको सजीव है ही, इतना यत्न और कीजियेगा कि एक-एक शब्दसे मेरी बहुज्ञता और पांडित्य टपके। इतना बहुत है। हमारा कोई प्रस्ताव माना तो जायगा नहीं, फिर बजटके लेखोंको पढ़ना और उसपर विचार करना व्यर्थ है।

ज्ञान—और गायत्री देवीके विषयमें क्या लिखना होगा?

राय—बस, एक संक्षिप्तसा जीवनवृत्तान्त हो। कुछ मेरे कुल का कुछ उसके कुलका हाल लिखिये, उसकी शिक्षाका जिक्र

कीजिये। फिर उसके पतिकी मृत्युका वर्णन करनेके बाद उसके सुप्रबन्ध और प्रजारंजनका जरा बढ़ाकर विस्तारके साथ उल्लेख कीजिए। गत तीन वर्षोंमें विविध कर्मोंमें उसने जितने चन्दे दिये हैं, और अपने असामियोंको सुदशाके लिए जो व्यवस्थायें की हैं, उनके नोट मेरे पास मौजूद हैं। उनसे आपको बहुत मदद मिलेगी। इस ढांचेको सजीव और सुन्दर बनाना आपका काम है। अन्तमें लिखियेगा कि ऐसी सुयोग्य और विदुषी महिलाका अबतक किसी पदसे सम्मानित न होना, शासनकारियोंकी गुणग्राहकताका परिचय नहीं देता है। सरकारका कर्तव्य है कि उन्हें किसी उचित उपाधिसे विभूषित करके सत्कार्य्योंमें प्रोत्साहित करे। लेकिन जो कुछ लिखिए जल्द लिखिए, विलम्बसे काम बिगड़ जायगा।

ज्ञान—बजटकी समालोचना तो मैं कलतक लिख दूंगा, लेकिन दूसरे लेखमें अधिक समय लगेगा। मेरे बड़े भाई जो बहुत दिनोंसे गायब थे पहली तारीखको घर आ रहे हैं। उनके आनेसे पहले हमें वहां पहुंच जाना चाहिए।

राय—वह तो अमेरिका चले गये थे?

ज्ञान—जी हां, वहींसे पत्र लिखा है।

राय—कैसे आदमी हैं?

ज्ञान—इस विषयमें मैं क्या कह सकता हूं? आनेपर मालूम होगा कि उनके स्वभावमें क्या परिवर्तन हुआ है। यों तो बहुत शांतप्रकृति और विचारशील थे।

राय—लेकिन आप जानते हैं न, कि अमेरिकाकी जलवायु बन्धु-प्रेमके भावकी पोषक नहीं है। व्यक्तिगत स्वार्थ वहांके जीवनका मूल तत्व है और आपके भाई साहबपर उसका असर जरूर ही पड़ा होगा।

ज्ञान—देखना चाहिये, मैं अपनी तरफसे तो उन्हें शिकायतका कोई मौका न दूंगा।

राय—आप दें या न दें, वह स्वयं ढूंढ़ निकालेंगे। संभव है मेरी शङ्का निर्मूल हो। मेरी हार्दिक इच्छा है कि निर्मूल हो, पर मेरा अनुभव है कि विदेशमें बहुत दिनोंतक रहनेसे प्रेमका बन्धन शिथिल हो जाता है।

ज्ञानशङ्कर अब अपने मनोभावोंको छिपा न सके। खुलकर बोले—मुझे भी यही भय है। जब ६ सालमें उन्होंने घरपर एक पत्र तक नहीं लिखा तो विदित ही है कि उनमे आत्मीयताका आधिक्य नहीं है। आप मेरे पिता-तुल्य हैं, आपसे क्या परदा है? इनके आनेसे मेरे सारे मन्सूबे मिट्टीमें मिल गये। मैंने समझा था चचासाहबसे अलग होकर दो-चार वर्षोंमें मेरी दशा कुछ सुधर जायगी। मैंने वास्तवमे चचासाहबको अलग होनेपर मजबूर किया, जायदादकी बांट भी अपनी इच्छाके अनुसार की, जिसके लिये चचासाहबकी सन्तान मुझे सदैव कोसती रहेगी, किन्तु सब किया-कराया अकारथ गया।

रायसाहब—कहीं उन्होंने गत वर्षोंके मुनाफेका दावा कर दिया तो आप बड़ी मुश्किलमें फंस जायंगे। इस विषयमें वकीलोंकी सम्मति लिये बिना आप कुछ न कीजियेगा।

इस भांति ज्ञानशङ्करकी शङ्काओंको उत्तेजित करनेसे रायसाहबका आशय क्या था, इसका समझना कठिन है। शायद वह उनके हृद्गत भावोंकी थाह लेना चाहते थे, अथवा उनकी क्षुद्रता और स्वार्थपरताका तमाशा देखनेका विचार था। वह तो यह चिनगारी दिखाकर हवा खाने चल दिये, बेचारे ज्ञानशङ्कर अग्निदाहमें जलने लगे। उन्हें इस समय नाना प्रकारकी शङ्कायें हो रही थीं। उनका वह तत्क्षण समाधान करना चाहते थे। क्या भाई साहब गत वर्षोंके मुनाफेका दावा कर सकते हैं? यदि वह ऐसा करें, तो मेरे लिए भी निकासका कोई उपाय है या नहीं। क्या रायसाहबको अधिकार है कि वह रियासतपर ऋणोंका बोझ लादते जायं? उनकी फजूलखर्चोंको रोकनेकी कोई कानूनी तदबीर

हो सकती है या नहीं? इन प्रश्नोंसे ज्ञानशङ्करके चित्तमें घोर अशान्ति हो रही थी, उनकी मानसिक वृत्तिया जल गयीं। वह उठकर रायसाहबके पुस्तकालयमें गये और एक कानूनकी किताब निकालकर देखने लगे। इस किताबसे शंका निवृत्त न हुई। दूसरी किताब निकाली, यहांतक कि थोड़ी देरमें मेज़पर किताबोंका ढेर लग गया। कभी इस पोथीके पन्ने उलटते, कभी उस पोथीके। किन्तु किसी प्रश्नका सन्तोषप्रद उत्तर न मिला। हताश होकर इधर उधर ताकने लगे। घड़ीपर निगाह पड़ी। दस बजा चाहते थे। किताबें समेटकर रख दीं, भोजन किया, लेटे।

किन्तु नींद कहां! चित्तकी चञ्चलता निद्राकी बाधक है। अबतक वह स्वयं अपने जीवन-सागरके रक्षातट थे। उनकी सारी आकांक्षायें और कामनायें इसी तटपर विश्राम किया करती थीं। प्रेमशंकरने आकर इस रक्षातटको विध्वंस कर दिया था और उन नौकाओंको डवांडोल। भैया क्योंकर काबूमें आयंगे? खुशा-खुशामदसे? कठिन है, वह एक ही घाघ हैं। नम्रता और विनय-से? असंभव। नम्रताका जवाब सद्व्यवहार हो सकता है स्वार्थ-त्याग नहीं। फिर क्या कलह और अपवादसे? कदापि नहीं, इससे मेरा पक्ष और भी निर्बल हो जायगा। इस प्रकार भटकते भटकते सहसा ज्ञानशंकरको एक मार्ग दीख पड़ा और वह हर्षो-न्मत्त होकर उछल पड़े! वाह! मैं भी कितना मन्द-बुद्धि हूं। बिरादरी इन महाशयको घरमें पैर तो रखने देगी नहीं, यह बेचारे मुझसे क्या छेड़-छाड़ करेंगे। आश्चर्य है अबतक यह मोटीसी बात भी मेरे ध्यानमें न आयी। रायसाहबको भी न सूझी। बनारस आते ही लालापर चारों ओरसे बौछारें पड़ने लगेंगी, उनके वहां पैर ही न जमने पायेंगे। प्रकटमें मैं उनसे भ्रातृवत् व्यवहार करता रहूंगा, बिरादरीकी संकोर्णता और अन्यायपर आंसू बहाऊंगा, लेकिन परोक्षमें उसकी कील घुमाता रहूंगा। महीने दो महीनेमें आप ही भाग खड़े होंगे। शायद श्रद्धा भी

उनसे खिंच जाय। उसे कुछ उत्तेजित करना पड़ेगा। धार्मिक प्रवृत्तिकी स्त्री है। लोकमतका असर उसपर अवश्य पड़ेगा। बस, मेरा मैदान साफ है। इन महाशयोंसे डरनेकी कोई जरूरत नहीं। अब मैं निर्भय होकर भ्रातृस्नेहका आचरण कर सकता हूं।

इस विचारसे ज्ञानशङ्कर इतने उत्फुल्ल हुए कि जी चाहा चलकर विद्याको जगाऊं, पर जब्तसे काम लिया। इस चिन्ता-सागरसे निकलकर अब उन्हें शंका होने लगी कि गायत्रीकी अप्रसन्नता भी मेरा भ्रम है। मैं स्त्रियोंके मनोभावोंसे सर्वथा अपरिचित हूं। संभव है मैंने उतावलापन किया हो, पर यह कोई ऐसा अपराध न था कि गायत्री उसे क्षमा न करती। मेरे दुस्साहसपर अप्रसन्न होना उसके लिये स्वाभाविक बात थी। कोई गौरवशील रमणी इतनी सहज रीतिसे वशीभूत नहीं हो सकती। अपनी सतीत्व-रक्षाका विचार स्वभावतः उसकी प्रेम-वासनाको दबा देता है। ऐसा न हो, तोभी वह अपनी उदासीनता और अनिच्छा प्रकट करनेके लिये कठोरताका स्वांग भरना आवश्यक समझती है। शायद इससे उसका अभिप्राय प्रेमपरीक्षा होता है। वह एक अमूल्य वस्तु है और अपनी दर गिराना नहीं चाहती। मैं अपनी असफलतासे ऐसा दबा कि फिर सिर उठाने-की हिम्मत ही न पड़ी। वह यहां कई दिन रही। मुझे जाकर उससे क्षमा मांगनी चाहिये थी। वह क्रुद्ध होती तो शायद मुझे झिड़क देती। वह स्वयं निर्दोष बनना चाहती और सारा दोष मेरे सिर रखती। मुझे यह वाक्‌प्रहार सहना चाहिये था और थोड़े दिनोंमें मैं उसके हृदयका स्वामी होता। यह तो मुझसे हुआ नहीं, उलटे आपही रूठ बैठा, स्वयं उससे आंखें चुराने लगा। उसने अपने मनमें मुझे बोदा, साहसहीन, निरा बुद्धू समझा होगा। खैर, अब कसर पूरी हुई जाती है। यह मानों अन्तःप्रेरणा है। इस जीवनचरित्रके निकलते ही उसकी अवज्ञा और अभिमानका अन्त हो जायगा। मान-प्रतिष्ठापर जान देती

है। रायसाहब स्वयं स्त्रीके प्रेममें अनुरक्त हुए हैं। उसकी यह आकांक्षा पूरी हुई तो फूली न समायगी और जो कहीं रानीकी पद्वी मिल गयी तो वह मेरा पानी भरेगी। भैयाके झंझटेसे छुट्टी पाऊं तो यह खेल शुरू करूं। मालूम नहीं, अपने पत्रोंमें कुछ मेरा कुशल समाचार भी पूछती हैं या नहीं। चलूं, विद्यासे पूछूं। अबकी वह इस प्रबल इच्छाको न रोक सके। विद्या बगलके कमरेमें सोती थी। जाकर उसे जगाया। वह चौंक-कर उठ बैठी और बोली, क्या है? क्या अभीतक सोये नहीं?

ज्ञान—आज नींद ही नहीं आती। बातें करनेको जी चाहता है। रायसाहब शायद अभीतक नहीं आये।

विद्या—वह १२ बजेके पहले कभी आते हैं कि आज ही आ जायेंगे! कभी कभी १-२ बज जाते हैं।

ज्ञान—मुझे ज़रासी झपकी आ गयी थी। क्या देखता हूं, कि गायत्री सामने खड़ी है, फूट-फूटकर रो रही है, आंखें खुल गईं। तबसे करवटें बदल रहा हूं। उनकी चिट्ठियां तो तुम्हारे पास आती हैं न?

विद्या—हां, सप्ताहमें एक चिट्ठी जरूर आ जाती है, बल्कि मैं जवाब देनेमें पिछड़ जाती हूं।

ज्ञान—कभी कुछ मेरा हालचाल भी पूछती हैं?

विद्या—वाह, ऐसा कोई पत्र नहीं होता जिसमें तुम्हारी क्षेम-कुशल न पूछती हों।

ज्ञान—बुलातीं तो एक बार उनसे जाकर मिल आता।

विद्या—तुम जाओ तो वह तुम्हारी पूजा करें। तुमसे उन्हें बड़ा प्रेम है।

ज्ञानशंकरको अब भी नींद नहीं आई, किन्तु सुखस्वप्न देख रहे थे।

१५

प्रातःकाल था। ज्ञानशंकर स्टेशनपर गाड़ीका इन्तजार कर रहे थे। अभी गाड़ीके आनेमें आध घंटेकी देर थी। एक अंग्रेजी

पत्र लेकर पढ़ना चाहा पर उसमें जी न लगा। दवाओंके विज्ञापन अधिक मनोरंजक थे। दस मिनटमें उन्होंने सभी पोस्टर पढ़ डाले। चित्त चंचल हो रहा था। बेकार बैठना मुश्किल था। इसके लिये बड़ी एकाग्रताकी आवश्यकता होती है। आखिर खोंचेकी चाट खानेमें उनके चित्तको शान्ति मिली। बेकारीमें मन बहलानेका यही सबसे सुगम उपाय है।

जब वह फिर प्लेटफार्मपर आये तो सिगनल डाउन हो चुका था। ज्ञानशंकरका हृदय धड़कने लगा। गाड़ी आते ही पहले और दूसरे दरजेकी गाड़ियोंमें झांकने लगे, किन्तु प्रेमशंकर इन कमरोंमें न थे। तीसरे दरजेकी सिर्फ दो गाड़ियां थीं। वह इन्हीं गाड़ियोंके एक कमरेमें बैठे हुए थे। ज्ञानशंकरको देखते ही दौड़कर उनके गले लिपट गये। ज्ञानशंकरको इस समय अपने हृदयमें आत्मबल और प्रेमभाव प्रवाहित होता जान पड़ता था। सच्चे भ्रातृस्नेहने मनोमालिन्यको मिटा दिया। गला भर आया और अश्रुजल बहने लगा। दोनों भाई दो तीन मिनटतक इसी भांति रोते रहे। ज्ञानशंकरने समझा था कि भाई साहबके साथ बहुत सा आडम्बर होगा, ठाट बाटके साथ आते होंगे, पर उनके वस्त्र और सफरके सामान बहुत मामूली थे। हां, उनका शरीर पहलेसे कहीं हृष्ट पुष्ट था और यद्यपि वह ज्ञानशंकरसे ५ साल बड़े थे, पर देखनेमें उनसे छोटे मालूम होते थे, और चेहरेपर स्वास्थ्यकी कान्ति झलक रही थी।

ज्ञानशंकर अभी कुलियोंको पुकार ही रहे थे, कि प्रेमशंकरने अपना सब सामान उठा लिया और बाहर चले। ज्ञानशंकर संकोचके मारे पीछे हट गये कि किसी जान पहचानके आदमीसे भेंट न हो जाय।

दोनों आदमी तांगेपर बैठे, तो प्रेमशंकर बोले, छः सालके बाद आता हूं, पर ऐसा मालूम होता है कि यहांसे गये थोड़े ही दिन हुए। घरपर तो सब कुशल है?

ज्ञान—जी हां, सब कुशल है। आपने तो इतने दिन हो गये, एक पत्र भी न भेजा, बिलकुल भुला दिया। आपहीके वियोगमें बाबूजीके प्राण गये।

प्रेम – वह शोक-समाचार तो मुझे यहांके समाचारपत्रसे मालूम हो गया था, पर कुछ ऐसे ही कारण थे कि आ न सका। "हिन्दुस्तान रिव्यू" में तुमने नैनीतालके जीवनपर जो लेख लिखा था उसे पढ़कर मैंने आनेका निश्चय किया। तुम्हारे उन्नत विचारोंने ही मुझे खींचा, नहीं तो सम्भव है मैं अभी कुछ दिन और न आता। तुम पालिटिक्समें भाग लेते हो न?

ज्ञान—(सङ्कोच भावसे) अभीतक तो मुझे इसका अवसर नहीं मिला। हां, उसकी स्टडी (अध्ययन) करता रहता हूं।

प्रेम—कौनसा प्रोफ़ेशन (पेशा) अख़तियार किया?

ज्ञान—अभी तो घरहीके झंझटोंसे छुट्टी नहीं मिली। जमींदारीके प्रबन्धके लिये मेरा घर रहना ज़रूरी था। आप जानते हैं यह जञ्जाल है। एक-न-एक झगड़ा लगा ही रहता है। चाहे उससे लाभ कुछ न हो, पर मनकी प्रवृत्ति आलस्यकी ओर ही जाती है। जीवनके कर्मक्षेत्रमें उतरनेका साहस नहीं होता। यदि यह अवलम्बन न होता तो अबतक मैं अवश्य वकील होता।

प्रेम—तो तुम भी मिल्कियतके जालमें फंस गये और अपनी बुद्धिशक्तियोंका दुरुपयोग कर रहे हो। अभी जायदादका अन्त होनेमें कितनी कसर है?

ज्ञान—चचासाहबका बस चलता तो कभी अन्त हो चुका होता, पर अब शायद जल्द अन्त न हो। मैं चचासाहबसे अलग हो गया हूं।

प्रेम—(खेदके साथ) यह तुमने क्या किया? अब तो उनका गुज़र बड़ा मुश्किलसे होता होगा?

ज्ञान—कोई तकलीफ़ नहीं है। दयाशंकर पुलिसमें है और जायदादसे दो हज़ार मिल जाते हैं।

प्रेम—उन्हें अलग होनेका दुःख तो बहुत हुआ होगा। वस्तुतः मेरे भागनेका मुख्य कारण उन्हींका प्रेम था। तुम तो उस वक्त शायद स्कूलमें पढ़ते थे, मैं कालेजसे निकलते ही स्वराज्यान्दोलनमें अग्रसर हो गया। उन दिनों नेतागण स्वराज्यके नामसे कांपते थे। इस आन्दोलनमें प्रायः नवयुवक ही सम्मिलित थे। मैंने सालभर बड़े उत्साहसे काम किया, पर पुलिसने मुझे फंसानेका प्रयास करना शुरू किया। मुझे ज्योंही मालूम हुआ कि मुझपर अभियोग चलानेकी तैयारियां हो रही हैं त्योंही मैंने जान लेकर भागनेमें ही कुशल समझा। मुझे फंसते देखकर बाबूजी तो चाहे धैर्यसे काम लेते, पर चचासाहब निस्सन्देह आत्महत्या कर लेते। इसी भयसे मैंने पत्र-व्यवहार भी बन्द कर दिया कि ऐसा न हो पुलिस यहां लोगोंको तङ्ग करे। बिना देशाटन किये अपनी पराधीनताका यथेष्ट ज्ञान नहीं होता। जिन विचारोंके लिये मैं यहां राजद्रोही समझा जाता था उससे कहीं स्पष्ट बातें अमेरिकावाले अपने शासकोंको नित्य सुनाया करते हैं, बल्कि वहां शासनकी समालोचना जितनी ही निर्भीक हो, उतनी ही आदरणीय समझी जाती है। इस बीचमें यहां भी विचार-स्वातन्त्र्यकी कुछ वृद्धि हुई है। तुम्हारा लेख इसका उत्तम प्रमाण है। इन्हीं सुव्यवस्थाओंने मुझे आनेपर प्रोत्साहित किया। और सत्य तो यह है कि अमेरिकासे दिनोंदिन अभक्ति होती जाती थी। वहां धन और प्रभुत्वकी इतनी क्रूर लीलायें देखीं कि अन्तमें उनसे घृणा हो गई। यहांके देहातों और छोटे शहरोंका जीवन उससे कहीं सुखकर है। मेरा विचार भी सरल जीवन व्यतीत करनेका है। हां, यथासाध्य कृषिकी उन्नति करना चाहता हूं।

ज्ञान—यह रहस्य आज खुला, अभीतक मैं और घरके सभी लोग यही समझते थे कि आप केवल विद्योपार्जनके लिये गये हैं मगर आजकल तो स्वराज्यान्दोलन बहुत शिथिल पड़ गया है। स्वराज्यवादियोंकी जबान ही बन्द कर दी गई है।

प्रेम—यह तो कोई बुरी बात नहीं, अब लोग बातें करनेकी जगह काम करेंगे। हमें बातें करते एक युग बीत गया। मुझे भी अब शब्दोंपर विश्वास नहीं रहा। हमें अब संगठनकी, परस्पर प्रेमव्यवहारकी और सामाजिक अन्यायके मिटानेकी जरूरत है। हमारी आर्थिक दशा भी खराब हो रही है। मेरा विचार कृषि-विधानमें संशोधन करनेका है। इसीलिये मैंने अमेरिकामें कृषि-शास्त्रका अध्ययन किया है।

यों बातें करते हुए दोनों भाई मकानपर पहुंचे। प्रेमशंकरको अपना घर बहुत छोटा दिखाई दिया। उनकी आंखें अमेरिकाकी गगनस्पर्शी अट्टालिकाओंके देखनेकी आदी हो रही थीं। उन्हें कभी अनुमान ही न हुआ था कि मेरा घर इतना पस्त है। कमरेमें आये तो उसकी दशा देखकर और भी हताश हो गये। जमीनपर फर्श-तक न था। दो तीन कुरसियां जरूर थीं, लेकिन बाबा आदमके जमानेकी, जिनपर गर्द जमी हुई थी। दीवारोंपर तस्वीरें नई थीं, लेकिन बिलकुल भद्दी और अस्वाभाविक। यद्यपि वह सिद्धान्त रूपसे विलास-वस्तुओंकी अवहेलना करते थे, पर अभीतक रुचि उनकी ओरसे न हटी थी।

लाला प्रभाशंकर उनकी राह देख रहे थे। आकर उनके गलेसे लिपट गये और फूट-फूटकर रोने लगे। मोहल्लेके और सज्जन भी मिलने आ गये। दो-ढाई घण्टोंतक प्रेमशंकर उन्हें अमेरिकाका वृत्तांत सुनाते रहे। कोई वहांसे हटनेका नाम न लेता था, किसी-को यह ध्यान न होता था कि वह बेचारे सफर करके आ रहे हैं, इनके नहाने खानेका समय आ गया है, यह बातें फिर सुन लेंगे। आखिर ज्ञानशंकरको साफ-साफ कहना पड़ा कि आप लोग कृपा करके भाई साहबको भोजन करनेका समय दीजिए, बहुत देर हो रही है।

प्रेमशंकरने स्नान किया, सन्ध्या की और ऊपर भोजन करने गये। उन्हें आशा थी कि श्रद्धा भोजन परसेगी, वहीं उससे भेंट

होगी, खूब बातें करूंगा। लेकिन यह आशा पूरी न हुई। एक चौकीपर कालीन बिछा हुआ था, थाल परसा रखा था, पर श्रद्धा वहां उनका स्वागत करनेके लिये न थी। प्रेमशंकरको उसकी इस प्रेमशून्यतापर बड़ा दुःख हुआ। श्रद्धासे प्रेम उनके लौटनेका एक मुख्य कारण था। उसकी याद उन्हें हमेशा तड़पाया करती थी। उसकी प्रेममूर्ति सदैव उनके हृदयनेत्रोंके सामने रहती थी। उन्हें प्रेमके वाह्याडम्बरसे घृणा थी, वह अब भी स्त्रियोंकी श्रद्धा-पतिभक्ति, लज्जाशीलता और प्रेमानुरागपर मोहित थे। उन्हें श्रद्धाको नीचे दीवानखानेमें देखकर खेद होता, पर उसे यहां न देखकर उनका हृदय व्याकुल हो गया। यह लज्जा नहीं, हया नहीं, प्रेमशैथिल्य है। वह इतने मर्माहत हुए कि जी चाहा, इसी क्षण यहांसे चला जाऊं और फिर आनेका नाम न लूं, पर धैर्यसे काम लिया। भोजनपर बैठे। ज्ञानशंकरसे बोले, आओ भाई बैठो, माया कहां है, उसे भी बुलाओ, एक मुद्दतके बाद आज यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

ज्ञानशंकरने सिर नीचा करके कहा—आप भोजन कीजिये, मैं फिर खा लूंगा।

प्रेम—११ तो बज रहे हैं, अब कितनी देर करोगे? आओ, बैठ जाओ। इतनी चीजें मैं अकेले कहांतक खाऊंगा, मुझे अब धैर्य नहीं है। बहुत दिनोंके बाद चपातियोंके दर्शन हुए हैं। हलुआ, समोसे, खीर आदिका तो स्वाद ही मुझे भूल गया। अकेले खानेमें आनन्द नहीं आता। यह कैसा अतिथि-सत्कार है कि मैं तो यहां भोजन करूं और तुम कहीं और। अमेरिकामें तो मेहमान इसे अपना घोर अपमान समझता।

ज्ञान—मुझे तो इस समय क्षमा ही कीजिये, मेरी पाचनशक्ति दुर्बल है, बहुत पथ्यसे रहता हूं।

प्रेमशंकर भूल गये थे कि समुद्रमें जाते ही हिन्दूधर्म धुल जाता है। अमेरिकासे चलते समय उन्हें ध्यान भी न था कि

बिरादरी मेरा बहिष्कार करेगी, यहांतक कि मेरा सहोदर भाई भी मुझे अछूत समझेगा। पर इस समय जब उनके बराबर आग्रह करनेपर भी ज्ञानशंकर उनके साथ भोजन करने न बैठे और एक-न-एक बहाना करके टालते रहे तो उन्हें वह भूली हुई बात याद आ गई। सामनेके बर्तनोंने इस विचारको पुष्ट कर दिया। फूल या पीतलका कोई बर्तन न था। सब बर्तन चीनीके थे और गिलास शीशेका। शंकित भावसे बोले,—आखिर यह बात क्या है कि तुम्हें मेरे साथ बैठनेमें इतनी आपत्ति है? कुछ छूतछातका विचार तो नहीं है?

ज्ञानशंकरने झेंपते हुए कहा—अब मैं आपसे क्या कहूं, हिन्दुओंको तो आप जानते ही हैं कितने मिथ्यावादी होते हैं। आपके लौटनेका समाचार जबसे मिला है सारी बिरादरीमें एक तूफ़ान सा उठा हुआ है। मुझे स्वयं विदेशयात्रामें कोई आपत्ति नहीं है। मैं देश और जातिकी उन्नतिके लिये इसे ज़रूरी समझता हूं और स्वीकार करता हूं कि इस नाकेबन्दीसे हमको बड़ी हानि हुई है, पर मुझमें इतना साहस नहीं है कि बिरादरीसे विरोध कर सकूं।

प्रेम—अच्छा, यह बात है! आश्चर्य्य है कि अबतक क्यों मेरी आंखोंपर परदा पड़ा रहा। अब मैं ज्यादा आग्रह न करूंगा, भोजन करता हूं, पर खेद यह है कि तुम इतने विचारशील होकर बिरादरीके गुलाम बने हुए हो, विशेषकर जब तुम मानते हो कि इस विषयमें बिरादरीका बन्धन सर्वथा असंगत है। शिक्षाका फल यह होना चाहिये कि तुम बिरादरीके सूत्रधार बनो, उसको सुधारनेका प्रयास करो, न यह कि उसके दबावसे अपने सिद्धान्तोंको भी बलिदान कर दो। यदि तुम स्वाधीन भावसे समुद्रयात्राको दूषित समझते तो मुझे कोई आपत्ति न होती। तुम्हारे विचार और व्यवहार अनुकूल होते। लेकिन अंतःकरणसे किसी बातके कायल होकर केवल निन्दा या उपहासके भयसे

उसका व्यवहार न करना तुम जैसे उदार पुरुषको शोभा नहीं देता। अगर तुम्हारे धर्ममें किसी मुसाफिरकी बातोंपर विश्वास करना मना न हो तो मैं तुम्हें यकीन दिलाता हूं कि अमेरिकामें मैंने कोई ऐसा कर्म नहीं किया जिसे हिन्दूधर्म निषिद्ध ठहराता हो। मैंने दर्शनशास्त्रोंपर कितने ही व्याख्यान दिये, अपने रस्म-रिवाज और वर्णाश्रम धर्मका समर्थन करनेमें सदैव तत्पर रहा, यहांतक कि परदेके रस्मकी भी सराहना करता रहा, और मेरा मन इसे कभी नहीं मान सकता कि यहां किसीको मुझे विधर्मी समझनेका अधिकार है। मैं अपने धर्म और मतका वैसा ही भक्त हूं जैसा पहले था, बल्कि उससे ज्यादा। इससे अधिक मैं अपनी सफ़ाई नहीं दे सकता।

ज्ञान—इस सफाईकी तो कोई जरूरत ही नहीं, क्योंकि यहां लोगोंको विदेशयात्रापर जो अश्रद्धा है वह किसी तर्क या सिद्धान्त-के अधीन नहीं है। लेकिन इतना तो आपको भी मानना पड़ेगा कि हिन्दूधर्म कुछ रीतियों और प्रथाओंपर अवलम्बित है और विदेशमें आप उनका पालन समुचित रीतिसे नहीं कर सकते। आप वेदोंसे इन्कार कर सकते हैं, ईसा या मूसाके अनुयायी बन सकते हैं, किन्तु इन रीतियोंको नहीं त्याग सकते। इसमें सन्देह नहीं कि दिनोंदिन यह बन्धन ढीले होते जाते हैं और इसी देशमें ऐसे कितने ही सज्जन हैं जो प्रत्येक व्यवहारका उल्लंघन करके भी हिन्दू बने हुए हैं, किन्तु बहुमत उनकी उपेक्षा करता है, और उनको निन्द्य समझता है। इसे आप चाहे मेरी आत्मभीरुता या अकर्मण्यता समझें, किन्तु मैं बहुमतके साथ चलना अपना कर्तव्य समझता हूं। मैं बलप्रयुक्त सुधारका कायल नहीं हूं। मेरा विचार है कि हम बिरादरीमें रहकर उससे कहीं अधिक सुधार कर सकते हैं, जितना स्वाधीन होकर।

प्रेमशङ्करने इसका कुछ जवाब न दिया। भोजन करके लेटे तो अपनी परिस्थितिपर विचार करने लगे। मैंने समझा था यहां

शान्तिपूर्वक अपना काम करूंगा, कम-से-कम अपने घरमें कोई मुझसे विरोध न करेगा, किन्तु देखता हूं, यहां कुछ दिन घोर अशान्तिका सामना करना पड़ेगा, ज्ञानशङ्करके उदारतापूर्ण लेखने मुझे भ्रममें डाल दिया। खैर, कोई चिन्ता नहीं। बिरादरी मेरा कर ही क्या सकती है? उसमें रहकर मुझमें कौनसे सुर्खाबके पर लग जायंगे। अगर कोई मेरे साथ नहीं खाता, न खाय, मैं भी उनके साथ न खाऊंगा; कोई मुझसे सहवास नहीं करता, न करे, मैं भी उससे किनारे रहूंगा। वाह! परदेश क्या गया, मानो कोई पाप किया! बल्कि पापियोंको तो बिरादरीसे च्युत नहीं करता। धर्म बेचनेवाले, ईमान बेचनेवाले, सन्तान बेचनेवाले, बगलें बजाते फिरते हैं, कोई उनकी ओर कड़ी आंखसे देख नहीं सकता। ऐसे पतितों, ऐसे भ्रष्टाचारियोंमें रहनेके लिये मैं अपनी आत्माका सर्वनाश क्यों करूं?

अकस्मात् उन्हें ध्यान आया कहीं श्रद्धा भी मेरा बहिष्कार न कर रही हो, इन अनुदार भावोंका उसपर भी असर न पड़ा हो। फिर तो मेरा जीवन ही नष्ट हो जायगा। इस शंकाने उन्हें घोर चिन्तामें डाल दिया और तीसरे पहरतक उनकी व्यग्रता इतनी बढ़ी कि वह स्थिर न रह सके। मायासे श्रद्धाका कमरा पूछकर ऊपर चढ़ गये।

श्रद्धा इस समय अपने द्वारपर इस भांति खड़ी थी, जैसे कोई पथिक रास्ता भूल गया हो। उसका हृदय आनन्दसे नहीं, एक अव्यक्त भयसे कांप रहा था। यह शुभ दिन देखनेके लिये उसने कितनी तपस्या की थी! यह आकांक्षा उसके अन्धकारमय जीवनका दीपक, उसकी डूबती हुई नौकाकी लङ्गर थी। महीनेके तीस दिन और दिनके चौबीस घण्टे यही मनोहर स्वप्न देखनेमें कटते थे। विडम्बना यह थी कि वह आकांक्षायें और कामनायें पूरी होनेके लिये नहीं, केवल तड़पानेके लिये थीं। वह दाह और संताप शांतिका इच्छुक न था। श्रद्धाके लिये प्रेम-

शंकर केवल एक कल्पना थे। इसी कल्पनापर वह प्राणार्पण करती थी। उसकी भक्ति केवल उनकी स्मृतिपर थी, जो अत्यन्त मनोरम, भावमय और अनुरागपूर्ण थी। उनकी उपस्थितिने इस सुखद कल्पना और मृदुल स्मृतिका अन्त कर दिया। वह जो उनकी यादपर जान देती थी, अब उनकी सत्तासे भयभीत थी, क्योंकि वह कल्पना धर्म और सतीत्वकी पोषक थी, और यह सत्ता उनकी घातक। श्रद्धाको सामाजिक अवस्था और समयोचित आवश्यकताओंका ज्ञान न था। परम्परागत बन्धनोंको तोड़नेके लिये जिस विचार-स्वातन्त्र्य और दिव्य ज्ञानकी जरूरत है, उससे वह रहित थी। वह एक साधारण हिन्दू-अबला थी। वह अपने प्राणोंसे, अपने प्राणप्रिय स्वामीसे हाथ धो सकती थी, किन्तु अपने धर्मकी अवज्ञा करना, अथवा लोक-निन्दाका सहन करना, उसके लिये असम्भव था। जबसे उसने सुना था कि प्रेमशंकर घर आ रहे हैं उसकी दशा उस अपराधीकी-सी हो रही थी, जिसके सिरपर नङ्गी तलवार लटक रही हो। आज जबसे वह नीचे आकर बैठे थे, उसके आंसू एक क्षणके लिये भी न थमते थे। उसका हृदय कांप रहा था कि कहीं वह ऊपर न आते हों, कहीं वह आकर मेरे सम्मुख खड़े न हो जायँ, मेरे अङ्गको स्पर्श न कर लें। मर जाना इससे कहीं आसान था। मैं उनके सामने कैसे खड़ी हूंगी, मेरी आंखें क्योंकर उनसे मिलेंगी, उनकी बातोंका क्योंकर जवाब दूंगी। वह इन्हीं जटिल चिन्ताओंमें मग्न खड़ी थी कि इतनेमें प्रेमशंकर उसके सामने आकर खड़े हो गये। श्रद्धापर अगर बिजली गिर पड़ती, भूमि उसके पैरोंके नीचेसे सरक जाती, अथवा कोई सिंह आकर खड़ा हो जाता तोभी वह इतनी असावधान होकर अपने कमरेमें न भाग जाती। वह तो भीतर जाकर एक कोनेमें खड़ी हो गई। भयसे उसका एक-एक रोम कांप रहा था। प्रेमशंकर सन्नाटेमें आ गये। कदाचित् आकाश सामनेसे लुप्त हो जाता तोभी

उन्हें इतना विस्मय न होता। वह क्षणभर मूर्तिवत् खड़े रहे और तब एक ठंढी सांस लेकर नीचेकी ओर चले। श्रद्धाके कमरेमें जाने, उससे कुछ पूछने या कहनेका उन्हें साहस न हुआ। इस दुरनुरागने उनका उत्साह भंग कर दिया, उन काव्यमय स्वप्नोंका नाश कर दिया जो वरसोंसे उनकी चैतन्यावस्थाके सहयोगी बने हुए थे। श्रद्धाने किवाड़की आड़से उन्हें जीनेकी ओर जाते देखा। हा! इस समय उसके हृदयपर क्या बीत रही थी, कौन जान सकता है? उसका प्रिय पति जिसके वियोगमें उसने सात वर्ष रो-रोकर काटे थे, सामनेसे भग्नहृदय, हताश चला जा रहा था और वह इस भांति सशंक खड़ी थी, मानो आगे कोई बृहद् जलागार है। धर्म पैरोंको बढ़ने न देता था। प्रेम उन्मत्त तरंगोंकी भांति बार-बार उमड़ता था, पर धर्मकी शिलाओंसे टकराकर लौट आता था। एक बार वह अधीर होकर चली कि प्रेमशंकरका हाथ पकड़कर फेर लाऊं, द्वारतक आई, पर आगे न बढ़ सकी। धर्मने ललकार कर कहा, प्रेम नश्वर है, निस्सार है, कौन किसका पति और कौन किसकी पत्नी? यह सब मायाजाल है। मैं अविनाशी हूं, मेरी रक्षा करो। श्रद्धा स्तंभित हो गई। मनने स्थिर किया जो प्राणी सात समुद्र पार गया, वहां न जाने क्या खाया, क्या पीया, न जाने किसके साथ रहा, अब उससे मेरा क्या नाता? किन्तु जब प्रेमशंकर जीनेसे नीचे उतर गये तो श्रद्धा मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। उठती हुई लहरें टीलेको न तोड़ सकीं, पर तटोंको जलमग्न कर गईं।

१६

प्रेमशङ्कर यहां दो सप्ताह रहे, लेकिन जैसे कोई जल्द छूटनेवाला कैदी। जरा भी जी न लगता। श्रद्धाकी धार्मिकतासे उन्हें जो आघात पहुंचा था उसकी पीड़ा एक क्षणके लिये भी शान्त न होती थी। बार-बार इरादा करते कि फिर अमेरिका चला जाऊं और फिर जीवनपर्यन्त आनेका नाम न लूं। किन्तु यह



आशा कि कदाचित् देश और समाजकी अवस्थाका ज्ञान श्रद्धामें सद्विचार उत्पन्न कर दे उनका दामन पकड़ लेती थी। दिनके दिन दीवानखानेमें पड़े रहते, न किसीसे मिलना, न जुलना, कृषि-सुधारके इरादे स्थगित हो गये, उसपर विपत्ति यह थी कि ज्ञान-शंकर बिरादरीवालोंके षड्यंत्रोंके समाचार ला लाकर उन्हें और भी उद्विग्न करते रहते थे। एक दिन खबर लाये कि लोगोंने एक महती सभा करके आपको समाजच्युत करनेका प्रस्ताव पास कर दिया। दूसरे दिन ब्राह्मणोंकी एक सभाकी खबर लाये जिसमें उन्होंने निश्चय किया था कि कोई प्रेमशङ्करके घर पूजा-पाठ करने न जाय। इसके एक दिन पीछे श्रद्धाके पुरोहितजीने आना छोड़ दिया। ज्ञानशंकर बातों-बातोंमें यह भी जता दिया करते थे कि आपके कारण मैं भी बदनाम हो रहा हूं और शंका है कि लोग मुझे भी त्याग दें। भाईके साथ तो यह व्यवहार था, और बिरादरीके नेताओंके पास जाकर प्रेमशंकरपर झूठे आक्षेप करते; वह देवताओंको गालियां देते हैं। कहते हैं, मांस सब एक है, चाहे किसीका हो। खाना खाकर कभी हाथ मुंहतक नहीं धोते। कहते हैं चमार भी कर्मानुसार ब्राह्मण हो सकता है। यह बातें सुन सुनकर बिरादरीवालोंकी द्वेषाग्नि और भी भड़कती थी, यहांतक कि कई मनचले नवयुवक तो इसपर उद्यत थे कि प्रेमशंकरको कहीं अकेले पा जाय तो उनकी अच्छी तरह खबर लें। "तिलक" एक स्थानीय समाचारपत्र था। उसमें इस विषयपर खूब जहर उगला जाता था। ज्ञानशंकर नित्य यह पत्र लाकर अपने भाईको सुनाते और यह सब केवल इसलिये कि वह निराश और भयभीत होकर यहांसे भाग खड़े हों और मुझे जायदादमें हिस्सा न देना पड़े। प्रेमशंकर साहस और जीवटके आदमी थे, इन धमकियोंकी उन्हें परवा न थी, लेकिन उन्हें मंजूर न था कि मेरे कारण ज्ञानशंकरपर आंच आये। श्रद्धाकी ओरसे भी उनका चित्त फटता जाता था। इस चिन्तामय अवस्थाका अन्त करनेके लिये

वह कहीं अलग जाकर शान्तिके साथ रहना और अपने जीवनोद्देश्यको पूरा करना चाहते थे। पर जाय कहां? ज्ञानशंकरने एक बार लखनपुरमें रहनेकी इच्छा प्रकट की थी। पर उन्होंने इतनी आपत्तियां खड़ी कीं, कष्टों और असुविधाओंका ऐसा चित्र खींचा कि प्रेमशंकर उनकी नीयतको ताड़ गये। वह शहरके निकट ही थोड़ी सी ऐसी जमीन चाहते थे, जहां एक कृषिशाला खोल सकें। इसी धुनमें नित्य इधर उधर चक्कर लगाया करते थे। स्वभावमें संकोच इतना कि किसीसे अपने इरादे जाहिर न करते। हां, लाला प्रभाशंकरका पितृवत् प्रेम और स्नेह उन्हें अपने मनके विचार उनसे प्रकट करनेपर बाध्य कर देता था। लालाजीको जब अवकाश मिलता, वह प्रेमशंकरके पास आ बैठते और अमेरिकाके वृत्तान्त बड़े शौकसे सुनते। प्रेमशंकर दिनों दिन उनकी सज्जनतापर मुग्ध होते जाते थे। ज्ञानशंकर तो सदैव उनका छिद्रान्वेषण किया करते, पर उन्होंने कभी भूलकर भी ज्ञानशंकरके खिलाफ़ जबान नहीं खोली। वह प्रेमशंकरके विचारोंसे सहमत न होते थे, यही सलाह दिया करते कि कहीं सरकारी नौकरी कर लो।

एक दिन प्रेमशङ्करको उदास और चिन्तित देखकर लालाजी बोले, क्या यहां जी नहीं लगता?

प्रेम—मेरा विचार है कि कहीं अलग मकान लेकर रहूं। यहां मेरे रहनेसे सबको कष्ट होता है।

प्रभा—तो मेरे घर उठ चलो, वह भी तो तुम्हारा ही घर है। मैं भी कोई बेगाना नहीं हूं। वहां तुम्हें कोई कष्ट न होगा। हम लोग इसे अपना धन्य भाग समझेंगे। कहीं नौकरीके लिये लिखा?

प्रेम—मेरा इरादा नौकरी करनेका नहीं है।

प्रभा—आखिर तुम्हें नौकरीसे क्यों इतनी नफ़रत है? नौकरी कोई बुरी चीज़ है?

प्रेम—जी नहीं, मैं इसे बुरा नहीं कहता। पर मेरा मन उससे भागता है।

प्रभा—तो मनको समझाना चाहिये न? आज सरकारी नौकरीका जो मान-सम्मान है वह और किसका है? और फिर आमदनी अच्छी, काम कम, छुट्टी ज्यादा, व्यापारमें नित्य हानिका भय, जमींदारीमें नित्य अधिकारियोंको खुशामद और असामियोंके बिगड़नेका खटका। नौकरी इन सब पेशोंसे उत्तम है। खेतीवारीका शौक उस हालतमें भी पूरा हो सकता है। यह तो रईसोंके मनोरञ्जनकी सामग्री है। अन्य देशोंका हाल तो नही जानता, पर यहां किसी रईसके लिये खेती करना अपमानकी बात है। मुझे भूखों मरना क़बूल है, पर दूकानदारी या खेती करना क़बूल नहीं।

प्रेम—आपका कथन सत्य है, पर मैं अपने मनसे मजबूर हूं। मुझे थोड़ी-सी जमीनकी तलाश है, पर इधर कहीं नजर नहीं आती।

प्रभा—अगर इसीपर मन लगा है तो करके देख लो। क्या करूं, मेरे पास शहरके निकट जमीन नहीं है, नहीं तो तुम्हें हैरान न होना पड़ता। मेरे गांवमे करना चाहो तो जितनी जमीन चाहो मिल सकती है, हां दूर है।

इसी हैस बैसमें चैतका महीना गुजर गया। प्रेमशंकरने कृषि-प्रयोगशालाकी आवश्यकताकी ओर रईसोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिये समाचारपत्रोंमें कई विद्वत्तापूर्ण लेख छपवाये। इन लेखोंका बड़ा आदर हुआ। उन्हें पत्रोंने उद्धृत किया, उनपर टीकाएं कीं और कई अन्य भाषाओंमें उनके अनुवाद भी हुए। इसका फल यह हुआ कि ताल्लुकेदार एशोसियेशनने अपने वार्षिकोत्सवके अवसरपर प्रेमशङ्करको कृषिविषयक एक निबन्ध पढ़नेके लिये निमन्त्रित किया। प्रेमशङ्कर आनन्दसे फूले न समाये। बड़ी खोज और परिश्रमसे एक निबन्ध लिखा और लखनऊ आ

पहुंचे। कैसरबागमें इस उत्सवके लिये एक विशाल पंडाल बनाया गया था। राय कमलानन्द इस सभाके मंत्री चुने गये थे। मईका महीना था, गरमी खूब पड़ने लगी थी। मैदानोंमें भी संध्या समय तक लू चला करती थी। घरमें बैठना नितान्त दुस्सह था। रातके आठ बजे प्रेमशङ्कर रायसाहबके निवास-स्थानपर पहुंचे। रायसाहबने तुरन्त उन्हें अन्दर बुलाया। वह इस समय अपने दीवानखानेके पीछेकी ओर एक छोटी-सी कोठरीमें बैठे हुए थे। ताक़पर एक धुन्धलासा दीपक जल रहा था। गरमी इतनी थी कि जान पड़ता था अग्निकुण्ड है। पर इस आगकी भट्ठीमें रायसाहब एक मोटा ऊनी कम्बल ओढ़े हुए थे। उनके मुखपर विलक्षण तेज था और नेत्रोंसे दिव्य प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा था। प्रतिमा और सौम्यताकी सजीव मूर्ति मालूम होते थे। उनका शारीरिक गठन और दीर्घकाय किसी पहलवानको भी लज्जित कर सकता था। उनके गलेमें एक रुद्राक्षकी माला थी, बगलमें एक चांदीका प्याला और गड़ुआ रखा हुआ था, तख्तेके एक ओर दो मोटे ताजे जवान बैठे पंजा लड़ा रहे थे और उसकी दूसरी ओर तीन कोमलांगी रमणियां वस्त्राभूषणोंसे सजी हुई विराज रही थीं। इन्द्रका अखाड़ा था, जिसमें इन्द्र, कालेदेव और अप्सराएं सभी अपना अपना पार्ट खेल रहे थे।

प्रेमशङ्करको देखते ही रायसाहबने उठकर खड़े तपाकसे उनका स्वागत किया, उनके बैठनेको एक कुर्सी मंगाई और बोले, क्षमा कीजियेगा, मैं इस समय देवोपासना कर रहा हूं, पर आपसे मिलनेके लिये ऐसा उत्कण्ठित था कि एक क्षणका विलम्ब भी न सह सका। आपको देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। संसार ईश्वरका विराट स्वरूप है। जिसने संसारको देख लिया उसने ईश्वरके विराट स्वरूपका दर्शन कर लिया। यात्रा अनुभूत ज्ञान प्राप्त करनेका सर्वोत्तम साधन है। कुछ जलपानके लिये मंगाऊं?

प्रेम—जी नहीं, अभी जलपान कर चुका हूं।

रायसाहब—समझ गया, आप भी जवानीमें बूढ़े हो गये। यही भोजन-आहारका पथ्यापथ्य विचार बुढ़ापा है। जवान वह है जो भोजनके उपरान्त फिर भोजन करे, ईंट-पत्थर तक भक्षण कर ले। जो एक बार जलपान करके फिर कुछ नहीं खा सकता, जिसके लिये कुम्हड़ा बादी है, करेला गर्म, कटहल गरिष्ठ, उसे मैं बूढ़ा ही समझता हूं। मैं सर्वभक्षी हूं और इसीका फल है कि ६० वर्षकी आयु होनेपर भी मैं जवान हूं।

यह कहकर रायसाहबने लोटा मुंहसे लगाया और कई घूंट गट गट पी गये, फिर प्यालेमेंसे कई चमचे निकालकर खाये और जीभ चटकाते हुए बोले, यह न समझिये कि मैं स्वादेन्द्रियका दास हूं। मैं इच्छाओंका दास नहीं, स्वामी बनकर रहता हूं। यह दमन करनेका साधनमात्र है। तैराक वह है जो पानीमें गोते लगाये। योद्धा वह है जो मैदानमें उतरे। बवासे भागकर बवासे बचनेका कोई मूल्य नहीं। ऐसा आदमी बबाकी चपेटमें आकर फिर नहीं बच सकता। वास्तवमें रोगविजेता वही है, जिसकी स्वाभाविक अग्नि, जिसकी अन्तरस्थ ज्वाला, रोगकीटोंको भस्म कर दे। इस लोटेमें आगकी चिनगारियां हैं, पर मेरे लिये शीतल जल है। इस प्यालेमे वह पदार्थ है जिसका एक चमचा किसी योगीको भी उन्मत कर सकता है, पर मेरे लिये सूखे सागके तुल्य है। आजकल यही मेरा आहार है। मैं गर्मीमें आग खाता हूं और आग ही पीता हूं। मैं शिव और शक्तिका उपासक हूं। विषयको दूध-घी समझता हूं। जाड़ेमें हिमकणोंका सेवन करता हूं और हिमालयकी हवा खाता है। हमारी आत्मा ब्रह्मका ज्योतिस्वरूप है, उसे मैं देश और काल, इच्छाओं और चिन्ताओंसे मुक्त रखना चाहता हूं। आत्माके लिये पूर्ण अखण्ड स्वतन्त्रता सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। मेरे किसी कामका कोई निर्दिष्ट समय नहीं। जो इच्छा होती है, करता हूं। आपको कोई कष्ट तो नहीं है, आरामसे बैठिये।

प्रेम—बहुत आरामसे बैठा हुआ हूं।

रायसाहब—आप इस त्रिमूर्त्तिको देखकर चौंकते होंगे। पर मेरे लिये यह मिट्टीके खिलौने हैं। विषयासक्त आंखें इनके रूपलावण्यपर मिटती हैं, मैं उस ज्योतिको देखता हूं, जो इनके घटमें व्यापक है। बाह्य रूप कितना ही सुन्दर क्यों न हो, मुझे विचलित नहीं कर सकता। वह मकुए हैं, जो गुफाओं और कन्दराओंमें बैठकर तप और ध्यानके स्वांग भरते हैं। वह कायर हैं, प्रलोभनोंसे मुंह छिपानेवाले, तृष्णाओंसे जान बचानेवाले। वह क्या जानें कि आत्मस्वातंत्र्य क्या वस्तु है, चित्तकी दृढ़ता और मनोबलका उन्हें अनुभव ही नहीं हुआ। वह सूखी पत्तियां हैं जो हवाके एक झोंकेसे जमीनपर गिर पड़ती हैं, योग कोई दैहिक क्रिया नहीं है। आत्मशुद्धि, मनोबल और इन्द्रियदमन ही सच्चा योग, सच्ची तपस्या है। वासनाओंमें पड़कर अविचलित रहना ही सच्चा वैराग्य है। उत्तम पदार्थोंका सेवन कीजिये, मधुर गानका आनन्द उठाइये, सौन्दर्य्यकी उपासना कीजिये, परन्तु मनोवृत्तियोंके दास न बनिये, फिर आप सच्चे वैरागी हैं। (दोनों पहलवानोंसे) पंडाजी, तुम बिलकुल बुद्धू ही रहे। यह महाशय अमेरिकाका भ्रमण कर आये हैं। हमारे दमाद हैं, इन्हें कुछ अपनी कविता सुनाओ, खूब फड़कते हुए कवित्त हों।

दोनों पंडे खड़े हो गये और स्वर मिलाकर एक कवित्त पढ़ने लगे। किन्तु कवित्त क्या था, अपशब्दोंका पोथा और अश्लीलताका अविरत प्रवाह था। एक-एक शब्द बेहयायी और बेशरमीमें डूबा हुआ। मुंहफट भांड़ भी लज्जास्पद अंगोंका ऐसा नग्न, ऐसा घृणोत्पादक वर्णन न कर सकते होंगे। कविने समस्त भारतवर्षके कबीर और फागका इत्र, समस्त कायस्थ समाजकी वैवाहिक गजलोंका सत्त, समस्त भारतीय नारिवृन्दकी प्रथाप्रणीत गालियोंका निचोड़ और समस्त पुलिस विभागके कर्मचारियोंके अपशब्दोंका जौहर खींचकर रख दिया था।

और यह गन्दे कवित्त इन पंडोंके मुंहसे ऐसी सफाईसे निकल रहे थे; मानो फूल झड़ रहे हैं। रायसाहब मूर्तिवत् बैठे थे, हंसीका तो कहना ही क्या, ओठोंपर मुस्कुराहटका चिह्न भी न था। तीनों वेश्याओंने शर्मसे सिर झुका लिया, किन्तु प्रेमशङ्कर हंसीको न रोक सके। हंसते हंसते उनके पेटमें बल पड़ गये।

पंडोंके चुप होते ही समाजियोंका आगमन हुआ। उन्होंने अपने साज मिलाये, तबलेपर थाप पड़ी, सारङ्गियोंने स्वर मिलाया और तीनों रमणियां एक ध्रुपद अलापने लगीं। प्रेमशंकरको स्वरलालित्यका वही आनन्द मिल रहा था जो किसी गंवारको उज्ज्वल रत्नके देखनेसे मिलता है। इस आनन्दमें रसज्ञता न थी। किन्तु मर्मज्ञ रायसाहब मस्त हो-होकर झूम रहे थे और कभी-कभी स्वयं गाने लगते थे।

आधी राततक मधुर आलापकी तानें उड़ती रहीं। जब प्रेमशङ्कर ऊंघ ऊंघकर गिरने लगे तब सभा विसर्जित हुई। उन्हें रायसाहबकी बहुज्ञता, रसज्ञता और प्रतिभापर आश्चर्य हो रहा था। इस मनुष्यमें कितना बुद्धि-चमत्कार, कितना आत्मबल कितनी सिद्धि, कितनी सजीविता है और जीवनका कितना विलक्षण आदर्श!

दूसरे दिन प्रेमशङ्कर सोकर उठे तो ८ बजे थे। मुंह-हाथ धोकर बरामदेमें टहलने लगे कि सामनेसे रायसाहब एक मुश्की घोड़ेपर सवार आते दिखायी दिये। शिकारी वस्त्र पहने हुए थे। कंधेपर बन्दूक थी। पीछे-पीछे शिकारी कुत्तोंका झुंड चला आ रहा था। प्रेमशङ्करको देखकर बोले, आज किसी भले आदमीका मुंह देखा था। एक वार भी खाली नहीं गया। निश्चय कर लिया था कि जलपानके समयतक लौट आऊंगा। आप कुछ अनुमान कर सकते हैं कितनी दूरसे आ रहा हूं। पूरे २० मीलका धावा किया है। तीन घंटोंसे ज्यादा कभी नहीं सोता। मालूम है न, आज ३ बजे जलसा शुरू होगा?

प्रेम—जी हां, डेलिगेट लोग तो आ गये होंगे?

राय—(हंसकर) मुझे अभीतक कुछ खबर नहीं और मैं ही स्वागतकारिणी समितिका प्रधान हूं। मेरे मुख्तार साहबने सब प्रबन्ध कर दिया होगा। अभीतक मैंने कुछ नहीं सोचा कि वहां क्या कहूंगा? बस, मौकेपर जो कुछ मुंहमें आयेगा, बक डालूंगा।

प्रेम—आपकी सूझ बहुत अच्छी होगी?

राय—जी हां, मेरे ऐसोसियेशनमें ऐसा कोई नहीं है, जिसकी सूझ अच्छी न हो। इस गुणमें एक-से-एक बढ़कर हैं। कोषाध्यक्ष महाशयको आयव्ययका पता नहीं, पर सभाके सामने वह पूरा ब्यौरा दिखा देंगे। यही हाल औरोंका भी है। जीवन इतना अल्प है कि आदमीको अपने ही ढोल पीटनेसे छुट्टी नहीं मिलती, जातिका मजीरा कौन बजाये?

प्रेम—ऐसी संस्थाओंसे देशका क्या उपकार होगा?

राय—उपकार क्यों नहीं, क्या आपके विचारमें जातिका नेतृत्व निरर्थक वस्तु है? आजकल यही उपाधियोंका सदर दरवाजा हो रहा है। सरल भक्तोंका श्रद्धास्पद बनाना क्या कोई मामूली बात है? बेचारे जातिके नामपर मरनेवाले सीधे-सादे लोग दूर-दूरसे हमारे दर्शनोंको आते हैं, हमारी गाड़ियां खींचते हैं, हमारी पदरजको माथेपर चढ़ाते हैं। क्या यह कोई छोटी बात है? और फिर हममें कितने ही जातिके सेवक ऐसे भी हैं जो सारा हिसाब मनमें रखते हैं। उनसे हिसाब पूछिये तो वह अपनी तौहीनी समझेंगे और इस्तीफेकी धमकी देंगे। इसी संस्थाके सहायक मन्त्रीकी वकालत बिलकुल नहीं चलती; पर अभी उन्होंने २० हजारका एक बङ्गला मोल लिया है, जातिसे ऐसे भी लेना है वैसे भी लेना है, चाहे इस बहानेसे लीजिये, चाहे उस बहानेसे लीजिये।

प्रेम—मुझे अपना निबन्ध पढ़नेका समय कब मिलेगा?

राय—आज तो मिलता नहीं। कल गार्डनपार्टी है। हिज़ एक्सेलेन्सी और अन्य अधिकारिवर्ग निमन्त्रित हैं। सारा दिन उसी तैयारीमें लग जायगा। परसों सब चिड़ियां उड़ जायेंगी, कुछ गिने गिनाये लोग रह जायेंगे। तब आप शौक़से अपना लेख सुनाइयेगा।

यही बातें हो रही थीं कि राजा इन्द्रकुमारसिंहका आगमन हुआ। रायसाहबने उनका स्वागत करके पूछा, नैनीताल कबतक चलियेगा।

राजासाहब—मैं तो सब तैयारियां करके चला हूं। यहींसे हिज़ एक्सेलेन्सीके साथ चला जाऊंगा। क्या मिस्टर ज्ञानशङ्कर नहीं आये?

प्रेम—जी नहीं, उन्हें अवकाश नहीं मिला।

राजा—मैंने समाचार-पत्रोंमें आपके लेख देखे थे। इसमें सन्देह नहीं कि आप कृषिशास्त्रके पंडित हैं, पर आप जो प्रस्ताव कर रहे हैं, वह यहांके लिये कुछ बहुत उपयुक्त नहीं जान पड़ता। हमारी सरकारने कृषिकी उन्नतिके लिये कोई बात उठा नहीं रखी। जगह-जगहपर प्रयोगशालाएं खोलीं, सस्ते दामोंमें बीज बेचती है, कृषिसम्बन्धी आविष्कारोंका पत्रों द्वारा प्रचार करती है, इस कामके लिये कितनेही निरीक्षक नियुक्त किये हैं, कृषिके बड़े-बड़े कालेज खोल रखे हैं, पर उसका फल कुछ न निकला। जब वह करोड़ों रुपये व्यय करके कृतकार्य न हो सकी तो आप दो लाखकी पूंजीसे क्या कर लेंगे? आपके बनाये हुए यंत्र कोई सेंत भी न लेगा, आपकी रासायनिक खादें पड़ी सड़ेंगी। बहुत हुआ तो आप ५-७ सैंकड़े मुनाफा दे देंगे। इससे क्या होता है? जब हम दो-चार कुंए खुदवाकर, पटवारीसे मिलकर, कर्मचारियोंका सत्कार करके आसानीसे अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं, तो यह झंझट कौन करे?

प्रेम—मेरा उद्देश्य कोई व्यापार खोलना नहीं है। मैं तो

केवल कृषिकी उन्नतिके लिये धन चाहता हूं। सम्भव है, आगे चलकर लाभ हो; पर अभी तो मुनाफेकी कोई आशा नहीं।

राजा—समझ गया, यह केवल पुण्य-कार्य्य होगा।

प्रेम—जी हां, यही मेरा उद्देश्य है। मैंने अपने उन लेखोंमें और इस निबन्धमें भी यह बात साफ़ साफ़ कह दी है।

राजा—तो फिर आपने श्रीगणेश करनेमें ही भूल की। आपको पहले इस विषयमें लाट साहबकी सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिए थी। तब दोकी जगह आपको दस लाख बातकी बातमें मिल जाते। बिना सरकारकी प्रेरणाके यहां ऐसे कामोंमें सफलता नहीं होती। यहां आप जितनी संस्थाएं देख रहे हैं उनमें किसीका जन्म स्वाधीनरूपसे नहीं हुआ। यहांकी यही प्रथा है। रायसाहब यदि आपको हिज एक्सलेन्सीसे मिला दें और उनकी आपपर कृपादृष्टि हो जाय तो कल ही रुपयेका ढेर लग जाय।

राय—मैं बड़ी खुशीसे तैयार हूं।

प्रेम—मैं इस संस्थाको सरकारी सम्पर्कसे अलग रखना चाहता हूं।

राजा—ऐसी दशामें आप इस एसोसियेशनसे सहायताकी आशा न रखें। कमसे कम मेरा यही विचार है, क्यों रायसाहब!

राय—आपका कहना यथार्थ है।

प्रेम—तो फिर मेरा निबन्ध पढ़ना व्यर्थ है।

राजा—नहीं, व्यर्थ नहीं है। सम्भव है, आप इसके द्वारा आगे चलकर सरकारी सहायता पा सकें। हां, रायसाहब, प्रधानजीके जलूस निकालनेकी तैयारी हो रही है न? वह तीसरे पहरकी गाड़ीसे आनेवाले हैं।

प्रेमशङ्कर निराश हो गये! ऐसी सभामें अपना निबन्ध पढ़ना अन्धोंके आगे रोना था। वह तीन दिन लखनऊ रहे और एसोसियेशनके अधिवेशनोंमें शरीक होते रहे, किन्तु न तो अपना लेख पढ़ा और न किसीने उनसे पढ़नेके लिये ज़ोर दिया। वहां तो सभी

अधिकारियोंकी सेवा-सत्कारमें ऐसे दत्तचित्त थे, मानों बरात आई हो। बल्कि उनका वहां रहना सबको अखरता था। सभी समझते थे कि यह महाशय मनमें हमारा तिरस्कार कर रहे हैं। उन लोगोंको किसी गुप्त रीतिसे यह भी मालूम हो गया था कि यह स्वराज्यवादी हैं। इसी कारणसे किसीने उनसे निबन्ध पढ़नेके लिये आग्रह नहीं किया। यहांतक कि गार्डनपार्टीमें उन्हें निमन्त्रण भी न दिया। यह रहस्य लोगोंपर उनके आनेके एक दिन पीछे खुला था, नहीं तो कदाचित् उनके पास लेख पढ़नेका आदेशपत्र भी न भेजा जाता। प्रेमशङ्कर ऐसी दशामें वहां क्योंकर ठहरते? चौथे दिन घर चले आये। दो-तीन दिनतक उनका चित्त बहुत खिन्न रहा, किन्तु इसलिये नहीं कि उन्हें आशातीत सफलता न हुई, बल्कि इसलिये कि उन्होंने सहायताके लिये रईसोंके सामने हाथ फैलाकर अपने स्वाभिमानकी हत्या की। यद्यपि अकेले पड़े-पड़े उनका जी बहुत उकताता था, पर इसके साथ ही यह अवस्था आत्मचिन्तनके बहुत अनुकूल थी। निस्स्वार्थ सेवा करना मेरा कर्तव्य है। प्रयोगशाला स्थापित करके मैं कुछ स्वार्थ भी सिद्ध करना चाहता था। कुछ लाभ होता, कुछ नाम होता, परमात्माने इसीका मुझे यह दण्ड दिया है। सेवाका क्या यही एक साधन है? मैं प्रयोगशालाहीके पीछे क्यों पड़ा हुआ हूं? बिना प्रयोगशालाके भी कृषि-सम्बन्धी विषयोंका प्रचार किया जा सकता है। रोग-निवारण क्या सेवा नहीं है? इन प्रश्नोंने प्रेमशङ्करके सदुत्साहको उत्तेजित कर दिया। वह प्रातःकाल घरसे निकल जाते और आसपासके देहातोंमें जाकर किसानोंसे खेती-बारीके विषयमें वार्तालाप करते। उन्हें अब मालूम हुआ कि यहांके किसानोंको जितना मूर्ख समझा जाता है, उतने मूर्ख नहीं हैं। उन्हें किसानोंसे कितनी ही नयी बातोंका ज्ञान हुआ। शनैः शनैः वह दिन दिन-भर घरसे बाहर रहने लगे। कभी-कभी दूरके देहातोंमें चले जाते तो दो-दो, तीन-तीन दिनों न लौटते।

जेठका महीना था। आकाशसे आग बरसती थी। राज्याधिकारिवर्ग पहाड़ोंपर ठंढी हवा खा रहे थे। भ्रमण करनेवाले कर्मचारियोंके दौरे भी बन्द थे, पर प्रेमशङ्करकी तातील न थी। उन्हें बहुधा दोपहरका समय पेड़ोंकी छांहमें काटना पड़ता, कभी कभी दिनका दिन निराहार बीत जाता, पर सेवाकी धुनने उन्हें शारीरिक सुखोंसे विरक्त कर दिया था। कभी किसी गांवमें हैजा फैलनेकी खबर मिलती, कहीं कीड़े ऊखके पौधोंका सर्वनाश किये डालते थे, कहीं आपसमें लठियाव होनेका समाचार मिलता; प्रेमशङ्कर डाकियोंकी भांति इन सभी स्थानोंपर जा पहुंचते और यथासाध्य कष्ट-निवारणका प्रयास करते। कभी-कभी लखनपूरतकका धावा मारते। जब असाढ़में मेह बरसा तो प्रेमशङ्करको अपने काममें बड़ी असुविधा होने लगी। वह एक विशेष प्रकारके धानोंका प्रचार करना चाहते थे। तरकारियोंके बीज भी वितरण करनेके लिये मंगा रक्खे थे। उन्हें बोने और तैयार करनेकी विधि बतलानी भी जरूरी थी। इसलिये उन्होंने शहरसे ४-५ मीलपर वरणाके किनारे हाजीगञ्जमें रहनेका निश्चय किया। गांवसे बाहर फूसका एक झोंपड़ा पड़ गया। दो-तीन खाटें आ गयीं। गांववालोंकी उनपर असीम भक्ति थी। उनके निवासको लोगोंने अहोभाग्य समझा। उन्हें सब लोग अपना रक्षक, अपना इष्टदेव समझते थे और उनके इशारेपर जान देनेको तैयार रहते थे।

यद्यपि प्रेमशङ्करको यहां बड़ी शांति मिलती थी, पर श्रद्धाकी याद कभी कभी विकल कर देती थी। वह सोचते, यदि वह भी मेरे साथ होती तो कितने आनन्दसे जीवन व्यतीत होता। उन्हें यह ज्ञात हो गया था कि ज्ञानशङ्करनेही मेरे विरुद्ध उसके कान भरे हैं, अतएव उन्हें अब उसपर क्रोधके बदले दया आती थी। उन्हें एक बार उससे मिलने और उसके मनोगत भावोंके जाननेकी बड़ी आकांक्षा होती थी। कई बार इरादा किया कि उसे एक पत्र लिखूं, पर यह सोचकर कि जवाब दे या न दे टाले जाते थे।

इस चिन्ताके अतिरिक्त अब धनाभावसे भी कष्ट होता था। अमे-रिकासे जितने रुपये लाये थे वह इन चार महीनोंमें खर्च हो गये थे और यहां नित्य ही रुपयोंका काम लगा रहता था। किसानोंसे अपनी कठिनाइयां बयान करते हुए उन्हें सङ्कोच होता था। वह अपने भोजनादिका बोझ भी उनपर डालना पसन्द न करते थे और न शहरके किसी रईससे ही सहायता मांगनेका साहस होता था। अन्तमें उन्होंने निश्चय किया कि ज्ञानशङ्करसे अपने हिस्सेका मुनाफा मांगना चाहिए। उन्हें मेरे हिस्सेकी पूरी रकम उड़ा जानेका क्या अधिकार है? श्रद्धाके भरण-पोषणके लिये वह अधिक-से-अधिक मेरा आधा हिस्सा ले सकते हैं। तब भी मुझे एक हजारके लगभग मिल जायंगे। इस वक्त काम चलेगा, फिर देखा जायगा। निस्सन्देह इस आदमीपर मेरा कोई हक़ नहीं है; मैंने उसका अर्जन नहीं किया, लेकिन मैं उसे अपने भोग-विलासके निमित्त तो नहीं चाहता, उसे लेकर परमार्थमें खर्च करना आपत्ति-जनक नहीं हो सकता। पहले प्रेमशङ्करकी निगाह इस तरफ कभी न गयी थी, वह इन रुपयोंको ग्रहण करना अनुचित समझते थे। पर अभाव बहुधा सिद्धान्तों और धारणाओंका बाधक हो जाता है। सोचा तो था, कि पत्रमें सब कुछ साफ़-साफ़ लिख दूंगा, पर लिखने बैठे तो केवल इतना लिखा कि मुझे रुपयोंकी बड़ी जरूरत है। आशा है, मेरी कुछ सहायता करेंगे। भावोंको लेखबद्ध करनेमें हम बहुत विचारशील हो जाते हैं। ज्ञानशङ्करको यह पत्र मिला तो आपेसे बाहर हो गये। श्रद्धाको सुनाकर बोले, यह तो नहीं होता कि कोई उद्यम करें, बैठे बैठे सुखोंका आनन्द उठाना चाहते हैं। जानते होंगे कि यहां रुपये बरस रहे हैं, बस बिना हर्रे फिटकरीके मुनाफा हाथ आ जाता है। और यहां सदावर्तके खर्च-के मारे कचूमर निकला जाता है। एक हजार रुपये कर्ज लेकर खर्च कर चुका और अभी पूरा साल पड़ा है। एक बार हिसाब-किताब देख लें तो आंखें खुल जायें, मालूम हो जाय कि जमीं-

परोसा हुआ थाल नहीं है। सैकड़ों रुपये साल कर्मचारियोंकी नज़र-नियाज़में उड़ जाते हैं।

यह कहते हुए वह उसी गुस्सेमें पत्रका उत्तर लिखने नीचे गये। उन्हें अपनी अवस्था और दुर्भाग्यपर क्रोध आ रहा था। राय कमलानन्दकी चेतावनी बार-बार याद आती थी। वही हुआ, जो उन्होंने कहा था।

सन्ध्या हो गयी थी। आकाशपर काली घटा छायी हुई थी। प्रेमशङ्कर सोच रहे थे बड़ी देर हुई, अभीतक आदमी जवाब लेकर नहीं लौटा। कहीं पानी न बरसने लगे, नहीं तो इस वक्त आ भी न सकेगा। देखूं क्या जवाब देते हैं? सूखा जवाब तो क्या देंगे, हां, मनमें अवश्य झुंझलायंगे। अब मुझे भी निस्संकोच होकर लोगोंसे सहायता मांगनी चाहिए, अपने बलपर यह बोझ मैं नहीं संभाल सकता। थोड़ीसी जमीन मिल जाती, मैं स्वयं कुछ पैदा करने लगता, तो यह दशा न रहती। जमीन तो यहां बहुत कम है, हां, ५० बीघेका यह ऊसर अलबत्ता है, लेकिन जमींदार साहबसे सौदा पटना कठिन है। वह ऊसरके लिये भी २००)रु० बीघे नज़राना मांगेंगे। फिर इसको रेह निकालने और पानीके निकासके लिये नालियां बनवानेमें हज़ारोंका खर्च है। क्या बताऊं, ज्ञानूने मेरे सारे मन्सूबे चौपट कर दिये, नहीं तो लखनपूर यहांसे कौन बहुत दूर था? मैं १५-२० बीघेको और भी कर लेता तो मुझे किसीकी मददकी दरकार न होती।

वह इन्हीं विचारोंमें डूबे थे कि सामनेसे एक एक्का आता हुआ दिखायी दिया। पहले तो कई आदमियोंने एक्केवानको ललकारा। क्यों खेतमें एक्का लाता है?| आंखें फूटी हुई हैं? देखता नहीं, खेत बोया हुआ है? पर जब एक्का प्रेमशंकरके झोपड़े की ओर मुड़ा तो लोग चुप हो गये। इसपर लाला प्रभाशङ्कर और उनके दोनों लड़के पद्मशंकर और तेजशङ्कर बैठे हुए थे। प्रेमशङ्करने दौड़कर उनका स्वागत किया। प्रभाशङ्करने उन्हें

छातीसे लगा लिया और पूछा, अभी तुम्हारा आदमी ज्ञानूका जवाब लेकर तो नहीं आया ?

प्रेम—जी नहीं, अभी तो नहीं आया, देर बहुत हुई।

प्रभा—मेरे ही हाथ बाजी रही। मैं उसके एक घंटा पीछे चला हूं। यह लो, बड़ी बहूने यह लिफाफा और यह संदूकचा तुम्हारे पास भेजा है। मगर यह तो बताओ, यह वनवास क्यों कर रहे हो ? तुम्हारे एक छोड़ दो दो घर हैं। उनमें न रहना चाहो तो तुम्हारे कई मकान किरायेपर उठे हुए हैं, उनमेंसे जिसे हो खाली करा दूं। आरामसे शहरमें रहो। तुम्हें इस दशामें देखकर मेरा हृदय फटा जाता है। यह फूसका झोंपड़ा, बीहड़ स्थान, न कोई आदमी न आदमजाद, मुझसे तो यहां एक क्षण भी न रहा जाये। हफ्तों घरकी सुधि नहीं लेते। मैं तुम्हें यहां न रहने दूंगा। हम तो महलमें रहें, और तुम यों वनवास करो। (सजल नेत्र होकर) यह सब मेरा दुर्भाग्य है। मेरे कलेजेके टुकड़े हुए जाते हैं। भाईसाहब जबतक जीवित रहे, मैं अपने ऊपर गर्व करता था। समझता था कि मेरी बदौलत घर बना हुआ है। लेकिन उनके उठते ही घरकी श्री उठ गयी। मैं दो चार साल भी उस मेलको न निभा सका। वह भाग्यशाली थे, मैं अभागा हूं, और क्या कहूं !

प्रेमशंकरने बड़ी उत्सुकतासे लिफाफा खोला और पत्र पढ़ने लगे। लालाजीकी तरफ उनका ध्यान न था।

प्रिय प्राणपति, दासीका प्रणाम स्वीकार कीजिये। आप जब तक विदेशमें थे, मैं वियोग-दुःखको धैर्यके साथ सहती रही; पर आपका यह एकान्त निवास नहीं सहा जाता। मैं यहां आपसे बोलती न थी, आपसे मिलती न थी, पर आपको आंखोंसे देखती तो थी, आपकी कुछ सेवा तो कर सकती थी। आपने यह सुअवसर भी मुझसे छीन लिया। मुझे तो संसारकी हंसीका डर था, क्या आपको भी संसारकी हंसीका

डर है ? मुझे आपसे मिलते हुए अनिष्टकी आशंका होती है, धर्मको तोड़कर कौन प्राणी सुखी रह सकता है ? आपके विचार तो ऐसे नहीं, फिर आप क्यों मेरी सुधि नहीं लेते ?

यहां लोग आपके प्रायश्चित्त करनेकी चर्चा कर रहे हैं। मैं जानती हूं आपको बिरादरीका भय नहीं है, पर यह भी जानती हूं कि आप मुझपर दया और प्रेम रखते हैं। क्या मेरी खातिर इतना न कीजियेगा ?—मेरे धर्मको न निभाइयेगा ?

इस सन्दूकचीमें मेरे कुछ गहने और रुपये हैं। गहने अब किसके लिए पहनूं ? कौन देखेगा ? यह तुच्छ भेंट है, इसे स्वीकार कीजिये। यदि आप न लेंगे, तो समझूंगी कि आपने मुझसे नाता तोड़ लिया।

आपकी अभागिनी,
श्रद्धा।

प्रेमशङ्करके मनमें पहले विचार हुआ कि सन्दूकचीको वापस कर दूं और लिख दूं कि मुझे तुम्हारी मददकी जरूरत नहीं। क्या मैं ऐसा निर्लज्ज हो गया कि जो स्त्री मेरे साथ इतनी निष्ठुरतासे पेश आये उसीके सामने मददके लिये हाथ फैलाऊं ? लेकिन एक ही क्षणमें यह विचार पलट गया। उसके स्थानपर यह शङ्का हुई कि कहीं इसने मनमें कुछ और तो नहीं ठान ली है ? यह पत्र किसी विपद् सङ्कल्पका सूचक तो नहीं है ? वह अस्थिर चित्त होकर इधर उधर टहलने लगे। सहसा लाला प्रभाशंकरसे बोले—आपको तो मालूम होगा ज्ञानशंकरका बर्ताव उसके साथ कैसा है ?

प्रभा—बेटा, यह बात मुझसे मत पूछो। हां, इतना कहूंगा कि तुम्हारे यहां रहनेसे वह बहुत दुःखी है। तुम्हें मालूम है कि उसका तुमसे कितना प्रेम है। तुम्हारे लिये उसने बड़ी तपस्या की है, उसके ऊपर तुम्हारी यह अकृपा नितान्त अनुचित है।

प्रेम—मुझे वहां रहनेमें कोई उज्र नहीं है। हां, ज्ञानशंकरके

कुटिल व्यवहारसे दुःख होता है। और फिर वहां बैठकर यह काम न होगा। किसानोंके साथ रहकर मैं उनकी जितनी सेवा कर सकता हूं, अलग रहकर नहीं कर सकता। आपसे केवल यह प्रार्थना करता हूं कि आप उसे बुलाकर उसकी तस्कीन कर दीजियेगा। मेरे विचारसे उसका व्यवहार कितना ही अनुचित क्यों न हो, पर मैं उसे निरपराध समझता हूं। यह दूसरोंके बहकानेका फल है। मुझे शङ्का होती है कि वह जानपर न खेल जाय।

प्रभा—मगर तुम्हें वचन देना होगा कि सप्ताहमें कमसे कम एक बार वहां अवश्य जाया करोगे।

प्रेम—इसका पक्का वादा करता हूं।

प्रभाशंकरने लौटना चाहा, पर प्रेमशंकरने उन्हें साग्रह रोक लिया। हाजीगञ्जमें एक सज्जन ठाकुर भवानीसिंह रहते थे। उनके यहां भोजनका प्रबन्ध किया गया। पूरियां मोटी थीं और भाजी भी अच्छी न बनी थी, किन्तु दूध बहुत स्वादिष्ट था। प्रभाशङ्करने मुस्कुराकर कहा, यह पूरियां हैं या लिट्ट, मुझे तो दो चार दिन भी खानी पड़े तो काम तमाम हो जाय। हां, दहीकी मलाई बहुत अच्छी है।

प्रेम—मैं तो यहां रोटियां बना लेता हूं। दोपहरको दूध पी लिया करता हूं।

प्रभा—तो यह कहो, तुम योगाभ्यास कर रहे हो। अपनी रुचिका भोजन न मिले तो फिर जीवनका सुख ही क्या रहा?

प्रेम—क्या जाने, मैं तो रोटियोंहीसे सन्तुष्ट हो जाता हूं। कभी कभी तो मैं शाक या दाल भी नहीं बनाता। सूखी रोटियां बहुत मीठी लगती हैं। स्वास्थ्यके विचारसे भी रूखा-सूखा भोजन उत्तम है।

प्रभा—यह सब नये जमानेके ढकोसले हैं। लोगोंको पाचन-शक्ति निर्बल हो गयी है। इसी विचारसे अपनेको तस्कीन दिया

करते हैं। मैंने तो आजीवन चटपटा भोजन किया है, पर कभी कोई शिकायत नहीं हुई।

भोजन करनेके बाद कुछ इधर-उधरकी बातें होने लगीं। लालाजी थके थे, सो गये, किन्तु दोनों लड़कोंको नींद न आती थी। प्रेमशङ्कर बोले, क्यों तेजशंकर, क्या नींद नहीं आती? मैट्रिकमें हो न? इसके बाद क्या करनेका विचार है?

तेजशङ्कर—मुझे क्या मालूम? दादाजीकी जो राय होगी, वही करूंगा।

प्रेम—और तुम क्या करोगे पद्मशंकर?

पद्म—मेरा तो पढ़नेमें जी नहीं लगता। जी चाहता है, साधु हो जाऊं।

प्रेम—(मुस्कुराकर) अभीसे?

पद्म—जी हां, खूब पहाड़ोंपर विचरूंगा। दूर दूरके देशोंकी सैर करूंगा। भैया भी तो साधु होनेको कहते हैं।

प्रेम—तो तुम दोनों साधु हो जाओगे और गृहस्थीका सारा बोझ चचासाहबके सिर छोड़ दोगे?

तेज—मैंने कब साधु होनेको कहा पद्मू? झूठ बोलते हो।

पद्म—रोज तो कहते हो, इस वक्त लजा रहे हो।

तेज—पड़े झूठे हो।

पद्म—अभी तो कल ही कह रहे थे कि पहाड़ोंपर जाकर योगियोंसे मंत्र जगाना सीखेंगे।

प्रेम—मंत्र जगानेसे क्या होगा?

पद्म—वाह! मंत्रमें इतनी शक्ति है कि चाहें तो अभी गायब हो जायं, जमीनमें गड़ा हुआ धन देख लें। एक मंत्र तो ऐसा है कि चाहें तो मुरदोंको जिला दें। बस, सिद्धि चाहिये। खूब चैन रहेगा। यहां तो बरसों पढ़ेंगे, तब जाकर कहीं नौकरी मिलेगी। नहीं तो एक मंत्र भी सिद्ध हो गया, तो फिर चांदी है।

प्रेम—क्यों जी तेजू, तुम भी इन मिथ्या बातोंपर विश्वास करते हो ?

तेज—जी नहीं, यह पशु यों ही वाही तबाही बकता फिरता है; लेकिन इतना कह सकता हूं कि आदमी मंत्र जगा कर बड़े-बड़े काम कर सकता है। हां, डर न जाय, नहीं तो जान जानेका डर रहता है।

प्रेम—यह सब गपोड़ा है। खेद है कि तुम विज्ञान पढ़कर इन गपोड़ोंपर विश्वास करते हो। संसारमें सफलताका सबसे जागता हुआ मंत्र अपना उद्योग, अध्यवसाय और दृढ़ता है, इसके सिवा और सब मंत्र झूठे है।

दोनों लड़कोंने इसका कुछ उत्तर न दिया। उनके मनमें मंत्रकी बात पैठ गयी थी और तर्क द्वारा उन्हें कायल करना कठिन था।

इनके चले जानेके बाद प्रेमशङ्करने सन्दूकचा खोलकर देखा। [illegible] सभी सोनेके थे। रुपये गिने तो पूरे एक हजार थे। इस समय प्रेमशंकरके सम्मुख श्रद्धा एक देवीके रूपमें खड़ी मालूम होती थी। उसकी मुखश्री एक विलक्षण ज्योतिसे प्रदीप्त थी। त्याग और अनुरागकी विशाल मूर्ति थी, जिसके कोमल नेत्रोंमें भक्ति और प्रेमकी किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं। प्रेमशंकरका हृदय विह्वल हो गया। उन्हें अपनी निष्ठुरतापर बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। श्रद्धाकी भक्तिके सामने अपनी कटुता और अनुदारता अत्यन्त निन्द्य प्रतीत होने लगी। उन्होंने संदूकची बन्द करके खाटके नीचे रख दी और लेटे तो सोचने लगे, इन गहनोंको क्या करूं ? कुल सम्पत्ति ५ हजारसे कमकी नहीं है। इसे मैं ले लूं, तो श्रद्धा निरवलम्ब हो जायगी। लेकिन मेरी दशा सदैव ऐसी ही थोड़े ही रहेगी ? अभी ऋण समझकर ले लूं, फिर कभी सूद समेत चुका दूंगा। २५ बीघे ऊसर लूं तो दो ढाई हजारमें तय हो जाय। एक हजार खाद डालने और रेह

निकालनेमें लग जायंगे। एक हजारमें बैलोंकी दो गोइयां और दूसरी सामग्रियां आ जायंगी। १० बीघेमें एक सुन्दर बाग लगा दूं, १५ बीघेमें खेती करूं। दो साल तो चाहे उपज कम हो, लेकिन आगे चलकर दो ढाई हजार वार्षिककी आय होने लगेगी। अपने लिये मुझे २००) साल भी बहुत है। शेष रुपये अपने जीवनोद्देश्यके पूरे करनेमें लगेंगे। संभव है, तबतक कोई सहायक भी मिल जाय। लेकिन उस दशामें कोई सहायता न भी करे, तो मेरा काम चलता रहेगा। हां, एक बातका तो ध्यान ही न रहा। मैं यह ऊसर ले लूं तो फिर इस गांवमें गोचरभूमि कहां रहेगी? यही ऊसर तो यहांके पशुओंका मुख्य आधार है। नहीं, इसके लेनेका विचार छोड़ देना चाहिए। अब तो हाथमें रुपये आ गये हैं, कहीं न कहीं जमीन मिल ही जायगी। हां, अच्छी जमीन होगी तो इतने रुपयोंमें १० बीघेसे ज्यादा न मिल सकेगी। १० बीघेमें मेरा काम कैसे चलेगा?

प्रेमशङ्कर इसी उधेड़ बुनमें पड़े हुए थे। मूसलधार मेह बरस रहा था। सहसा उनके कानोंमें बादलोंके गर्जनेकी-सी आवाज आने लगी। लेकिन जब देरतक इस ध्वनिका तार न टूटा, मानो किसी बड़े पुलपरसे रेलगाड़ी चली जा रही हो, और थोड़ी देरमें गांवकी ओरसे आदमियोंके चिल्लाने और रोनेकी आवाजें आने लगीं तो वह घबराकर उठे और गांवकी तरफ नजर दौड़ायी। गांवमें हलचल मची हुई थी। लोग हाथोंमें सन और अरहरके डण्ठलोंकी मशालें लिये इधर उधर दौड़ते फिरते थे। कुछ लोग मशालें लिये नदीकी तरफ दौड़े जाते थे। एक क्षणमें मशालोंका प्रतिबिम्ब सा दीखने लगा, जैसे गांवमें पानी लहरें मार रहा हो। प्रेमशङ्कर समझ गये कि बाढ़ आ गयी।

अब विलम्ब करनेका समय न था। वह तुरन्त गांवकी तरफ चले, लेकिन थोड़ी ही दूर चलकर वह घुटनेतक पानीमें आ पहुंचे। बहावमें इतना वेग था कि उनके पांव मुश्किलसे सम्भल सकते

थे। कई बार यह गड्ढोंमें गिरते गिरते बचे। जल्दीमें जल थाहनेके लिये कोई लकड़ी भी न ले सके थे। जी चाहता था कि गांवमें उड़कर जा पहुंचूं और लोगोंकी यथासाध्य मदद करूं। लेकिन यहां एक एक पग रखना दुस्तर था। चारों तरफ घुपअंधेरा, ऊपर मुसलाधार वर्षा, नीचे वेगवती लहरोंका सामना, राहबाटका कहीं पता नहीं, केवल मशालोंको देखते चले जाते थे। कई बार घरोंके गिरनेका धमाका सुनाई दिया। गांवके निकट पहुंचे तो हाहाकार मचा हुआ था। गांवके समस्त प्राणी—युवा, वृद्ध, बालक मन्दिरके चबूतरेपर खड़े यह विध्वंसकारी मेघलीला देख रहे थे। प्रेमशंकरको देखते ही लोग चारों ओरसे आकर खड़े हो गये। स्त्रियां रोने लगीं।

प्रेमशङ्कर—बाढ़ क्या अबकी ही आयी है या और भी कभी आयी थी?

भवानीसिंह—हर दूसरे तीसरे साल आ जाती है। कभी कभी [illegible]लमें दो दो बेर आ जाती है।

[illegible]शङ्कर—उसके रोकनेका कोई प्रयत्न नहीं किया गया?

भवानी—इसका एक ही उपाय है। नदीके किनारे बांध बना दिया जाय। लेकिन कमसे कम २ हजारका खर्च है, वह हमारे किये नहीं हो सकता। इतना सामर्थ्य ही नहीं। कभी बाढ़ आती है, कभी सूखा पड़ता है। धन कहांसे आये।

प्रेमशङ्कर—जमींदारसे इस विषयमें तुमलोगोंने कुछ नहीं कहा?

भवानी—उनके कभी दर्शन ही नहीं होते, किससे कहें। सेठजीने यह गांव उन्हें पिण्डदानमें दिया था। बस, आप तो गयाजीमें बैठे रहते हैं। सालमें दो बार उनका मुन्शी आकर लगान वसूल कर ले जाता है। उससे कहो तो कहता है, हम कुछ नहीं जानते, पण्डाजी जानें। हमारे सिरपर चाहे जो पड़े, उन्हें अपने नफेसे काम है।

प्रेमशंकर—अच्छा, इस वक्त क्या उपाय करना चाहिये? कुछ बचा या सब डूब गया?

भवानी—अन्धेरेमें कुछ सूझ तो नहीं पड़ता, लेकिन अटकल-से जान पड़ता है कि घर एक भी नहीं बचा। कपड़े लत्ते, बर्त्तन भांड़े, खाट खटोले सब बह गये। इतनी मुहलत ही नहीं मिली कि अपने साथ कुछ लाते। जैसे बैठे थ वैसे ही उठकर भागे। ऐसी बाढ़ कभी नहीं आयी थी, जैसे आंधी आ जाय। बल्कि आंधीका हाल भी कुछ पहले मालूम हो जाता है, यहां तो कुछ पता ही न चला।

प्रेमशंकर—मवेशी भी बह गये होंगे?

भवानी—राम जाने, कुछ तुड़ाकर भागे होंगे, कुछ बह गये होंगे, कुछ गर्दनतक पानीमें खड़े होंगे। पानी दस पांच अङ्गुल और चढ़ा तो उनका भी पता न लगेगा।

प्रेमशंकर—कमसे कम उनकी रक्षा तो करनी ही चाहिए।

भवानी—हमें तो असाध्य जान पड़ता है।

प्रेम—नहीं, हिम्मत न हारो। भला कुल कित[illegible] होंगे?

भवानी—(आंखोंसे गिनकर) यही कोई ४०-५०।

प्रेम—तो पांच पांच आदमियोंकी एक एक टुकड़ी बना लो और सारे गांवका एक चक्कर लगाओ। जितने जानवर मिलें, उन्हें बटोर लो और मेरे झोपड़ेके सामने ले चलो। वहां जमीन बहुत ऊंची है, पानी नहीं जा सकता। मैं भी तुम लोगोंके साथ चलता हूं। जो लोग इस कामके लिये तैयार हों सामने निकल आयें।

प्रेमशंकरके उत्साहने लोगोंको उत्साहित किया। तुरत ५०-६० आदमी निकल आये। सभोंके हाथोंमें लाठियां थीं। प्रेमशंकरको लोगोंने रोकना चाहा, लेकिन वह किसी तरह न माने। एक लाठी हाथमें ले ली और आगे आगे चले। पग पगपर बहते

हुए झोपड़े, गिरे हुए वृक्षों तथा बहती हुई चारपाइयोंसे टकराना पड़ता था। गांवका नाम व निशान भी न था। गांववालोंको अपने-अपने घरोंका भी पता न चलता था। हां जहां तहां भैंसों या बैलोंके बोकारनेकी आवाज़ सुन पड़ती थी। कहीं कहीं पशु बहते हुए भी मिलते थे। यह रक्षक-दल सारी रात पशुओंके उद्धारका प्रयत्न करता रहा। उनका साहस अदम्य और उद्योग अविश्रान्त था। प्रेमशंकर अपनी टुकड़ीके साथ बारी-बारीसे अन्य दलोंकी सहायता करते रहते थे। उनका धैर्य और परिश्रम देखकर निर्बल हृदयवाले भी प्रोत्साहित हो जाते थे। जब दिन निकला और प्रेमशंकर अपने झोपड़ेपर पहुंचे तो २०० से अधिक पशुओंको आनन्दसे बैठे जुगाली करते हुए देखा। लेकिन इतनी कड़ी मेहनत कभी न की थी। ऐसे थक गये थे कि खड़ा होना मुश्किल था। अङ्ग अङ्गमें पीड़ा हो रही थी। ८ बजते बजते उन्हें ज्वर हो आया। लाला प्रभाशंकरने यह [illegible]सुना तो असन्तुष्ट होकर बोले, बेटा, परमार्थ करना बहुत अ[illegible]त है, लेकिन इस तरह प्राण देकर नहीं। चाहे तुम्हें अपने प्राणका मूल्य इन जानवरोंसे कम जान पड़ता हो, लेकिन हम ऐसे ऐसे लाखों पशुओंका तुम्हारे ऊपर बलिदान कर सकते हैं। श्रद्धा सुनेगी तो न जाने उसका क्या हाल होगा? यह कहते कहते उनकी आंखें भर आयीं।

तीन दिनतक प्रेमशंकरने सिर न उठाया और न लाला प्रभाशंकर उनके पाससे उठे। उनके सिरहाने बैठे हुए कभी विनय-पत्रिकाके पदोंका पाठ करते, कभी हनुमान-चालीसा पढ़ते। हाजीपुरमें दो ब्राह्मण भी थे। वह दोनों झोपड़ेमें बैठ दुर्गापाठ किया करते। अन्य लोग तरह तरहकी जड़ी बूटियां लाते। आसपासके देहातोंमें भी जो उनकी बीमारीकी खबर पाता, दौड़ा हुआ देखने आता। चौथे दिन ज्वर उतर गया, आकाश भी निर्मल हो गया और बाढ़ उतर गयी।

प्रभातका समय था। लाला प्रभाशंकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर घर चले गये थे। प्रेमशंकर चारपाईपर तकियेके सहारे बैठे हुए हाजीपुरकी तरफ चिन्तामय नेत्रोंसे देख रहे थे। चार दिन पहले जहां एक हरा भरा, लहलहाता हुआ गांव था, जहां मीलों तक खेतोंमें सुखद हरियाली छायी हुई थी, जहां प्रातःकाल गाय भैंसोंके खेड़के खेड़ चरते दिखायी देते थे, जहां झोपड़ोंसे चक्कियोंकी मधुर ध्वनि उठती थी और बालकवृन्द मैदानोंमें खेलते-कूदते दिखायी देते थे, वहां एक निर्जन मरुभूमि थी। गांवके अधिकांश प्राणी दूसरे गांवोंमें भाग गये थे, और कुछ लोग प्रेमशंकरके झोपड़ेके सामने सिरकियां डाले पड़े थे। न किसीके पास भोजन था, न वस्त्र। बड़ा शोकमय दृश्य था। प्रेमशंकर सोचने लगे, कितनी विषम समस्या है! इन दीनोंका कोई सहायक नहीं। आये दिन इनपर यही विपत्ति पड़ा करती है और ये बेचारे इसका निवारण नहीं कर सकते। साल-दो-सालमें जो कुछ तन-पेट काटकर संचय करते हैं वह जलदेवकी भेंट कर देते हैं। कितना ध[illegible] जीव इस भंवरमें समा जाते हैं, कितने घर मिट जाते हैं, [illegible] गृहस्थियोंका सर्वनाश हो जाता है और यह केवल इसलिए कि इनको गांवके किनारे एक सुदृढ़ बांध बनानेका सामर्थ्य नहीं है। न इतना धन है, न वह सहमति और सुसंगठन है जो धनका अभाव होनेपर भी बड़े-बड़े कार्य्य सिद्ध कर देता है। ऐसा बांध यदि बन जाय तो उससे इसी गांवकी रक्षा नहीं, आसपासके कई गांवोंका उद्धार हो सकता है। मेरे पास, इस समय चार-पांच हजार रुपये हैं। क्यों न इस बांधमें हाथ लगा दूं? गांवके लोग धन न दे सकें, मेहनत तो कर सकते हैं। केवल उन्हें संगठित करना होगा। दूसरे गांवके लोग भी निस्सन्देह इस काममें सहायता देंगे। ओह! कहीं यह बांध तैयार हो जाय तो इन गरीबोंका कितना कल्याण हो।

यद्यपि प्रेमशंकर बहुत अशक्त हो रहे थे, पर इन विचारोंने

उन्हें इतना उत्साहित किया कि तुरन्त उठ खड़े हुए और लोगोंके बहुत रोकनेपर भी हाथमें डण्टा लेकर नदीकी ओर बांधस्थलका निरीक्षण करने चल खड़े हुए। जेबमें पेन्सिल और कागज भी रख लिया। कई आदमी साथ हो लिये। नदीके किनारे खड़े वह बहुत देरतक रस्सीसे नाप नापकर कागज़पर बांधका नक़शा खींचते और उसकी लम्बाई, चौड़ाई, गर्भ आदिका अनुमान करते रहे। उन्हें उत्साहके वेगमें यह काम सहज जान पड़ता था, केवल काम छेड़ देनेकी जरूरत थी। उन्होंने वहीं खड़े-खड़े निश्चय किया कि वर्षा समाप्त होते ही श्रीगणेश कर दूंगा और ईश्वरने चाहा तो जाड़ेमें ही बांध तैयार हो जायगा। बांधके साथ साथ गांवको भी पुनर्जीवित कर दूंगा। बाढ़का भय तो रहेगा नहीं, दीवारें मजबूत बनवाऊंगा और फूसकी जगह खपरैलका छाजन रखूंगा।

भवानी सिंहने कहा, बाबूजी यह काम हमारे मानका नहीं है।

प्रेमशंकर—है क्यों नहीं, मैं तुम्हीं लोगोंसे यह काम पूरा [illegible]। तुमने इसे असाध्य समझ लिया है इसी कारण इतनी [illegible]लते हो।

भवानी—गांवमें आदमी ही कितने हैं?

प्रेम—दूसरे गांववाले तुम्हारी मदद करेंगे, काम शुरू तो होने दो।

भवानी—जैसा बांध आप सोच रहे हैं ५—६ हजारसे कममें न बनेगा।

प्रेम—रुपयोंकी कोई चिन्ता नहीं। कातिक आ रहा है, बस काम शुरू कर दो, दो तीन महीनेमें बांध तैयार हो जायगा। रुपयोंका प्रबन्ध जो कुछ मुझसे हो सकेगा मैं कर दूंगा।

भवानी—आपहीका भरोसा है।

प्रेम—ईश्वरपर भरोसा रखो।

भवानी—मजूरीकी मदद मिल जाय तो अगहनमें ही बांध तैयार हो सकता है।

प्रेम— इसका मैं वचन दे सकता हूं। यहां ६०, ७०, बीघेका अच्छा चक निकल आयेगा।

भवानी—तब हम आपका झोपड़ा भी यहीं बना देंगे। वह जगह ऊंची है लेकिन कभी कभी वहां भी बाढ़ आ जाती है।

प्रेम—तो आज हो भागे हुए लोगोंको इसकी सूचना दे दो और पड़ोसके गांवोंमें भी खबर भेज दो।

१८

गायत्री उन महिलाओंमें थी जिनके चरित्रमें रमणीयता और लालित्यके साथ पुरुषोंका साहस और धैर्य्य भी मिला होता है। यदि वह कंघी और आईनेपर जान देती थी तो कच्ची सड़कोंके गर्द और धूलसे भी न भागती थी; प्यानोपर मोहित थी तो देहातियोंके बेसुरे आलापका आनन्द भी उठा सकती थी; सरस साहित्यपर मुग्ध होती थी तो खसरा और खतौनीसे भी जी न चुराती थी। लखनऊसे आये हुए उसे दो साल हो गये। [illegible] एक दिन भी अपने विशाल भवनमें आरामसे न बैठी। [illegible] गांव जाती, कभी उस छावनीमें ठहरती, कभी तहसील [illegible] आना पड़ता, कभी सदर जाना पड़ता, बारबार अधिकारियोंसे मिलनेकी जरूरत पड़ती। उसे अनुभव हो रहा था कि दूसरोंपर शासन करनेके लिए स्वयं कितना झुकना पड़ता है। उसके इलाकोंमें सर्वत्र लूट मची हुई थी, कारिन्दे आसामियोंको नोचे खाते थे। सोचती, क्या इन सब मुखतारों और कारिन्दोंको जवाब दे दूं? मगर काम कौन करेगा? और यही क्या मालूम है कि इनकी जगह जो नये लोग आयेंगे वे इनसे ज्यादा नेकनीयत होंगे। मुश्किल तो यह है कि प्रजाको इस अत्याचारसे उतना कष्ट भी नहीं होता जितना मुझे होता है। कोई शिकायत नहीं करता, कोई फ़रियाद नहीं करता, उन्हें अन्याय सहनेका ऐसा अभ्यास हो गया है कि वह इसे भी जीवनकी एक साधारण दशा समझते

हैं। उससे मुक्त होनेका कोई यत्न भी हो सकता है इसका उन्हें ध्यान भी नहीं होता।

इतना ही नहीं था। प्रजा गायत्रीकी सदु चेष्टाओंको सन्देह-को दृष्टिसे देखती थी। उनको विश्वास ही न होता था कि उनकी भलाईके लिये कोई जमींदार अपने नौकरोंको दण्ड दे सकता है। वर्त्तमान अन्याय उनका ज्ञात विषय था, इसका उन्हें भय न था। सुधारके मन्तव्योंसे वे भयभीत होते थे, यह उनके लिये अज्ञात विषय था। उन्हें शंका होती थी कि कदाचित यह हम-लोगोंको निचोड़नेकी कोई नयी विधि है। अनुभव भी इस शंकाको पुष्ट करता था। गायत्रीका हुक्म था कि किसानोंको नाम मात्र सूदपर रुपये उधार दिये जायं, लेकिन कारिन्दे महाजनोंसे भी ज्यादा सूद लेते थे। उसने ताकीद कर दी थी कि खत्तोंसे असामियोंको अष्टांश पर अनाज दिया जाय लेकिन यहां अष्टांश न देकर लोग दूसरोंसे सवाई डेवढ़ेपर अनाज लाते थे। वह अपने [illegible]रमें सफाईका प्रबन्ध भी करना चाहती थी। गोबर बटोरनेके लिये गांवसे बाहर खत्ते बनवा दिये थे। मोरियोंको साफ करनेके लिये भंगी लगा दिये थे। लेकिन प्रजा इसे 'मुदाख़लतबेजा' समझती थी और डरती थी कि कहीं रानी साहब हमारे घूरों और खत्तोंपर तो हाथ नहीं बढ़ा रही हैं।

जाड़ोंके दिन थे। गायत्री राप्ती नदीके किनारेके गांवोंमें दौरा कर रही थी। अबकी बाढ़में कई गांव डूब गये थे। कृषकों-ने छूटकी प्रार्थना की थी। सरकारी कर्मचारियोंने इधर उधर देख कर लिख दिया था, छूटकी ज़रूरत नहीं है। गायत्री अपनी आंखोंसे इन ग्रामोंकी दशा देखकर यह निर्णय करना चाहती थी कि कितनी छूट होनी चाहिये। संध्या हो गई थी। वह दिन भरकी थकी मांदी, बिन्दापुरकी छावनीमें उदास पड़ी हुई थी। सारा मकान खंडर हो गया था। इस छावनीकी मरम्मतके लिए उसने कारिन्देको सैकड़ों रुपये दिये थे लेकिन उसकी दशा

देखनेसे ज्ञात होता था कि बरसोंसे खपरेल भी नहीं बदला गया। दीवारें गिर गई थी, कड़ियोंके टूट जानेसे जगह जगह छत बैठ गई थी। आंगनमें कूड़ेके ढेर लगे हुए थे। यहांके कारिन्देको वह बहुत ईमानदार समझती थी। उसके कुटिल व्यवहारपर चित्त बहुत खिन्न हो रहा था। सामने चौकीपर पूजाके लिये आसन बिछा हुआ था लेकिन उसका उठनेका जी न चाहता था कि इतनेमें एक चपरासीने आकर कहा, सरकार कानूनगो साहब आये हैं।

गायत्री उठकर आसनपर जा बैठी और इस भयसे कि कहीं कानूनगो साहब चले न जायें, शीघ्रतासे संध्या समाप्त की और परदा कराके कानूनगो साहबको बुलाया।

गायत्री—कहिये खांसाहब, मिजाज तो अच्छा है, क्या आज कल पड़ताल हो रही है?

कानूनगो—जी हां, आजकल हजूरहीके इलाकेका दौरा कर रहा हूं।

गायत्री—आपके विचारमें बाढ़से खेतीको कितना नुकसान हुआ?

कानूनगो—अगर सरकारी तौरपर पूछती हैं तो रुपयेमें एक आना, निजके तौरपर पूछती हैं तो रुपयेमें बारह आने।

गायत्री—आप लोग यह दोरंगी चाल क्यों चलते हैं? आप जानते नहीं हैं कि इससे प्रजाका कितना नुकसान होता है।

कानूनगो—हजूर यह न पूछें, दोरंगी चाल न चलें और असली बात लिख दें तो एक दिनमें नालायक बनाकर निकाल दिये जायं। हमलोगोंसे सच्चा हाल जाननेके लिये तहकीकात नहीं कराई जाती, बल्कि उसको छिपानेके लिये। पेटके बदौलत सब कुछ करना पड़ता है।

गायत्री—पेटको गरीबोंकी हायसे भरना तो अच्छा नहीं। अगर अपनी तरफसे प्रजाकी कुछ भलाई न कर सकें तो कम-से

कम अपने हाथों उनका अहित तो न करना चाहिए। इलाकेका और क्या हाल है?

कानूनगो—आपको सुनकर रंज होगा। सारनमें हजूरकी कई बीघे सीर असामियोंने जोत ली है, जगरांवके ठाकुरोंने हुजूरके नये बागको जोतकर खेत बना लिया है और मेंड़ें खोद डाली हैं। जबतक फिरसे पैमाइश न हो, कुछ पता ही नहीं चल सकता कि आपकी कितनी जमीन उन्होंने खायी है।

गायत्री—क्या वहांका कारिन्दा सो रहा है? मेरा तो इन झगड़ोंसे नाकोदम है।

कानूनगो—हजूरकी जानिबसे पैमाइशकी एक दर्खास्त पेश हो जाय, बस, बाकी काम मैं कर लूंगा। हां, सदर कानूनगो साहबकी कुछ खातिर करनी पड़ेगी। मैं तो हजूरका गुलाम हूं, ऐसी सलाह हरगिज न दूंगा जिसमें हजूरको नुकसान हो। इतनी अर्ज और करूंगा कि हजूर एक मैनेजर रख लें। गुस्ताखी माफ, इतने बड़े इलाकेका इन्तजाम करना हजूरका काम नहीं है।

गायत्री—मैनेजर रखनेकी तो मुझे भी फिक्र है, लेकिन लाऊं कहांसे? कहीं वह महाशय भी कारिन्दोंसे मिल गये तो रही सही बात भी बिगड़ जायगी। उनका यह अन्तिम आदेश था कि मेरी प्रजाको कोई कष्ट न होने पाये। उसी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं यों अपनी जान खपा रही हूं। आपकी दृष्टिमें कोई ऐसा ईमानदार और चतुर आदमी हो, जो मेरे सिरसे यह भार उतार ले तो बतलाइये।

कानूनगो—बहुत अच्छा, मैं खयाल रखूंगा। मेरे एक दोस्त हैं, ग्रेजुयेट, बड़े लायक और तजरबेकार। खानदानी आदमी हैं। मैं उनसे जिक्र करूंगा। वह अगर राजी हो गये, तो फिर हजूरको कोई तरद्दुद न रहेगा। तो मुझे क्या हुक्म होता है? सदर कानूनगो साहबसे बातचीत करूं?

गायत्री—जी हां, कह तो रही हूं। वही लाला साहब हैं न? लेकिन वह तो बेतरह मुंह फैलाते हैं।

कानूनगो—हजूर खातिर जमा रक्खें, मैं उन्हें सीधा कर लूंगा। औरोंके साथ वह चाहें जितना मुंह फैलायें, यहां उनकी दाल न गलने पायेगी। बस, हजूरके पांच सौ रुपये खर्च होंगे। इतनेहीमें मैं दोनों गांवोंकी पैमाइश करा दूंगा।

गायत्री—(मुस्कुराकर) इसमें कमसे कम आधा तो आपके हाथ जरूर ही लगेगा।

कानूनगो—मुआज़ल्लाह, जनाब यह क्या फरमाती हैं। मैं मरते दमतक हजूरको मुगालता न दूंगा। हां, काम पूरा हो जानेपर हजूर जो कुछ अपनी खुशीसे अता करेंगी वह सिर आंखोंपर रक्खूंगा।

गायत्री—तो यह कहिये, मुझे पांच सौके ऊपर कुछ और भी आपको भेंट करना पड़ेगा। मैं इतना मंहगा सौदा नहीं करती।

यही बातें हो रही थीं कि पण्डित लेखराजजीका शुभागमन हुआ। रेशमी अचकन, रेशमी पगड़ी, रेशमी चादर, रेशमी धोती, पांवमें दिल्लीका सलमशाही कामदार जूता, माथेपर चन्दन, अधरोंपर पानकी लाली, आंखोंपर सुनहरी ऐनक, केवड़ेमें बसे हुए, आकर कुरसीपर बैठ गये।

गायत्री—पण्डितजी महाराजको पालागन करती हूं।

लेखराज—आशीर्वाद, आज तो सरकारको बहुत कष्ट हुआ।

गायत्री—क्या करूं, मेरे पुरखाओंने भी बिना खेतकी खेती, बिना जमीनकी जमींदारी, बिना धनकी महाजनीकी प्रथा निकाली होती तो मैं भी आपहीकी तरह चैन करती।

लेखराज—(हंसकर) कानूनगो साहब, आप सुनते हैं सरकारकी बातें। ऐसे चुनकर कह देती हैं कि उसका जवाब ही न बन पड़े। सरकारको परमात्माने रानी बनाया है। हम तो सरकारके द्वारके भिक्षुक हैं। सरकारने धर्मशालाके शिलारोपणका शुभ मुहूर्त पूछा था वह मैंने विचार लिया है। इसी पक्षकी एकादशीको प्रातःकाल सरकारके हाथसे नींव पड़ जानी चाहिए।

गायत्री—यह सुकीर्ति मेरे भाग्यमें नहीं लिखी है। आपने किसी रईसको अपने हाथों सार्वजनिक इमारतोंका आधार रखते देखा है? लोग अपने रहनेके मकानोंकी नींव अधिकारियोंसे रखवाते हैं। मैं इस प्रथाको क्योंकर तोड़ सकती हूं? जिलाधीशको शिलारोपणके लिये निमंत्रित करूंगी। उन्हींके नामपर धर्मशालाका नामकरण होगा। किसी ठीकेदारसे भी आपने बातचीत की?

लेखराज—जी हां, मैंने एक ठीकेदार ठीक कर लिया है। सज्जन पुरुष है। इस शुभकार्य्यको बिना लाभके करना चाहता है। केवल लागत मात्र लेगा।

गायत्री—आपने उसे नकशा दिखा दिया है न? कितनेपर इस कामका ठीका लेना चाहता है?

लेखराज—वह कहता है, दूसरा ठीकेदार जितना मांगे उससे मुझे सौ रुपये कम दिये जायं।

गायत्री—तो अब एक दूसरा ठीकेदार लाना पड़ा। वह कितना तखमीना करता है?

लेखराज—उसके हिसाबसे ६० हजार पड़ेंगे। माल मसाला सब औवल दर्जेका लगायेगा। ६ महीनेमें काम पूरा कर देगा।

गायत्रीने इस इमारतका नकशा लखनऊमें बनवाया था। वहां इसका तखमीना ४० हजार किया गया था। व्यङ्ग-भावसे बोली, तब तो वास्तवमें आपका ठीकेदार बड़ा सज्जन पुरुष है। इसमेंसे कुछ न कुछ तो आपके ठाकुरजीपर जरूरही चढ़ाये जायंगे।

लेखराज—सरकार तो दिल्लगी करती हैं। मुझे सरकारसे योंही क्या कम मिलता है कि ठीकेदारसे कमीशन ठहराता? कुछ इच्छा होगी तो मांग लूंगा, नीयत क्यों बिगाड़ूं?

गायत्री—मैं इसका जवाब एक सप्ताहमें दूंगी।

कानूनगो—और मुझे क्या हुक्म होता है? पण्डितजी, आपने

भी तो देखा होगा, सारन और जगरांवमें हजूरकी कितनी जमीन दब गयी है।

पण्डित—जी हां, देखा क्यों नहीं, १०० बीघेसे कम न दबी होगी।

गायत्री—मैं जमीन देखकर आपको इत्तला दूंगी। अगर आपसके समझौतेसे काम चल जाय, तो राड़ बढ़ानेकी जरूरत नहीं।

दोनों महानुभाव निराश होकर बिदा हुए। दोनों मन ही मन गायत्रीको कोस रहे थे। कानूनगोने कहा, चालाक औरत है, बड़ी मुश्किलसे हत्थेपर चढ़ती है। लेखराज बोले, एक एक पैसा दांतसे पकड़ती है। न जानें, बटोरकर क्या करेगी, कोई आगे-पीछे भी तो नहीं है।

अन्धेरा हो चला था। गायत्री सोच रही थी, इन लुटेरोंसे क्योंकर बचूं। इनका बस चले तो दिन दहाड़े लूट लें। इतने नौकर हैं लेकिन ऐसा कोई नहीं जिसे इलाकेकी उन्नतिका ध्यान हो। ऐसा सुयोग्य आदमी कहां मिलेगा? मैं अकेले कहां कहां दौड़ सकती हूं। ठीकेपर दे दूं तो इससे अधिक लाभ हो सकता है। सब झंझटोंसे मुक्त हो जाऊंगी, लेकिन असामी मर मिटेंगे। ठीकेदार इन्हें पीस डालेगा। कृष्णार्पण कर दूं तोभी यही हाल होगा। कहीं ज्ञानशङ्कर राजी हो जायं तो इलाकेके भाग जाग उठें। कितने अनुभवशील पुरुष हैं, कितने मर्मज्ञ, कितने सूक्ष्म-दर्शी! वह आ जायं तो इन लुटेरोंसे मेरा गला छूट जाय। सारा इलाका चमन हो जाय। लेकिन मुसीबत तो यह है कि उनकी बातें सुनकर मेरी भक्ति और धार्मिक विश्वास डावांडोल हो जाते हैं। अगर उनके साथ मुझे दो चार महीने और लख-नऊ रहनेका अवसर मिलता तो मैं अबतक फैसनेबिल लेडी बन गयी होती। उनकी वाणीमें विचित्र प्रभाव है। मैं तो उनके सामने बावलीसी हो जाती हूं। वह मेरा कितना अदब करते

थे। उनके स्वभावमें थोड़ीसी उच्छृङ्खलता अवश्य है, लेकिन मैं भी तो परछाईं की तरह उनके पीछे-पीछे लगी रहती थी। छेड़छाड़ किया करती थी। न जाने उनके मनमें मेरी ओरसे क्या क्या भावनायें उठी हों। पुरुषोंमें यह बड़ा अवगुण है कि हास्य और विनोदको कुवृत्तियोंसे अलग नहीं रख सकते। इसका पवित्र आनन्द उठाना उन्हें आता ही नहीं। स्त्री जरा हंसकर बोली और उन्होंने समझ लिया कि वह मुझपर लट्टू हो गयी। उन्हें जरासी उंगली पकड़नेको मिल जाय, फिर तो पहुंचा पकड़ते देर नहीं लगती। मगर ज्ञानशङ्कर यहां आनेपर तैयार हो गये, तो उन्हें यहीं रक्खूंगी। यहींसे वह इलाकेका प्रबन्ध करेंगे। जब कोई विशेष काम होगा तो शहर जायेंगे। वहां भी मैं उनसे दूर दूर रहूंगी। भूलकर भी घरमें न बुलाऊंगी। नहीं, अब उन्हें इतनी धृष्टता करनेका साहस ही न होगा। बेचारा कितना लज्जित था, मेरे सामने ताक न सकता था। स्टेशनपर मुझे विदा करने आया था, मगर दूर बैठा रहा, जबान तक न खोली।

गायत्री इन्हीं विचारोंमें मग्न थी कि एक चपरासीने आजकी डाक लाकर उसके सामने रख दी। डाकघर यहांसे तीन कोसपर था। प्रतिदिन एक बेगार डाक लेने जाया करता था।

गायत्रीने पूछा—वह आदमी कहां है? क्यों रे? अपनी मजूरी पा गया?

बेगार—हां सरकार, पा गया।

गायत्री—कम तो नहीं है?

बेगार—नहीं सरकार, खूब खानेभरको मिल गया।

गायत्री—कल तुम जाओगे कि कोई दूसरा आदमी ठीक किया जाय?

बेगार—सरकार मैं तो हाजिर ही हूं, दूसरा क्यों जायगा?

गायत्री चिट्ठियां खोलने लगी। अधिकांश चिट्ठियां सुगंधित

तेल और अन्य औषधियोंके विज्ञापकोंको थी। गायत्रीने उन्हें उठाकर रद्दीकी टोकरीमें डाल दिया। एक पत्र राय कमला नन्दका था। इसे उसने उत्सुकतासे खोला और पढ़ते ही उसकी आंखें आनन्दपूर्ण गर्वसे चमक उठीं, मुखमंडल नवपुष्पके समान खिल गया। उसने तुरत वह पैकेट खोला जिसे वह अबतक किसी औषधालयका सूचीपत्र समझ रही थी। पृष्ठ खोलते ही उसे अपना चित्र दिखाई दिया। पहले लेखका शीर्षक था "गायत्री देवी।" लेखकका नाम था "ज्ञानशंकर बी०ए०" गायत्री अंग्रेज़ी कम जानती थी लेकिन स्वाभाविक बुद्धिमत्तासे वह साधारण पुस्तकोंका आशय समझ लेती थी। उसने बड़ी उत्सुकतासे लेखको पढ़ना शुरू किया और यद्यपि २० पृष्ठोंसे कम न थे पर उसने आध ही घण्टेमें सारा लेख समाप्त कर दिया और तब गौरवोन्मत्त नेत्रोंसे इधर उधर देखकर एक लम्बी सांस ली। ऐसा आनन्दोन्माद उसे अपने जीवनमें शायद ही प्राप्त हुआ हो। उसका मानप्रेम कभी इतना उल्लसित न हुआ था। ज्ञानशंकरने गायत्रीके चरित्र, उसके सद्गुणों और सत्कार्य्योंका इतनी कुशलतासे उल्लेख किया था कि भक्तिकी जगह लेखमें ऐतिहासिक गम्भीरताका रङ्ग आ गया था। इसमें सन्देह नहीं कि एक एक शब्दसे श्रद्धा टपकती थी किन्तु पाठकको यह विवेकहीन प्रशंसा नहीं, ऐतिहासिक उदारता प्रतीत होती थी। इस शैलीपर वाक्य-नैपुण्य सोनेमें सुगन्ध हो गया था। गायत्री बार बार आईनेमें अपना स्वरूप देखती थी, उसके हृदयमें एक असीम उत्साह प्रवाहित हो रहा था, मानों वह विमानपर बैठी हुई स्वर्गको जा रही हो। उसकी धमनियोंमें रक्तकी जगह उच्च भावोंका सञ्चार होता हुआ जान पड़ता था। इस समय उसके द्वारपर भिक्षुकोंकी एक सेना भी होती तो निहाल हो जाती। कानूनगो साहब अगर आ जाते, तो पांच सौके बदले पांच हजार ले भागते और पण्डित लेखराजका तखमीना दूना भी होता तो स्वीकार कर लिया

जाता। उसने कई दिनसे यहांके कारिन्देसे बात न की थी, उससे रूठी हुई थी। इस समय उसे अपराधियोंकी भांति खड़े देखा तो प्रसन्नमुख होकर बोली, कहिये, मुन्शीजी, आजकल तो कच्चे घड़ेकी खूब छनती होगी। मुन्शीजी धीरे धीरे सामने आकर बोले, हजूर, जनेऊकी सौगन्द है, जबसे सरकारने मना कर दिया मैंने उसकी सूरततक नहीं देखी।

यह कहते हुए उन्होंने अपने साहित्यप्रेमका परिचय देनेके लिये पत्रिका उठा ली और पन्ने उलटने लगे। अकस्मात् गायत्री-का चित्र देखकर उछल पड़े। बोले, सरकार यह तो आपकी तस्वीर है। कैसा बनाया है कि अब बोली 'अब बोली। क्या कुछ सरकारका हाल भी लिखा है?

गायत्रीने बेपरवाईसे कहा, हां, तस्वीर है तो हाल क्यों न होगा? कारिन्दा दौड़ा हुआ बाहर गया और यह खबर सुनायी। कई कारिन्दे और चपरासी भोजन बना रहे थे, कोई भंग पीस रहा था, कोई गा रहा था। सबके सब आकर तस्वीरपर टूट पड़े। छीना झपटी होने लगी, पत्रिकाके कई पन्ने फट गये। यों गायत्री किसीको अपनी किताबें छूने न देती थी, पर इस समय ज़रा भी न बोली।

एक मुंहलगे चपरासीने कहा, सरकार कुछ हमलोगोंको भी सुना दें।

गायत्री—यह मुझसे न होगा। सारा पोथा भरा हुआ है, कहांतक सुनाऊंगी? दो चार दिनमें इसका अनुवाद किसी हिन्दी पत्रमें छप जायगा, तब पढ़ लेना।

लेकिन जब आदमियोंने एक स्वर होकर आग्रह करना शुरू किया तो गायत्री विवश हो गई। इधर-उधरसे कुछ अनुवाद करके सुनाया। यदि उसे अंग्रेजीकी अच्छी योग्यता होती तो कदाचित् वह अक्षरशः सुनाती।

एक कारिन्देने कहा, पत्रवालोंको न जाने यह सब हाल कैसे मिल जाते हैं।

दूसरे कारिन्देने कहा, उनके गोइन्दे सब जगह विचरते रहते हैं। कहीं कोई बात हो, वह उनके पास पहुंच जाती है।

गायत्रीको इन वार्ताओंमें असीम आनन्द आ रहा था। प्रातःकाल उसने ज्ञानशंकरको एक विनयपूर्ण पत्र लिखा। इस लेख-की चर्चा न करके केवल अपनी विडम्बनाओंका वृत्तान्त लिखा और साग्रह निवेदन किया कि आप आकर मेरे इलाकेका प्रबन्ध अपने हाथोंमें लें। इस डूबती हुई नौकाको पार लगायें। उसका मनोमालिन्य मिट गया था। खुशामद अभिमानका सिर नीचा कर देती है। गायत्री अभिमानकी पुतली थी। ज्ञानशंकरने अपने श्रद्धाभावसे उसे वशीभूत कर लिया।

१९

ज्ञानशंकरको गायत्रीका पत्र मिला, तो फूले न समाये। हृदयमें भांति भांतिकी मनोहर सुखद कल्पनायें तरंगे मारने लगीं। सौभाग्यदेवी जीवन-संकल्पकी भेंट लिये उनका स्वागत करनेको तैयार खड़ी थी। उनका मधुर स्वप्न इतनी जल्द फलीभूत होगा, इसकी उन्हें आशा न थी। विधाताने एक बड़ी रियासतके स्वामी बननेका अवसर प्रदान कर दिया था। यदि अब भी वह इससे लाभ न उठा सकें तो उनका दुर्भाग्य।

किन्तु गोरखपुर जानेके पहले वह लखनपुरकी ओरसे निश्चिन्त हो जाना चाहते थे। जबसे प्रेमशंकरने उनसे अपने हिस्सेका नफ़ा मांगा था उनके मनमें नाना प्रकारकी शंकायें उठ रही थीं। लाला प्रभाशंकरका वहां आना जाना उन्हें और भी खटकता था। उन्हें सन्देह होता था कि यह बुड्ढा घाग अवश्य कोई न कोई दांव खेल रहा है। यह पितृवत् प्रेम अकारण नहीं। प्रेमशंकर चतुर हों, लेकिन इस चाणक्यके सामने अभी लौंडे हैं। इनकी

कुटिल कामना यही होगी कि उन्हें फोड़कर लखनपूरके आठ आने, अपने लड़कोंके नाम हिब्बा करा ले या किसी दूसरे महाजनके यहां बय कराके बीचमें दस पांच हज़ारकी रकम उड़ा ले। ज़रूर यही बात है, नहीं तो जब अपनी ही रोटियोंके लाले पड़े हैं तो यह पकवान बन बन न जाते, अब तो श्रद्धाही मेरी हारी हुई बाजीका फर्ज़ी है। अब उसे यह पढ़ाऊं कि तुम अपने गुज़ारेके लिये आधा लखनपूर अपने नाम करा लो, उनकी कौन चलाये, अकेले हैं ही, न जाने कब कहीं चल दें तो तुम कहींकी न रहो। यह चाल सीधी पड़ जाय तो अब भी लखनपूर अपना हो सकता है। श्रद्धाको तीर्थयात्रा करनेके लिये भेज दूंगा। एक न एक दिन मरही जायगी। जीती भी रही तो हरद्वारमें बैठी गंगास्नान करती रहेगी। लखनपूरकी ओरसे मुझे कोई चिन्ता न रहेगी।

यों निश्चय करके ज्ञानशंकर अन्दर गये। दैवयोगसे श्रद्धा उनके इच्छानुसार अपने कमरेमें अकेली बैठी हुई मिल गयी। मायाको कई दिनसे ज्वर आ रहा था, विद्या अपने कमरेमें बैठी हुई उसे पंखा झल रही थी।

ज्ञानशंकर चारपाईपर बैठकर श्रद्धासे बोले, देखी चाचासाहबकी धूर्तता। यह तो मैं पहले ही ताड़ गया था कि यह महाशय कोई न कोई स्वांग रच रहे हैं। सुना है लखनपूरके बय करनेकी बातचीत हो रही है।

श्रद्धा—(विस्मित होकर) तुमसे किसने कहा? चचासाहबको मैं इतना नीच नहीं समझती। मुझे पूरा विश्वास है कि वह केवल प्रेमवश यहां आते जाते हैं।

ज्ञान—यह तुम्हारा भ्रम है। यह लोग ऐसे निःस्वार्थ प्रेम करनेवाले जीव नहीं हैं। जिसने जीवनपर्यन्त दूसरोंको ही मूंड़ा हो वह अब अपना गंवाकर भला क्या प्रेम करेगा? मतलब कुछ और ही है। भैयाका माल है, चाहे बेचें या रखें, चाहे चचासाहबको दे दें या लुटा दें। इसका उन्हें पूरा अधिकार है, मैं बीचमें

कूदनेवाला कौन होता हूं ? हां, इतना अवश्य है कि तुम फिर कहींकी न रहोगी।

श्रद्धा—अगर तुम्हारा ही कहना ठीक हो, तो मेरा इसमें क्या बस है ?

ज्ञान—बस क्यों नहीं है ? आखिर तुम्हारे गुजारेका भार तो उन्हींपर है। तुम आठ आने लखनपूर अपने नाम लिखा सकती हो। भैयाको कोई आपत्ति नहीं हो सकती। तुम्हें संकोच हो तो मैं स्वयं जाकर उनसे मुआमला तै कर सकता हूं। मुझे विश्वास है कि भैया इन्कार न करेंगे और करें भी तो मैं उन्हें कायल कर सकता हूं। जब गांव तुम्हारे नाम हो जायगा तब उन्हें बय करनेका अधिकार न रहेगा और चचा साहबकी दाल भी न गलेगी।

श्रद्धा विचारोंमें डूब गयी। जब उसने कई मिनटतक सिर न उठाया तो ज्ञानशंकरने पूछा, क्या सोचती हो ? इसमें कोई हरज है ? जायदाद नष्ट हो जाय वह अच्छा है या घरमें बनी रहे, वह अच्छा है ?

अब श्रद्धाने सिर उठाया और गौरवपूर्ण भावसे बोली, मैं ऐसा नहीं कर सकती। उनकी जो इच्छा हो वह करें, चाहे अपना हिस्सा बेच दें या रक्खें। वह स्वयं बुद्धिमान हैं जो उचित समझेंगे वह करेंगे। मैं उनके पांवमें बेड़ी क्यों डालूं ?

ज्ञानशङ्करने रुष्ट होकर उत्तर दिया, लेकिन यह सोचा है कि जायदाद निकल गयी तो तुम्हारा निर्वाह क्योंकर होगा। वह कल ही फिर अमेरिकाकी राह लें तो ?

श्रद्धा—मेरी कुछ चिन्ता न करो। वह मेरे स्वामी हैं, जो कुछ करेंगे उसीमें मेरी भलाई है। मुझे विश्वास ही नहीं होता कि वह मुझे निरवलम्ब छोड़ जायंगे।

ज्ञान—तुम्हारी जैसी इच्छा। मैंने ऊंच नीच सुझा दिया अगर पीछेसे कोई बात बने बिगड़े तो मेरे सिर दोष न रखना।

ज्ञानशङ्कर बाहर आये तो उनका चित्त उद्विग्न हो रहा था।

श्रद्धाके संतोष और पतिभक्तिने उन्हें एक नई उलझनमें डाल दिया। यह तो उन्हें मालूम था कि श्रद्धा मेरे प्रस्तावको सुगमतासे स्वीकार न करेगी, लेकिन उसमें इतना दृढ़ त्यागभाव है, इसका उन्हें पता न था। अपने मानव प्रकृति-ज्ञानपर उन्हें घमंड था। श्रद्धाके त्यागभावने उसे नष्ट कर दिया। ओह! स्त्रियां कितनी अविवेकिनी होती हैं! मैंने महीनों इसे तोतेकी भांति पढ़ाया, उसका यह फल! वह अपने कमरेमें देरतक बैठे यह सोचते रहे कि क्योंकर यह गुत्थी सुलझे? वह आज ही इस दुविधाका अन्त करना चाहते थे। यदि वह श्रद्धाका भार मुझपर छोड़ना चाहते हैं तो उन्हें लखनपुर उसके नाम लिखाना पड़ेगा। मैं उन्हें मजबूर करूंगा। खूब खुली-खुली बातें होंगी। इसी असमंजसमें वह घरसे निकले और हाजीपूरकी ओर चले। रास्तेभर वह इसी चिन्तामें पड़े रहे। यह संकोच भी होता था कि इतने दिनोंके बाद मिलने भी चला तो स्वार्थवश होकर। प्रेमशङ्कर जबसे हाजीपूर रहने लगे थे, ज्ञानबाबूने एक बार भी वहां जानेका कष्ट न उठाया था। कभी कभी अपने घरपर ही उनसे मुलाकात हो जाती थी। मगर इधर ३-४ महीनोंसे दोनों भाइयोंमें भेंट ही न हुई थी।

ज्ञानशङ्कर हाजीपूर पहुंचे तो शाम हो गयी थी। पूसका महीना था। खेतोंमें चारो ओर हरियाली छाई हुई थी। सरसों, मटर, कुसुम, अलसीके नीले पीले ऊदे फूल अपनी छटा दिखा रहे थे। कहीं चंचल तोतोंके झुण्ड थे, कहीं उचक्के कौवोंके गोल। जगह-जगह सारसके जोड़े अहिंसापूर्ण विचारमें मग्न खड़े थे। युवतियां सिरोंपर घड़े रक्खे नदीसे पानी ला रही थीं, कोई खेतमें बथुयेका साग तोड़ रही थी, कोई बैलोंको खिलानेके लिये हरियालीका गट्ठा सिरपर रक्खे चली आती थी। सरल, शान्तिमय जीवनका पवित्र दृश्य था। शहरकी चिल्लपों, दौड़धूपके सामने यह शांति अतीव सुखद प्रतीत होती थी।

ज्ञानशङ्कर एक आदमीके साथ प्रेमशङ्करके झोपड़ेपर आये तो वहांकी सुरम्य शोभा देखकर चकित हो गये। नदीके किनारे एक ऊंचे और विस्तृत टीलेपर लताओं और बेलोंसे सजा हुआ ऐसा ज्ञान पड़ता था मानों किसी उच्चात्माका संतोषपूर्ण हृदय है। झोपड़ेके सामने जहांतक निगाह जाती थी प्रकृतिकी पुष्पित और पल्लवित छटा दिखायी देती थी। प्रेमशंकर झोपड़ेके सामने खड़े बैलोंको चारा डाल रहे थे। ज्ञानशंकरको देखते ही बड़े प्रेमसे गले मिले और घरका कुशल-समाचार पूछनेके बाद बोले, तुम तो जैसे मुझे भूल ही गये, इधर आनेकी कसम खा ली।

ज्ञानशंकरने लज्जित होकर कहा, यहां आनेका विचार तो कई दिनसे था पर यह अवकाश ही नहीं मिलता था। इसे अपने दुर्भाग्यके सिवा और क्या कहूं? आप मुझसे इतने समीप हैं, फिर भी हमारे बीचमें सौ कोसका अन्तर है। यह मेरी नैतिक दुर्बलता और बिरादरीका लिहाज है। मुझे बिरादरीके हाथों जितने कष्ट झेलने पड़े वह मैं ही जानता हूं। यह स्थान तो बड़ा रमणीक है। यह खेत किसके हैं?

प्रेमशंकर—इसी गांवके असामियोंके हैं। तुम्हें तो मालूम होगा, सावनमें यहां बाढ़ आ गयी थी। सारा गांव डूब गया था, कितने ही बैल बह गये, यहांतक कि झोपड़ोंका भी पता न चला। तबसे लोगोंको सहकारिताकी जरूरत मालूम होने लगी है। सब असामियोंने मिलकर यह बांध बना लिया है और यह ६० बीघेका चक निकल आया। इसके चारों ओर ऊंची मेड़ें खींच दी हैं। जिसके जितने बीघे खेत हैं उससे उसी परतेसे बीज और मजूरी ली जायगी। उपज भी उसी परतेसे बांट दी जायगी। मुझे लोगोंने प्रबन्धकर्त्ता बना रक्खा है। इस ढङ्गसे काम करनेसे बड़ी किफायत होती है। जो काम १० मजूर करते थे वही काम ६-७ मजूरोंसे पूरा हो जाता है। जुतायी और सिंचायी भी उत्तम

रीतिसे हो सकती है। तुमने गायत्री देवीका वृत्तान्त खूब लिखा। मैं पढ़कर मुग्ध हो गया।

ज्ञान—उन्होंने मुझे अपनी रियासतका प्रबन्ध करनेको बुलाया है। मेरे लिये यह बड़ा अच्छा अवसर है। लेकिन जाऊं कैसे? माया और उसकी मांको तो साथ ले जा सकता हूँ, किन्तु भाभी किसी तरह जानेपर राजी नहीं हो सकतीं। शिकायत नहीं करता, लेकिन चचीसे आजकल उनका बड़ा मेलजोल है। चची और उनकी बहू दोनों ही उनके कान भरती हैं। उनका सरल स्वभाव है। दूसरोंकी बातोंमें आ जाती हैं। आजकल दोनों महिलायें उन्हें दम दे रही हैं कि लखनपूरका आधा हिस्सा अपने नाम करा लो, कौन जाने, तुम्हारे पति फिर विदेशकी राह लें तो तुम कहींकी न रहो। चचासाहब भी उसी गोष्ठीमें हैं। आज ही कलमें वह लोग यह प्रस्ताव आपके सामने लायेंगे। इसलिये आपसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि इस विषयमें आप जो करना चाहते हों उससे मुझे सूचित कर दें। आपके ही फैसलेपर मेरे जीवनकी सारी आशायें निर्भर हैं। यदि आपने अपने हिस्सेको बय करनेका निश्चय कर लिया हो तो मैं अपने लिये कोई और राह निकालूं।

प्रेमशंकर—चचासाहबके विषयमें तुम्हें जो सन्देह है वह सर्वथा निर्मूल है। उन्होंने आजतक कभी मुझसे तुम्हारी शिकायत नहीं की। उनके हृदयमें संतोष है और चाहे उनकी अवस्था अच्छी न हो, पर वह उससे असंतुष्ट नहीं जान पड़ते। रहा लखनपूरके सम्बन्धमें मेरा इरादा। मैं यह सुनना ही नहीं चाहता कि मैं उस गांवका जमीदार हूं। तुम मेरी ओरसे निश्चिन्त रहो। यही समझ लो कि मैं हूं ही नहीं। मैं अपने श्रमकी रोटी खाना चाहता हूं। बीचका दलाल बनाना नहीं चाहता। अगर सरकारी पत्रोंमें मेरा नाम दर्ज हो गया तो मैं इस्तीफा देनेको तैयार हूं, तुम्हारी भाभीके जीवन-निर्वाहका भार तुम्हारे

ऊपर रहेगा। मुझसे भी जो कुछ बन पड़ेगा, तुम्हारी सहायता करता रहूंगा।

ज्ञानशङ्कर भाईकी यह बातें सुनकर विस्मित हो गये। यद्यपि इन विचारोंमें मौलिकता न थी, उन्होंने साम्यवादके ग्रन्थोंमें इनका विवरण देखा था, लेकिन उनकी समझमें यह केवल मानव-समाजका आदर्श मात्र था। इस आदर्शको व्यावहारिक रूपमें देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। वह अगर इस विषयपर तर्क करना चाहते तो अपनी सबल युक्तियोंसे प्रेमशङ्करको निरुत्तर कर देते। लेकिन यह समय इन विचारोंके समर्थन करनेका था, न कि अपनी वाक्यप्रचुरता दिखानेका। बोले, भाई साहब! यह समाज-सङ्गठनका महान् आदर्श है और मुझे गर्व है कि आप केवल विचारसे नहीं, व्यवहारसे भी उनके भक्त हैं। अमेरिकाकी स्वतन्त्रभूमिमें इन भावोंका जागृत होना स्वाभाविक है। यहां तो घरसे बाहर निकलनेकी नौबत ही नहीं आयी। आत्मबल और बुद्धिसामर्थ्यसे भी वंचित हूं। मेरे संस्कार इतने पवित्र और उत्कृष्ट क्योंकर हो सकते हैं? मेरी संकीर्ण दृष्टिमें तो यही जमींदारी, जिसे आप (मुस्कुराकर) चोरकी दलाली समझते हैं, जीवनका सर्वश्रेष्ठ रूप है। हां, सम्भव है आगे चलकर आपके सत्सङ्गसे मुझमें भी सद्विचार उत्पन्न हो जायं।

प्रेम—तुम अपने ही मनमें विचार करो। यह कहांका न्याय है कि मिहनत तो कोई करे, उसकी रक्षाका भार किसी दूसरेपर हो, और हमारा जीवन केवल रुपये उगाहनेके ही भेंट हो जाय।

ज्ञान—बात तो यथार्थ ही है, लेकिन परम्परासे यह परिपाटी ऐसी चली आती है कि इसमें किसी प्रकारके संशोधन करनेका ध्यान ही नहीं होता।

प्रेम—तो तुम्हारा गोरखपुर आनेका कबतक इरादा है?

ज्ञान—पहले आप मुझे इसका पूरा विश्वास दिला दें कि

लखनपुरके सम्बन्धमें आपने जो कहा है वह निश्चयात्मक है।

प्रेम—उसे तुम अटल समझो। मैंने तुमसे एक बार अपने हिस्सेका नफा मांगा था। उस समय मेरे विचार इतने पक्के न थे। मेरा हाथ भी बहुत तंग था। उसपर मैं बहुत लज्जित हूं। ईश्वरने चाहा तो अब तुम मुझे इस प्रतिज्ञापर दृढ़ पाओगे।

ज्ञान—तो मैं होलीतक गोरखपुर चला जाऊंगा। कोई हरज न हो तो आप भी घर चलें। माया आपको बहुत पूछा करता है।

प्रेम—आज तो अवकाश नहीं है, फिर कभी आऊंगा।

ज्ञानशंकर यहांसे चले तो उनका चित्त बहुत प्रसन्न था। बहुत दिनोंके बाद मेरे मनकी अभिलाषा पूरी हुई। अब मैं पूरे लखनपुरका स्वामी हूं। यहां अब कोई मेरा हाथ पकड़नेवाला नहीं। जो चाहूं निर्विघ्न कर सकता हूं। भैया वचनके पक्के हैं, यह अब कदापि दुलख नहीं सकते। वह इस्तीफ़ा लिख देते तो बात और भी पक्की हो जाती। लेकिन इसपर जोर देनेसे मेरी क्षुद्रता प्रकट होगी। अभी इतना ही बहुत है, आगे चलकर देखा जायगा।

२०

ज्ञानशङ्कर लगभग दो बरससे लखनपुरपर इज़ाफ़ा लगान करनेका इरादा कर रहे थे, किन्तु हमेशा उनके सामने एक न एक बाधा आ खड़ी होती थी। कुछ दिन तो अपने चचासे अलग होनेमें लगे। जब उधरसे बेफिक्र हुए तो लखनऊ जाना पड़ा। इधर प्रेमशंकरके आ जानेसे एक नयी समस्या उपस्थित हो गयी। इतने दिनोंके बाद अब उन्हें मनोनीत सुअवसर हाथ लगा। कागज़-पत्र पहलेसे ही तैयार थे। नालिशोंके दायर होनेमें विलम्ब न हुआ।

लखनपुरके लोग मुचलकेके कारण बिगड़े हुए थे ही, यह नयी विपत्ति सिरपर पड़ी तो और भी झल्ला उठे। मुचलकेकी

मियाद इसी महीनेमें समाप्त होनेवाली थी। वह स्वच्छन्दतासे जवाबदेही कर सकते थे। सारे गांवमें एका हो गया। आग-सी लग गयी। बूढ़े कादिर खां भी, जो अपनी सहिष्णुताके लिये बदनाम थे, धीरतासे काम न ले सके। भरी हुई पंचायतमें, जो जमींदारका विरोध करनेके उद्देश्यसे बैठी थी, बोले इसी धरतीमें सब कुछ होता है और सब कुछ इसीमें समा जाता है। हम भी इसी धरतीसे पैदा हुए हैं और एक दिन इसीमें समा जायेंगे। फिर यह चोट क्यों सहें? धरतीके ही लिये छत्रधारियोंके सिर गिर जाते हैं, हम भी अपने सिर गिरा देंगे। इस काममें सहायता करना गांवके सब प्राणियोंका धर्म है, जिससे जो कुछ हो सके दे। सब लोगोंने एक स्वरसे कहा, हम सब तुम्हारे साथ हैं, जिस रास्ते कहोगे चलेंगे और इस धरतीपर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देंगे।

निस्सन्देह गांववालोंको मालूम था, कि जमींदारको इज़ाफ़ा करनेका पूरा अधिकार है, लेकिन वह यह भी जानते थे कि यह अधिकार उसी दशामें होता है जब जमींदार अपने प्रयत्नोंसे भूमिकी उत्पादक शक्ति बढ़ा दे। इस निर्मूल इजाफेको सभी अनर्थ समझते थे।

ज्ञानशङ्करने गांवमें यह एका देखा तो चौंके, लेकिन कुछ तो अपने दबाव और कुछ हाकिम पर्गना मिस्टर ज्वालासिंहके सहवासी होनेके कारण उन्हें अपनी सफलतामें विशेष संशय न था। लेकिन जब दावेकी सुनायी हो चुकनेके बाद जवाबदेही शुरू हुई तो ज्ञानशंकरको विदित हुआ कि मैं अपनी सफलताको जितना सुलभ समझता था उससे कहीं अधिक कष्टसाध्य है। ज्वालासिंह कभी कभी ऐसे प्रश्न कर बैठते और असामियोंके प्रति ऐसा दयाभाव प्रकट करते कि उनकी मनोभिरुचिका साफ़ पता चल जाता था। दिनोंदिन अवस्था ज्ञानशंकरके विपरीत होती जाती थी। वह स्वयं तो कचहरी न जाते, लेकिन प्रति दिनका

विवरण बड़े ध्यानसे सुनते थे । ज्वालासिंह दांत पीसकर रह जाते । यह महापुरुष मेरे सहपाठियोंमें हैं । हम और यह बरसों-तक साथ साथ खेले हैं । हंसी दिल्लगी, धौल, धप्पा सभी कुछ होता था । आज जो जरा अधिकार मिल गया तो ऐसे तोतेकी भांति आंखें फेर लीं मानों कभीका परिचय ही नहीं है ।

अन्तमें जब उन्होंने देखा कि अब यत्न न किया गया तो काम बिगड़ जायगा, तब उन्होंने एक दिन ज्वालासिंहसे मिलने-का निश्चय किया । कौन जाने मुझपर रोब जमानेके ही लिये यह जाल फैला रहे हों । यद्यपि वह जानते थे कि ज्वालासिंह किसी मुकद्दमेकी जांचकी अवधिमें वादियोंसे बहुत कम मिलते हैं, तथापि स्वार्थपरताकी धुनमें उन्हें इसका भी ध्यान न रहा । सन्ध्या समय उनके बंगलेपर जा पहुंचे ।

ज्वालासिंहको इन दिनों सितारका शौक हुआ था । उन्हें अपनी शिक्षामें यह विशेष त्रुटि जान पड़ती थी । एक गत बजानेकी बार बार चेष्टा करते पर तारोंका स्वर न मिलता था । कभी यह कील घुमाते, कभी वह कील ढीली करते कि ज्ञान-शंकरने कमरेमें प्रवेश किया । ज्वालासिंहने सितार रख दिया और उनसे गले मिलकर बोले, आइये भाई ज्ञान, आइये, कई दिनोंसे आपकी याद आ रही थी । आजकल तो आपका लिट्रेरी उमंग बढ़ा हुआ है । मैंने गायत्रीदेवीपर आपका लेख देखा । बस, यही जी चाहता था, आपका कलम चूम लूं । यहां सारी कचहरीमें उसीकी चर्चा है । ऐसा ओज, ऐसा प्रसादगुण, इतनी प्रतिभा, इतना प्रवाह बहुत कम किसी लेखमें दिखायी देता है । कल मैं साहब बहादुरसे मिलने गया था । उनकी मेज-पर वही पत्रिका पड़ी हुई थी । जाते ही जाते उसी लेखकी चर्चा छेड़ दी । वह लोग बड़े गुणग्राही होते हैं । यह कहांसे ऐसे चुने हुए शब्द और मुहावरे लाकर रख देते हो, मानों किसीने सुन्दर फूलोंका गुलदस्ता सजा दिया हो ।

ज्वालासिंहकी प्रशंसा उस रईसकी प्रशंसा थी जो अपने कलावन्तके मधुर गानपर मुग्ध हो गया हो। ज्ञानशङ्करने सकुचाते हुए पूछा, साहब क्या कहते थे?

ज्वाला—पहले तो पूछने लगे, यह कौन आदमी है? जब मैंने कहा, यह मेरे सहपाठी और साथके खिलाडी हैं तब उसे और भी दिलचस्पी हुई। पूछा, क्या करते हैं, कहां रहते हैं? मेरी समझमें देहाती बैंकोंके सम्बन्धमें आपने जो रिमार्क किये हैं उनका उसपर बडा असर हुआ है।

ज्ञान—(मुस्कुराकर) भाई जान, आपसे क्या छिपायें, वह टुकडा मैंने एक अंगरेजी पत्रिकासे कुछ काट छांटकर नकल कर लिया था (सावधान होकर) कमसे कम वह विचार मेरे न थे।

ज्वाला—आपको हवाला देना चाहिये था।

ज्ञान—विचारोंपर किसीका अधिकार नहीं होता। शब्द तो अधिकांश मेरे ही थे।

ज्वाला—गायत्रीदेवी तो बहुत प्रसन्न हुई होंगी। कुछ वरदान भी देंगी या नहीं?

ज्ञान—उनका एक पत्र आया है। अपने इलाकेका प्रबन्ध मेरे हाथोंमें देना चाहती हैं।

ज्वाला—वाह, क्या कहने, वेतन भी ५००) से कम न होगा।

ज्ञान—वेतनका तो जिक्र न था। शायद इतना न दे सकें।

ज्वाला—भैया, अगर वहां ३००) भी मिलें तो आप हमलोगोंसे अच्छे रहेंगे। खूब सैरसपाटे कीजिये, मोटर दौड़ाते फिरिये, और काम ही क्या है? हमलोगोंकी भांति कागजका एक पुलिन्दा तो सिरपर लादकर घर न लाना पड़ेगा। वहां कबतक जानेका विचार है?

ज्ञान—जानेको तो मैं तैयार बैठा हूं, लेकिन जब आप गला छोडें…।

ज्वालासिंहने बात काटकर कहा, फ़ैमिलीको भी साथ ले जाइयेगा न? अवश्य ले जाइये। मैंने भी एक सप्ताह हुए स्त्रीको बुला लिया है। इस ऊजड़में भूतकी तरह अकेला पड़ा रहता था।

ज्ञान—अच्छा, तो भाभी आ गयीं? बड़ा आनन्द रहेगा। कालेजमें तो आप परदेके बड़े विरोधी थे।

ज्वाला—अब भी हूं, पर विपत्ति यह कि किसी अन्य पुरुषके सामने आते हुए उनके प्राणसे निकल जाते हैं। अरदली और दूसरे नौकरोंसे निस्संकोच बातें करती हैं, लेकिन मेरे मित्रोंकी परिछाईंसे भी भागती हैं। खींच-खांचके लाऊं भी तो सिर झुकाकर अपराधियोंकी भांति खड़ी रहेंगी।

ज्ञान—अरे, तो क्या मेरी गिन्ती भी उन्हीं मित्रोंमें है?

ज्वाला—अभी तो आपसे भी झिझकेंगी। हां, आपसे दो-चार बार मुलाकात हो, आपके घरकी स्त्रियां भी आने लगें, तो संभव है, आपसे संकोच न रहे। क्यों न मिसेज़ ज्ञानशङ्करको कल यहां भेज दीजिये। मैं गाड़ी भेज दूंगा। आपको बाइफ़को तो कोई आपत्ति न होगी?

ज्ञान—जी नहीं, वह बड़े शौक़से आयेंगी।

ज्ञानशङ्करको अपने मुकदमेके सम्बन्धमें और कुछ कहनेका अवसर न मिला, लेकिन वहांसे चले तो बहुत खुश थे। स्त्रियोंके मेल जोलसे इन महाशयको नकेल मेरे हाथोंमें आ जायगी। जिस कल चाहूं घुमा सकता हूं। उन्हें अब अपनी सफलतामें कोई संशय न रहा। लेकिन जब घरपर आकर उन्होंने विद्यासे यह चर्चा की तो वह बोली, मुझे तो वहां जाते झेंप होती है, न किसी-की जान न पहचान, न रीति न व्यवहार। मैं वहां जाकर क्या बातें करूंगी? गूंगी बनी बैठी रहूंगी, तुमने मुझसे न पूछा न ताछा, वादा कर आये।

ज्ञान—मिसेज़ ज्वालासिंह बड़ी मिलनसार हैं, उनसे मिलकर तुम्हें बड़ा आनन्द आयेगा।

विद्या—अच्छा, और मुन्नीको (छोटी लड़कीका नाम था) क्या करूंगी? यह वहाँ रोये-चिल्लाये और उन्हें बुरा लगे तो?

ज्ञान महरीको साथ लेती जाना। वह लड़कीको बाहर बगीचेमें बहलाती रहेगी।

विद्या बहुत कहने-सुननेसे अन्तमें जानेपर राजी हो गयी। प्रातःकाल ज्वालासिंहकी गाड़ी आ गयी। विद्या बड़े ठाटसे उनके घर गयी। दस बजते-बजते लौटी। ज्ञानशङ्करने बड़ी उत्सुकतासे पूछा, कैसे मिली?

विद्या बहुत अच्छी तरह। स्त्री क्या हैं, देवी हैं। ऐसी हँसमुख, स्नेहमयी स्त्री तो मैंने देखी ही नहीं। छोड़ती ही न थीं। बहुत जिद की तो आने दिया। मुझे विदा करने लगीं तो उनकी आंखोंसे आंसू निकलने लगे। मैं भी रो पड़ी। उर्दू, अंगरेजी सब पढ़ी हुई हैं। बड़ा सरल स्वभाव है। महरियोंतकको तू नहीं कहतीं। शीलमणि नाम है।

ज्ञान - कुछ मेरी चर्चा भी हुई?

विद्या—हां, हुई क्यों नहीं? कहती थीं मेरे बाबूजीके पुराने दोस्त हैं। तुम्हें उस दिन चिकको आड़से देखा था। तुम्हारी अचकन उन्हें पसन्द नहीं। हंसकर बोलीं, अचकन क्या पहनते हैं, मुसलमानोंका पहनावा है। कोट क्यों नहीं पहनते?

ज्ञानशङ्करकी आशा और भी उद्दीप्त हुई, लेकिन जब मुकदमा फिर तारीखपर पेश हुआ तो ज्वालासिंहके व्यवहारमें जरा भी अंतर न था। वार वार मुद्दईके गवाहोंसे अविश्वास-सूचक प्रश्न करते, मुद्दई वकीलके प्रश्नोंपर शंकायें करते। ज्ञानशङ्करने शामको यह समाचार सुना तो चकित हो गये। यह तो विचित्र आदमी है। इधर भी चलता है उधर भी मुझे नाच नचाना चाहता है। यह पद पाकर दोरंगी चाल चलना सीख गया है। जीमें आया, चलकर साफ साफ कह दूं, मित्रोंसे यह कपट अच्छा नहीं। या तो दुश्मन बन जाओ या दोस्त बने रहो, यह क्या कि

मनमें कुछ और मुखमें कुछ और! इसी असमंजसमें एक सप्ताह गुज़र गया। दूसरी तारीख निकट आती जाती थी। ज्ञानशङ्करका चित्त बहुत उद्विग्न था। उन्होंने मनमें निश्चय कर लिया था कि कि अगर इन्होंने फिर वही दोरङ्गी चाल चली तो अपना मुकदमा किसी दूसरे इजलासमे उठा ले जाऊगा। दबूं क्यों?

लेकिन जब दूसरी तारीखको ज्वालासिंहने लखनपूर जाकर मौकेकी जांच करनेके लिये फिर तारीख बढ़ा दी तो ज्ञानशङ्कर झुंझला उठे। क्रोधमें भरे हुए विद्या से बोले, देखो तुमने इनकी शरारत? अब मौकेकी जांच करने आ रहे हैं। अब नहीं रहा जाता, जाता हूं, ज़रा दो-दो बातें कर आऊं।

विद्या—तुम इतने अधीर क्यों हो रहे हो? क्या जाने वह दूसरोंको दिखानेके लिये यह स्वांग भर रहे हों। अपनी बदनामी-को सभी डरते हैं।

ज्ञान—तो आखिर कबतक मैं फैसलेका इन्तज़ार करता रहूं? यहां बैठे बैठे मेरी कई सौ रुपये महीनेकी हानि हो रही है।

ज्ञानशङ्करने अभीतक विद्यासे गायत्रीके अनुरोधकी ज़रा भी चर्चा न की थी। इस समय सहसा मुंहसे बात निकल गयी। विद्याने चौंककर पूछा, हानि कैसी हो रही है?

ज्ञानशङ्करने देखा, अब बातें बनानेसे काम न चलेगा और फिर कबतक छिपाऊंगा। बोले, मुझे याद आता है, मैंने तुमसे गायत्रीदेवीके पत्रका जिक्र किया था। उन्होंने मुझे अपनी रियासतके मैनेजर बनानेका प्रस्ताव किया है और जल्द बुलाया है।

विद्या—तुमने स्वीकार भी कर लिया?

ज्ञान—क्यों न करता, क्या कोई हानि थी?

विद्या—जब तुम्हें स्वयं इतनी मोटी सी बात भी नहीं सूझती तो मैं और क्या कहूं? भला सोचो तो दुनिया क्या कहेगी। लोग यही समझेंगे कि अबला विधवा है, नातेदार जमा होकर लूटे खाते हैं। तुम चाहे कितने ही निःस्पृह भावसे काम करो,

लेकिन बदनामीसे न बच सकोगे, अभी वह तुम्हारी बड़ी साली है, तुमसे कितना प्रेम करती है, तुम्हारा कितना सत्कार करती है, कितनी ही बार तुम्हारी चारपाईतक विछा दी है। इस उच्चासनसे गिरकर अब तुम उनके नौकर हो जाओगे और मुझे भी बहिनके पदसे गिराकर नौकरानी बना दोगे। मान लिया कि वह अब भी तुम्हारी खातिर करेंगी, लेकिन वह मृदुभाव कहां? लोग उनसे तुम्हारा जा बेजा शिकायतें करेंगे। मुलाहिजेके मारे वह तुमसे कुछ न कह सकेंगी, मन ही मन कुढ़ेंगी। मैं तुम्हें नौकरीके विचारसे जानेकी कभी सलाह न दूंगी।

ज्ञान—कह चुकी या कुछ और कहना है?

विद्या—कहने सुननेकी बात नहीं है, मुझे तुम्हारा वहां जाना सर्वथा अनुचित जान पड़ता है।

ज्ञान—अच्छा तो अब मेरी बात सुनो। मुझे वर्त्तमान और भविष्यकी अवस्थाका विचार करके यही उचित जान पड़ता है कि इस अवसरको हाथसे न जाने दूं। जब मैं जी तोड़कर काम करूंगा, दोकी जगह एक खर्च करूंगा, एककी जगह दो जमा करके दिखाऊंगा, तो गायत्री बावली नहीं है कि अनायास मुझपर सन्देह करने लगे। और फिर मैं केवल नौकरीके इरादेसे नहीं जाता, मेरे विचार कुछ और ही हैं।

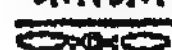
विद्याने संशक दृष्टिसे ज्ञानशङ्करको देखकर पूछा, और क्या विचार हैं?

ज्ञान—मैं ऐसी समृद्धिपूर्ण रियासतको दूसरोंके हाथोंमें नहीं देखना चाहता। गायत्रीके बाद जब उसपर दूसरोंका ही अधिकार होगा तो मेरा क्या न हो?

विद्याने कुतूहलसे देखकर कहा, तुम्हारा क्या हक है?

ज्ञान—मैं अपना हक जमाया चाहता हूं। अब चलता हूं, जरा ज्वालासिंहसे निबटता आऊं।

विद्या—उनसे क्या निबटोगे? उन्होंने कोई रिआयत ली है?



ज्ञान—तो यह इतना मित्रभाव क्यों दिखाते हैं ?

विद्या—यह उनकी सज्जनता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह आपके मित्र हों तो आपके लिए दूसरोंपर अन्याय करें।

ज्ञान—यही बात मैं उनके मुंहसे सुनना चाहता हूं। इसका मुंहतोड़ जवाब मेरे पास है।

विद्या—अच्छा तो जाओ, जो जीमें आये करो। फिर मुझसे क्यों सलाह लेते हो ?

ज्ञान—तुमसे सलाह नहीं लेता, तुममें इतनी ही बुद्धि होती तो फिर रोना काहेका था ? स्त्रियां बड़े बड़े काम कर दिखाती हैं। तुमसे इतना भी न हो सका कि शीलमणिसे इस मुकदमेके सम्बन्धमें कुछ बातचीत करती, तुम्हारी तो ज़रा ज़रा सी बातमें मान-हानि होने लगती है।

विद्या—हां, मुझसे यह सब नहीं हो सकता। अपना स्वभाव ही ऐसा नहीं है।

ज्ञान—क्यों, इसमें क्या हरज था, अगर तुम एक बार हंसी हंसीमें कह देती कि तुम्हारे बाबूजी हमारा हजारों रुपये सालकी क्षति कराये देते हैं, ज़रा उनको समझा क्यों नहीं देतीं।

विद्या—मुझे यह बातें बनानी नहीं आतीं, क्या करूं! मैं इस विषयमें शीलमणिसे कुछ कह नहीं सकती।

ज्ञान—चाहे दावा खारिज हो जाय!

विद्या—चाहे जो कुछ हो।

ज्ञानशंकर बाहर आये तो सामने एक नयी समस्या आ खड़ी हुई। विद्याको कैसे राजी करूं? यह मानता हूं कि सम्बन्धियोंके यहां नौकरी करनेसे कुछ हेठी अवश्य होती है, लेकिन इतनी नहीं कि कोई उसके लिये चिरकालके मन्सूबोंको मिटा दे। विद्याकी यह बुरी आदत है कि जिस बातपर अड़ जाती है उसे किसी तरहसे नहीं छोड़ती। मैं उधर चला जाऊं और इधर यह रायसाहबसे मेरी शिकायत कर दे तो बना बनाया काम बिगड़

जाय। अब यह पहलेकी सी सरला नहीं है। उसमें दिनों दिन आत्मसम्मानकी मात्रा बढ़ती जाती है। इसे नाराज करनेका यह अवसर नहीं।

वह इस चिन्तामें बैठे हुए थे कि शीलमणिकी सवारी आ पहुंची। ज्ञानशंकरने निश्चय किया कि स्वयं चलकर उससे अपना समाचार कहूं। अभी तीनों महिलायें कुशल समाचार ही पूछ रही थीं कि वह कुछ झिझकते हुए ऊपर आये और कमरेके द्वारपर चिलमनके सामने खड़े होकर शीलमणिसे बोले, भाभीजी-को प्रणाम करता हूं।

विद्या उनका आशय समझ गयी। लज्जासे उसका मुख-मण्डल अरुणवर्ण हो गया। वह वहांसे उठकर ज्ञानशंकरको अव-हेलापूर्ण नेत्रोंसे देखते हुए दूसरे कमरेमें चली गयी। श्रद्धा मध्यस्थका काम करनेके लिये रह गयी।

ज्ञानशंकर बोले, भाई साहब तो परदेके भक्त नहीं हैं, और अब जब कि हमलोगोंमें इतनी घनिष्ठता हो गयी है यह हिजाब उठ जाना चाहिये। मुझे आपसे कितनी ही बातें कहनी हैं। परमात्माने आप-को शील और विनयके गुणोंसे विभूषित किया है, इसीलिए मुझे आपसे एक निजके मामलेमें जबान खोलनेका साहस हुआ है। मुझे विश्वास है कि आप उसकी अवज्ञा न करेंगी। मेरा एक इजाफा लगानका मुकदमा भाई साहबके इजलासमें दो महीनोंसे पेश है। मैं उनका इतना अदब करता हूं कि इस विषयमें उनसे कुछ कहते हुए सकोच होता है। यद्यपि वह मुझे भाई समझते हैं, लेकिन किसी कारणसे उन्हें भ्रम होता हुआ जान पड़ता है कि मेरा दावा झूठा है और मुझे भय है कि कहीं वह उसे खारिज न कर दें। इसमें सन्देह नहीं कि दावेको खारिज करनेका उन्हें बहुत दुःख होगा, लेकिन शायद उन्हें अबतक मेरी वास्तविक दशाका ज्ञान नहीं है। वह यह नहीं जानते कि इससे मेरा कितना अप-मान और कितना अनिष्ट होगा। आजकलकी जमींदारी एक बला

है। जीवनकी सामग्रियां दिनोंदिन महंगी होती जाती हैं और मेरी आमदनी आज भी वही है जो तीस वर्ष पहले थी। ऐसी अवस्थामे मेरे उद्धारका इसके सिवा और क्या उपाय है कि असामियोंपर इजाफा लगान करूं। अन्न मोतियोंके मोल बिक रहा है। कृषकोंकी आमदनी दुगुनी बल्कि तिगुनी हो गयी है। यदि मैं उनकी बढ़ी हुई आमदनीमेंसे एक हिस्सा मांगता हूं तो क्या अन्याय करता हूं? अगर मेरी जीत हुई तो सहजहीमें मेरी आमदनी एक हजार बढ़ जायगी। हार हुई तो असामियोंकी निगाहमे गिर जाऊंगा। वह शेर हो जायंगे और बात-बातपर मुझसे उलझेंगे। तब मेरे लिये इसके सिवा और कोई मार्ग न रहेगा कि जमींदारीसे इस्तीफा दे दूं और मित्रोंके सिर जा पड़ूं। (मुस्कुराकर) आपहीके द्वारपर अड्डा जमाऊंगा और चाहे आप मार-मारकर हटायें, हटनेका नाम न लूंगा।

शीलमणिने यह विवरण ध्यानपूर्वक सुना और श्रद्धासे बोली, आप बाबूजीसे कह दें, मुझे यह सुनकर बड़ा खेद हुआ। आपने पहले इसका जिक्र क्यों न किया? विद्याने भी कभी इसकी चर्चा नहीं की, नहीं तो अबतक आपकी डिगरी हो गयी होती। किन्तु आप निश्चिन्त रहें। मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि अपनी ओरसे आपकी सिफारिश करनेमें कोई बात उठा न रक्खूंगी।

ज्ञान—मुझे आपसे ऐसी ही आशा थी। दो-चार दिनमें भाई साहब मौका देखने जायंगे। इसलिये उनसे जल्द ही इसकी चर्चा कर दें।

शील—मैं आज जाते-ही-जाते कहूंगी, आप इतमीनान रक्खें।

२१

प्रभातका समय था। चैतकी सुखद समीर प्रवाहित हो रही थी। बाबू ज्वालासिंह बरामदेमें आरामकुरसीपर लेटे हुए घोड़ेका इन्तजार कर रहे थे। उन्हें आज मौका देखनेके लिये लखनपूर जाना था। किन्तु इस मार्गमें एक बड़ी बाधा खड़ी हो गयी

थी। कल संध्या समय शीलमणिने उनसे ज्ञानशङ्करके मुकदमेकी बात कही थी और तभीसे वह बड़े असमंजसमें पड़े हुए थे। सामने एक जटिल समस्या थी—न्याय या प्रणय, कर्तव्य या स्त्रीकी मानरक्षा। वह सोचते थे, मुझसे बड़ी भूल हुई, कि इस मुकदमेको अपने इजलासमें रक्खा। लेकिन मैं यह क्या जानता था, कि ज्ञानशङ्कर यह कूटनीति ग्रहण करेंगे। बड़ा स्वार्थी मनुष्य है। इसी अभिप्रायसे उसने स्त्रियोंमें यह मेलजोल बढ़ाया।

शीलमणि यह चालें क्या जाने, शीलमें पड़कर वचन दे आयी। अब यदि उसकी बात नहीं रखता तो वह रो-रोकर जान ही दे देगी। उसे क्या मालूम कि इस अन्यायसे मेरी आत्माको कितना दुःख होगा। अभीतक जितनी साक्षियां सामने आयी हैं उनसे तो यही सिद्ध होता है कि ज्ञानशङ्करने असामियोंको दबाने-हीके लिये यह मुकदमा दायर किया है और कदाचित् बात भी यही है। बड़ा ही बना हुआ आदमी है। लेख तो ऐसा लिखता है मानों दीनरक्षाके भावोंमें पगा हुआ है, किन्तु पक्का मतलबी है। गायत्रीकी रियासतका मैनेजर हो जायगा तो अन्धेर मचा देगा। नहीं, मुझसे यह अन्याय न हो सकेगा, देखकर मक्खी न निगली जायगी। शीलमणि रूठेगी तो रूठे, उसे स्वयं समझना चाहिये था कि मुझे ऐसा वचन देनेका कोई अधिकार नहीं था। लेकिन मुश्किल तो यह है कि वह केवल रोकर ही मेरा पिण्ड न छोड़ेगी बात-बातपर ताने देगी। कदाचित् मैकेकी तैयारी भी करने लगे, यही तो उसकी बुरी आदत है कि या तो प्रेम और मृदुलताकी देवी बन जायगी या बिगड़ेगी तो भालोंसे छेदने लगेगी। ज्ञान-शङ्करने मुझे ऐसे सङ्कटमें डाल रक्खा है कि उससे निकलनेका कोई मार्ग ही नहीं दीखता।

ज्वालासिंह इसी हैस-बैसमें पड़े हुए थे कि अचानक ज्ञान-शङ्कर सामने पैरगाड़ीपर आते दिखायी दिये। ज्वालासिंह तुरन्त कुरसीसे उठ खड़े हुए और साईसको जोरसे पुकारा कि घोड़ा

ला। साईस घोड़ेको कसे हुए तैयार खड़ा था। यह हुक्म पाते ही घोड़ा सामने लाकर खड़ा कर दिया। ज्वालासिंह उसपर कूदकर सवार हो गये। ज्ञानशङ्करने समीप आकर कहा, कहिये भाई साहब, आज सवेरे सवेरे कहां चले?

ज्वाला—जरा लखनपूर जा रहा हूं। मौका देखना है।

ज्ञान—धूप हो जायगी।

ज्वाला—कोई परवा नहीं।

ज्ञान—मैं भी साथ चलूं?

ज्वाला—मुझे रास्ता मालूम है।

यह कहते हुए उन्होंने घोड़ेको एड़ लगायी और हवा हो गये। ज्ञानशङ्कर समझ गये कि मेरा मंत्र अपना काम कर रहा है। यह अकृपा इसीका लक्षण है। ऐसा न होता तो आज भी वही मीठी मीठी बातें होतीं। चलूं, जरा शीलमणिको और पक्का कर आऊं। यह इरादा करके वह ज्वालासिंहके कमरेमें जा बैठे। अरदलीने कहा, सरकार बाहर गये।

ज्ञान—मैं जानता हूं। मुझसे मुलाकात हो गयी, जरा घरमें मेरी इत्तला कर दो।

अरदली—सरकारका हुकुम नहीं है।

ज्ञान—मुझे पहचानते हो या नहीं?

अरदली—पहचानता क्यों नहीं हूं।

ज्ञान—तो चौखटपर जाकर कहते क्यों नहीं?

अरदली—सरकारने मना कर दिया है।

ज्ञानशङ्करको अब विश्वास हो गया कि मेरी चाल ठीक पड़ी। ज्वालासिंहने अपनेको पक्षपातरहित सिद्ध करनेके लिये ही यह षड्यन्त्र रचा है, वह सोच ही रहे थे कि शीलमणिसे क्योंकर मिलूं, कि इतनेमें महरी किसी कामसे बाहर आयी और ज्ञानशङ्करको देखते ही जाकर शीलमणिसे कहा। शीलमणिने तुरन्त उनके लिये पान भेजा और उन्हें दीवानखानेमें बैठाया। एक

क्षणके बाद वह खुद आकर परदेकी आड़में खड़ी हो गयी और महरीसे कहलाया, मैंने बाबूजीसे आपकी सिफारिश कर दी है।

ज्ञानशङ्करने धन्यवाद देते हुए कहा, मुझे अब आपहीका भरोसा है।

शीलमणि बोली—आप घबरायें नहीं, मैं उन्हे एकदम चैन न लेने दूंगी। ज्ञानशङ्करने ज्यादा ठहरना उचित न समझा। खुशी खुशी विदा हुए।

उधर बाबू ज्वालासिंहने घोड़ा दौड़ाया तो चार मीलपर रुके। उन्हें एक सिगार पीनेकी इच्छा हुई। जेबसे सिगार-केस निकाला, लेकिन देखा तो दियासलाई न थी। उन्हे सिगारसे बड़ा प्रेम था। अब क्या हो? इधर उधर निगाह दौड़ायी तो सामने कुछ दूरीपर एक बहली जाती हुई दिखायी दी। घोड़ेको बढ़ाकर बहलीके पास आ पहुंचे। देखा तो उसपर प्रेमशङ्कर बैठे हुए थे। ज्वालासिंहका उनसे परिचय था, कई बार उनकी कृषिशालाकी सैर करने गये थे, और उनके सरल, संतोषमय जीवनका आदर करते थे। पूछा, कहिये महाशय, आज इधर कहां चले?

प्रेम—जरा लखनपूर जा रहा हूं। और आप?

ज्वाला—मैं भी वहीं चलता हूं।

प्रेम—अच्छा साथ हुआ। क्या कोई मुकदमा है?

ज्वालासिंहने सिगार जला मुकदमेका वृत्तान्त कह सुनाया।

प्रेमशंकर गौरसे सुनते रहे, फिर बोले, आपने उन्हें समझाया नहीं कि गरीबोंको क्यों तंग करते हो?

ज्वाला—मैं इस विषयमें उनसे क्योंकर कुछ कहता? हां, स्त्रियोंमें जो बातें हुई उनसे मालूम होता है कि वह अपनी जरूरतोंसे मजबूर हैं। उनका खर्च नहीं चलता।

प्रेम—दो हज़ार सालकी आदमनी तीन चार प्राणियोंके लिए तो कम नहीं होती!

ज्वाला—लेकिन इसमें आधा तो आपका है।

प्रेम—जी नहीं, मेरा कुछ नहीं है। मैंने उनसे साफ़ साफ़ कह दिया है कि मैं इस जायदादमें हिस्सा नहीं लेना चाहता।

ज्वालासिंह—(आश्चर्यसे) क्या आपने उनके नाम हिब्बा कर दिया?

प्रेम—जी नहीं, लेकिन हिब्बा ही समझिये। मेरा सिद्धान्त है कि मनुष्यको अपनी मेहनतकी कमाई खानी चाहिए। यही प्राकृतिक नियम है। किसीको यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरोंकी कमाईको अपनी जीवन-वृत्तिका आधार बनाये।

ज्वाला—तो यह कहिये कि आप जमींदारीके पेशेहीको बुरा समझते हैं।

प्रेम—हां, मैं इसका भक्त नहीं हूं। भूमि उसकी है जो उसे जोते। शासकको उसकी उपजमें भाग लेनेका अधिकार इसलिये है कि वह देशमें शांति और रक्षाकी व्यवस्था करता है, जिसके बिना खेती हो ही नहीं सकती। किसी तीसरे वर्गका समाजमें कोई स्थान नहीं है।

ज्वाला—महाशय, इन विचारोंसे तो आप देशमें क्रांति मचा देंगे। आपके सिद्धान्तके अनुसार हमारे बड़े बड़े जमींदारों, ताल्लुकेदारों और रईसोंका समाजमें कोई स्थान ही नहीं है, सबके सब डाकू हैं।

प्रेम—इसमें उनका कोई दोष नहीं, प्रथाका दोष है। इस प्रथाके कारण देशकी कितनी आत्मिक और नैतिक अवनति हो रही है, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। हमारे समाजका वह भाग जो बल, बुद्धि, विद्यामें सर्वोपरि है, जो हृदय और मस्तिष्कके गुणोंसे अलंकृत है; केवल इसी प्रथाके वश आलस्य, विलास और अविचारके बन्धनोंमें जकड़ा हुआ है।

ज्वालासिंह—कहीं आप इन्हीं बातोंका प्रचार करने तो लखनपूर नहीं जा रहे हैं, कि मुझे पुलिसकी सहायता मांगनी पड़े?

प्रेम—हां, शान्ति-भंग करानेका अपराध मुझपर लगाना हो तो जरूर पुलिसकी सहायता लीजिये।

ज्वालासिंह—मुझे अब आपपर कड़ी निगाह रखनी पड़ेगी। मैं भी छोटा-मोटा जमींदार हूं। आपसे डरना चाहिये। इस समय लखनपूर ही जाइयेगा या आगे जानेका इरादा है ?

प्रेम—इरादा तो यहींसे लौट आनेका है, आगे जैसी जरूरत हो। इधर आसपासके देहातोंमें एक महीनेसे प्लेगका प्रकोप हो रहा है। कुछ दवायें साथ लेता आया हूं। जरूरत होगी तो उसे बांट दूंगा, कौन जाने मेरे ही हाथों दो चार जानें बच जायं।

इसी प्रकार बातें करते हुए दोनो आदमी लखनपूर पहुंचे। गांव खाली पड़ा था। लोग बागोंमें झोपड़ियां डाले पड़े हुए थे। इस छोटीसी बस्तीमें खूब चहल पहल थी। उन दारुण दुःखोंका चिह्न कहीं न दिखायी देता था, जिनसे लोगोंके हृदय विदीर्ण हो गये थे। छप्परोंके सामने महुए सुखाये जा रहे थे। चक्कियोंकी गरज, छाजकी तड़प, ओखली और मूसलकी धमक उस जीवन-संग्रामकी सूचना दे रही थी, जो प्लेगके भीषण हत्याकाण्डकी भी परवा न करता था। लड़के आमोंपर ढेले चला रहे थे। कोई स्त्री बतन मांजती थी, कोई उपले पाथती थी, कोई पड़ोसीके घरसे आग लिये आती थी। कोई आदमी निठल्ला बैठा नजर न आता था।

प्रेमशंकर तो बस्तीमें आते ही बहलीसे उतर पड़े और एक झोपड़ेके सामने खाटपर बैठ गये। ज्वालासिंह घोड़ेसे न उतरे। खाटपर बैठना अपमानकी बात थी। ज़ोरसे बोले, कहां है मुखिया, जाकर पटवारीको बुला लाये, हम मौक़ा देखना चाहते हैं।

यह हुक्म सुनते ही कई आदमी झोपड़ोंसे मरीज़ोंको छोड़ छोड़कर निकल आये। चारों ओर भगदर सी पड़ गयी। दो तीन आदमी चौपालकी तरफ़ कुरसी लेने दौड़े, दो तीन आदमी पट-वारीकी तलाशमें भागे और गाँवके मान्यगण ज्वालासिंहको घेर-

कर खड़े हो गये। प्रेमशंकरकी ओर किसीने ध्यान भी न किया। इतनेमें कादिरखां अपनी झोपड़ीसे निकले और सुक्खूके कानमें कुछ कहा। सुक्खूने दुखरन भगतसे कानाफूसी की, तब विशेशर-साहसे सायँ सायँ बातें हुईं, मानों लोग किसी महत्वपूर्ण प्रश्न-पर विचार कर रहे हों। दस मिनटके बाद सुक्खू चौधरी एक थाल लिये हुए आये। उसमें अक्षत, दही और कुछ रुपये रखे हुए थे। गांवके पुरोहितजीने प्रेमशङ्करके माथेपर दही चावलका टीका लगाया और थाल उनके सामने रख दिया।

ज्वालासिंह कुरसीपर बैठते हुए बोले, लीजिये, आपकी तो बोहनी हो गई, घाटेमे हमही रहे। उसपर आप जमींदारीके पेशेकी निन्दा करते हैं।

प्रेमशंकरने कहा, देवीके नामसे ईंट पत्थर भी तो पुज जाते हैं।

कादिरखां—हम लोगोंके धन भाग थे कि दोनों मलिकोंके एक साथ दर्शन हो गये।

प्रेम—यहां बीमारी कुछ कम हुई या अभी वही हाल है?

कादिर—सरकार, कुछ नहीं पूछिये; कम तो न हुई और बढ़ती जाती है। कोई दिन नागा नहीं जाता कि एक-न-एक घरपर बिजली न गिरती हो। नदी यहांसे ६ कोस है। कभी कभी तो दिनमें दो दो तीन तीन बेर जाना पड़ता है। उसपर कभी आंधी, कभी पानी, कभी आग। खेतोंमें अनाज सड़ा जाता है, कैसे काटें, कहां रक्खें। बस, भोरको घरोंमें एक बेर चूल्हा जलता है। फिर दिनभर कहीं आग नहीं जलती। चिलमको तरसकर रह जाते हैं। हजूर खेते नहीं बनता, बड़ी दुर्दशा हो रही है। उसपर मालिकों-की निगाह भी टेढ़ी हो गयी है। सौ काम छोड़के कचहरी दौड़ना पड़ता है। कभी कभी तो घरमें लाश छोड़कर आना पड़ा है। क्या करें, जो सिरपर पड़ी है उसे झेलते हैं। हजूरका एक गुलाम था। अच्छा पट्ठा था। सारी गृहस्थी संभाले हुए था। तीन घड़ी

में चल बसा। मुंहसे बोलतक न निकली। सुक्खू चौधरीका तो घर ही सत्यानास हो गया। बस, अब अकेले इन्हींका दम रह गया है, बेचारे डपटसिंहका छोटा लड़का कल मरा है, आज बड़ा लड़का बीमार है। अल्लाह ही बचाये तो बचे। ज़ुबान बन्द हो गयी है। लाल लाल आंखें निकाले खाटपर पड़ा हाथ-पैर पटक रहा है। कहांतक गिनायें, खोदा रसूल, देवी देवता सभीकी मन्नतें मानते हैं, पर कोई नहीं सुनता। अबतक तो जैसे बन पड़ा मुक़दमेकी उजरदारी की। अब वह हिम्मत भी न रही। किसके लिए यह सब करें? इतनेपर भी मालिकोंको दया नहीं आती।

प्रेमशङ्कर—ज़रा मैं डपटसिंहके लड़केको देखना चाहता हूं।

क़ादिर—हां हजूर चलिये, मैं चलता हूं।

ज्वालासिंह—ज़रा सावधान रहियेगा, यह रोग संक्रामक होता है।

प्रेमशंकरने इसका कुछ उत्तर न दिया। औषधियोंका बेग उठाया और क़ादिरखांके पीछे पीछे चले। डपटसिंहके झोपड़ेपर पहुंचे तो आदमियोंकी बड़ी भीड़ लगी हुई थी। एक आमके पेड़के नीचे रोगीकी खाट पड़ी हुई थी। डपटसिंह और उनके छोटे भाई झपटसिंह सिरहाने खड़े पंखा झल रहे थे। दो स्त्रियां पांयतेकी ओर खड़ी रो रही थीं। प्रेमशङ्करको देखते ही दोनों अन्दर चली गयीं। दोनों भाइयोंने उनकी ओर दीन भावसे देखा और अलग हट गये। उन्होंने उष्णतामापक यंत्रसे देखा तो रोगीका ज्वर १०७ दरजेपर था। त्रिदोषके लक्षण प्रकट थे। समझ गये कि अब यह दमभरका और मेहमान है। अभी वह बेगसे औषधि निकाल ही रहे थे कि मरीज एक बार ज़ोरसे चीख मारकर उठा और फिर खाटपर गिर पड़ा। आंखें पथरा गयीं। स्त्रियोंमें पिट्टस पड़ गयी। डपटसिंह शोकातुर होकर मृत शरीरसे लिपट गया और रोकर बोला, बेटा, हाय बेटा!

यह कहते कहते उसकी आंखें रक्तवर्ण हो गयीं। उन्मादसा

छा गया, गीली लकड़ी पहली आंचमें रसती है, दूसरी आंचमें जलकर भस्म हो जाती है। डपटसिंह शोक-सन्तापसे विह्वल हो गया। खड़ा होकर बोला, कोई इस घरमें आग क्यों नहीं लगा देता! अब इसमें क्या रक्खा है? कैसी दिल्लगी है! बाप बैठा रहे और बेटा चल दे! इन्हीं हाथोंसे मैंने इसे गोद खिलाया था। इन्हीं हाथोंसे चिताकी गोदमें कैसे बैठा दूं! कैसा रुलाकर चल दिया, मानों हमसे कोई नाताही नहीं है। कहता था, दादा तुम बूढ़े हुए, अब बैठे बैठे राम राम करो, हम तुम्हारी परवस्ती करेंगे। मगर दोनोंके दोनों चल दिये, किसी-को मुझपर दया न आयी। लो, राम राम करता हूं। अब परवस्ती करो कि बातोंहीके धनी थे?

यह कहते-कहते वह शवके पाससे हटकर दूसरे पेड़के नीचे जा बैठे। एक क्षणके बाद फिर बोले, अब इस मायाजालको तोड़ दूंगा! बहुत दिन इसने मुझे उङ्गलियोंपर नचाया, अब मैं इसे नचाऊंगा। तुम दोनों चल दिये, बहुत अच्छा हुआ। मुझे मायाजालसे छुड़ा दिया। इस मायाके कारण कितने पाप किये, कितने झूठ बोले, कितनोंका गला दबाया, कितनोंके खेत काटे। अब सब पाप-दोषका कारण मिट गया। यह मरी हुई माया सामने पड़ी है। कौन कहता है मेरा बेटा था? नहीं, मेरा दुश्मन था, मेरे गलेका फन्दा था, मेरे पैरकी बेड़ी था। फन्दा छूट गया, बेड़ी कट गयी। लाओ, इस घरमें आग लगा दो, सब कुछ भस्म कर दो। बलराज खड़ा आंसू क्या बहाता है? कहीं आग नहीं है? लाके लगा दे।

सब लोग खड़े रो रहे थे। प्रेमशङ्कर भी करुणातुर हो गये। डपटसिंहके पास जाकर बोले, ठाकुर, धीरज धरो। संसारका यही दस्तूर है। तुम्हारी यह दशा देखकर बेचारी स्त्रियां और भाई रो रहे हैं। उन्हें समझाओ।

डपटसिंहने प्रेमशङ्करको उन्मत्त नेत्रोंसे देखा और व्यंग भाव-

से बोले, ओहो आप तो हमारे मालिक हैं। क्या जाफ़ा वसूल करने आये हैं? उसीसे लीजिये जो वहां धरतीपर पड़ा हुआ है। वह आपकी कौड़ी-कौड़ी चुका देगा। गौसखांसे कह दीजिये, उसे पकड़ ले जायं, बांधें, मारें, मैं न बोलूंगा। मेरा खेतबारीसे घर-द्वारसे इस्तीफा है।

क़ादिरखांने कहा, भैया डपट, दिल मजबूत करो। देखते हो, घर-घर यही आग लगी हुई है। मेरे सिर भी तो वही विपत्ति पड़ी है। इस तरह दिल छोटा करनेसे काम न चलेगा, उठो। कुछ कफन कपड़ेकी फ़िकिर करो, दोपहर हुआ जाता है।

डपटसिंहको होश आ गया। होशके साथ आंसू भी आये। रोकर बोला, दादा, तुम्हारासा कलेजा कहांसे लावें। किसी तरह धीरज नहीं होता। हाय, दोके दोनों चल दिये, एक भी बुढ़ापेका सहारा न रहा। सामने वह लाश देखकर ऐसा जी चाहता है, गलेपर गड़ांसा मार लूं। दादा, तुम तो जानते हो कि कितना सुशील लड़का था। अभी उस दिन मुगदरकी जोड़ीके लिये हठ कर रहा था। मैंने सैकड़ों गालियां दीं, मारने उठा। बेचारेने ज़ुबानतक न हिलायी। हा! खाने पहननेको तरसता रह गया। उसकी कोई मुराद पूरी न हुई। न भर पेट खा सका, न तन भर पहन सका। धिक्कार है मेरी जिन्दगानीपर! अब यह घर नहीं देखा जाता। झपट अपना घर द्वार समालो, मेरे भाग्यमें ठोकर खाना लिखा हुआ है। भाई लोगो! राम राम, मालिकको राम राम, सरकारको राम राम, अब यह अभागा देससे जाता है, कही सुनी माफ़ करना।

यह कहकर डपटसिंह उठकर क़दम बढ़ाता हुआ एक तरफ़ चला। जब कई आदमियोंने उसे पकड़ना चाहा तो वह भागा। लोगोंने उसका पीछा किया, पर कोई उसकी गर्दको भी न पहुंचा। जान पड़ता था, हवामें उड़ा जाता है। लोगोंके दम फूल गये, कोई यहां रहा, कोई वहां गिरा, अकेले बलराजने उसका पीछा

न छोड़ा, यहांतक कि डपटसिंह बेदम होकर जमीनपर गिर पड़े। बलराज दौड़कर उसकी छातीसे लिपट गया और तब अपने अंगोछेसे उसे हवा करने लगा। जब उसे होश आया तो हाथ पकड़े हुए घर लाया।

ज्वालासिंहकी करुणा भी जागृत हो गयी। प्रेमशङ्कर बोले, बाबू साहब, बड़ा शोकमय दृश्य है।

प्रेमशङ्कर—कुछ न पूछिये, कलेजा मुंहको आया जाता है।

कई आदमी बांस काटने लगे, लेकिन तीसरे पहरतक लाश न उठी। प्रेमशङ्करने कादिरसे पूछा—देर क्यों हो रही है?

कादिर—हजूर, क्या कहें। घरमें रुपये नहीं हैं, बेचारा झपट रुपयेके लिये इधर उधर दौड़ रहा है, लेकिन कहीं नहीं मिलते। हमारी जो दशा है सरकार वह हमीं जानते हैं। इजाफा लगानके मुकदमेने पहलेही हांड़ी तावा गिरों रखवा लिया था। इस बीमारीने रही सही कसर भी पूरी कर दी। अब किसीके घरसे कुछ नहीं रहा। प्रेमशङ्करने ठंढी सांस लेकर ज्वालासिंहसे कहा—देखी आपने इसकी हालत? घरमें कौड़ी कफनको नहीं।

ज्वालासिंह—मुझे अफसोस आता है कि इनसे पिछले साल मुचलका क्यों लिया। मैं अबतक न जानता था कि इनकी दशा इतनी हीन है।

प्रेम—मुझे खेद है कि मकानसे कुछ रुपये लेकर न चला।

ज्वाला—रुपये मेरे पास हैं, पर मुझे देते हुए संकोच होता है। शायद इन्हें बुरा लगे। आप लेकर दे दें, तो अच्छा हो।

प्रेमशङ्करने २० का नोट ले लिया और कादिरखांको चुपकेसे दे दिया। एक आदमी तुरन्त कफन लेने दौड़ा। लाश उठानेकी तैयारी होने लगी। स्त्रियोंमें फिर कोहराम मची। जबतक शव घरमें रहता है, घरवालोंको कदाचित् कुछ आशा लगी रहती है। उसका घरसे उठना पार्थिव वियोगका अन्त है। यह आशाके अन्तिम सूत्रको तोड़ देता है।

तीसरे पहर लाश उठी। सारे गांवके पुरुष साथ चले। पहले कादिरखांने कन्धा दिया।

ज्वालासिंहको सरकारी काम था, वह लौट पड़े। लेकिन प्रेमशङ्करने दो चार दिन वहां रहना निश्चय किया।

२२

एक पखवारा बीत गया। सन्ध्या समय था। शहरोंमें बर्फ़की दूकानोंपर जमघट होने लगा था, हुक्के और सिगरेटसे लोगोंको अरुचि होती जाती थी। ज्वालासिंह लखनपूरमें मौकेकी जांच करके लौटे थे और कुरसीपर बैठे ठंढा शर्बत पी रहे थे कि शीलमणिने आकर पूछा, दोपहरको कहां रह गये थे?

ज्वाला—बाबू प्रेमशङ्करका मेहमान रहा। वह अभी देहातहीमें हैं।

शील—क्या अभीतक बीमारीका ज़ोर कम नहीं हुआ?

ज्वाला—नहीं, अब कम हो रहा है। वह पूरे पन्द्रह दिनसे देहातोंमें दौरे कर रहे हैं। एक दिन भी आरामसे नहीं बैठे। गांवकी जनता उनको पूजती है। बड़े बड़े हाकिमका भी इतना सम्मान न होगा। न जाने इस तपनमें उनसे कैसे वहां रहा जाता है। न पंखा, न टट्टी, न शर्बत, न बर्फ। बस, पेड़के नीचे एक झोपड़ेमें पड़े रहते हैं। मुझसे तो वहां एक दिन भी न रहा जाय।

शील—परोपकारी पुरुष जान पड़ते हैं। क्या हुआ, तुमने मौका देखा?

ज्वाला—हां, खूब देखा। जिस बातका सन्देह था वही सच्ची निकली। ज्ञानशङ्करका दावा बिलकुल निस्सार है। उसके मुख्तार और चपरासियोंने मुझे बहुत चकमा देना चाहा, लेकिन मैं इन लोगोंके हथकंडोंको खूब जान गया हूं। बस, हाकिमोंको धोखा देकर अपना मतलब निकाल लेते हैं। जरा इस भलमन्साहतको देखो कि असामियोंके तो जानके लाले पड़े हुए हैं और इन्हें अपने प्यालेभर खूनकी धुन सवार है। इतना भी नहीं हो

सकता कि ज़रा गांवमें जाकर गरीबोंकी तसल्ली तो करते। इन्हींका भाई है कि जमींदारीपर लात मारकर दीनोंकी निस्वार्थ सेवा कर रहा है, अपनी जान हथेलीपर लिये फिरता है, और एक यह महापुरुष हैं कि दीनोंकी हत्या करनेसे भी नहीं हिच-कते। मेरी निगाहमें तो अब इनकी आधी इज़्ज़त भी नहीं रही, खाली ढोल है।

शील—तुम जिसकी बुराई करने लगते हो उसको मिट्टी पलीद कर देते हो, मैं भी आदमी पहचानती हूं। ज्ञानशङ्कर देवता न हों, लेकिन जैसे और सब आदमी होते हैं वैसे ही वह भी हैं, ख्वामख्वाह दूसरोंसे बुरे नहीं।

ज्वाला—तुम उन्हें जो चाहो समझो, पर मैं तो उन्हें महा लोभी, क्रूर और दुरात्मा समझता हूं।

शील—तब तो तुम उनका दावा अवश्य ही खारिज कर दोगे?

ज्वाला—कदापि नहीं, मैं यह सब जानते हुए भी उन्हींको डिग्री करूंगा, चाहे अपीलसे मेरा फैसला मन्सूख हो जाय।

शील—(प्रसन्न होकर) हां, बस मैं भी यही चाहती हूं; तुम अपनीसी कर दो, जिसमें मेरी बात बनी रहे।

ज्वाला—लेकिन यह सोच लो, कि तुम अपने ऊपर कितना बड़ा बोझ ले रही हो। लखनपूरमें प्लेगका भयङ्कर प्रकोप हो रहा है। लोग तबाह हुए जाते हैं, खेत काटनेकी भी किसीको फुरसत नहीं मिलती। कोई घर ऐसा नहीं, जहांसे शोक-विलापकी आ-वाज़ न आ रही हो, घरके-घर अन्धेरे हो गये, कोई नाम लेने-वाला भी न रहा, उन गरीबोंमें अब अपील करनेका सामर्थ्य नहीं। ज्ञानशङ्कर डिगरी पाते ही जारी कर देंगे, किसीके बैल नीलाम होंगे, किसीके घर बिकेंगे किसीकी फस्ल खेतमें खड़ी-खड़ी कौड़ियोंके मोल नीलाम हो जायगी। यह दीनोंकी हाय किसपर पड़ेगी? यह खून किसकी गर्दनपर होगा? मैं बदनामीसे नहीं डरता, लेकिन अन्याय और अनर्थसे मेरे प्राण कांपते हैं।

शीलमणि यह व्याख्यान सुनकर कांप उठी। उसने इस मामलेको इतना महत्वपूर्ण न समझा था। उसका मानवत टूट गया, बोली, यदि यह हाल है तो आप वही कीजिये जो न्याय और सत्य कहे। मैं गरीबोंका श्राद्ध नहीं लेना चाहती। मैं क्या जानती थी कि जरासे दावेका यह भीषण परिणाम होगा!

ज्वालासिंहके हृदयपरसे एक बोझा-सा उतर गया। शीलमणिको अबतक वह न समझे थे। बोले, विद्यावतीके सामने कौनसा मुंह लेकर जाओगी।

शीलमणि—विद्यावती ऐसे क्षुद्र विचारोंकी स्त्री नहीं है, और अगर वह इस बातपर मुझसे रुठ भी जाय तो मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैत्रीके पीछे क्या गरीबोंका गला काट लिया जाय? मैं तो समझती हूं, वह ज्ञानशङ्करसे चिढ़ती है। जब कभी उन्होंने मुझसे इस दावेकी चर्चा की है वह मेरे पाससे उठकर चली गयी है। इनकी मायालिप्सा उसे एक आंख नहीं भाती। दावेके खारिज होनेकी खबर सुनकर वह मनमें प्रसन्न होगी।

ज्वाला—उसपर आपका दावा है कि गायत्रीके इलाकेका प्रबन्ध करेंगे। उसकी इनसे एक दिन भी न निभेगी। वह बड़ी दयावती है।

शीलमणि—दावा खारिज करनेपर वह अपील कर दें तो?

ज्वाला—हां, बहुत सम्भव है, अवश्य करेंगे।

शील—और वहांसे इनका दावा बहाल हो सकता है?

ज्वाला—हां, हो सकता है।

शील—तब तो वह गरीब खेतिहरोंको और भी पीस डालेंगे।

ज्वाला—हां, यह तो उनकी प्रवृत्ति ही है।

शील—तुम खेतिहरोंकी कुछ मदद नहीं कर सकते?

ज्वाला—न, यह मेरे अख्तियारसे बाहर है।

शील—किसानोंको कहींसे धनकी सहायता मिल जाय तब तो वह न हारेंगे?

ज्वाला—हार जीत तो हाकिमके निश्चयपर निर्भर है। हां, उन्हें मदद मिल जाय तो वह अपने मुकदमेकी पैरवी अच्छी तरह कर सकेंगी।

शील—तो तुम कुछ रुपये क्यों नहीं दे देते?

ज्वाला—वाह, जिस अन्यायसे भागता हूं वही करूं!

शील—प्रेमशङ्करजी बड़े दयालु हैं। उनके पास रुपये हों तो वह खेतिहरोंकी मदद करें।

ज्वाला—मेरे विचारमें वह इस न्यायके लिये अपने भाईसे बैर न करेंगे। इतनेमें बाहर कई मित्र आ गये। ग्वालियरका एक नामी जलतरंगिया आया हुआ था। क्लबमें उसका गाना होनेवाला था। लोग क्लब चल दिये।

दूसरी तारीखपर ज्ञानशङ्करका मुकदमा पेश हुआ। ज्वालासिंहने फैसला सुना दिया। उनका दावा खारिज हो गया। ज्ञानशङ्कर उस दिन स्वयं कचहरीमें मौजूद थे। यह फैसला सुना तो दांत पीस कर रह गये। क्रोधमें भरे हुए घर आये और विद्यापर जले दिलके फफोले फोड़े। आज बहुत दिनोंके बाद लाला प्रभाशङ्करके पास गये और उनसे भी इस असद् व्यवहारका रोना रो आये। एक सप्ताहतक यही क्रम चलता रहा। शहरमें ऐसा कोई परिचित आदमी न था, जिससे उन्होंने ज्वालासिंहके कपट-व्यवहारकी शिकायत न की हो। यहांतक कि रिशवतका दोषारोपण करनेमें भी सङ्कोच न किया और उन्हें शब्दाघातोंहीसे तसकीन न हुई। कलमको तलवारसे भी चोटें करनी शुरू कीं, कई दैनिक पत्रोंमें ज्वालासिंहकी खबर ली। जिस पत्रमें देखिये उसीमें उनके विरुद्ध कालमके कालम भरे रहते थे। ऐङ्ग्लो इण्डियन पत्रोंको हिन्दुस्तानियोंकी अयोग्यतापर टिप्पणी करनेका अच्छा अवसर हाथ आया। एक महीनेतक यही रौला मचा रहा। ज्वालासिंहके जीवनका कोई अंग कलङ्क और अपवादसे न बचा। एक सम्पादक महाशयने तो यहांतक लिख मारा कि उनका मकान शहरभरके

रसिकजनोंका अखाड़ा है। ज्ञानशङ्करके रचना-कौशलने उनके मनोमालिन्यके साथ मिलकर ज्वालासिंहको अत्याचार और अविचारका काला देव बना दिया। बेचारे लेखोंको पढ़ते थे और मन-ही-मन ऐंठकर रह जाते थे। अपनी सफाई देनेका अधिकार न था। कानून उनका मुंह बन्द किये हुए था। मित्रोंमें ऐसा कोई न था जो पक्षमें कलम उठाता, पत्रोंकी मिथ्यावादितापर कुढ़-कुढ़कर रह जाते थे, जो सत्यासत्यका निर्णय किये बिना अधिकारियोंपर छींटे उड़ानेमें ही अपना गौरव समझते थे। घरसे निकलना मुश्किल हो गया। शहरमें जहां देखिये यही चर्चा थी। लोग उन्हें आते-जाते देखकर खुलेबन्दों उनका उपहास करते थे। अफसरोंकी निगाह भी बदल गयी। जिलाधीशसे मिलने गये। उसने कहला भेजा, मुझे फुरसत नहीं है। कमिश्नर एक बंगाली सज्जन थे। उनके पास फरियाद करने गये। उन्होंने सारा वृत्तान्त बड़ी सहानुभूतिके साथ सुना, लेकिन चलते समय बोले, यह असंभव है कि इस हलचलका आपपर कोई असर न हो। मुझे शङ्का है कि कहीं यह प्रश्न व्यवस्थापक सभामें न उठ जाय। मैं यथाशक्ति आपपर आंच न आने दूंगा। लेकिन आपको न्यायका समर्थन करनेके लिये कुछ नुकसान उठानेपर तैयार रहना चाहिये, क्योंकि सन्मार्ग फूलोंकी सेज नहीं है।

एक दिन ज्वालासिंह इन्हीं चिन्ताओंमें मग्न बैठे हुए थे कि प्रेमशङ्कर आये। ज्वालासिंह दौड़कर उनके गले लिपट गये। आंखें सजल हो गयीं, मानों अपने किसी परम हितैषीसे भेंट हुई हो। कुशल-समाचारके बाद पूछा—देहातसे कब लौटे?

प्रेमशङ्कर—आज ही आया हूं। पूरे डेढ़ महीने लग गये। दो तीन दिनका इरादा करके घरसे चला था। हाजीगंजवाले बार-बार बुलाने न जाते तो मैं जेठभर वहां और रहता।

ज्वाला—बीमारीकी क्या हालत है?

प्रेमशङ्कर—शान्त हो गयी है। यह कहिये, समाचारपत्रोंमें क्या

हरबोंग मचा हुआ है? मैंने तो आज देखा। दुनियामें क्या हो रहा है, इसकी कुछ खबर ही न थी। यह मण्डली तो बेतरह आपके पीछे पड़ी हुई है।

ज्वाला—उनकी कृपा है और क्या कहूं।

प्रेम—मैं तो देखते ही समझ गया कि यह ज्ञानशंकरके दावेको खारिज कर देनेका फल है।

ज्वाला—मुझे बाबू ज्ञानशंकरसे कभी ऐसी आशा न थी कि मुझे अपना कर्त्तव्य-पालन करनेका यह दंड दिया जायगा। अगर वह केवल मेरी न्याय और अधिकार-सम्बन्धी बातोंपर आघात करते तब भी मुझे खेद न होता। मुझे अत्याचारी कहते, द्रोही कहते, निरंकुश सिद्ध करते—हम इन आक्षेपोंके आदी होते हैं। दुःख इस बातका है कि मेरे चरित्रको कलंकित किया गया है। मुझे अगर किसी बातका घमंड है तो वह अपने आचरणका है। मेरे कितने ही रसिक मित्र मुझे वैरागी कहकर चिढ़ाते हैं, यहां मैं कभी थियेटर देखने नहीं गया, कभी मेला तमाशा तक नहीं देखा। बाबू ज्ञानशङ्कर इस बातसे भली भांति परिचित हैं। लेकिन मुझे सारे शहरके छैलोंका नेता बनानेमें उन्हें लेशमात्र भी संकोच न हुआ। इन आक्षेपोंसे मुझे इतना दुःख हुआ है कि उसे प्रकट नहीं कर सकता। कई बार मेरी इच्छा हुई कि विष खा लूं। आपसे मेरा परिचय बहुत थोड़ा है, लेकिन मालूम नहीं, क्यों जी चाहता है कि आपके सामने हृदय निकाल कर रख दूं। मैंने कई बार जहर खानेका इरादा किया, किन्तु यह सोचकर कि कदाचित् इससे इन अक्षेपोंको पुष्टि हो जायगी, रुक गया। यह भय भी था कि शीलमणि रो रोकर प्राण न त्याग दे। सच पूछिये, तो उसीके श्रद्धामय प्रेमने अबतक मेरी प्राण-रक्षा की है। अगर वह एक क्षणके लिये भी मुझसे विमुख हो जाती तो मैं अवश्य ही आत्मघात कर लेता। ज्ञानशङ्कर मेरे स्वभावको जानते हैं। मैं और वह बरसोंतक भाइयोंकी भांति

रहे हैं उन्हें मालूम है कि मेरे हृदयमें मर्मस्थान कहां है। इसी स्थानको उन्होंने अपनी कलमसे वेधा और मेरी आत्माको सदाके लिये निर्बल बना दिया।

प्रेम—मैं तो आपको यही सलाह दूंगा कि इन पत्रोंपर मान-हानिका अभियोग चलाइये। इसके सिवा अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेका कोई उपाय नहीं है। मुझे इसकी जरा भी परवा नहीं कि ज्ञानशङ्करपर इसका क्या असर पड़ेगा। उन्हें अपने कर्मोंका दण्ड मिलना चाहिये। मैं स्वयं सहिष्णुताका भक्त हूं, लेकिन यह असंभव है कि कोई मेरे चरित्रपर मिथ्या कलङ्क लगाये और मैं मौन धारण किये बैठा रहूं। आप वकीलोंसे सलाह लेकर अवश्य मान-हानिका मुकदमा चलाइये।

ज्वालासिंह कुछ सोचकर बोले, और भी बदनामी होगी।

प्रेम—कदापि नहीं। आपको इन मिथ्याक्षेपोंके प्रतिवाद करनेका अवसर मिलेगा, और जनताकी दृष्टिमें आपका सम्मान बढ़ जायगा। ऐसी दशामें आपका चुप रह जाना अक्षम्य ही नहीं, दूषित है। यह न समझिये कि मुझे ज्ञानशङ्करसे द्वेष या अपवादसे प्रेम है। मैं इस मामलेको केवल सिद्धान्तकी निष्पक्ष दृष्टिसे देखता हूं। मान-रक्षा हमारा धर्म है।

ज्वाला—मैं नतीजेको सोचकर कातर हो जाता हूं। बाबू ज्ञानशङ्करका फंस जाना निश्चित है। मुमकिन है जेलकी नौबत आये। वह आत्मिक कष्ट मेरे लिये इससे कहीं असह्य होगा। जिस प्राणीसे बरसोंतक भ्रातृवत् प्रेम रहा, जिससे दांत काटी रोटी थी, उससे मैं इतना कठोर नहीं हो सकता। मैं तो इस विचार मात्रहीसे कांप उठता हूं। इन आक्षेपोंसे मेरी केवल इतनी हानि होगी कि यहांसे तबदील हो जाऊंगा या अधिकसे अधिक पद च्युत हो जाऊंगा। परन्तु ज्ञानशङ्कर तबाह हो जायंगे। मैं अपने दुरावेशोंको पूरा करनेके लिये उनके परिवारका सर्वनाश नहीं कर सकता।

प्रेमशङ्करने ज्वालासिंहको श्रद्धापूर्ण नेत्रोंसे देखा। इस आत्मोत्सर्गके सामने उनका सिर झुक गया, हृदय सदनुरागसे परिपूर्ण हो गया, ज्वालासिंहके पैरोंपर गिर पड़े और सजलनेत्र होकर बोले, भाईजी, आपको परमात्माने देवस्वरूप बनाया है। मुझे अबतक न मालूम था कि आपके हृदयमें ऐसे पवित्र और निर्मल भाव छिपे हुए हैं।

ज्वालासिंह झिझककर पीछे हट गये और बोले, भैया, ईश्वरके लिये यह अन्याय न कीजिये। मैं तो अपनेको इस योग्य भी नहीं पाता कि आपके चरणारविन्द अपने माथेसे लगाऊं। आप मुझे कांटोंमें घसीट रहे हैं।

प्रेमशङ्कर—यदि आपकी इच्छा हो तो मैं उन्हीं पत्रोंमें इन आक्षेपोंका प्रतिवाद कर दूं।

ज्वालासिंह वास्तवमें प्रतिवादकी आवश्यकताको स्वीकार करते थे, किन्तु इस भयसे कि कहीं मेरी अनुमति मुझे उस उच्चपदसे गिरा न दे जो मैंने अभी प्राप्त किया है, इन्कार करना ही उचित जान पड़ा। बोले, जी नहीं, इसकी भी जरूरत नहीं।

प्रेमशङ्करके चले जानेके बाद ज्वालासिंहको खेद हुआ कि प्रतिवादका ऐसा उत्तम अवसर हाथसे निकल गया। अगर इनके नामसे प्रतिवाद निकलता तो यह सारा मिथ्याजाल मकड़ीके जालोंके सदृश कट जाता। पर अब तो जो हुआ सो हुआ। एक साधु पुरुषके हृदयमें स्थान तो मिल गया।

प्रेमशङ्कर घरतक जानेका विचार करके हाजीपूरसे चले थे, महीनोंसे घरका कुशल-समाचार न मिला था, लेकिन यहांसे उठे तो नौ बज गये थे, जेठकी लू चलने लगी थी। घरसे हाजीपूर लौट जाना दुस्तर था। इसलिये किसी दूसरे दिन आनेका इरादा करके लौट पड़े।

लेकिन ज्ञानशङ्करको चैन कहां! उन्हें ज्योंही मालूम हुआ कि भैया देहातसे लौट आये हैं वह उनसे मिलनेके लिये उत्सुक

हो गये। ज्वालासिंहको उनकी नजरोंसे भी गिराना आवश्यक था। सन्ध्या समय था। प्रेमशङ्कर अपने झोपड़ेके सामनेवाले गमलोंमें पानी दे रहे थे कि ज्ञानशङ्कर आ पहुचे और बोले, क्या मजूर कहीं चला गया है क्या ?

प्रेमशङ्कर—मैं भी तो मजूर ही हूं। घरपर सब कुशल है न ?

ज्ञान—जी हां, सब आपकी दया है। आपके यहां तो कई मजूर-हलवाहे होंगे ? क्या वह इतना भी नहीं कर सकते कि इन गमलोंको सींच दें ? आपको व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ता है।

प्रेम—मुझे इनसे काम लेनेका कोई अधिकार नहीं है। वह मेरे निजके नौकर नहीं हैं। मैं तो केवल यहांका निरीक्षक हूं और फिर मैंने अमेरिकामें तो अपने हाथोंसे बर्तन धोये हैं, होटलोंकी मेज़ें साफ़ की हैं, सड़कोंपर झाड़ू दी है, यहां आकर मैं कोई और तो नहीं हो गया। मैंने यहां कोई खिद्मतगार नहीं रक्खा है। अपना सब काम कर लेता हूं।

ज्ञान—तब तो आपने हद्द कर दी। क्या मैं पूछ सकता हूं कि आप क्यों अपनी आत्माको इतना कष्ट देते हैं ?

प्रेम—मुझे कोई कष्ट नहीं होता। हां, इसके विरुद्ध आचरण करनेमें अलबत्ता कष्ट होगा। मेरी आदत ही ऐसी पड़ गयी है।

ज्ञान—यह तो आप मानते हैं कि आत्मिक उन्नतिको भिन्न-भिन्न कक्षायें होती हैं।

प्रेम—मैंने इस विषयमें कभी विचार नहीं किया और न अपना कोई सिद्धान्त स्थिर कर सका हूं। उस मुकदमेकी अपील अभी दायर की या नहीं ?

ज्ञान—जी हां, दायर कर दी। आपने ज्वालासिंहकी सज्जनता देखी ? यह महाशय मेरे बनाये हुए हैं, मैंने ही इन्हें रटा-रटाके किसी तरह बी० ए० कराया, अपना हर्ज करता था, पर पहले इनकी कठिनाइयोंको दूर कर देता था। इस नेकीका इन्होंने यह बदला दिया। ऐसा कृतघ्न मनुष्य मैंने नहीं देखा।

प्रेम—पत्रोंमें उनके विरुद्ध जो लेख छपे थे, वह तुम्हींने लिखे थे ?

ज्ञान—जी हां। जब वह मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते तब मैं क्यों उनकी रिआयत करूं ?

प्रेम—तुम्हारा व्यवहार बिलकुल न्यायविरुद्ध था। उन्होंने जो कुछ किया न्याय समझ कर किया। उनका उद्देश्य तुम्हें नुकसान पहुंचाना न था। तुमने केवल उनका अनिष्ट करनेके लिये यह आक्षेप किये।

ज्ञान—जब आपसमें अदावत हो गयी तो सत्यासत्यका विवेचन कौन करता है ? धर्म-युद्धका समय अब नहीं रहा।

प्रेम—तो यह सब तुम्हारी मिथ्या कल्पना है ?

ज्ञान—जी हां, आपके सामने, लेकिन दूसरोंके सामने······

प्रेम—(बात काटकर) वह मानहानिका दावा कर दें तो ?

ज्ञान—इसके लिये बड़ी हिम्मत चाहिये और उनमें हिम्मतका नाम नहीं। यह सब रोब-दाब दिखानेहीको है। अपीलका फैसला मेरे अनुकूल हुआ तो अभी उनकी और खबर लूंगा। जाते कहां हैं ? और कुछ न हुआ तो बदनामीके साथ तबदील तो हो ही जायंगे। अबकी तो आपने लखनपुरकी खूब सैर की। असामियोंने मेरी खूब शिकायत की होगी।

प्रेम—हां, शिकायत तो सभी कर रहे हैं।

ज्ञान—लड़ाई-दंगेका तो कोई भय नहीं है ?

प्रेम—मेरे विचारमें तो इसकी कोई सम्भावना नहीं है।

ज्ञान—अगर उन्हें मालूम हो जाय कि इस विषयमें हम लोगोंमें मतभेद है—और यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि आप अपने मनोगत भावोंको छिपा नहीं सकते—तो वह और भी शेर हो जायंगे।

प्रेम—(हंसकर) तो इससे हानि क्या होगी ?

ज्ञान—आपके सिद्धान्तोंके अनुसार तो कोई हानि न होगी,

पर मैं तो कहींका न रहूंगा। इस समय मेरे हितके लिये यह अत्यावश्यक है कि आप उधर आना जाना कम कर दें।

प्रेम—क्या तुम्हे सन्देह है कि मैं असामियोंको उभारकर तुमसे लड़ता हूं? मुझे तुमसे कोई दुश्मनी है? मुझे लखनपुरहीके नहीं, सारे देशके कृषकोंसे सहानुभूति है। लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि मुझे जमींदारोंसे कोई द्वेष है। हां, अगर तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं उधर न जाऊं तो यही सही। अब से कभी न जाऊंगा।

ज्ञानशङ्करको इतमीनान तो हुआ, पर वह इसे प्रकट न कर सके। मनमें लज्जित थे। अपने भाईकी रजोवृत्तिके सामने अपनी तमोवृत्ति बहुत ही निकृष्ट प्रतीत होती थी। वह कुछ देर-तक कपास और मक्काके खेतोंको देखते रहे, जो यहां बहुत पहले ही बो दिये गये थे। तब घर चले आये। श्रद्धाके बारेमें न प्रेम-शङ्करने कुछ पूछा और न उन्होंने कुछ कहा। श्रद्धा अब उनकी प्रेमपात्री नहीं, उपास्यदेवी थी।

दूसरे दिन १० बजे डाकियेने उन्हें एक रजिस्टर्ड लिफ़ाफ़ा दिया। उन्होंने विस्मित होकर लिफ़ाफ़ेको देखा। पता साफ लिखा हुआ था। इसे खोला तो ५००) का एक करेन्सी नोट निकला। एक पत्र भी था, जिसमें लिखा हुआ था:—

"लखनपुरवालोंकी सहायताके लिये यह रुपये आपके पास भेजे जाते हैं। इससे आप अपीलकी पैरवी करनेके लिये उन्हें दे दें। इस कष्टके लिये क्षमा कीजियेगा।"

प्रेमशङ्कर सोचने लगे, इसका भेजनेवाला कौन है। यहां मुझे कौन जानता है? कौन मेरे विचारोंसे अवगत है? किसे मुझ-पर इतना विश्वास है? इन सब प्रश्नोंका उत्तर मिलता था, 'ज्वालासिंह।' किन्तु मन इस उत्तरको स्वीकार न करता था।

अब उन्हें यह चिन्ता लगी कि यह रुपये क्योंकर भेजूं? ज्ञान-शङ्करको मालूम हो गया तो वह समझेंगे, मैंने स्वयं असामियों

सहायता दी है। उन्हें कभी विश्वास न आवेगा कि यह किसी अन्य व्यक्तिकी अमानत है। यदि असामियोंको न दूं तो महान् विश्वासघात होगा। इसी हैस बैसमें शाम हो गयी और लाला प्रभाशङ्करका शुभागमन हुआ।

२३

ज्ञानशङ्करको अपीलके सफल होनेका पूरा विश्वास था। उन्हें मालूम था कि किसानोंमें धनाभावके कारण अब बिलकुल दम नहीं है। लेकिन जब उन्होंने देखा कि काश्तकारोंकी ओरसे भी मुकदमेकी पैरवी उत्तम रीतिसे की जा रही है, तो उन्हें अपनी सफलतामें कुछ-कुछ सन्देह होने लगा। उन्हें विस्मय होता था, कि इन सभोंके पास इतने रुपये कहांसे आ गये। गौसखां तो कहता था कि बीमारीने सभीको मटियामेट कर दिया है, कोई अपीलकी पैरवी करने भी न जायगा, एकतरफ़ा डिगरी होगी। यह कायापलट क्योंकर हुई? अवश्य इन सभोंको कहीं-न-कहींसे मदद मिली है। कोई महाजन खड़ा हो गया। शहरमें तो कोई ऐसा नहीं देख पड़ता, लखनपुरहीके आसपासका होगा। खैर, कभी तो रहस्य खुलेगा, तब बच्चूसे समझूंगा। फैसलेके दिन वह स्वयं कचहरी गये। अपील खारिज हो गयी। सबसे पहले गौसखां सामने आये। उनसे डपटकर बोले, क्यों जनाब, आप तो फरमाते थे इन सभोंके पास कौड़ी कफनको नहीं है, यह वकील क्या योंही आ गया?

गौसखांने भी गर्म होकर कहा, मैंने हजूरसे बिलकुल सही अर्ज [illegible]ा था, लेकिन मैं क्या जानता था कि मालिकोंहीमें इतना [illegible]क है। मुझे पता लगता है कि हजूरके बड़े भाई साहबने एक [illegible]ा हुआ कादिरको अपीलकी पैरवीके लिए एक हज़ार रुपये [illegible]हैं।

ज्ञानशङ्कर स्तम्भित हो गये। एक क्षणके बाद बोले—बिल[illegible] झूठ है।

गौसखां—हर्गिज नहीं। मेरे चपरासियोंने कादिरखांको अपनी जबानसे यह कहते सुना है। उससे पूछा जाय तो वह आपसे भी साफ साफ कह देगा या आप अपने भाई साहबसे खुद पूछ सकते हैं।

ज्ञानशङ्कर निरुत्तर हो गये। उसी समय पैरगाड़ी संभाली, झल्लाये हुए घर आये और श्रद्धासे तीव्रस्वरमें बोले, भाभी, तुमने देखी भैयाकी करामात? आज पता चला है कि आपने लखनपुर-वालोंको अपीलकी पैरवी करनेके लिये एक हजार रुपये दिये हैं। इसका फल यह हुआ कि मेरी अपील खारिज हो गयी, महीनोंकी दौड़-धूप और हजारों रुपयोंपर पानी फिर गया। एक हजार सालानाका नुकसान हुआ और रोब दाब बिलकुल मिट्टीमें मिल गया। मुझे उनसे ऐसी कूटनीतिकी आशंका न थी। अब तुम्हीं बताओ, उन्हें दोस्त समझूं या दुश्मन?

श्रद्धाने संशयात्मक भावसे कहा, तुम्हें किसीने बहका दिया होगा। भला उनके पास इतने रुपये कहां होंगे?

ज्ञान—नहीं, मुझे पक्की खबर मिली है। जिन लोगोंने रुपये पाये हैं वह खुद अपनी जबानसे कहते हैं।

श्रद्धा—तुमसे तो उन्होंने वादा किया था न कि लखनपूरसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं वहां कभी न जाऊंगा?

ज्ञान—हां, कहा तो था और मैंने उनपर विश्वास कर लिया था, लेकिन आज विदित हुआ कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो सारे संसारके मित्र होते हैं, पर अपने घरके शत्रु। जरूर इसमें चा साहबका हाथ है।

श्रद्धा—पहले उनसे पूछ तो लो। मुझे विश्वास नहीं कि उनके पास इतने रुपये होंगे।

ज्ञान—उनकी कपटनीतिने मेरे सारे मनसूबोंको मिट्टीमें दिया। जब उनको मुझसे इतना वैमनस्य है तो मैं नहीं स कि मैं उन्हें अपना भाई कैसे समझूं? बिरादरीवालोंने ब कुल

तिरस्कार किया वह असङ्गत नहीं था। विदेशनिवास आत्मीयताका नाश कर देता है।

श्रद्धा—तुम्हें भ्रम हुआ है।

ज्ञान—फिर वही बच्चोंकीसी बातें करती हो। तुम क्या जानती हो कि उनके पास रुपये थे या नहीं?

श्रद्धा—तो जरा वहांतक चले ही क्यों नहीं जाते?

ज्ञान—अब नहीं जा सकता। मुझे उनकी सूरतसे घृणा हो गयी। उन्होंने असामियोंका पक्ष लिया है तो मैं भी दिखा दूंगा कि मैं क्या कुछ कर सकता हूं। जमींदारके बावन हाथ होते हैं। लखनपुरवालोंको ऐसा कुचलूंगा कि उनकी हड्डियोंका पता न लगेगा। भैयाके मनकी बात मैं जानता हूं। तुम सरल-स्वभावा हो; उनकी तहतक नहीं पहुंच सकतीं। उनका उद्देश्य इसके सिवा और कुछ नहीं है कि मुझे तंग करके और असामियोंको उभारकर मुसल्लम गांव हथिया लें और हम तुम कहींके न रहें। अब उन्हें खूब पहचान गया। रंगे हुए सियार हैं—मनमें और, मुंहमें और। और फिर जिसने अपना धर्म खो दिया, वह जो कुछ न करे वह थोड़ा है। इससे तो बेचारा ज्वालासिंह फिर भी अच्छा है। उसने जो कुछ किया, न्याय समझ कर किया, मेरा अहित न करना चाहता था। एक प्रकारसे मैंने उसके साथ बड़ा अन्याय किया, उसे देशभरमें बदनाम कर दिया। उन बातोंको याद करनेसे ही दुःख होता है।

श्रद्धा—उनकी तो यहांसे बदली हो गयी। शीलमणिकी महरी आज आयी थी। कहती थी, तीन चार दिनमें चले जायंगे। दरजा भी घटा दिया गया है।

ज्ञानशङ्करने चौंककर कहा—सच!

श्रद्धा—शीलमणि कल आनेवाली है। विद्या बड़े सङ्कोचमें पड़ी हुई है।

ज्ञान—मुझसे बड़ी भूल हुई। इसका शोक जीवन-पर्य्यन्त

रहेगा। मुझे तो अब इसका विश्वास होता जाता है कि भैयाने ही उनके कान भी भर दिये थे। जिस दिन वह मौक़ा देखने गये थे उसी दिन भैया भी लखनपुर पहुंचे। बस, इधर तो ज्वालासिंहको पट्टी पढ़ाई, उधर गांववालोंको पक्का पोढ़ा कर दिया। मैं कभी कल्पना भी न कर सकता था कि वह इतनी दूरकी कौड़ी लायेंगे, नहीं तो मैं पहलेसे ही चौकन्ना रहता।

श्रद्धाने ज्ञानशंकरको अनादरकी दृष्टिसे देखा और वहांसे उठकर चली गयी।

दूसरे दिन शीलमणि आयी और दिनभर यहां रही। चलते समय विद्या और श्रद्धासे गले मिलकर खूब रोयी।

ज्वालासिंह पांच दिन और रहे। ज्ञानशङ्कर रोज उनसे मिलनेका विचार करते, लेकिन समय आनेपर कातर हो जाते थे। भय होता कहीं उन्होंने उन आक्षेपपूर्ण लेखोंकी चर्चा छेड़ दी तो क्या जवाब दूंगा। धांधली तो कर सकता हूं। साफ मुकर जाऊं कि मैंने कोई लेख नहीं लिखा, मेरे नामसे तो कोई लेख छपा नहीं, किन्तु शङ्का होती थी कि कहीं इस प्रपञ्चसे ज्वालासिंहकी आंखोंमें और न गिर जाऊं।

पांचवें दिन ज्वालासिंह यहांसे चले। स्टेशनपर मित्रजनोंकी अच्छी संख्या थी। प्रेमशङ्कर भी मौजूद थे। ज्वालासिंह मित्रोंसे हाथ मिला मिलाकर विदा होते थे। गाड़ीके छूटनेमें एक ही दो मिनट बाकी थे, कि इतनेमें ज्ञानशङ्कर लपके हुए प्लेटफार्मपर आये और पीछेकी श्रेणीमें खड़े हो गये। आगे बढ़कर मिलनेकी हिम्मत न पड़ी। ज्वालासिंहने उन्हें देखा, गाड़ीसे उतरकर उनके पास आये और गलेसे लिपट गये। ज्ञानशङ्करकी आंखोंसे आंसू बहने लगे। ज्वालासिंह रोते थे कि चिरकालकी मैत्रीका ऐसा शोकमय अन्त हुआ, ज्ञानशङ्कर रोते थे कि हाय! मेरे ऐसे सच्चे, निश्छल, निःस्पृह और हितैषी मित्रका अमङ्गल हुआ।

गार्डने झण्डी दिखायी तो ज्ञानशङ्करने कम्पित स्वरमें कहा, भाई जान, मैं अत्यन्त लज्जित हूं।

ज्वालासिंह बोले, उन बातोंको भूल जाइये।

ज्ञान—ईश्वरने चाहा तो इसका प्रतिकार कर दूंगा।

ज्वाला—कभी-कभी पत्र लिखते रहियेगा, भूल न जाइयेगा।

लोगोंको दोनों मित्रोंके इस सद्व्यवहारपर कुतूहल हुआ। उनके विचारमें इस घावका भरना दुस्तर था। सबसे ज्यादा आश्चर्य प्रेमशंकरको हुआ, जो ज्ञानशंकरको उससे कहीं अस-ज्जन समझते थे, जितने वह वास्तवमें थे।

२४

अपील खारिज करनेके बाद ज्ञानशङ्करने गोरखपुरकी तैयारी की। सोचा, इस तरह तो लखनपुरसे आजीवन गला न छूटेगा, एक न एक उपद्रव मचा ही रहेगा। कहीं गोरखपुरमें रङ्ग जम गया तो दो ही तीन बरसोंमें ऐसे कई लखनपूर हाथ आ जायंगे। विद्या भी स्थितिका विचार करके सहमत हो गयी। उसने सोचा, अगर दोनों भाइयोंमें योंही मनमुटाव रहा तो अवश्य ही बंटवारा हो जायगा और तब एक हजार सालानाकी आमदनीमें निर्वाह न हो सकेगा। इनसे और कोई काम तो हो सकेगा नहीं, वहांसे जो काम मिलता है, वही सही। अतएव जन्माष्टमी-से उत्सवके बाद ज्ञानशङ्कर गोरखपूर जा पहुंचे। प्रेमशंकरसे मुलाकात तक न की।

प्रभातका समय था। गायत्री पूजापर थी, कि दरवानने ज्ञानशंकरके आनेकी सूचना दी। गायत्रीने तत्क्षण तो उन्हें अन्दर न बुलाया, हां, जो पूजा नौ बजे समाप्त होती थी, वह सात ही बजे समाप्त कर दी। तब अपने कमरेमें आकर उसने एक सुन्दर साड़ी पहनी, बिखरे हुए केश संवारे और गौरवके साथ मसनदपर जा बैठी। लौंडीको इशारा किया कि ज्ञानशङ्करको बुला लावे। वह अब "रानी" थी। यह उपाधि उसे हालहीमें

हुई थी। वह ज्ञानशंकरसे यथोचित आरोहसे मिलना चाहती थी।

ज्ञानशंकर बुलावेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें यहांका ठाट-बाट देखकर विस्मय हो रहा था। द्वारपर दो दरबान वर्दी पहने टहल रहे थे। सामनेकी अंगनाईमें एक घण्टा लटका हुआ था। एक ओर अस्तबलमें कई बड़ी रासके घोड़े बंधे हुए थे। दूसरी ओर एक टीनके झोपड़ेमें दो हवागाड़ियां थीं। दालानमें पिंजरे लटकते थे, किसीमें मैना थी, किसीमें पहाड़ी श्यामा, किसीमें सुफेद तोता, विलायती बतखें अलग कठघरेमें पले हुए थे। भवनके सम्मुख ही एक बंगला था, फर्श मेज कुरसीसे सजा हुआ। यही दफ्तर था। यद्यपि अभी बहुत सवेरा था, पर कर्मचारी लोग अपने-अपने काममें लगे हुए थे। जिस कमरेमें वह स्वयं बैठे हुए थे वह दीवानखाना था। उसकी सजावट बड़े सलीकेके साथ की गयी थी। ऐसी बहुमूल्य कालीनें और ऐसे बड़े बड़े आईने उनकी निगाहसे न गुजरे थे।

कई दालानों और आंगनोंसे गुजरनेके बाद जब वह गायत्रीकी बैठकमें पहुंचे तब उन्हें अपने सम्मुख विलासमय सौन्दर्यकी एक अनुपम मूर्ति नजर आयी, जिसके एक-एक अंगसे गर्व और गौरव आभासित हो रहा था। यह वह पहलेकीसी प्रसन्नमुख, सरलप्रकृति, विनयपूर्ण गायत्री न थी।

ज्ञानशंकरने सिर झुकाये सलाम किया और कुरसीपर बैठ गये, लज्जाने सिर न उठाने दिया। गायत्रीने कहा, आइये महाशय, आइये, क्या विद्या छोड़ती ही न थी? और तो सब कुशल है?

ज्ञान—जी हां, सब लोग अच्छी तरह हैं। माया तो चलते समय बहुत जिद कर रहा था कि मैं भी मासीके घर चलूंगा, लेकिन अभी बुखारसे उठे हुए थोड़े ही दिन हुए हैं, इसी कारण साथ न लाया। आपको नित्य याद किया करता है।

गायत्री—मुझे भी उसकी प्यारी-प्यारी भोली सूरत याद आती है। कई बार इच्छा हुई कि चलूं, सबसे मिल आऊं, पर रियासतके झमेलोंसे फुरसत ही नहीं मिलती। यह बोझ आप संभालें तो मुझे ज़रा सांस लेनेका अवकाश मिले। आपके लेखका तो बड़ा आदर हुआ। (मुस्कुराकर) खुशामद करनी कोई आपसे सीख ले।

ज्ञान—जो कुछ था वह मेरी श्रद्धाका अल्पांश था।

गायत्रीने गुणज्ञताके भावसे मुस्कुराकर कहा—जब थोड़ा-सा पाप बदनाम करनेको पर्य्याप्त हो तो अधिक क्यों किया जाय? कार्तिकमें हिज एक्सेलेन्सी यहां आनेवाले हैं। उस अवसरपर मेरे उपाधि-प्रदानका जलसा होना निश्चय किया गया है। अभीतक तो केवल गजटमें सूचना छपी है। अब दरबारमें मैं यथोचित समारोह और सम्मानके साथ उपाधिसे विभूषित की जाऊंगी।

ज्ञान—तब तो अभीसे दरबारकी तैयारी होनी चाहिये।

गायत्री—आप बहुत अच्छे अवसरपर आये। दर्बारके मंडपमें अभीसे हाथ लगा देना चाहिये। मेहमानोंका ऐसा आदर-सत्कार किया जाय कि चारों ओर धूम मच जाय। रुपयेकी जरा चिन्ता मत कीजिये। आप ही इस अभिनयके सूत्रधार हैं, आपहीके हाथों इसका सूत्रपात होना चाहिये। एक दिन मैंने जिलाधीशसे आपका जिक्र किया था। पूछने लगे, उनके राजनीतिक विचार कैसे हैं। मैंने कहा, बहुत ही विचारशील शान्त प्रकृतिके मनुष्य हैं। यह सुनकर बहुत खुश हुए और कहा, वह आ जायं तो एक बार जल्सेके सम्बन्धमें मुझसे मिल लें।

इसके बाद गायत्रीने इलाकेकी सुव्यवस्था और अपने संकल्पोंकी चर्चा शुरू की। ज्ञानशंकरको उसके अनुभव और योग्यतापर आश्चर्य्य हो रहा था। उन्हें भय होता था कि कदाचित् मैं इन कार्य्योंका उत्तम रीतिसे सम्पादन न कर सकूं। उन्हें देहाती

यंत्रोंका बिलकुल ज्ञान न था, निर्माण-कार्य्यसे परिचित न थे, कृषिके नये आविष्कारोंसे कोरे थे, किन्तु इस समय अपनी अयोग्यता प्रकट करना नितान्त अनुचित था। वह गायत्रीकी बातोंपर ऐसी मर्मज्ञतासे सिर हिलाते थे और बीच-बीचमें ऐसी टिप्पणियां करते थे, मानों इन विषयोंमें पारंगत हैं। उन्हें अपनी बुद्धिमत्ता और चातुर्य्यपर भरोसा था। इनके बलपर वह कोई काम हाथमें लेते हुए न हिचकते थे।

ज्ञानशंकरको दो-चार दिन भी शान्तिसे बैठकर कामको समझनेका अवसर न मिला। दूसरे ही दिनसे दरबारकी तैयारियोंमें दत्तचित्त होना पड़ा। प्रातःकालसे संध्यातक सिर उठानेकी फुरसत न मिलती। बार-बार अधिकारियोंसे राय लेनी पड़ती, सजावटकी वस्तुओंको एकत्र करनेके लिये बार-बार रईसोंकी सेवामें दौड़ना पड़ता। ऐसा जान पड़ता था कि यह कोई सरकारी दर्बार है। लेकिन कर्त्तव्यशील उत्साही पुरुष थे, कामसे घबराते न थे। प्रत्येक कामको पूरी ज़िम्मेदारीसे करते थे। वह संकोच और अविश्वास जो पहले किसी मामलेमें अग्रसर न होने देता था, अब दूर होता जाता था। उनकी अध्यवसायशीलतापर लोग चकित हो जाते थे। दो महीनोंके अविश्रान्त उद्योगके बाद दर्बारका इन्तज़ाम पूरा हो गया। जिलाधीशने स्वयं आकर देखा, और ज्ञानशङ्करकी तत्परता और कार्य्यदक्षताकी खूब प्रशंसा की। गायत्रीसे मिले तो ऐसे सुयोग्य मैनेजरकी नियुक्तिपर उसे बधाई दी। अभिनन्दनपत्रकी रचनाका भार भी ज्ञानशङ्करपर ही था। साहब बहादुरने उसे पढ़ा, तो लोट-पोट हो गये और नगरके मान्य जनोंसे कहा, मैंने किसी हिन्दुस्तानीकी कलममें यह चमत्कार नहीं देखा।

अक्टूबर मासकी १५ तारीख दर्बारके लिये नियत थी। लोगोंने सारी रात जागरण किया। प्रातःकालसे सलामीकी तोपें दगने लगीं। अगर उस दिनकी कार्य्यवाहीका संक्षिप्त वर्णन किया

जाय तो एक ग्रंथ बन जाय। ऐसे अवसरोंपर उपन्यासकार अपनी कल्पनाको समाचारपत्रोंके संवाददाताओंके सुपुर्द कर देता है। लेडियोंके भूषणालंकारकी बहार, रईसोंकी सजधजकी छटा देखनी हो, दावतकी चटपटी, स्वादयुक्त सामग्रियोंका मजा चखना हो, और शिकारके तड़प-झड़पका आनन्द उठाना हो तो अखबारोंहीके पन्ने उलटिये। वहां आपको सारा विवरण अत्यंत सजीव, चित्रमय शब्दोंमें मिलेगा। प्रेसिडेण्ट रूज़वेल्ट शिकार खेलने अफ्रीका गये थे तो संवाददाताओंकी एक मंडली उनके साथ गयी थी। सम्राट् जार्ज पञ्चम जब भारतवर्ष आये थे तो संवाददाताओंकी एक पूरी सेना उनके जलूसमें थी। यह दर्बार इतना महत्त्वपूर्ण न था, तिसपर भी पत्रोंमें महीनोंतक इसकी चर्चा होती रही। हम इतना कह देना ही काफी समझते हैं कि दर्बार विधिपूर्वक समाप्त हुआ, कोई त्रुटि न रही, प्रत्येक कार्य्य निर्दिष्ट समयपर हुआ, किसी प्रकारकी अव्यवस्था न होने पायी। इस विलक्षण सफलताका सेहरा ज्ञानशङ्करके सिर था। ऐसा मालूम होता था कि सभी कठपुतलियां उन्हींके इशारेपर नाच रही हैं। गवर्नर महोदयने विदाईके समय उन्हें धन्यवाद दिया, चारों तरफ वाह वाह हो गयी।

संध्या समय था। दर्बार समाप्त हो चुका था। ज्ञानशङ्कर नगरके मान्यजनोंके साथ गवर्नरको स्टेशनतक विदा करके लौटे थे और एक कोचपर आरामसे लेटे सिगार पी रहे थे। आज उन्हें सारा दिन दौड़ते गुजरा था, जरा भी दम लेनेका अवकाश न मिला। वह कुछ अलसाये हुए थे, पर इसके साथ ही हृदयपर वह उल्लास छाया हुआ था, जो किसी आशातीत सफलताके बाद प्राप्त होता है। वह इस समय जब अपने कृत्योंका सिंहावलोकन करते थे तो उन्हें अपनी योग्यतापर स्वयं आश्चर्य होता था। अभी दो ढाई मास पहले मैं क्या था, एक मामूली आदमी, केवल दो हजार सालानाका जमींदार। शहरमें कोई मेरी बात

भी न पूछता था, छोटे-छोटे अधिकारियोंसे भी दबता था और उनकी खुशामद करता था। अब यहांके अधिकारिवर्ग मुझसे मिलनेकी अभिलाषा रखते हैं। शहरके मान्यगण अपना नेता समझते हैं। बनारसमें तो सारी उम्र बीत जाती और यह सम्मान-पद न लाभ होता। आज गायत्रीका मिजाज भी आस-मानपर होगा। मुझे जरा भी आशा न थी कि वह इस तरह बेधड़क मंचपर चली आयेगी। वह मंचपर आयी तो सारा दर्बार जगमगाने लगा था। उसके कुन्दनवर्णपर अगरई साड़ी कैसी छटा दिखा रही थी! उसके सौन्दर्य्यकी आभाने रत्नोंकी चमक-दमकको भी मात कर दिया था। विद्या इससे कहीं रूप-वती है, लेकिन उसमें यह आकर्षण कहां, यह उत्तेजक शक्ति कहां, यह लगविता कहां, यह रसिकता कहां? इसके सम्मुख आकर आंखोंपर, चित्तपर, जबानपर काबू रखना कठिन हो जाता है। मैंने चाहा था कि इसे अपनी ओर खींचूं, उससे मान करूं, किन्तु कोई शक्ति मुझे बलात् उसकी ओर खींचे लिये जाती है। अब मैं रुक नहीं सकता। कदाचित् वह मुझे अपने समीप आते देखकर पीछे हटती है, मुझसे स्वामिनी और सेवकके अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती। वह मेरी योग्यताका आदर करती है और मुझे अपनी सम्मानतृष्णाका साधनमात्र बनाना चाहती है। उसके हृदयमें अब अगर कोई अभिलाषा है तो वह सम्मान-प्रेम है। यही अब उसके जीवनका मुख्य उद्देश्य है। मैं इसीका आवाहन करके यहां पहुंचा हूं और इसीकी बदौलत एक दिनमें मैं उसके हृदयमें प्रेमका बीज भी अंकुरित कर सकूंगा।

ज्ञानशङ्कर इन्हीं विचारोंमें मग्न थे कि गायत्रीने अन्दर बुलाया और मुस्कुराकर बोली, आज सारी आयोजनाका श्रेय आपको है। मैं हृदयसे आपकी अनुगृहीत हूं। साहब बहादुरने चलते समय आपकी बड़ी प्रशंसा की। आपने मजूरोंकी मजूरी तो दिला

दी है ? मैं इस आनन्दोत्सवमें बेगार लेकर किसीको दुःखी नहीं करना चाहती।

ज्ञान—जी हां, मैंने मुख्तारसे कह दिया था।

गायत्री—मेरी ओरसे प्रत्येक मजूरको एक-एक रुपया इनाम दिला दीजिये।

ज्ञान—पांच सौ मजूरोंसे कम न होंगे।

गायत्री—कोई हर्ज नहीं, ऐसे अवसर रोज नहीं आया करते। जिस ओवरसियरने पंडाल बनवाया है, उसे १००) इनाम दे दीजिये।

ज्ञान—वह शायद स्वीकार न करे।

गायत्री—यह रिशवत नहीं, इनाम है। स्वीकार क्यों न करेगा ? फर्राशों और आतशबाजोंको भी कुछ मिलना चाहिये।

ज्ञान—तो फिर हलवाई और बावर्ची, खानसामे और खिद-मतगार क्यों छोड़े जायं ?

गायत्री—नहीं, कदापि नहीं, उन्हें २०)-२०) से कम न मिले।

ज्ञान—(हंसकर) मेरी सारी मितव्ययिता निष्फल हो गयी।

गायत्री—वाह, उसीकी बदौलत तो मुझे हौसला हुआ है। मजूरको मजूरी कितनी ही दीजिये, खुश नहीं होता, लेकिन इनाम पाकर खुशीसे फूल उठता है। अपने नौकरोंको भी यथायोग्य कुछ न कुछ दिलवा दीजिये।

ज्ञान—जी हां, जब बाहरवाले लूट मचायें तो घरवाले क्या गीत गायें।

गायत्री—नहीं, घरवालोंको पहला हक़ है जो आठों पहरके गुलाम हैं। सब आदमियोंको यहीं बुलाइये, मैं अपने हाथसे उन्हें इनाम दूंगी। इसमें उन्हें विशेष आनन्द मिलेगा।

ज्ञान—घंटोंकी झंझट है। बारह बज जायंगे।

गायत्री—यह झंझट नहीं है। यह मेरी हार्दिक लालसा

है। अब मुझे कई बड़े बड़े अनुष्ठान करने हैं। यह मेरा जड़ाऊ कंगन है। यह विद्याके भेंट है, कल इसका पारसल भेज दीजिये और ५००) नगद।

ज्ञान—(सिर झुकाकर) इसकी क्या जरूरत है ? न मौका है।

गायत्री—और कौन-सा मौका होगा। मेरे लड़के लड़कियां भी तो नहीं हैं कि उनके विवाहमें दिलके अर्मान निकालूंगी। यह कंगन उसे पसन्द भी था। पिछले साल इटालीसे मंगवाया था। अब आपसे भी मेरी एक प्रार्थना है। आप मुझसे छोटे हैं, आप भी अपना हक़ वसूल कीजिये और निर्दयताके साथ।

ज्ञानशङ्करने शरमाते हुए कहा—मेरे लिये आपकी कृपादृष्टि काफ़ी है। इस अवसरपर मुझे जो कीर्ति प्राप्त हुई है, वही मेरा इनाम है।

गायत्री—जी नहीं, मैं न मानूंगी। इस समय संकोच छोड़िये और सूद खानेवालोंकी भांति कठोर बन जाइये। यह आपकी कलम है, जिसने मुझे इस पदपर पहुंचाया है, नहीं तो जिलेमें मेरी जैसी कितनी ही स्त्रियां हैं, कोई उनकी बात भी नहीं पूछता। इस कलमकी यथायोग्य पूजा किये बिना मुझे तस्कीन न होगी।

ज्ञान—इसकी जरूरत तो तब होती जब मुझे उससे कम आनन्द प्राप्त होता, जितना आपको हो रहा है।

गायत्री—मैं यह तर्क-वितर्क एक भी न सुनूंगी। आप स्वयं कुछ नहीं कहते, इसलिये आपकी ओरसे मैं ही कहे देती हूं। आप अपने लिये बनारसमें अपने घरसे मिला हुआ एक सुन्दर बंगला बनवा लीजिये। चार कमरे हों और चारों तरफ बरामदे। बरामदोंपर विलायती खपरैल हो और कमरोंपर लदावकी छत। छतपर बरसातके लिये एक हवादार कमरा बनवा लीजिये। खुश हुए ?

ज्ञानशंकरने कृतज्ञतापूर्ण भावसे देखकर कहा, खुश तो नहीं हूं, अपने ऊपर ईर्षा होती है।

गायत्री—बस, दीपमालिकासे आरम्भ कर दीजिये। अब बतलाइये, मायाको क्या दूं ?

ज्ञान—मायाको अभी कुछ न चाहिये। उसका इनाम अपने पास अमानत रहने दीजिये।

गायत्री—आप तो नगद तेरह उधारवाली मसल भूले जाते हैं।

ज्ञान—अमानतपर तो कुछ न कुछ ब्याज मिलता है।

गायत्री—अच्छी बात है, पर इस समय उसके लिये कलकत्तेके किसी कारखानेसे एक छोटासा टेण्डम मंगा दीजिये, और मेरा टांघन जो तांगेमें चलता है, बनारस भेज दीजिये। छोटी लड़कीके लिये हार बनवा दीजिये, जो ५००) से कमका न हो।

ज्ञानशङ्कर यहांसे चले तो पैर धर्तीपर न पड़ते थे। बंगलेकी अभिलाषा उन्हें चिरकालसे थी। वह समझते थे, यह मेरे जीवनका मधुर स्वप्न ही रहेगी, लेकिन सौभाग्यकी एक ही दृष्टिने वह चिरसंचित अभिलाषा पूर्ण कर दी।

आरम्भ तो उत्साहवर्द्धक हुआ, देखें अन्त क्या होता है!

२८

आयमें वृद्धि और व्ययमें कमी, यह ज्ञानशङ्करके सुप्रबन्धका फल था। यद्यपि गायत्री भी सदैव किफायतपर निगाह रखती थी, पर उसकी किफायत अशर्फियोंकी लूट और कोयलोंपर मोहरको चरितार्थ करती थी। ज्ञानशङ्करने सारी व्यवस्था ही पलट दी। कारिन्दोंकी वेपरवाईसे इलाकेमें जमीनके बड़े बड़े टुकड़े परती पड़े थे। हजारों बीघेकी सीर होती थी, पर अनाजका कहीं पता न चलता था, सबका सब सिपाही, प्यादोंकी खुराकमें उठ जाता था। पटवारीकी साजिश और कारिन्दोंकी बेईमानीसे कितनी ही उर्वरा भूमि ऊसर दिखायी जाती थी। सायरकी

सारी आमदनी राज्याधिकारियोंके आदर-सत्कारके भेंट हो जाती थी। नौकर भी जरूरतसे ज्यादा पड़े हुए थे। ज्ञानशङ्करने कागज-पत्र देखा तो उन्हें बड़ा गोलमाल दिखायी दिया। बहुत दिनोंसे इज़ाफ़ा लगान न हुआ था। खेतोंकी जमाबन्दी भी किसी निश्चित नियमके अधीन न थी। हजारों रुपये प्रति वर्ष बट्टे-खाते चले जाते थे। बड़े बड़े टुकडे मौरूसी हो गये थे। ज्ञानशङ्करने इन सभी मामलोंकी छानबीन शुरू की। सारे इलाके-में हलचल पड़ गयी। गायत्रीके पास शिकायतें पहुचने लगीं और यद्यपि गायत्री असामियोंके साथ नर्मीका बर्ताव करना पसन्द करती थी, पर जब ज्ञानशङ्करने उसे हिसाबका ब्यौरा समझाया तो उसकी आंखें खुल गयीं। हजारसे ज्यादा ऐसे असामी थे जिनपर तत्काल बेदखली न दायर की जाती तो वह सदाके लिये जमींदारके काबूसे बाहर हो जाते और २० हजार सालानाकी क्षति होती। इजाफा लगानसे आमदनी सवाई हुई जाती थी। जिस रियासतसे २ लाख सालाना भी न निकलता था, उससे बिना किसी अड़चनके ३ लाखकी निकासी होती नजर आती थी; ऐसी दशामें गायत्री अपने सुयोग्य मैनेजरसे क्यों न सहमत होती?

तीन वर्षतक सारी रियासतमें हाहाकार मचा रहा। ज्ञान-शङ्करको नाना प्रकारके प्रलोभन दिये गये, यहांतक कि मार डालनेकी धमकियां भी दी गयीं, पर वह अपने कर्मपथसे न हटे। यदि वह चाहते तो इन परिस्थितियोंको अपरिमित धनसंचयका साधन बना सकते थे, पर सम्मान और अधिकारने अब उन्हें क्षुद्रताओंसे निवृत्त कर दिया था।

किन्तु जो मन्सुबे बांधकर ज्ञानशङ्कर यहां आये थे वह अभी तक पूरे होते नजर न आते थे। गायत्री उनका लिहाज़ करती थी, प्रत्येक विषयमें उन्हींकी सलाहपर चलती थी, लेकिन इसके साथ ही वह उनसे कुछ खिंची रहती थी। उन्हें प्रायः नित्य

ही उनसे मिलनेका अवसर प्राप्त होता था, वह इलाकेके दूरवर्ती स्थानोंसे भी मोटरपर लौट आया करते थे, लेकिन यह मुलाकात कार्य्यसम्बन्धी होती थीं, यहां प्रेमतत्व-दर्शनका मौक़ा न मिलता। दो चार लौंडियां खड़ी रहतीं, निराश होकर लौट आते थे। वह आग जो उन्होंने हाथ सेंकनेके लिये जलायी थी अब उनके हृदयको भी गर्म करने लगा थी। उनकी आंखें गायत्रीके दर्शनोंकी भूखी रहती थीं, कान उसका मधुर भाषण सुननेके लिये विकल। यदि किसी दिन मजबूर होकर उन्हें देहातमें ठहरना पड़ता या किसी कारणसे गायत्रीसे भेंट न होती तो वह उस अफीमचीकी भांति अस्थिरचित्त हो जाते थे जिसे समयपर अफीम न मिले।

एक दिन गायत्रीने प्रातःकाल ज्ञानशङ्करको अन्दर बुलाया। आजकल मकानकी सफाई और सुफेदी हो रही थी। दीपमालिकाका उत्सव निकट था। गायत्री बगीचेमें बैठी हुई चिड़ियोंको चुगा रही थी। कोई लौंडी न थी। ज्ञानशङ्करका हृदय चिड़ियेकी भांति फुदकने लगा। आज पहली बार उन्हें ऐसा अवसर मिला। गायत्रीने उन्हें देखकर कहा, आज आपको कोई बहुत जरूरी काम तो नहीं है? मैं आपसे एक खास मामलेमें कुछ राय लेना चाहती हूं।

ज्ञानशङ्कर—कुछ हिसाब किताब देखना था, लेकिन कोई ऐसा जरूरी काम नहीं है।

गायत्री—मेरे स्वामीजीने अन्तिम समय मुझे वसीयत की थी कि अपने बाद यह इलाका धर्मार्पण कर देना और इसकी निगरानी और प्रबन्धके लिये एक ट्रस्ट बना देना। मेरी अब इच्छा होती है कि उनकी वसीयत पूरी कर दूं। जिन्दगीका कोई भरोसा नहीं, न जाने कब संदेशा आ पहुंचे। कहीं बिना लिखा-पढ़ी किये मर गयी तो रियासतका बांट-बखरा हो जायगा और वसीयत पानीकी रेखाकी भांति मिट जायगी। मैं चाहती हूं

कि आप इस समस्याको हल कर दें, इससे अच्छा अवसर फिर न मिलेगा।

ज्ञानशङ्करकी आंखोंके सामने अंधेरा छा गया। उनकी अभिलाषाओंके त्रिभुजका आधार ही लुप्त हुआ जाता था। बोले, वसीयत लेखबद्ध हो गयी है?

गायत्री—उनकी इच्छा मेरे लिये हजारों लेखोंसे अधिक मान्य है। यदि उन्हें मेरी फिक्र न होती तो अपने जीवनकालहीमें रियासतको धर्मार्पण कर जाते। केवल मेरा मान रखनेके लिये उन्होंने इस विचारको स्थगित कर दिया। जब उन्हें मेरा इतना लिहाज था तो मैं भी उनकी इच्छाको देववाणी समझती हूं।

ज्ञानशङ्कर समझ गये कि इस समय कूटनीतिसे काम लेनेकी आवश्यकता है। अनुमोदनसे विरोधका काम लेना चाहिये। बोले, अवश्य, लेकिन पहले यह निश्चय कर लेना चाहिये कि इस परमार्थका स्वरूप क्या होगा।

गायत्री—आप इस सम्बन्धमें लखनऊ जाकर पिताजीसे मिलें। अपने बड़े भाई साहबसे भी राय लीजिये।

प्रेमशङ्करकी चर्चा सुनते ही ज्ञानशङ्करके तेवरोंपर बल पड़ गये। उनकी ओरसे इनके हृदयमें गांठसी पड़ गयी थी। बोले, रायसाहबसे सम्मति लेनी तो आवश्यक है, वह बुद्धिमान हैं, लेकिन भाई साहबको मैं कदापि इस योग्य नहीं समझता। जो मनुष्य इतना विचारहीन हो कि अपनी स्त्रीको त्याग दे, मिथ्या सिद्धान्तप्रेमके घमण्डमें विरादरीका अपमान करे, और अपनी असाधुताको प्रजाभक्तिका रङ्ग देकर भाईकी गर्दनपर छुरी चलानेमें संकोच न करे, उससे इस धार्मिक विषयमें कुछ पूछना व्यर्थ है। उनकी बदौलत मेरी एक हजार सालानाकी हानि हो गयी और तीन साल गुजर जानेपर भी गांवमें शान्ति नहीं होने पायी, बल्कि उपद्रव बढ़ता ही चला जाता है। श्रद्धा इन्हीं अविचारोंके कारण उनसे घृणा करती है।

गायत्री—मेरी समझमें तो यह श्रद्धाका अन्याय है। जिस पुरुषके साथ विवाह हो गया उसके साथ निर्वाह करना प्रत्येक कर्मनिष्ठ नारीका धर्म है।

ज्ञान—चाहे पुरुष नास्तिक और विधर्मी हो जाय?

गायत्री—हां, मैं तो ऐसा ही समझती हूं। विवाह स्त्री-पुरुषके अस्तित्वको संयुक्त कर देता है। उनकी आत्मायें एक दूसरेमें समाविष्ट हो जाती हैं।

ज्ञान—पुराने जमानेमें लोगोंके विचार ऐसे रहे हों, पर नया युग इसे नहीं मानता। वह स्त्रीको सम्पूर्णतः स्वाधीन ठहराता है। वह मनसा वाचा कर्मणा किसीके अधीन नहीं है। परमात्मासे आत्माका जो घनिष्ठ सम्बन्ध है, उसके सामने मानवकृत सम्बन्धकी कोई हस्ती नहीं हो सकती। पश्चिमके देशोंमें आये दिन धार्मिक मतभेदके कारण तलाक होते रहते हैं।

गायत्री—उन देशोंकी बात न चलाइये, वहांके लोग तो विवाहको केवल सामाजिक सम्बन्ध समझते हैं। आपहीने एक बार कहा था कि वहां कुछ ऐसे लोग भी हैं जो विवाहसंस्कारको मिथ्या समझते हैं। उनके विचारमें स्त्री-पुरुषकी अनुमति ही विवाह है, लेकिन भारतवर्षमें कभी इन विचारोंका आदर नहीं हुआ।

ज्ञान—स्मृतियोंमें तो इसकी व्यवस्था स्पष्टरूपसे की गयी है।

गायत्री—की गयी है, मुझे मालूम है, लेकिन कभी उसका प्रचार नहीं हुआ। और क्यों होता जब कि हमारे यहां स्त्री-पुरुष दोनों एक साथ रहकर अपने मतानुसार परमात्माकी उपासना कर सकते हैं? पुरुष वैष्णव है स्त्री शैव है; पुरुष आर्य्य समाजमें है, स्त्री अपने पुराने सनातनधर्मको मानती है, ईश्वरको भी नहीं मानता, स्त्री ईंट और पत्थरोंतककी पूजा अर्चना करती है। लेकिन इन भेदोंके पीछे पति-पत्नीमें अलगाव

नहीं हो जाता। ईश्वर वह कुदिन यहां न लाये, जब लोगोंमें विचारस्वातन्त्र्यका इतना प्रकोप हो जाय।

ज्ञान—इसका कारण यही है कि हम भीरुप्रकृति हैं, यथार्थका सामना न करके मिथ्या आदर्श प्रेमकी आड़में अपनी कमजोरीको छिपाते हैं।

गायत्री—मैंने आपका आशय नहीं समझा।

ज्ञान—मेरा आशय केवल यही है कि लोकनिन्दाके भयसे अपने प्रेम या अरुचिको छिपाना अपनी आत्मिक स्वाधीनताको खाकमें मिलाना है। मैं उस स्त्रीको सराहनीय नहीं समझता जो एक दुराचारी पुरुषसे केवल इसलिये भक्ति करती है कि वह उसका पति है। वह अपने उस जीवनको जो सार्थक हो सकता है नष्ट कर देती है। यही बात पुरुषोंपर भी घटित हो सकती है। हम संसारमें रोने और झींकनेहीके लिये नहीं आये हैं और न आत्मदमन हमारे जीवनका ध्येय है।

गायत्री—तो आपके कथनका निष्कर्ष यह है कि हम अपनी मनोवृत्तियोंका अनुसरण करें, जिस ओर इच्छायें ले जायं उसी ओर आंखें बन्द किये चले जायं। उनके दमनकी चेष्टा न करें। आपने पहले भी एक बार यही विचार प्रकट किया था, तबसे मैंने इसपर अच्छी तरह गौर किया है, लेकिन हृदय इसे किसी भांति स्वीकार नहीं करता। इच्छाओंको जीवनका आधार बनाना बालूकी दीवार बनाना है। धर्मग्रन्थोंमें आत्मदमन और संयमकी अखण्ड महिमा कही गयी है, बल्कि इसीको मुक्तिका साधन बताया गया है। इच्छाओं और वासनाओंहीको मानवपतनका मुख्य कारण सिद्ध किया गया है और मेरे विचारमें यह निर्विवाद है। ऐसी दशामें पश्चिमवालोंका अनुकरण करना नादानी है। प्रथाओंकी गुलामी इच्छाओंकी गुलामीसे श्रेष्ठ है।

ज्ञानशङ्करको इस कथनमें बड़ा आनन्द आ रहा था। इससे उन्हें गायत्रीके हृदयके भेद्य और अभेद्य स्थलोंका पता मिल रहा

था, जो आगे चलकर उनकी अभीष्टसिद्धिमें सहायक हो सकता था। वह कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि एक लौंडीने तारका लिफाफा लाकर उनके सामने रख दिया। ज्ञानशङ्करने चौंककर लिफाफा खोला। लिखा था, 'जल्द आइये' लखनपूरवालोंसे फौजदारी होनेका भय है।

ज्ञानशङ्करने अन्यमनस्क भावसे लिफाफेको जमीनपर फेंक दिया। गायत्रीने पूछा—घरपर तो सब कुशल है न?

ज्ञानशङ्कर—लखनपुरसे आया है, वहां फौजदारी हो गयी है। इस गांवने मेरी नाकमें दम कर दिया। सब ऐसे दुष्ट हैं कि किसी तरह काबूमें नहीं आते। यह सब भाई साहबकी करतूत है।

गायत्री—तब तो आपको जाना पड़ेगा। कहीं मामला तूल न पकड़ गया हो।

ज्ञान—अबकी हमेशाके लिये निवटारा कर दूंगा। या तो गांवसे इस्तीफा दे दूंगा या सारे गांवको ही जला डालूंगा। वह लोग भी क्या याद करेंगे कि किसीसे पाला पड़ा था।

गायत्री—लौटते हुए मायाको ज़रूर लाइयेगा। उसे देखनेको बहुत जी चाहता है। विद्याको भी घसीट लाये तो क्या कहना! मैं तो लिखते-लिखते हैरान हो गयी।

ज्ञान—यह वही प्रथाकी गुलामी है, जिसका आप बयान करती हैं। बहिनके घर जानेका साधारणतः रिवाज नहीं है, वह इसे क्योंकर तोड़ सकती है? कदाचित् इसी कारणसे आप भी वहां नहीं जा सकतीं।

गायत्री—(लजाकर) मैं इन बातोंकी परवा नहीं करती, लेकिन यहां तो आप देखते हैं सिर उठानेकी भी फुरसत नहीं।

ज्ञान—यही बहाना वह भी कर सकती है।

गायत्री—खैर, वह न आये न सही, लेकिन मायाको ज़रूर लाइयेगा और वहांका समाचार लिखते रहियेगा। अवकाश मिलते ही चले आइयेगा।

गायत्रीका अन्तिम वाक्य ऐसा आकांक्षा-सूचक था कि ज्ञानशङ्करके हृदयमें गुदगुदी-सी हो गयी। उन्हें यहां रहते तीन सालसे ऊपर हो गये थे, कितनी ही बार बनारस आये, लेकिन गायत्रीने कभी लौटनेके लिये ऐसा भावपूर्ण आग्रह न किया था। दिलने कहा, शायद मेरा जादू कुछ असर करने लगा। बोले, तब भी दो सप्ताहसे कम क्या लगेंगे?

गायत्री चिन्तित स्वरसे बोली—दो सप्ताह!

ज्ञानशङ्करको अपने विचारकी पुष्टि हो गयी। ६ बजे वह डाकगाड़ीसे रवाना हुए और ५ बजते-बजते बनारस पहुच गये।

२६

जिस समय ज्ञानशंकरकी अपील खारिज हुई, लखनपुरके लोगोंपर विपत्तिकी घटा छायी हुयी थी। कितने ही घर प्लेगसे उजड गये। कई घरोंमें आग लग गयी। कई चोरियां हुईं। उनपर दैविक घटनायें अलग। कभी आंधी आती, कभी पानी बरसता, फाल्गुन महीनेमें एक दिन ओले पड़ गये। सारी खेती नष्ट हो गयी। अब गांववालोंके लिये कोई सहारा न था। विशेशर साहने भी जमींदारके मुकाबिलेमें सहायता देनेसे इनकार किया। स्त्रियोंके गहने पहले ही निकल चुके थे। अब सुक्खू चौधरीके सिवा और कोई न था जो अपीलकी पैरवी कर सकता। लोग भाग्यपर भरोसा किये बैठे हुए थे। बेकसीकी दशामें प्रेमशङ्करके भेजे हुए रुपयोंने बड़ा काम किया। मुर्दे जाग पड़े। कादिरखां दृढ़प्रतिज्ञ होकर उठ खड़ा हुआ और जी तोड़कर मुकदमेकी पैरवी करने लगा। लेकिन किसानोंकी नैतिक विजय वास्तविक पराजयसे कम न थी। ज्ञानशंकर असामियोंको इस दुःसाहसका दण्ड देनेके लिये उधार खाये बैठे थे। अभी गांवके लोग झोपड़ोंहीमें थे कि गौसखां अपने तीनों चपरासियोंको लिये हुए आये और झोपड़ोंमें आग लगवा दी। बागकी भूमि जमींदारकी थी। असामियोंको वहां झोपड़े बनवानेका कोई अधिकार न था। चपरासियोंमें दो

बिल्कुल नये थे। फैजू और कर्तार—दोनों लकड़ी चलानेमें कुशल थे। कई बार सजा पाये हुए, जिनके हृदयमें दया और शीलका नाम न था। पुराने आदमियोंमें केवल बिन्दा महाराज रह गये थे और अपनी कुटिल नीतिकी बदौलत। अभीतक ताऊनकी ज्वाला शांत न हुई थी कि लोगोंको विवश होकर बस्तीमें आना पड़ा, जिसका फल यह हुआ कि दूसरे ही दिन ठाकुर झपटसिंह प्लेगके झोंकेमें आ गये और कल्लू अहीर मरते-मरते बच गया। जितनी मिन्नत समाजत हो सकती थी वह सब की गयी, लेकिन अत्याचारियोंपर कुछ असर न हुआ। झपटके मर जानेपर डपट भी मरनेके लिये तैयार हुआ। लठ चलाकर बोला, गौसको आज जीता न छोड़ूंगा। अब क्या भय है? लेकिन कादिरखां उनके पैरोंपर गिर पड़े और समझा-बुझाकर घर लौटाया।

लखनपूरमें एक बहुत बड़ा तालाब था। गांवभरके पशु उसमें पानी पीते थे। नहाने धोनेका काम भी उससे चलता था। जूनका महीना था, कुओंका पानी पातालतक चला गया था। आसपासके सब गढ़े और तालाब सूख गये थे। केवल इसी बड़े तालाबमें पानी रह गया था। ठीक उसी समय गौसखांने उस तालाबका पानी रोक दिया। दो चपरासी किनारे आकर डट गये और पशुओंको मार मारकर भगाने लगे। गांववालोंने सुना तो चकराये। क्या सचमुच जमींदार तालाबका पानी भी बन्द कर देगा! यह तालाब सारे गांवका जीवनस्रोत था। लोगोंको कभी स्वप्नमें भी यह अनुमान न हुआ था कि जमींदार इतनी जबरदस्ती कर सकता है। उनका चिरकालसे इसपर अधिकार था। पर आज इन्हें ज्ञात हुआ कि इस जलपर हमारा स्वत्व नहीं है। यह जमींदारकी कृपा थी कि वह इतने दिनोंतक चुप रहा। किन्तु चिरकालीन कृपा भी स्वत्वका रूप धारण कर लेती है। गांवके लोग तुरन्त तालाबके तटपर जमा हो गये और चपरासियोंसे वादविवाद करने लगे। कादिरखांने

गौसखां यह चोट खाकर बौखला उठे। सुक्खू चौधरी उनकी आंखोंमें कांटेकी तरह खटकने लगा। दयाशङ्कर इस हल्केसे बदल गये थे। उनकी जगहपर नूर आलम नामके एक दूसरे महाशय नियुक्त हुए थे। गौसखांने उनसे राहरस्म पैदा करना शुरू किया। दोनों आदमियोंमें मित्रता हो गयी और लखनपूरपर नयी-नयी विपत्तियोंका आक्रमण होने लगा।

वर्षाके दिन थे। किसानोंको ज्वार और बाजरेकी रखवालीसे दम मारनेका अवकाश न मिलता था। जिधर देखिये, हा-हूकी ध्वनि आती थी। कोई ढोल बजाता था, कोई टीनके पीपे पीटता था। दिनको तोतोंके झुंड-के-झुंड टूटते थे, रातको गीदड़के गोल, उसपर धानकी क्यारियोंमें पौधे बिठाने पड़ते थे। पहर रात रहे तालमें जाते और पहर रात गये आते थे। मच्छरोंके डंकसे लोगोंकी देहमें छाले पड़ जाते थे। किसीका घर गिरता था, किसीके खेतकी मेड़ें कटी जाती थीं। जीवन-संग्रामकी दोहाई मची हुई थी। इसी समय दारोगा नूरआलमने गांवपर छापा मारा। सुक्खू चौधरीने कभी कोकीनका सेवन नहीं किया था, उसकी सूरत नहीं देखी थी, उसका नाम नहीं सुना था, लेकिन उनके घरमें एक तोला कोकीन बरामद हुई। फिर क्या था, मुकदमा तैयार हो गया। मालके निकलनेकी देर थी, हिरासतमें आ गये। उन्हें विश्वास हो गया कि मैं बरी न हो सकूंगा। उन्होंने स्वयं कई आदमियोंको इसी भांति सजा दिलायी थी। हिरासतमें आनेके एक क्षण पहले वह घरमें गये और एक हांडी लिये हुए आये। गांवके सब आदमी जमा थे। उनसे बोले, भाइयो, राम राम! अब तुमसे बिदा होता हूं। कौन जाने फिर भेंट हो या न हो। बूढ़े आदमीकी जिन्दगानीका क्या भरोसा! ऐसे ही भाग होंगे तो भेंट होगी। इस हांड़ीमें पांच हजार रुपये हैं। यह कादिर भाईको सौंपता हूं। तालाबका घाट बनवा देना। जिन लोगोंपर

मेरा कुछ आता है वह सब छोड़ता हूं। यह देखो, सब कागज पत्र अब तुम्हारे सामने फाड़े डालता हूं। मेरा किसीके यहां कुछ बाकी नहीं, सब भर पाया।

दारोगाजी वहीं उपस्थित थे। रुपयोंकी हांड़ी देखते ही लार टपक पड़ी। सुक्खूको बुलाकर कानमें कहा, कैसे अहमक हो कि इतने रुपये रखकर भी बचनेकी फिक्र नहीं करते।

सुक्खू—अब बचकर क्या करना है? क्या कोई रोनेवाला बैठा है?

नूरआलम—तुम इस गुमानमें होगे कि हाकिमको तुम्हारे बुढ़ापेपर तरस आ जायगी और वह तुमको बरी कर देगा। मगर इस धोखेमें न रहना। वह डटकर रिपोर्ट लिखूंगा और ऐसी मोतबिर शहादत पेश करूंगा कि कोई बैरिस्टर भी जबान न खोल सकेगा। पांच हजार नहीं पांच लाख भी खर्च करोगे तो भी मेरे पंजेसे न निकल सकोगे। मैं दयाशङ्कर नहीं हूं। मेरा नाम नूरआलम है। चाहूं तो एक बार खुदाको भी फंसा दूं।

सुक्खूने फिर उदासीन भावसे कहा, आप जो चाहें करें। अब जिन्दगानीमें कौनसा सुख है, किसीका ठेंगा सिरपर लूं?

गौसखांका दयास्रोत उबल पड़ा। फैजू और कर्तार भी कुलबुला उठे और बिन्दा महाराज तो हांडीकी ओर टकटकी लगाये ताक रहे थे।

सबने अलग अलग और मिलकर सुक्खूको समझाया। लेकिन वह टससे मस न हुए। अन्तमें लोगोंने कादिरको घेरा। नूरआलमने उन्हें अलग ले जाकर कहा, खां साहब, इस बूढ़ेको जरा समझाओ, क्यों जान देनेपर तुला हुआ है। दो सालसे कमकी सजा न होगी। अभी मामला मेरे हाथमें है। सब कुछ हो सकता है। हाथसे निकल गया तो कुछ न होगा। मुझे उसके बुढ़ापेपर तरस आती है।

गौसखां बोले—हां, इस वक्त उसपर रहम करनी चाहिये। अबकी ताऊनने बेचारेका सत्यानास कर दिया।

कादिरखां जाकर सुक्खूको समझाने लगे। बदनामीका भय दिलाया। कारावासकी कठिनाइयां बयान कीं। किन्तु सुक्खू ज़रा भी न पसीजा। जब कादिरखांने बहुत आग्रह किया और गांवके सब लोग एक स्वरसे समझाने लगे तो सुक्खू उदासीन भावसे बोला, तुमलोग मुझे क्या समझाते हो? मैं कोई नादान बालक नहीं हूं। कादिरखांसे मेरी उम्र दो ही चार दिन कम होगी। इतनी बड़ी जिन्दगानी अपने बन्धुओंका बुरा करनेमें कट गयी। मेरे दादा मरे तो घरमें भूनी भांगतक न थी। कारिन्दोंसे मिल मिलकर मैं आज गांवका मुखिया बन बैठा हूं। चार आदमी मुझे जानते और मेरा आदर करते हैं। पर अब आंखोंके सामनेसे परदा हट गया। उन कर्मोंका फल कौन भोगेगा? भोगना तो मुझीको है, चाहे यहां भोगूं, चाहे नरकमें। यह सारी हांडी मेरे पापोंसे भरी हुई है। इसीने मेरे कुलका सर्वनाश कर दिया। कोई एक चुल्लू पानी देनेवाला न रहा। यह पापकी कमाई पुण्य-कार्यमें लग जाय तो अच्छा है। घाट बनवा देना, अगर कुछ और लगे तो अपने पाससे लगा देना। मैं जीता बचा तो कौड़ी कौड़ी चुका दूंगा।

दूसरे दिन सुक्खूका चालान हुआ। फैजू और कर्तारने पुलिसकी ओरसे साक्षी दी। माल बरामद हो ही गया था। कई हजार रुपयोंका घरसे निकलना पुष्टिकारक प्रमाण हो गया। कोई वकील भी न था। पूरे दो सालकी सज़ा हो गयी। निरपराध निर्दोष सुक्खू गौसखांके वैमनस्य और ईर्ष्याका लक्ष्य बन गया।

सारा गांव थर्रा उठा। इज़ाफ़ा लगानके ख़ारिज होनेसे लोगोंने समझा था अब किसी बातकी चिन्ता नहीं रही। मानों ईश्वरने अभय प्रदान कर दिया। पर अत्याचारके यह नये हथकण्डे

देखकर सबके प्राण सूख गये। जब सुक्खू चौधरी जैसा शक्तिशाली मनुष्य दमके दममें तबाह हो गया तो दूसरोंका कहना ही क्या! किन्तु गौसखांको अब भी सन्तोष न हुआ। उनकी यह लालसा, कि सारा गांव मेरा गुलाम हो जाय, मेरे इशारोंपर नाचे, अभीतक पूरी न हुई थी। मौरूसी काश्तकारोंमें अभीतक कई आदमी बचे हुए थे। कादिरखां अब भी था, बलराज और मनोहर अब भी आंखोंमें खटकते थे। यह सब इस बागके कांटे थे। उन्हें निकाले बिना सैर करनेका आनन्द कहां!

लखनपूर शहरसे दस ही मीलकी दूरीपर था। हाकिम लोग आते और जाते यहां जरूर ठहरते। अगहनका महीना लगा ही था कि पुलिसके एक बड़े अफसरका लश्कर आ पहुंचा। तहसीलदार स्वयं रसदका प्रबन्ध करनेके लिये आये। चपरासियोंकी एक फौज साथ थी। लश्करमें सौ सवा सौ आदमी थे। गांवके लोगोंने यह जमघट देखा तो समझा कि कुशल नहीं है। मनोहरने बलराजको ससुराल भेज दिया और ससुरालवालोंको कहला भेजा कि इसे चार पांच दिन न आने देना। लोग अपनी अपनी लकड़ियां और भूसा उठा उठाकर घरोंमें रखने लगे। लेकिन बोवनीके दिन थे, इतनी फुरसत किसे थी!

प्रातःकाल बिसेसर साह दूकान खोल ही रहे थे कि अरदलीके दस बारह चपरासी दूकानपर आ पहुंचे। बिसेसरने आटे दालके बोरे खोल दिये, जिन्सें तौली जाने लगीं। दोपहरतक यही तांता लगा रहा। घीके कई कनस्तर खाली हो गये। तीन पड़ावके लिये जो सामग्री एकत्र की थी अभी समाप्त हो गयी। बिसेसरके होश उड़ गये। फिर आदमी मण्डी दौड़ाये। बेगारकी समस्या इससे कठिन थी। पांच बड़े बड़े घोड़ोंके लिये हरी घास छीलना सहज नहीं था। गांवके सब चमार इस काममें लगा दिये गये। कई नोनिये पानी भर रहे थे। चार आदमी नित्य सरकारी डाक लेनेके लिये सदर दौड़ाये जाते थे। कहारोंको कर्मचारियोंकी

खिदमतसे सिर उठानेकी फुरसत न थी। इसलिये जब दो बजे साहबने हुक्म दिया कि मैदानमें घास छीलकर टेनिस कोर्ट तैयार किया जाय तो वह लोग भी पकड़े गये जो अबतक अपनी वृद्धावस्था या जाति-सम्मानके कारण बचे हुए थे। चपरासियोंने पहले दुखरन भगतको पकड़ा। भगतने चौंककर कहा, क्यों मुझसे क्या काम है? चपरासीने कहा, चलो लश्करमें घास छीलनी है।

भगत—घास चमार छीलते हैं, यह हमारा काम नहीं है।

इसपर एक चपरासीने उनकी गरदन पकड़कर आगे ढकेला और कहा चलते हो या यहां कानून बघारते हो?

भगत—अरे तो ऐसा क्या अन्धेर है? अभी ठाकुरजीका भोगतक नहीं लगाया।

चपरासी—एक दिनमें ठाकुरजी भूखों न मर जायंगे।

भगतने वादविवाद करना उचित न समझा, झपटकर सिपाहियोंके बीचसे निकल गये और भीतर जाकर किवाड़ बन्द कर लिये। सिपाहियोंने धड़ाधड़ किवाड़ पीटना शुरू किया। एक सिपाहीने कहा, लगा दे आग, वहीं भुन उठे। दुखरनने भीतरसे कहा, बैठो, भोग लगाकर आ रहा हूं। चपरासियोंने खपरैल फोड़ने शुरू किये। इतनेमें कई चपरासी मनोहर कादिरखां आदिको साथ लिये आ पहुंचे। डपटसिंह पहर रात रहे घरसे गायब हो गये थे। कादिरने कहा, भगत घरमें क्यों घुसे बैठे हो, चलो, हमलोग भी चलते हैं। भगतने द्वार खोला और बाहर निकल आये। कादिर हंसकर बोलेः—आज हमारी तुम्हारी बाजी है। देखें, कौन ज्यादा घास छीलता है। भगतने कुछ उत्तर न दिया। सबके सब लश्करके मैदानमें आये और घास छीलने लगे।

मनोहरने कहा—खां साहबके कारण हम भी चमार हो गये।

दुखरन—भगवानकी इच्छा, जो कभी न किया, वह आज करना पड़ा।

कादिर—जमींदारके असामी नहीं हो? खेत नहीं जोतते हो?

मनोहर—खेत जोतते हैं तो उसका लगान नहीं देते ? कोई भकुआ एक पैसा भी तो नहीं छोड़ता ।

कादिर—इन बातोंमें क्या रक्खा है ? गुड़ खाया है तो कान छिदाने पड़ेंगे । कुछ और बातचीत करो । फल्लू, अबकी तुम ससुरालमें बहुत दिनतक रहे । क्या-क्या मार लाये ?

फल्लू—मार क्या लाया ! यह कहो जान लेकर आ गया । यहांसे चला तो कुल साढ़े तीन रुपये पास थे । एक रुपयेकी मिठाई ली, आठ आने रेलका किराय दिया, दो रुपये पास रख लिये । वहां पहुंचते ही बड़े सालेने अपना लड़का लाकर मेरी गोदमें रख दिया । बिना कुछ दिये उसे गोदमें कैसे लेता ? कमरसे एक रुपया निकालकर उसके हाथमें रख दिया । रातको गांवभरकी औरतोंने जमा होकर गाली गायी । उन्हें भी कुछ नेग-दस्तूर मिलना ही चाहिये था । एक ही रुपयेकी पूंजी, वह उनकी भेंट की । न देता तो नाम-हंसाई होती । मैंने समझा वहां रुपयोंका और काम ही क्या है और चलती बेर कुछ न कुछ बिदाई मिल ही जायगी । आठ दिन चैनसे रहा । जब चलने लगा तो सामने एक मटका खांड़, एक टोकरी ज्वारकी बाल, और एक थैलीमें कुछ खटाई भरकर दी । पहुंचानेके लिये एक आदमी साथ कर दिया । बस बिदाई हो गयी । अब बड़ी चिन्ता हुई कि घरतक कैसे पहुंचूंगा । कोई जान न पहचान, मांगू किससे ? उस आदमीके साथ टेसनतक आया । इतना बोझ लेकर पैदल घरतक आना कठिन था । बहुत सोचते सोचते सूझी कि चलकर ज्वारकी बाल कहीं बेंच दूं । आठ आने भी मिल जायंगे तो काम चल जायगा । बाजारमें आकर एक दूकानदारसे पूछा; बाल लोगे ? उसने दाम पूछा, मेरे मुंहसे निकला, दाम तो मैं नहीं जानता, आठ आने दे दो, ले लो । बनियेने समझा, चोरीका माल है । थैला पटका, बालें सब रखवा लीं और कहा, चुपकेसे चले जाओ, नहीं तो चौकीदारको बुला-

कर थाने भिजवा दूंगा। तो भैया क्या करता ? सब कुछ वहीं छोड़ छाड़कर भागा। दिनभरका भूखा-प्यासा पहर रात गये घर आया, कान पकड़े कि अब ससुराल न जाऊंगा।

कादिर—तुम तो सस्तेही छूट गये। एक बेर मैं भी ससुराल गया था। जवानीकी उमिर थी। दिनभर धूपमें चला तो रतौंधी हो गयी। मगर लाजके मारे किसीसे कहातक नहीं। खाना तैयार हुआ तो साली दालानमें बुलाकर भीतर चली गयी, दालानमें अन्धेरा था। मैं उठा तो कुछ सूझा ही नहीं कि किधर जाऊं ? न किसीको पुकारते बने, न पूछते बने। इधर उधर टटोलने लगा। वहीं एक कोनेमें भेड़ा बंधा हुआ था। मैं उसके ऊपर जा पहुंचा। वह मेरे पैरके नीचेसे झपटकर उठा और। मुझे ऐसी सींग मारी कि मैं दूर जाकर गिरा। यह धमाका सुनके वह साली दौड़ी हुई आयी और अन्दर ले गयी। आंगनमें मेरे ससुर और दो तीन बिरादर बैठे हुए थे, वहीं मैं भी जा बैठा। पर कुछ सूझता न था कि क्या करूं। सामने खाना रखा हुआ था। इतनेमें मेरी सास कड़े छड़े पहने छन छन करती हुई दालकी रकाबीमें घी डालने आयी। मैंने छन छनको आवाज सुनी तो रोंगटे खड़े हो गये। अभीतक घुटनेमें दर्द हो रहा था, समझा कि शायद भेड़ा छूट गया, खड़ा होकर लगा पैंतरे बदलने। सासको भी एक घूसा लगाया। घीकी प्याली उनके हाथसे छूट पड़ी। वह घबराकर भागी। लोगोंने दौड़कर मुझे पकड़ा और पूछने लगे, क्या हुआ, क्या हुआ। शरमके मारे मेरी जबान बन्द हो गयी। कुछ बोली ही न निकली। साला दौड़ा हुआ गया और एक मौलवीको लिवा लाया। मौलवीने देखते ही कहा, इसपर सईद मर्द सवार है। दुवा-तबीज होने लगी। घरमें किसीने खाना न खाया। सास और ससुर मेरे सिरहाने बैठे बड़ी देरतक रोते रहे और मुझे आवे बार-बार हंसी। कितना ही रोकूं हंसी न रुके। बारे मुझे नींद आ गयी। भोरे उठकर मैंने किसीसे कुछ पूछा न ताछा, सीधे घरकी राह

ली। दुखरन भगत, अपनी ससुरालकी कोई बात तुम भी कहो।

दुखरन—मुझे इस वखत मसखरी नहीं सूझती। यही जी चाहता है कि सिर पटककर मर जाऊं।

मनोहर—कादिर भैया, आज बलराज होता तो खून-खराबी हो जाती। उससे यह दुर्गत न देखी जाती।

कादिर—फिर वही दुखड़ा ले बैठे। अरे, जो अल्लाहको यही मंजूर होता कि हम लोग इज्जत-आबरूसे रहें, तो कासकार क्यों बनाता? जमींदार न बनाता, चपरासी न बनाता, थानेका कानिसटिबिल न बनाता कि बैठे-बैठे दूसरोंपर हुकुम चलाया करते? नहीं तो यह हाल है कि अपना कमाते हैं, अपना खाते हैं, फिर भी जिसे देखो, धौंस जमाया करता है। सभीकी गुलामी करनी पड़ती है। क्या जमींदार, क्या सरकार, क्या हाकिम, सभीकी निगाह हमारे ऊपर टेढ़ी है और शायद अल्लाह भी नाराज़ हैं, नहीं तो क्या हम आदमी नहीं हैं, कि कोई हमसे बड़ा बुद्धिमान है? लेकिन रोकर क्या करें? कौन सुनता है? कौन देखता है? खुदातालाने आंखें बन्द कर लीं। जो कोई भलामानुस दरद बूझकर हमारे पीछे खड़ा भी हो जाता है तो उस बेचारेकी जान भी आफतमें फंस जाती है। उसे तंग करनेके लिये, फंसानेके लिये तरह-तरहके कानून गढ़ लिये जाते हैं। देखते तो हो, बलराजके अखबारमें कैसी-कैसी बातें लिखी रहती हैं। यह सब अपनी तकदीरकी खूबी है।

यह कहते-कहते कादिर खां रो पड़े। वह हृदय-ताप जिसे वह हास्य और आमोदसे दबाना चाहता था प्रज्वलित हो उठा। मनोहरने देखा तो उसकी आंखें रक्तवर्ण हो रही थीं। पददलित अभिमानकी मूर्ति थी।

चारोंमेंसे कोई न बोला। सबके सब सिर झुकाये चुपचाप घास छीलते रहे, यहांतक कि तीसरा पहर हो गया। सारा मैदान साफ हो गया। सबोंने खुरपियां रख दीं और कमर सीधी करने-

के लिये जरा लेट गये। बेचारे समझते थे कि गला छूट गया, लेकिन इतनेमें तहसीलदार साहबने आकर हुक्म दिया, गोबर लाकर इसे लीप दो, खूब चिकना कर दो, कोई कंकर-पत्थर न रहने पाये। कहां हैं नाजिरजी, इन सभोंको डोल और रस्सी दिलवा दीजिये।

नाजिरने तुरत डोल और रस्सी मंगाकर रख दी। कादिरखांने डोल उठाया और कुंएकी तरफ चले, लेकिन दुखरन भगतने घर-का रास्ता लिया। तहसीलदारने पूछा, उधर कहां?

दुखरनने उद्दण्डतासे कहा—घर जा रहा हूं।

तहसीलदार—और लीपेगा कौन?

दुखरन—जिसे गरज होगी वह लीपेगा।

तहसीलदार—जूते पड़ेंगे, दिमागकी गरमी उतर जायगी।

दुखरन—आपका अखतियार है—जूते मारिये, चाहे फांसी दीजिये, लेकिन लीप नहीं सकता।

कादिर—भगत, तुम कुछ न करना, आओ बैठे ही रहना, तुम्हारे हिस्सेका काम मैं कर दूंगा।

दुखरन—मैं तो अब जूते खाऊंगा, जो कसर है, वह भी पूरी हो जाय।

तहसीलदार—इसपर शामत सवार है। है कोई चपरासी, जरा लगाओ तो बदमाशको पचास जूते, मिजाज ठंढा हो जाय।

यह हुक्म पाते ही एक चपरासीने लपककर भगतको इतने जोरसे धक्का दिया कि वह जमीनपर गिर पड़े, और जूते लगाने लगा। भगत जड़वत् भूमिपर पड़े रहे, मानों संज्ञाशून्य हो गये हैं। उनके चेहरेपर क्रोध या ग्लानिका चिह्न भी न था। उनके मुखसे हायतक न निकलती थी, दीनताने समस्त चैतन्य-शक्तियोंका हनन कर दिया था। कादिरखां कुएंपरसे दौड़े हुए आये और उस निर्दय चपरासीके सामने सिर झुकाकर बोले, "सेखजी, इनके बदले मुझे जितना चाहिये मार लीजिये, अब बहुत हो गया।"

चपरासीने धक्का देकर कादिरखांको ढकेल दिया और फिर जूता उठाया कि अकस्मात् सामनेसे एक इक्केपर प्रेमशंकर और डपटसिंह आते हुए दिखायी दिये। प्रेमशंकर यह हृदय-विदारक दृश्य देखते ही इक्केसे कूद पड़े और दौड़े हुए चपरासीके पास आकर बोले,—खबरदार! जो फिर हाथ चलाया।

चपरासी सकतेमें आ गया। कल्लू, मनोहर सब डोल-रस्सी छोड़ छोड़कर दौड़े और उन्हें सलाम कर खड़े हो गये। चमार भी घास लाकर पैसोंके इन्तजारमें खड़े थे। वह भी पास आ गये। प्रेमशंकरके चारों ओर एक जमघट-सा हो गया। तहसीलदारने कठोर स्वरमें पूछा, आप कौन हैं? आपको सरकारी काममें मुदाखिलत करनेका क्या मजाल है?

प्रेमशङ्कर—मुझे नहीं मालूम था कि गरीबोंको जूते लगवाना भी सरकारी काम है। इसने क्या खता की थी, जिसके लिये आपने यह सजा तजवीज की?

तहसीलदार—सरकारी हुक्मकी तामीलीसे इन्कार किया। इससे कहा गया था कि इस मैदानको गोबरसे लीप दे, पर इसने बदजबानी की।

प्रेम—आपको मालूम नहीं था कि यह ऊंची जातका काश्तकार है? जमीन लीपना या कूड़ा फेंकना इसका काम नहीं है।

तहसीलदार—जूतेकी मार सब कुछ करा लेती है।

प्रेमशङ्करका रक्त खौल उठा, पर जब्तसे काम लेकर बोले, आप जैसे जिम्मेदार ओहदेदारकी जबानसे यह बात सुनकर सख्त अफसोस होता है।

मनोहर आगे बढ़कर बोला—सरकार, आज जैसी दुर्गति हुई है, वह हमीं जानते हैं। एक चमार बोला—दिनभर घास छोली, अब कोई पैसे ही नहीं देता, घण्टोंसे खड़े चिल्ला रहे हैं।

तहसीलदारने क्रोधोन्मत्त होकर कहा, आप यहांसे चले जायं, वरना आपके हकमें अच्छा न होगा। नाजिरजी, आप खड़े मुंह क्या

देख रहे हैं ? चपरासियोंसे कहिये, इन चमारोंकी अच्छी तरह खबर लें। यही इनकी मजदूरी है।

चपरासियोंने बेगारोंको घेरना शुरू किया। कान्स्टेबलोंने भी बन्दूकोंके कुन्दे चलाने शुरू किये। कई आदमियोंको चोट आ गयी। प्रेमशङ्करने जोरसे कहा, तहसीलदार साहब, मैं आपसे मिन्नत करता हूं कि चपरासियोंको मार पीट करनेसे मना कर दें, वरना इन गरीबोंका खून हो जायगा।

तहसीलदार—आपके ही इशारेसे इन बदमाशोंने सरकशी अखतियार की है। इसके जिम्मेदार आप हैं। मैं समझ गया, आप किसी किसान सभासे ताल्लुक रखते हैं।

प्रेमशंकरने देखा तो लखनपुरवालोंके चेहरे रोषसे विकृत हो रहे थे। प्रति क्षण शंका होती थी कि इनमेंसे कोई प्रतिकार न कर बैठे। प्रति क्षण समस्या जटिलतर होती जाती थी। तहसीलदार और अन्य कर्मचारियोंकी मनुष्यता और दयालुतासे अब कोई आशा न रही। तुरत अपने कर्तव्यका निश्चय कर लिया। गांववालोंकी ओर रुख करके बोले, तहसीलदार साहबका हुक्म मानो। एक आदमी भी यहांसे न जाय। सब आदमियोंको मुंहमांगी मजूरी दी जायगी। इसकी कुछ चिन्ता मत करो।

यह शब्द सुनते ही सारे आदमी ठिठक गये और विस्मित होकर प्रेमशङ्करकी ओर ताकने लगे। सरकारी कर्मचारियोंको भी आश्चर्य हुआ। मनोहर और कल्लू कुएंकी तरफ चले, चमारोंने गोबर बटोरना शुरू किया। डपटसिंह भी मैदानसे ईंट-पत्थर उठा उठाकर फेंकने लगे। सारा काम ऐसी शान्तिसे होने लगा, मानों कुछ हुआ ही न था। केवल दुखरन भगत अपनी जगहसे न हिले।

प्रेमशङ्करने तहसीलदारसे कहा, आपकी इजाजत हो तो यह आदमी अपने घर जाय। इसे बहुत चोट आ गई है।

तहसीलदारने कुछ सोचकर कहा, हां, जा सकता है।

भगत चुपकेसे उठे और धीरे-धीरे घरकी ओर चले। इधर दमके दममें आदमियोंने मैदान लीप-पोत कर तैयार कर दिया। सब ऐसा दौड़-दौड़कर उत्साहसे काम कर रहे थे, मानों उनके घर बरात आयी है।

संध्या हो गयी थी। प्रेमशङ्कर जमीनपर बैठे हुए विचारोंमें मग्न थे—कबतक गरीबोंपर यह अन्याय होगा? कब उन्हें मनुष्य समझा जायगा? हमारा शिक्षित समुदाय कब अपने दीन भाइयोंकी इज्जत करना सीखेगा? कब अपने स्वार्थके लिये अपने अफसरोंकी नीच खुशामद करना छोड़ेगा?

इतनेमें तहसीलदार साहब सामने आकर खड़े हो गये और विनय भावसे बोले, आपको यहां तकलीफ हो रही है, मेरे खेमेमें तशरीफ ले चलिये। मुआफ कीजियेगा, मैंने आपको पहचाना न था। गरीबोंके साथ हमदर्दी देखकर बेअखतियार आपकी तारीफ करनेको जी चाहता है। आप बड़े खुशनसीब हैं कि खुदाने आपको ऐसा दर्दमन्द दिल अता फरमाया है। हम बदनसीबोंकी जिन्दगी तो अपनो तनपरवरीमेंही गुजरी जाती है। क्या करूं? अगर अभी साफ कह दूं कि बेगारमें मजदूर नहीं मिलते तो नालायक समझा जाऊं। आंखोंसे देखता हूं कि मजदूरोंको आठ आने रोज मिलते हैं, पर इन साहब बहादुरसे इतनी मजदूरी मांगूं तो वह हर्गिज न देंगे। सरकारने कायदे बहुत अच्छे बनाये हैं, लेकिन ये हुक्काम उनकी परवा ही नहीं करते। कम-से-कम ५०) के मिट्टीके बर्तन उठे होंगे। लकड़ी, भूसा, पुआल सैकड़ों मन खर्च हो गये। कौन इनकी कीमत देता है? अगर कायदेपर अमल करने लगूं तो एक लहमेभर रहना दुशवार हो जाय। और मैं अकेला कर ही क्या सकता हूं? मेरे और भाई भी तो हैं। उनकी सख्तियां आप देखें तो दांतों उंगली दबा लें। खुदाने जिसके घरमें रूखी रोटियां भी दी हों वह कभी यह मुलाजमत न करे। आइये, बैठिये, आपको ऐसी सैकड़ों दास्तानें सुनाऊं, जिनमें

तहसीलदारोंको कायदेके मुताबिक अमल करनेके लिये जहन्नुममें भेज दिया गया है। मेरे ऊपर खुद एक बार गुजर चुकी है।

प्रेमशंकरको तहसीलदारसे सहानुभूति हो गयी। समझ गये कि यह बेचारे विवश हैं। मनमें लज्जित हुए कि मैंने अकारण ही इनसे अविनय की। उनके साथ खेमेमें चले गये। वहां बहुत देरतक बातें होती रहीं। तहसीलदार साहब बड़े साधु सज्जन निकले। अधिकार विषयक घटनायें समाप्त हो चुकीं तो अपनी पारिवारिक कठिनाइयां बयान करने लगे। उनके तीन पुत्र कालेजमें पढ़ते थे। दो लड़कियां विधवा हो गयी थीं। एक विधवा बहिन और उसके बच्चोंका भार भी सिरपर था। २००) में बड़ी मुश्किलसे गुजर होता था। अतएव जहाँ अवसर और सुविधा देखते थे, वहां रिशवत लेनेमें उज्र न था। उन्होंने यह वृत्तान्त ऐसे सरल और नम्र भावसे कहा कि प्रेमशङ्करका उनसे स्नेहसा हो गया। यहांसे उठे तो ८ बज चुके थे। चौपालकी तरफ जाते हुए दुखरन भगतके द्वारपर पहुंचे तो एक विचित्र दृश्य देखा। गांवके कितने ही आदमी जमा थे और भगत उनके बीचमें खड़े हाथमें शालिगरामकी मूर्ति लिये उन्मत्तोंकी भांति बहक बहक कह रहे थे—यह सालिगराम हैं। अपने भक्तोंपर बड़ी दया रखते हैं, सदा उनकी रक्षा किया करते हैं। इन्हें मोहनभोग बहुत अच्छा लगता है, कपूर और धूपकी महंक बहुत अच्छी लगती है। पूछो, मैंने इनकी कौन सेवा नहीं की? आप सत्तू खाता था, बच्चे चबेना खाते थे, इन्हें मोहनभोगका भोग लगाता था, इनके लिये जाकर कोसोंसे फूल और तुलसीदल लाता था। अपने लिये तमाखू चाहे न रहे, पर इनके लिये कपूर और धूपकी फिकिर करता था; इनका भोग लगाके तब दूसरा काम करता था। घरमें कोई मरता ही क्यों न हो, पर इनकी पूजा अर्चा किये बिना कभी न उठता था। कोई दिन ऐसा न हुआ कि ठाकुरद्वारेमें जाकर चरणामृत न पिया हो, आरती न ली हो, रामायणका पाठ न किया हो। यह

भक्ति और सर्धा क्या इसीलिये की कि मुझपर जूते पड़ें, हक-नाहक मारा जाऊं, चमार बनूं ? धिक्कार है मुझपर, जो फिर ऐसे ठाकुरका नाम लूं, जो इन्हें अपने घरमें रखूं, और फिर इनकी पूजा करूं। हां, मुझे धिक्कार है! ज्ञानियोंने सच कहा है कि यह अपने भगतोंके वैरी हैं; उनका अपमान कराते हैं, उनकी जड़ खोदते हैं, और उससे प्रसन्न रहते हैं जो इनका अपमान करे। मैं अबतक भूला हुआ था। बोलो मनोहर, क्या कहते हो, इन्हें कुएं में फेंकूं या घूरपर डाल दूं। जहां इनपर रोज मनों कूड़ा पड़ा करे या राहमें फेंक दूं, जहां भोरसे सांझतक इनपर लात पड़ते रहें।

मनोहर—भैया, तुम जानकार होकर अनजान बनते हो। वह संसारके मालिक हैं, उनकी महिमा अपरम्पार है।

कादिर—कौन जानता है उनकी क्या मरजी है? बुराईसे भलाई करते हैं। इतना मन न छोटा करो।

दुखरन (हंसकर)—यह सब मनको समझानेका ढकोसला है। कादिर मियां, यह पत्थरका ढेला है, निरा मिट्टीका पिण्डा। मैं अबतक भूलमें पड़ा हुआ था, समझता था इसकी उपासना करनेसे मेरे लोक-परलोक दोनों बन जायंगे। आज आंखोंके सामनेसे वह परदा हट गया, यह निरा मिट्टीका ढेला है। यह लो महाराज, जाओ, जहां तुम्हारा जी चाहे, तुम्हारी यही पूजा है। ३० सालकी भगतीका तुमने मुझे जो बदला दिया है, मैं भी तुम्हें उसीका बदला देता हूं।

यह कहकर भगतने शालिग्रामकी प्रतिमाको जोरसे एक ओर फेंक दिया। न जाने कहां जाकर गिरी। फिर दौड़े हुए घरमें गये और पूजाकी पिटारी लिये हुए बाहर निकले। मनोहर लपका कि पिटारी उनके हाथसे छीन लूं। लेकिन भगतने उन्हें अपनी ओर आते देखकर बड़ी फुर्तीसे पिटारी खोली और उसे हवामें उछाल दी, सभी सामग्रियां इधर उधर फैल गयीं। तीस वर्षकी

धर्मनिष्ठा, और आत्मिक श्रद्धा नष्ट हो गयी। धार्मिक विश्वास-की दीवार हिल गयी और उसकी ईंटें बिखर गयीं।

कितना हृदय-विदारक दृश्य था! प्रेमशङ्करका हृदय गद्गद् हो गया। भगवन्! इस असभ्य, अशिक्षित और दरिद्र मनुष्य-का इतना आत्माभिमान! इसे अपमानने इतना मर्माहत कर दिया! कौन कहता है गंवारोंमें यह भावना निर्जीव हो जाती है? कितना दारुण आघात है, जिसने भक्ति, विश्वास तथा आत्मगौरवको नष्ट कर डाला!

प्रेमशङ्कर सब आदमियोंके पीछे खड़े थे। किसीने उन्हें देखा नहीं। वह वहींसे चौपाल चले गये। वहां पलंग बिछा तैयार था। डपटसिंह चौका लगाते थे, कल्लू पानी भरते थे। उन्हें देखते ही गौसखां झुककर अदाबअर्ज़ बजा लाये और कुछ सकुचाते हुए बोले, हुजूरको तहसीलदार साहबके यहां बड़ी देर हो गयी।

प्रेमशङ्कर—हां, इधर उधरकी बातें करने लगे। क्यों यहां कहार नहीं हैं क्या? यह लोग क्यों पानी भर रहे हैं? उसे बुलाइये, मुनासिब मजदूरी दी जायगी।

गौसखां—हुजूर, कहार तो चार घर थे, लेकिन सब उजड़ गये। अब एक आदमी भी नहीं है।

प्रेमशङ्कर—यह क्यों?

गौसखां—अब हुजूरसे क्या बताऊं, हमी लोगोंकी शरारत और जुल्मसे। यहां हमेशा तीन-चार चपरासी रहते हैं। एक एकके लिये एक एक खिदमतगार चाहिये। और मेरे लिये तो जितने खिदमतगार हों उतने थोड़े हैं। बेचारे सुबहसे ही पकड़ लिये जाते थे, शामको छुट्टी मिलती थी। कुछ खानेको पा गये तो पा गये, नहीं तो भूखे ही लौट जाते थे। आखिर सबके सब भाग खड़े हुए। कोई कलकत्ता गया, कोई रंगून। अपने बाल-बच्चोंको भी लेते गये। अब यह हाल है कि अपनेही हाथों बर्तनतक धोने पड़ते हैं।

प्रेमशङ्कर—आप लोग इन ग़रीबोंको इतना सताते क्यों हैं? अभी तहसीलदार साहब लश्करवालोंकी सारी बेइन्साफियोंका इलज़ाम आपहीके सिर मढ़ रहे थे।

गौसखां—हजूर तो फ़रिश्ते हैं, लेकिन हमारे छोटे सरकार-का ऐसा ही हुक्म है। आजकल ख़तोंमें बार-बार ताकीद करते रहते हैं कि गांवमें एक भी दखलकार असामी न रहने पाये। हजूरका नमक खाता हूं तो हजूरके हुक्मकी तामील करना मेरा फ़र्ज है, वरना खुदातालाको क्या मुंह दिखाऊंगा! इसीलिए मुझे इन बेकसोंपर सभी तरहकी सख्तियां करनी पड़ती हैं। कहीं मुक़द्मे खड़े कर दिये, कहीं बेगारमें फंसा दिया, कहीं आपसमें लड़ा दिया। सरकारी कानूनका पेशा है कि असामियोंको लगान देते ही वक्त पाई-पाईकी रसीद दी जाय, लेकिन मैं सिर्फ उन्हीं लोगोंको रसीद देता हूं जो जरा चालाक हैं, गवारोंको योंही टाल देता हूं। छोटे सरकारका बकायापर इतना जोर है, कि एक पाई भी बाकी रहे तो नालिश कर दो। कितने ही असामी तो नालिशोंसे तंग होकर निकल भागे। मेरे लिये तो जैसे छोटे सरकार हैं वैसे हजूर भी हैं। आपसे क्या छिपाऊं? इस तरहकी धांधलियोंमें हमलोगोंका भी गुजर-बसर हो जाता है, नहीं तो इस थोड़ीसी आमदनीमें गुजर होना मुशकिल था।

इतनेमें बिशेशर, मनोहर, कादिरखां आदि भी आ गये और आजका वृत्तान्त कहने लगे। मनोहर दूध लाये, कल्लूने दही पहुंचाया। सभी प्रेमशङ्करकी सेवा-सत्कारमें तत्पर थे। जब वह भोजन करके लेटे तो लोगोंने आपसमें सलाह की कि बाबू साहब-को रामायण सुनायी जाय। बिशेशर साह अपने घरसे ढोल मजीरा लाये। कादिरने ढोल लिया, मजीरे बजने लगे और रामायणका गान होने लगा। प्रेमशङ्करको हिन्दी भाषाका अभ्यास न था और किंचित् ही कोई चौपाई उनकी समझमें आती थी; पर वे इन देहातियोंके विशुद्ध धर्मानुरागका आनन्द उठा रहे थे।

कितने निष्कपट, सरलहृदय, साधु लोग हैं! इतने कष्ट झेलते हैं, इतना अपमान सहते हैं, लेकिन मनोमालिन्यका कहीं नाम नहीं। इस समय सभी आमोदके नशेमें चूर हो रहे हैं।

रामायण समाप्त हुई तो कल्लू बोला, कादिर बाबा अब तुम्हारी कुछ हो जाय।

कादिरने लजाते हुए कहा, गा तो रहे हो, क्या इतनी जल्द थक गये?

मनोहर—नहीं भैया, अब अपनी कोई अच्छी सी चीज सुना दो, बहुत दिन हुए नहीं सुना, फिर न जाने कब बैठक हो। सरकार, ऐसा गायक इधर कई गांवोंमें नहीं है।

कादिर—मेरे गंवारू गानेमें सरकारको क्या मजा आयेगा?

प्रेमशङ्कर—नहीं-नहीं, मैं तुम्हारा गाना बड़े शौकसे सुनूंगा।

कादिर—हजूर, गाते क्या हैं, रो लेते हैं। आपका हुक्म कैसे टालें?

यह कहकर कादिर खांने ढोलका स्वर मिलाया और यह भजन गाने लगा—

मैं अपने रामको रिझाऊं।
जङ्गल जाऊं न बिरछा छेड़ूं, ना कोई डार सताऊं।
पात पातमें है अबिनासी, वाहीमें दरस कराऊं।
मैं अपने रामको रिझाऊं।
औखद खाऊं न बूटी लाऊं, ना कोई बैद बुलाऊं।
पूरन बैद मिले अबिनासी, ताहिको नबुज दिखाऊं।
मैं अपने रामको रिझाऊं।

कादिरके गलेमें यद्यपि लोच और माधुर्य्य न था, पर ताल और स्वर ठीक था। कादिर इस विद्यामें चतुर था। प्रेमशङ्कर भजन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। इसका एक एक शब्द ... कि

और उदुगारमें डूबा हुआ था। व्यवसायी गायनोंकी नीरसता और शुष्कताकी जगह अनुरागमय भावरस परिपूर्ण था।

गाना समाप्त हुआ तो एक नकलकी ठहरी। फल्लू इस कलामें निपुण था। कादिर मियां राजा बने, फल्लू मन्त्री, बिशेशर साह सेठ बन गये। डपटसिंहने एक चादर ओढ़ ली और रानी बन बैठे। राजकुमारकी कमी थी। लोग सोचने लगे कि यह भाग किसे दिया जाय। प्रेमशंकरने हंसकर कहा, कोई हरज न हो तो मुझे राजकुमार बना दो। यह सुनकर सबके सब फूल उठे। नकल शुरू हो गयी।

पहला अंक

राजा—हाय! हाय! वैद्योंने जवाब दिया, हकीमोंने जवाब दिया, डाकदरोंने जवाब दिया, किसीने रोग न पहचाना, सबके सब लुटेरे थे, अब जिन्दगानीकी कोई आसा नहीं। यह सारा राज-पाट छूटता है। मेरे पीछे परजापर न जाने क्या बीतेगी! राजकुमार अल्हड़ नादान है, उसकी संगत अच्छी नहीं है। (प्रेमशङ्करकी ओर कटाक्षसे देखकर) किसानोंसे मेल रखता है, उनके पीछे सरकारी आदमियोंसे रार करता है, जिन दीन-दुःखी रोगियोंकी परछाईंसे भी डाकदर लोग डरते हैं, उनकी दवा-दारू करता है, उसे अपनी जानका, धनका तनिक भी लोभ नहीं है। यह इतना बड़ा राज कैसे संभालेगा? अत्याचारियोंको कैसे दंड देगा? हाय मेरी प्यारी रानी, जिससे मैंने अभी महीने-भर हुए ब्याह किया है, मेरे बिना कैसे जियेगी? कौन उससे प्रेम करेगा? हाय!

[illegible]—स्वामीजी, मैं इस सोगमें मर जाऊंगी। यह उजले र[illegible] यह पोपला मुंह कहां देखूंगी? (कटाक्षभावसे)

किसको गोदमें लूंगी ? किससे ठुनकूंगी ? अब मैं किसी तरह न बचूंगी।

राजाकी सांस उखड़ जाती है, आंखें पथरा जाती हैं, नाड़ी छूट जाती है, रानी छाती पीटकर रोने लगती है, दरबारमें हाहाकार मच जाता है।

राजाके कानोंमें आकाशवाणी होती है—हम तुझे एक घंटेकी मोहलत देते हैं, अगर तुझे तीन मनुष्य ऐसे मिल जायं जो दिलसे तेरे जीनेकी इच्छा रखते हों तो तू अमर हो जायगा।

राजा सचेत हो जाता है, उसके मुखारविन्दपर जीवनज्योति झलकने लगती है। वह प्रसन्नमुख उठ बैठता है और आप ही आप कहता है, अब मैं अमर हो गया, अकटक राज करूंगा, शत्रुओंका नाश कर दूंगा। मेरे राजमें ऐसा कौन प्राणी है जो हृदयसे मेरे जीनेकी इच्छा न रखता हो ? तीन नहीं, तीन लाख आदमी बातकी बातमें निकल आयंगे।

दूसरा अंक

(राजा एक साधारण नागरिकके रूपमें आप-ही-आप)

समय कम है, ऐसे तीन सज्जनोंके पास चलना चाहिये जो मेरे भक्त थे। पहले सेठके पास चलूं, वह परोपकारके प्रत्येक काममें मेरी सहायता करता था, मैंने उसकी कितनी बार रक्षा की है, और उसे कितना लाभ पहुंचाया है। यह सेठजीका घर आ गया। सेठजी, सेठजी, जरा बाहर आओ।

सेठ—क्या है ? इतनी रात गये कौन काम है ?

राजा—कुछ नहीं, अपने स्वर्गवासी राजाका [illegible] गाकर उनकी आत्माको शांति देना चाहता हूं। [illegible] जा-

प्रिय पुरुष थे! उनका परलोक हो जानेसे सारे देशमें अन्धकार सा छा गया है। प्रजा उनको कभी न भूलेगी। आपसे तो उनकी बड़ी मैत्री थी, आपको तो और भी दुःख हो रहा होगा।

सेठ—मुझे उनके राज्यसे कौनसा सुख था कि अब दुःख होगा। मर गये, अच्छा हुआ। उनकी बदौलत लाखों रुपये साधु सन्तोंको खिलाने पड़ते थे।

राजा—(मनमें) हाय! इस सेठपर मुझे कितना भरोसा था! यह मेरे इशारेपर लाखो रुपये दान कर दिया करता था। सच कहा है, बनिये किसीके मित्र नहीं होते। मैं जन्मभर इसके साथ रहा, पर इसे पहचान न सका। अब चलूं, मन्त्रीके पास, वह बड़ा स्वामिभक्त, सज्जन पुरुष है। उसके साथ मैंने बड़े-बडे सलूक किये हैं। यह उसका भवन आ गया। शायद अभी दर्बारसे आ रहा है। मंत्रीजी, कहिये, क्या राज-दर्बारसे आ रहे हैं? इस समय तो दर्बारमें शोक मनाया जा रहा होगा। ऐसे धर्मात्मा राजाको मृत्युपर जितना शोक किया जाय, थोड़ा है। अब फिर ऐसा राजा न होगा। आपको तो बहुत ही दुःख हो रहा होगा।

मंत्री—मुझे उनसे कौनसा सुख मिलता था कि अब दुःख होगा? मर गये अच्छा हुआ। उनके मारे सांस लेनेको भी छुट्टी न मिलती थी। प्रजाके पीछे आप आप मरते थे, मुझे भी मारते थे, रात दिन कमर कसे खड़े रहना पड़ता था।

राजा—(आप-ही-आप) हाय! इस परम हितैषी सेवकने भी धोखा दिया! मेरी आंख बन्द होते ही सारा संसार मेरा बैरी हो गया। ऐसे ऐसे आदमी धोखा दे रहे हैं, जो मेरे पसीनेकी जगह लोहू बहानेको तैयार रहते थे। तीन आदमी भी ऐसे नहीं, जो मेरा जीना चाहते हों। जब यह दोनों निकल गये तो दूसरोंसे क्या आशा रक्खूं! अब रानीके पास चलता हूं। वह साध्वी सती स्त्री है। उसकी जितनी ही सखियां हैं, सभी मुझपर प्राण

देती थीं। वहां मेरी इच्छा अवश्य पूरी होगी। अब केवल थोड़ा सा समय और रह गया है—यह राजभवन आ गया, रानी अकेली मनमारे शोकमें बैठी हुई है। महारानीजी, अब धीरजसे काम लीजिये, आपके स्वामी ऐसे प्रतापी थे कि संसारमें सदा उनका लोग जस गाया करेंगे, देहत्याग करके वह अमर हो गये।

रानी—अमर नहीं पत्थर हो गये। उनसे संसारको चाहे जो सुख मिला हो, मुझे तो कोई सुख नहीं मिला। उनके साथ बैठते लज्जा आती थी। मैं उनका क्या जस गाऊं? मैं तो उसी दिन विधवा हो गई, जिस दिन उनसे विवाह हुआ। वह जीते थे तब भी रांड़ था, मर गये तब भी रांड हूं। देखो तो कुंवर साहब कैसे सजीले, बांके जवान हैं। मेरे योग्य यह थे। न कि ऐसा खूसट बुड्ढा, जिसके मुंहमें दांततक नहीं थे।

यह सुनते ही राजा एक लम्बी सांस लेता है और मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है।

(अभिनय समाप्त हो जाता है।)

प्रेमशङ्करको इन गंवारोंके अभिनय-कौशलपर विस्मय हुआ। बनावटका कहीं नाम न था। प्रत्येक व्यक्तिने अपना अपना भाग स्वाभाविक रीतिसे पूरा किया। यद्यपि न परदे थे, न कपड़े थे, न कोई दूसरे सामान, तथापि अभिनय रोचक और मनोरञ्जक था।

सबेरे प्रेमशंकर टहलते हुए पड़ावकी ओर चले तो देखा कि लश्कर कूचकी तैयारी कर रहा है। खेमे उखड़ रहे हैं। गाड़ियोंपर असबाब लद रहा है। साहब बहादुरकी मोटर तैयार है और बिशेशर साह तहसीलदारके सामने कागजका एक पुलिन्दा लिये खड़े हैं। तेली, तमोली, कुबड़ आदि भी एक पेड़के नीचे अभियुक्तोंकी भांति दाम वसूल करनेके लिये बैठे हुए हैं। प्रेमशंकरने तहसीलदारसे हाथ मिलाया और बैठकर तमाशा देखने लगे।

तहसीलदार—कहां हैं गाड़ीवान लोग? बुलाओ, रसदका

हिसाब करें। इसपर एक गाड़ीवानने कहा, हजूर यहां रसद मिली है कि हमारी जान मारी गयी है। आटेमें इस बेईमान बनिये-ने न जाने क्या मिला दिया है कि उसी दिनसे पेटमें दर्द हो रहा है। घीमें तेल मिलाया था, उसपर हिसाब करनेको कहता है। अभी साहबसे कह दें तो बच्चूको लेनेके देने पड़ जायें।

अर्दलीके कई चपरासी बोले, यह बनिया गोली मार देनेके लायक है। ऐसा खराब आटा उम्रभर नहीं खाया। न जाने क्या चीज मिला दी है, कि हजम ही नहीं होतो। घी ऐसा बदबू करता था कि दाल खाते न बनती थी। इसपर तो जुर्माना होना चाहिये, उल्टे हिसाब करने आया है।

एक कान्सटेबिल महाशयने कहा, हम इसे खूब जानते हैं, छटा हुआ है। चीनी दी तो उसमें आधी बालू, घीमें आधी चुइयां, आटेमें आधा चोकर, दालमें आधा कूड़ा, इसे तो ऐसी जगह मारे जहां पानी न मिले।

कई साईस बोले, घोड़ोंको दाना दिया जो है, वह बिलकुल घुना हुआ, आधा चना आधा चोकर, घोड़ोंने सूंघा तक नहीं। साहबसे कह दें तो अभी हन्टर पड़ने लगें।

तहसीलदार—यह सब शिकायतें पहले क्यों न कीं?

कई आदमी—हजूर, रोज तो हाय-हाय कर रहे हैं!

तहसीलदार—(प्रेमशंकरकी ओर देखकर) मुझसे किसीने भी नहीं कहा। अब यह सब मैं कुछ न सुनूंगा। जिसके जिम्मे जो कुछ निकले, कौड़ी-कौड़ी दे दे। साहजी अपना हिसाब निकालो।

बिशेशर—मौला बख्श अर्दली, आटा ॥२, घी ॥॥, चावल ॥२, दाल ॥१, मसाला ॥, तमाखू ॥, कत्था-सुपारी ॥, चीनी ।) कुल ३) रुपये।

तहसीलदार—कहां है मौला बख्श? दाम देकर रसीद लो।

एक अर्दली—इस नामका हमारे यहां कोई आदमी नहीं है।

विशेशर—हैं क्यों नहीं, लम्बे लम्बे हैं, छोटी दाढ़ी है, मुंह-पर सीतलाका दाग है, सामनेके दो-तीन दांत टूटे हुए हैं।

कई अर्दली—इस हुलियेका यहां कोई आदमी ही नहीं। पहचान, हममेंसे कौन है?

विशेशर—कहीं चल दिये होंगे और क्या!

तहसीलदार—अच्छा, और दूसरा नाम बोलो।

विशेशर—धन्नू अहीर, चावल ⟌३, आटा ⟌२, घी ⟌।, खली ⟌४, दाना और चोकर ⟌८, तमाखू ⌐)—कुल २)

तहसीलदार—कहां है धन्नू अहीर? निकाल रुपये।

एक अर्दली—वह तो पहर रात रहे साहबका डेरा लादकर चला गया।

तहसीलदार—हिसाब नहीं चुकाया और चल दिया। अच्छा नाजिरजी, उसका नाम लिख लीजिये, कहां जाते हैं बच्चा, एक एक पाई वसूल कर लूंगा।

प्रेमशंकर—यह लश्करवालोंकी बड़ी ज्यादती है।

तहसीलदार—कुछ भी न पूछिये, कमबख्त खा-खाकर चल देते हैं, बदनामी बेचारे तहसीलदारकी होती है।

विशेशर साहने फिर ऐसा ही ब्यौरा पढ़ सुनाया। यह जयराम चपरासीका पुर्जा था। जयराम उपस्थित थे। आगे बढ़कर बोले, क्यों रे घी ⟌॥ लिया था कि ⟌≠?

विशेशर—कागदमें तो ⟌॥ लिखा हुआ है।

जयराम—झूठ लिखा है, सोलहों आना झूठ।

तहसीलदार—अच्छा ⟌≠ का दाम दो, या कुछ भी नहीं देना चाहते?

यह झमेला ९, १० बजेतक रहा। एक तिहाईसे अधिक आदमी बिना हिसाब चुकाये ही प्रस्थान कर चुके थे, एक चौथाईसे अधिक आदमी लापता हो गये थे। आधे आदमी मौजूद थे, लेकिन उन्हें भी हिसाबके ठीक होनेमें सन्देह था।

दस ही पांच सज्जन निकले जिन्होंने खरे दाम चुका दिये हों। जब सब चिटें समाप्त हो गयीं तो बिशेशर साहने उन्हें लाकर तहसीलदारके सामने पटक दिया और बोला, मैं और किसीको नहीं जानता, एक हजूरको जानता हूं और हजूरहीके हुकुमसे मैंने रसद दी है।

तहसीलदार—मैं क्या अपनी गिरहसे दूंगा?

बिशेशर—हजूर जैसे चाहें दें या दिला दें, २००) में यह ७०) मिले हैं। मैं टकेका आदमी, इतना धक्का कैसे उठाऊंगा? महाजन मेरा घर बिकवा लेगा।

तहसीलदार—अच्छी बात है, तुम्हारे दाम मिलेंगे। नाजिरजी, आप दो चपरासियोंको लेकर जाइये; इसके बही-खाते उठा लाइये और खुद इसकी सालाना आमदनीका हिसाब कीजिये। देखिये, अभी कलई खुली जाती है। मैं इसके सब रुपये दूंगा, पर इसीसे लेकर। बचा, दो हजार रुपये साल नफा करते हो, उसपर एक बार १००) का घाटा हुआ तो दम निकल गया।

कहां तो बिशेशर साह इतने गर्म हो रहे थे, कहां यह धमकी सुनते ही भीगी बिल्ली बन गये। बोले, हां हजूर, सब हिसाब किताब जांच लें। इस गांवमें ऐसा कौन रोजगार है कि दो हजारका नफा हो जायगा। खानेभरको मिला जाय, यह बहुत है।

तहसीलदार - और यह आसपासके देहातोंका अनाज किसके घरमें भरा जाता है? तुम समझते हो हाकिमोंको खबर ही नहीं होती। यहां इतना बतला सकते हैं कि आज तुम्हारे घरमें क्या पक रहा है। यह रिआयत इसी दिनके लिये करते हैं, कुछ तुम्हारी सूरत देखनेके लिये नहीं।

बिशेशर साह चुपकेसे सरक गये। तेली और तमोलीने भी देखा कि यहां मिलता जुलता तो कुछ नहीं दीखता, उल्टे और रकमें लगनेका भय है तो उन्होंने भी अपनी-अपनी राह ली।

तहसीलदारने प्रेमशङ्करकी ओर देखकर कहा, देखा आपने टैक्सके नामसे इन सबोंकी जान निकल जाती है। मैं जानता हूं कि इसकी सालाना आमदनी ज्यादा-से-ज्यादा १०००) होगी। लेकिन चाहे इस तरह कितना ही नुकसान बरदाश्त कर लें, अपने बही-खाते न दिखायेंगे। यह इनकी आदत है।

प्रेमशङ्कर—खैर, यह तो अपनी चालबाजीकी बदौलत नुकसानसे बच गया, मगर और बेचारे तो मुफ्तमें पिस गये, उसपर जलील हुए वह अलग।

तहसीलदार—जनाब, इसकी दवा मेरे पास नहीं है। जबतक कौमको आप लोग एक सिरेसे जगा न देंगे, इस तरहके हथकंडोंका बन्द होना मुश्किल है। जहां दिलोंमें इतनी खुदगरजी समाई हुई है और जहां रिआया इतनी कच्ची है, वहां किसी तरहकी इसलाह नहीं हो सकती। (मुस्कुराकर) हम लोग एक तौरपर आपके मददगार हैं, रिआयाको सताकर, पीसकर, मजबूत बनाते हैं और आप जैसे कौमी हमदर्दोंके लिये मैदान साफ करते हैं।

२७

प्रभातका समय था और कुआरका महीना। वर्षा समाप्त हो चुकी थी। देहातोंमें जिधर निकल जाइये सड़े हुए सनकी दुर्गन्ध उड़ती थी। कभी ज्येष्ठको लज्जित करनेवाली धूप होती थी, कभी सावनको शरमानेवाले बादल घिर आते थे। मच्छर और मलेरियाका प्रकोप था, नीमकी छाल और गिलोयकी बहार थी। चरावरमें दूरतक हरी हरी घास लहरा रही थी, अभी किसीको उसे काटनेका अवकाश न मिलता था। इसी समय बिन्दा महाराज और कर्तारसिंह लाठी कंधेपर रक्खे, एक वृक्षके नीचे आकर खड़े हो गये। कर्तारने कहा, इस बुड्ढेको खुचड़ सूझती रहती है। भला बताओ जो यहां गांवके मवेशी न चरने पायेंगे तो कहां जायंगे और जो लोग सदासे चराते आये हैं वह मानेंगे कैसे?

एक बेर कोई इसकी मरम्मत कर देता तो यह आदत छूट जाती।

बिन्दा—हमका तो ई मौजा मां तीस बरसें होय गईं। तबसे दस कारिन्दे आये पर बराबर कोऊने न रोका। गऊँभरके मवेसी मजेसे चरत रहे।

कर्तार—उन्हें हुकुम देते क्या लगता है, जायगी तो हमारे माथे।

बिन्दा—हमार जी तो बस ऊब गवा है कि मन करत है छोड़ छाड़के घर चला जाई। सुनित है मालिक अवैया हैं। बस, एक बेर उनसे भेंट हो जाय और अपने घरकै राह लेई।

कर्तार—फैजू दिनभर खाटपर पड़ा रहता है उससे कुछ नहीं कहते, बस जब देखो कर्तारहीको दौड़ाते हैं, जानों कर्तार उनके बापका गुलाम है। और देखो, पीपलके नीचे जहां हम-तुम जल चढ़ाते हैं, वहां नमाज पढ़ते हैं, वहीं दतुअन-कुल्ली करते हैं, वहीं नहाते हैं। बताओ, धरम नष्ट भया कि रहा? आप तो रोज कुरान पढ़ते हैं, और मैं रामायण पढ़ने लगता हूं तो कैसे डांटके कहते हैं, क्या सोर मचा रक्खा है। अबको असाढ़में ३००) नजराना मिला, हमें एक पाईसे भेंट नहीं हुई।

बिन्दा—हमका तो एक रुपेया मिला रहे।

कर्तार—यह भी कोई मिलनेमें मिलना है, और सब कहीं चपरासियोंको रुपयेमें आठ आने मिलते हैं, यह कुछ न दें तो चार आने तो दें। लेना-देना तो दूर रहा, उसपर आठों पहर सिर-पर सवार। कल तुम कहीं गये थे, मुझसे बोले, कर्तार एक घड़ा पानी तो खींच लो। मैंने तुरत जवाब दिया, इसके नौकर नहीं हैं, फौजदारी करा लो, लाठी चलवा लो, अगर कदम पीछे हटायें तो कहो, लेकिन चिलम भरना, पानी खींचना हमारा काम नहीं है। इसपर बहुत आंखें लाल पीली कीं। एक दिन पीपलके नीचेवाली मूरतोंको देखकर बोला, यह क्या ईंट-पत्थर जमाकर रक्खे हैं। मैंने तो ठान लिया है कि जहां अबकी कोई नजराना

लेकर आया और मैंने हाथ पकड़ा कि चार आने इधर रखिये। जरा भी नरम गरम हुए, मुंहसे लाम काफ़ निकाली और मैंने गरदन दबाई। फिर जो कुछ होगा देखा जायगा। फैजू बोले, तो उनसे भी समझूंगा। खूब पड़े पड़े रोटी गोस उड़ा रहे हैं, सब निकाल दूंगा" वह देखो, मवेसी इधर आ रहे हैं, बलराज तो नहीं है न?

बिन्दा—होवे करी तो कौन डर है? अबकी अस जर आवा है कि ठठरी होय गवा है।

कर्तार—बड़े कस बलका पट्ठा है। सुक्खू चौधरीका तालाब जहां बन रहा है वहीं एक दिन अखाड़ेमें उससे मेरी एक पकड़ हो गयी थी। मैं उसे पहले ही झपाटेमें नीचे लाया। लेकिन ऐसा तड़पके नीचेसे निकला कि मैं झोंकेमें आ गया। संभल ही न सका। बदन नहीं लोहा है।

बिन्दा—निगाहका बड़ा सच्चा जवान है। क्या मजाल कि कोऊकी बिटिया मेहरियाकी ओर आंख उठाके ताके।

कर्तार—वह फैजू और गौसखां भी इधर ही आ रहे हैं। आज कुसल नहीं दीखती।

बिन्दा यह गायें भैंसें तो मनोहरकी जान परत हैं। बिलासी लीने आवत हैं।

कर्तारने उच्च स्वरमें कहा, यह कौन मवेसी लिये आता है, यहांसे निकाल ले जाव, सरकारी हुकुम नहीं है। इतनेमे बिलासी निकट आ गयी और बिन्दा महाराजकी ओर अनिश्चित भावसे देखकर बोली, सुनत हो महराज ठाकुरकी बात!

कर्तार—सरकारी हुकुम हो गया है कि अब कोई जानवर यहां न चरने पाये।

बिलासी—कैसा सरकारी हुकुम? सरकारकी जमीन नहीं है। महाराज, तुम्हें तो यहां एक जुग बीत गया, कभी किसीने बरावर रोकी है?

चिन्ता—उन पुरानी बातनका न गाओ, अब ऐसे ही भवा है। जानवरनका ओर कौनो केत ले जाव, नाहीं तो गौसखां आवत हैं, सभनका पकड़के कानीहौद पठै देहैं।

विलासी—कानीहौद कैसे पठै देहैं, कोई राहजनी है? हमारे मवेसी सदासे यहां चरते आये हैं और सदा यहीं चरेंगे। अच्छा सरकारी हुकुम है, आज कह दिया चरावर छोड़ दो, कल कहेंगे अपना घर छोड़ो, पेड़ तले जाके रहो। ऐसा कोई अन्धेर है!

इतनेमें गौसखां और फैजू भी आ पहुंचे। विलासीके अन्तिम शब्द खां साहबके कानमें पड़े। डपटकर बोले, अपने जानवरोंको फौरन निकाल ले जा, वरना मवेशीखाने भेज दूंगा।

विलासी—क्यों निकाल ले जाऊं? चरावर सारे गांवका है। जब सारा गांव छोड़ देगा तो हम भी छोड़ देंगे।

गौसखां—जानवरोंको ले जाती है कि खड़ी-खड़ी कानून बघारती है।

विलासी—तुम तो खां साहब, ऐसी घुड़की जमा रहे हो जैसे मैं तुम्हारा दिया खाती हूं।

गौसखां—फैजू, यह अन्नादराज औरत यों न मानेगी, घेर लो इसके जानवरोंको और मवेशीखाने हांक ले जाओ।

फैजू तो मवेशियोंकी तरफ लपका, पर कर्तार और बिन्दा महाराज धर्मसंकटमें पड़े खड़े रहे। खां साहबने उन्हें भी ललकारा—खड़े मुंह क्या देख रहे हो? घेर लो जानवरोंको और हांक ले जाओ। सरकारी हुकुम है या कोई मज़ाक है।

अब कर्तार और बिन्दा महाराज भी उठे और जानवरोंको चारों ओरसे घेरनेकी आयोजना करने लगे। मवेशियोंने चौकन्नी आंखोंसे देखा, कान खड़े किये और इधर-उधर बिदकने लगे। परिस्थितिको ताड़ गये। विलासीने कहा, मैं कहती हूं, इन्हें मत घेरो, नहीं तो ठीक न होगा।

लेकर परन्तु किसीने उसकी धमकीपर ध्यान न दिया। थोड़ी देर में सब जानवर घिर गये और कन्धेसे कन्धे मिलाये, कनखियोंसे ताकते, तीनों चपरासियोंके बीचमें धीरे धीरे चले। बिलासी एक संदिग्ध दशामें मूर्तिवत् खड़ी थी। जब जानवर एक बीस क़दम निकल गये तब वह उन्मत्तोंकी भांति दौड़ी और हांफते हुए बोली, मैं कहती हूं कि इन्हें छोड़ दो, नहीं तो ठीक न होगा।

फैजू—हट जा रास्तेसे, कुछ शामत तो नहीं आयी है।

बिलासी रास्तेमें खड़ी हो गयी और बोली, ले कैसे जाओगे दिल्लगी है?

गौसखां—न हटे तो इसकी मरम्मत कर दो।

बिलासी—कहे देती हूं इन जानवरोंके पीछे लोहूकी नदी बह जायगी। माथे गिर जायँगे।

फैजू—हटती है या नहीं चुड़ैल?

बिलासी—तू हट जा, दाढ़ीजार!

इतना उसके मुंहसे निकलना था कि फैजूने आगे बढ़कर बिलासीकी गर्दन पकड़ी और उसे इतने ज़ोरसे झोंका दिया कि वह दो कदमपर जा गिरी। उसकी आंखें तिलमिला गयीं, मूर्च्छा-सी आ गयी। एक क्षण वह वहीं अचेत पड़ी रही, तब उठी और लंगड़ाती हुई उन पुरुषोंसे अपनी अपमान-कथा कहने चली, जो उसके मान और मर्यादाके रक्षक थे।

मनोहर और बलराज दोनों एक दूसरे गांवमें धान काटने गये हुए थे। वह यहांसे कोसभर पड़ता था। लखनपुरमें धानके खेत न थे। इसलिए सभी लोग प्रायः उसी गांवमें धान बोते थे। बिलासी धानके मेंड़ोंपर चली जाती थी। कभी पैर इधर फिसलते, कभी उधर। वह ऐसी उद्विग्न हो रही थी कि किसी प्रकार उड़कर वहां पहुंच जाऊं। पर घुटनियोंमें चोट आ गयी थी, इसलिये विवश थी। उसके रोम रोमसे अग्निकी

ज्वाला निकल रही थी। अंग अंगसे यही ध्वनि निकलती थी—इनकी इतनी मजाल!

उसे इस समय परिणाम और फलकी लेशमात्र भी चिन्ता न थी। कौन मरेगा? किसका घर मिट्टीमें मिलेगा? यह बातें उसके ध्यानमें भी न आती थीं। संकल्प-विकल्पके बन्धनसे मुक्त हो गयी थी।

लेकिन जब वह उस गांवके समीप पहुंची और धानके लहराते हुए खेत दिखायी देने लगे तो पहली बार उसके मनमें यह प्रश्न उठा, इसका फल क्या होगा? बलराज एक ही क्रोधी है, मनोहर उससे भी एक अंगुल आगे। मेरा रोना सुनते ही दोनों भभक उठेंगे। जानपर खेल जायेंगे तब? किन्तु आहत हृदयने उत्तर दिया, क्या हानि है? लड़कोंके लिये आदमी क्यों झींकता है? पतिके लिये क्यों रोता है? इसी दिनके लिये न? इस कलमुंहे फैजूका मानमरदन तो हो जायगा। गौसखांका घमण्ड तो चूर-चूर हो जायगा।

तब भी, जब वह अपने खेतोंके डांडेपर पहुंची, मनोहर और बलराज नज़र आने लगे तब उसके पैर आप ही रुकने लगे। यहां तक कि जब वह उनके पास पहुंची तब परिणाम-चिन्ताने उसे परास्त कर दिया। वह फूट फूटकर रोने लगी। जानती थी और समझती थी कि यह आंसूकी बूंदें आगकी चिन्गारियां हैं, पर आवेशपर अपना क़ाबू न था। वह खेतके किनारे खड़ी हो गयी और मुंह ढांपकर रोने लगी।

बलराजने सशंक होकर पूछा, अम्मां, क्या है? रोती क्यों हैं? क्या हुआ? अरे यह सारा कपड़ा कैसे लोहूलुहान हो गया?

विलासीने साड़ीकी ओर देखा तो वास्तवमें रक्तके छींटे दिखायी दिये। घुटनियोंसे खून बह रहा था। उसका हृदय थर-थर कांपने लगा। इन छींटोंको छुपानेके लिये वह इस समय अपने प्राणतक दे सकती थी। हाय! मेरे सिरपर कौनसा भूत सवार

लेही गया कि यहां दौड़ी हुई आयी! मैं क्या जानती थी कि कहीं फूट फाट भी गया है। अब गजब हो गया! मुझे चाहिये था कि धीरज धरे बैठी रहती। सांझको जब यह लोग घर जाते और गांवके सब आदमी जमा होते तो सारा वृत्तान्त कह देती। जैसी सबकी सलाह होती वैसा किया जाता। इस अव्यवस्थित दशामें वह कोई शांतिप्रद उत्तर न सोच सकी।

बलराजने फिर पूछा, कुछ मुंहसे बोलती क्यों नहीं, बस रोये जाती है। क्या हुआ कुछ बोल तो?

बिलासी—(सिसकते हुए) फैजू और गौसखां हमारी सब गायें-भैंसें कानीहौद हांक ले गये।

बलराज—क्यों? क्या उनकी सीरमें पड़ी थी?

बिलासी—नहीं, कहते थे कि चरावरमें चरानेकी मनाही हो गयी है।

बलराजने देखा, माताकी आंखें झुकी हुई हैं और मुखपर मर्माघातकी आभा झलक रही है। उसने उग्रावस्थामें स्थितिको उससे कहीं भयंकर समझ लिया जितनी वह वस्तुतः थी। कुछ और पूछनेकी हिम्मत न पड़ी। आंखें रक्तवर्ण हो गयीं। कन्धेपर लट्ठ रख लिया और मनोहरसे बोला, मैं जरा गांवतक जाता हूं।

मनोहर—क्या काम है?

बलराज—फैजू और गौसखांसे दो दो बातें करनी हैं।

मनोहर—ऐसी बातें करनेका यह मौका नहीं है। अभी जाओगे बात बढ़ेगी और कुछ हाथ भी न लगेगा। चार आदमी तुम्हींको बुरा कहेंगे। अपमानका बदला इस तरह नहीं लिया जाता।

मनोहरके इन शब्दोंमें इतना भयंकर संकल्प, इतना घातक निश्चय भरा हुआ था कि बलराज अधिक आग्रह न कर सका। उसने लाठी रख दी और मांसे कहा, अभी घर जाओ। हम लोग आयेंगे तो देखा जायगा।

मनोहर—नहीं, घर मत आओ। यहीं बैठो, सांझको सब जने साथ ही चलेंगे। यह कौन दौड़ा आ रहा है? बिन्दा महाराज हैं क्या?

बलराज—नहीं, कादिर दादा जान पड़ते हैं। हां, वही हैं। भागे चले आते हैं। मालूम होता है गांवमें मारपीट हो गयी—दादा क्या है? कैसे दौड़े आते हो, कुशल तो है?

कादिरने दम लेकर कहा, तुम्हारे ही पास तो दौड़े आते हैं। बिलासी रोती आयी है। मैं डरा, तुम लोग गुस्सेमें न जाने क्या कर बैठो। चला कि राहमें मिल जाओगे तो रोक लूंगा, पर तुम कहीं मिले ही नहीं। अब तो जो हो गया सो हो गया, आगेकी खबर करो। आजसे जमींदारने चरावर रोक दी है। यह अन्धेर देखते हो?

मनोहर—हां देखता क्यों नहीं हूं, अन्धेर-सा अन्धेर है?

कादिर—फिर अदालत जाना पड़ेगा।

मनोहर—चलो, मैं तैयार हूं।

कादिर—हां, आज आवो तो सलाह पक्की करके सवाल दे दें। अबकी हाईकोर्टतक लड़ेंगे, चाहे घर बिक जाय। बस, हल पीछे चन्दा लगा लिया जाय।

मनोहर—हां, यही अच्छा होगा।

कादिर—मैं नमाज पढ़ता था कि सुना बिलासीको चरावरमें चपरासियोंने बुरा भला कहा और वह रोती हुई इधर आयी है। समझ गया कि आज गजब हो गया। :बारे तुमने सबरसे काम लिया। अल्लाह इसका सवाब तुमको देगा। तो मैं अब जाता हूं, सबसे चन्देकी बातचीत करता हूं। जरा दिन रहते चले आना।

कादिरखां सावधान होकर चले गये। यह न समझे कि यहां मनमें कुछ और ही ठन गयी है। मनोहरके तुले हुए शब्दोंको उन्होंने मानसिक धैर्यका द्योतक समझा।

मनोहर ऐसे उद्दीप्त उत्साहसे अपने काममें दत्तचित्त था मानों

उसकी युवावस्थाका विकास हो गया है। धानके पोलोंके ढेर लगाते जाते थे, न आगे ताकता था न पीछे, न किसीसे कुछ बोलता था, न किसीकी कुछ सुनता था; न हाथ थकते थे, न कमर दुखती थी। बलराजने चिलम भरकर रख दी। तम्बाकू रक्खे रक्खे जल गया। बिलासी खांडका रस घोलकर सामने लायी। उसने उसकी ओर देखातक नहीं, कुत्ता पी गया। कुआरकी धूप थी, देहसे चिन्गारियां निकलती थीं, पसीनेकी धारें बहती थीं, किन्तु वह सिरतक न उठाता था। बलराज कभी खेतमें आता, कभी पेड़के नीचे जा बैठता, कभी चिलम पीता। एकही अग्नि दोनोंके हृदयमें प्रज्वलित थी, एक ओर सुलगती हुई, दूसरी ओर दहकती हुई; एक ओर वायुके वेगसे चंचल, दूसरी ओर निर्बलता-से निश्चल। एकही भावना दोनोंके हृदयमें थी; एकमें उच्छृंखल, दूसरेमें गम्भीर और स्थिर।

दोपहर हुई, बिलासीने आकर डरते डरते कहा, चलो, चबेना कर लो।

मनोहरने सिर झुकाये हुए जवाब दिया—चलो, आते हैं।

एक घण्टेके बाद बिलासी फिर आकर बोली, चलो, चबेना कर लो, दिन ढल गया। क्या आज ही सब खेत काट लोगे?

मनोहरने कठोर स्वरसे कहा, हां, यही विचार है। कौन जाने कल आये या न आये।

जैसे किसी भरे हुए घड़ेमें एक कंकर लग जाय और पानी बह निकले, उसी भांति बिलासीके हृदयमें एक चोट सी लगी और आंसू बहने लगे। वह रह रहकर हाथ मलती थी। हाय! न जाने इन्होंने मनमें क्या ठानी।

वह कई मिनटतक वहीं खड़ी रोती रही। परिणामकी भयावह विकराल मूर्ति उसके नेत्रोंके सामने नाच रही थी। मुंह बाले उसे निगलनेको दौड़ती थी। और शोक! इस मूर्तिको उसीने अपने ही हाथों रचा था। अन्तमें वह मनोहरके सम्मुख बैठ

गयी और उसकी ओर अत्यन्त दीन भावसे देखकर बोली, हाथ जोड़कर कहती हूं, चलकर चबेना कर लो। तुम्हारे इस तरह गुमसुम रहनेसे मेरा कलेजा दहल रहा है। तुमने क्या ठान रक्खी है, बोलते क्यों नहीं ?

मनोहर—जाकर चुपकेसे बैठो। जब मुझे भूख लगेगी खा लूंगा।

विलासी—हाय राम! तुम क्या करनेपर तुले हुए हो ?

मनोहर—करूंगा क्या! कुछ करने ही लायक होता तो आज यह बेइज्जती नहीं होती। जो कुछ तकदीरमें है वह होगा।

यह कहकर वह फिर अपने काममें व्यस्त हो गया। कोई किसीसे न बोला। बलराज टाल मटोल करता रहा और विलासी उदास बैठी कभी रोती और कभी अपनेको कोसती यहांतक कि सन्ध्या हो गयी, तीनोंने धानके गट्ठे गाड़ीपर लादे और लखनपूर चले। बलराज गाड़ी हांकता था और मनोहर पीछे-पीछे उच्च स्वरसे एक बिरहा गाता हुआ चला आता था। राहमें कल्लू अहीर मिला, बोला, मनोहर काका, आज बड़े मगन हो। मनोहर-का गाना समाप्त हुआ तो उसने भी एक बिरहा गाया। दोनों साथ साथ गांवमें पहुंचे तो एक हलचल सा मचा हुआ था। चारों ओर चरावरकी चर्चा हो रही थी। कादिरके द्वारपर एक पंचायत-सी बैठी हुई थी। लेकिन मनोहर पंचायतमें न जाकर सीधे घर गया और जाते ही जाते भोजन मांगा। बहूने रसोई तैयार कर रक्खी थी। इच्छापूर्ण भोजन करके नारियल पीने लगा। थोड़ी देरमें बलराज भी पंचायतसे लौटा। मनोहरने पूछा कहो, क्या हुआ ?

बलराज—कुछ नहीं, यही सलाह हुई है कि खां साहेबको कुछ नजर वजर देकर मना लिया जाय। अदालतसे सब लोग घबराते हैं।

मनोहर—यह तो मैं पहले ही समझ गया था। अच्छा,

जाकर चटपट खा पी लो। आज मैं भी तुम्हारे साथ रखवाली करने चलूंगा। आंख लग जाय तो जगा लेना।

एक घण्टेके बाद दोनों खेतकी ओर चलनेको तैयार हुए। मनोहरने पूछा, कुल्हाड़ा खूब चलता है न?

बलराज—हां, आज ही तो रगड़ा है।

मनोहर—तो उसे ले लो।

बलराज—मेरा तो कलेजा थर थर कांप रहा है।

मनोहर—कांपने दो। तुम्हारे साथ मैं भी तो रहूंगा। तुम दो-एक हाथ चलाके वहांसे लम्बे हो जाना और सब मैं देख लूंगा इस तरह आके सो रहना, जैसे कुछ जानते ही नहीं। कोई कितना ही पूछे, डरावे, धमकावे, मुंह मत खोलना। मैं अबे लेही जाता मुदा एक तो मुझे अच्छी तरह सूझता नहीं; कई दिनोंसे रतौंधी होती है। दूसरे, हाथोंमें अब वह बल नहीं कि एक चोटमें वारा न्यारा हो जाय।

मनोहर यह बातें ऐसी सावधानीसे कर रहा था, मानों कोई साधारण घरेलू बातचीत है। बलराज इसके प्रतिकूल शंका और भयसे आतुर हो रहा था। क्रोधके आवेशमें वह आगमें कूद सकता था, किन्तु इस पैशाचिक हत्याकाण्डसे उसके प्राण सूखे जाते थे।

खेतमें पहुंचकर दोनों मचानपर लेटे। अमावसकी रात थी। आकाशपर कुछ बादल भी हो आये थे। चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था।

मनोहर तो लेटते ही खर्राटे लेने लगा, लेकिन बलराज पड़ा-पड़ा करवटें बदलता रहा। उसका हृदय नाना प्रकारकी शङ्काओं का अविरल स्रोत बना हुआ था।

दो घड़ी बीतनेपर मनोहर जागा, बलराजसे बोला, सो गये क्या?

बलराज—नहीं, नींद नहीं आती।

मनोहर—अच्छा, तो अब रामका नाम लेकर तैयार हो जाओ, डरने या घबरानेकी कोई बात नहीं। अपने मरजादकी रक्षा करना मर्दोंका काम है। ऐसे अत्याचारोंका हम और क्या जवाब दे सकते हैं? बेइज्जत होकर जीनेसे मर जाना अच्छा है! दिलको खूब संभाल लो। अपना काम करके सीधे यहां चले आना। अन्धेरी रात है, किसीकी नजर भी नहीं पड़ सकती। थानेदार तुम्हें डरायेंगे, लेकिन खबरदार डरना मत। बस, गांवके लोगोंसे मेल रक्खोगे तो कोई तुम्हारा बाल भी बांका न कर सकेगा। दुखरन भगत अच्छा आदमी नहीं है, उससे चौकन्ने रहना। हां, कादिर भरोसेका आदमी है। उसकी बातोंका बुरा मत मानना। मैं तो फिर लौटकर घर न आऊंगा, तुम्हीं घरके मालिक बनोगे, अब यह लड़कपन छोड़ देना, कोई चार बात कहे तो गम खाना। ऐसा कोई काम न करना कि बाप दादेके नामको कलंक लगे। अपनी घरवालीको सिर मत चढ़ाना, उसे समझाते रहना कि सासके कहनेमें रहे। मैं तो देखने न आऊंगा, लेकिन इसी तरह घरमें राड़ मचता रहा तो घर मिट्टीमें मिल जायगा।

बलराजने अवरुद्ध कंठसे कहा, दादा, मेरी इतनी बात मानो, इस वखत सबुर कर जाओ, मैं कल एक एकको खोपड़ी तोड़के रख दूंगा।

मनोहर—हां, तुम्हें कोई न मारे तो तुम संसारभरको मार गिराओ। फैजू और कर्तार क्या मिट्टीके लोंदे हैं? गौसखां भी पलटनमें रह चुका है। तुम लकड़ीमें उनसे पेस न पा सकोगे। वह देखो, हिरना निकल आया। महावीरजीका नाम लेकर उठ खड़े हो। ऐसे कामोंमें आगा पीछा अच्छा नहीं होता। गांवके बाहर बाहर चलना होगा, नहीं तो कुत्ते भूंकेंगे और लोग जाग उठेंगे।

बलराज—मेरे तो हाथ-पैर कांप रहे हैं।

मनोहर—कोई परवाह नहीं, कुल्हाड़ा हाथमें लोगे तो सब

ठीक हो जायगा। तुम मेरे बेटे हो, तुम्हारा कलेजा मजबूत है। तुम्हें अभी जो डर लग रहा है, वह तापके पहलेका जाड़ा है। तुमने कुल्हाड़ा कन्धेपर रक्खा, महावीरका नाम लेकर उधर चले तो तुम्हारी आंखोंसे चिनगारियां निकलने लगेंगी। सिरपर खून सवार हो जायगा, बाजकी तरह शिकारपर झपटोगे, फिर तो मैं तुम्हें मना भी करूं तो न सुनोगे। वह देखो, सियार बोलने लगे, आधी रात हो गयी। मेरा हाथ पकड़ लो और आगे आगे चलो।

जय महावीरकी !

२८

प्रेमशङ्करकी कृषिशाला अब नगरके रमणीय स्थानोंकी गणनामें थी। यहां ऐसी सफाई और सजावट थी कि प्रायः रसिकगण सैर करने आया करते। यद्यपि प्रेमशंकर केवल उसके प्रबन्धकर्ता थे, पर वस्तुतः असामियोंकी भक्ति और पूर्ण विश्वासने उन्हें उसका स्वामी बना दिया था। अब अपने इच्छानुसार नई नई फसलें पैदा करते, नाना प्रकारकी परीक्षायें करते, पर कोई जरा भी न बोलता, और बोलता ही क्यों, जब उनकी कोई परीक्षा असफल न होती थी। जिन खेतोंमें मुश्किलसे ५, ७ मनकी उपज होती थी वहां अब १५, २० मनका औसत पड़ता था। उसपर बागकी आमदनी अलग थी। इन्हीं चार सालोंमें कलमी आम, बेर, नारङ्गी आदिके पेड़ोंमें फल लगने शुरू हो गये थे। शाक-भाजीकी पैदावार घाटेमें थी। प्रेमशंकरमें व्यावसायिक संकीर्णता छूतक न गयी थी। जो सज्जन यहां आ जाते उन्हें फल फूलोंकी डाली अवश्य भेंट की जाती थी। प्रेमशङ्करकी देखादेखी हाजीपुरवालोंने भी अपने जीवनका कुछ ऐसा डौल डाल कर लिया था कि उनकी सारी आवश्यकतायें उसी बगीचेसे पूरी हो जाती थीं। भूमिका आठवां भाग कपासके लिये अलग कर दिया गया था। अन्य प्रान्तोंसे उत्तम बीज मंगाकर बोये गये थे। गांवके लोग स्वयं सूत कात लेते थे, और गांवहीका कोरी उसके कपड़े बुन

देता था। उसका नाम मस्ता था। पहले वह जुआ खेला करता था और कई बार चोरीमें पकड़ा गया था। लेकिन अब अपने श्रमसे गांवके भले आदमियोंमें गिना जाता था। प्रेमशंकरके उद्योगसे आसपासके गांवोंमें भी कपासकी खेती होने लगी थी और कितने ही कोरियों और जुलाहोंके उजड़े हुए घर आबाद हो गये थे। देहातोंके मुकदमेबाज जमींदार और किसान बहुधा इसी जगह ठहरा करते थे। यहां उन्हें ईंधन, शाक भाजी, नमक, तेलके लिये पैसे न खर्च करने पड़ते थे। प्रेमशंकर उनसे खूब बातें करते और उन्हें अपने बगीचेकी सैर कराते। साधु-सन्तोंका तो मानों यह अखाड़ा ही था। दो चार मूर्त्तियां नित्यही पड़ी रहती थीं। न जाने उस भूमिमें क्या बरकत थी कि इतनी आतिथ्यसेवा करनेपर भी किसी पदार्थकी कमी न थी। हाजीपूरवाले तो उन्हें देवता समझते थे और अपने भाग्यको सराहते थे कि ऐसे पुण्यात्माने हमें उबारनेके लिये यहां निवास किया। उनके सदय, उदार, सरल स्वभावने मस्ता कोरीके अतिरिक्त गांवके कई कुच-रित्र मनुष्योंका उद्धार कर दिया था। भोला अहीर, जिसके मारे खलिहानमें अनाज न बचता था, दमड़ी पासी, जिसका पेशा ही लठैती था, अब गांवके सबसे मेहनती और ईमानदार किसान थे।

प्रेमशंकर अकसर कृषकोंकी आर्थिक दुरवस्थापर विचार किया करते थे। अन्य अर्थशास्त्रवेत्ताओंकी भांति वह कृषकोंपर फजूलखर्ची, आलस्य, अशिक्षा या कृषिविधानसे अनभिज्ञताका दोष लगाकर इस प्रश्नको हल न करते थे। वह परोक्षमें कहा करते थे कि मैं कृषकोंको शायद ही कोई ऐसी बात बता सकता हूं, जिसका उन्हें ज्ञान न हो। परिश्रमी तो इनसे अधिक कोई संसारमें न होगा। मितव्ययितामें, आत्मसंयममें, गृहप्रबन्धमें वे निपुण हैं। उनकी दरिद्रताका उत्तरदायित्व उनपर नहीं, बल्कि उन परिस्थितियोंपर है, जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है। और यह परिस्थितियां क्या हैं? आपसकी फूट, स्वार्थपराय-

पाता और एक ऐसी संस्थाका विकास जो उनके पावकी बेड़ी बनी हुई है। लेकिन जरा और विचार कीजिये तो यह तीनों टहनियां एक ही शाखासे फूटी हुई प्रतीत होंगी और यह वही संस्था है जिसका अस्तित्व कृषकोंके रक्तपर अवलंबित है। आपसमें विरोध क्यों है? दुरवस्थाओंके कारण, जिनकी इस वर्तमान शासनने सृष्टि की है। परस्पर प्रेम और विश्वास क्यों नहीं है? इसलिये कि यह शासन इन सद्भावोंको अपने लिये घातक समझता है और उन्हें पनपने नहीं देता। इस परस्पर विरोधका सबसे दुःखजनक फल क्या है? भूमिका क्रमशः अत्यंत अल्प भागोंमें विभाजित हो जाना और उसके लगानकी अपरिमित वृद्धि। प्रेमशंकर इस शासनके सुधारको तो मानव शक्तिसे परे समझते थे, लेकिन भूमिके बंटवारेका रोकना उन्हें साध्य जान पड़ता था, और यद्यपि किसी आन्दोलनमें अगुआ बनना उन्हें पसन्द न था, किन्तु इस विषयमें वह इतने उत्सुक थे कि समाचारपत्रोंमें अपने मन्तव्योंको प्रकट करनेसे न रुक सके। इससे उनका उद्देश्य केवल यह था कि कोई मुझसे अधिक अनुभवशील, कुशल और प्रतिभाशाली इस प्रश्नको अपने हाथमें ले ले।

एक दिन यह कई सहृदय मित्रोंके साथ बैठे हुए इसी विषयपर बातचीत कर रहे थे कि एक सज्जनने कहा, यदि आपका विचार है कि यह प्रथा कानूनसे बन्द की जा सकती है तो आपकी भ्रांति है। इस विषयुक्त पौधेकी जड़ें मनुष्यके हृदयमें हैं और जबतक इसे हृदयसे खोदकर न निकालियेगा, यह इसी प्रकार फूलता-फलता रहेगा।

प्रेमशङ्कर—कानूनसे कुछ न-कुछ सुधार तो हो ही सकता है। इसपर उन महाशयोंने जोर देकर कहा, कदापि नहीं, बल्कि स्वार्थ प्रत्यक्षरूपसे स्फुटित होनेका अवसर न पाकर और भी भयंकर रूप धारण कर लेगा।

इसपर एक किसान, बंटवारेकी दरख्वास्त करके कचहरीसे

लौटा था और जो आज यहीं ठहरा हुआ था, बोल उठा, कहूं कुछ न होई। हम तो आपे लोगनके पीछे-पीछे चलित है। जब आपे लोगनमें भाई भाईमां निवाह नाहीं होय सकत है तो हमार कस होई। आपका नारायन सब कुछ दिहे हैं, मुदा आपे अपने भाईसे अलग रहत हौ।

यह उच्छृङ्खल शब्द प्रेमशङ्करके हृदयमें तीरके समान चुभ गये। सिर झुका लिया। मुखश्री मलिन हो गयी। मित्रोंने कृषककी ओर तिरस्कारपूर्ण नेत्रोंसे देखा। यह एक जगत्व्यापार था। यहां व्यक्तियोंको खींचना नितान्त न्याय-विरुद्ध था; पर वह अक्खड़ देहाती सभ्यताके रहस्योंको क्या जाने, मुंहमें जो बात आयी कह डाली। एक महाशयने कहा, निरे गंवार हो, जरा भी तमीज नहीं।

दूसरे महाशय बोले, अगर इतना ही ज्ञान होता तो देहाती क्यों कहलाते? न अवसरका ध्यान, न औचित्यका विचार, जो कुछ ऊटपटांग मुंहमें आया बक डाला।

बेचारे किसानको अब मालूम हुआ कि मुंहसे कोई अनुचित बात निकल गयी। लज्जित होकर बोला, साहब मैं गंवार मनई ई सब फेरफारका जानौं। जौन कुछ भूल चूक हो गयी होय माफ की जाय।

प्रेमशङ्कर—नहीं, नहीं, तुमने कोई अनुचित बात नहीं कही। मेरे लिये इस स्पष्ट कथनकी आवश्यकता थी। तुमने अच्छी शिक्षा दे दी। कोई सन्देह नहीं कि शिक्षित जनोंमें भी विरोध और वैमनस्यका उतना ही प्रकोप है जितना अशिक्षित लोगोंमें है और मैं स्वयं इस विषयमें दोषी हूं, मुझे किसीको समझानेका अधिकार नहीं।

मित्रगण कुछ देरतक और बैठे रहे, लेकिन प्रेमशङ्कर कुछ ऐसे दब गये कि फिर जबान ही न खोली। अन्तमें सब एक एक करके चले गये।

सूर्यास्त हो रहा था। प्रेमशङ्कर घोर चिन्ताकी दशामें अपने झोपड़ेके सामने टहल रहे थे। उनके सामने अब यह समस्या थी कि ज्ञानशङ्करसे कैसे मेल हो। वह जितना ही विचार करते थे उतना ही अपनेको दोषी पाते थे। यह सब मेरी ही करनी है। जब असामियोंसे उनकी लड़ाई ठनी हुई थी, मुझे उचित न था कि असामियोंका पक्ष ग्रहण करता। माना कि ज्ञानशङ्करका अत्याचार था। ऐसी दशामें मुझे अलग रहना चाहिये था या उन्हें भ्रातृवत् समझना चाहिये था। यह तो मुझसे न हुआ। उल्टे उन्हींसे लड बैठा। माना कि उनके और मेरे सिद्धान्तोंमें घोर अन्तर है। लेकिन सिद्धान्त-विरोध परस्पर भ्रातृप्रेमको क्यों दूषित करे? यह भी माना कि जबसे मैं आया हूं, उन्होंने मेरी अवहेलना ही की है, यहांतक कि मुझे पत्नीप्रेमसे भी वञ्चित कर दिया, पर मैंने भी तो कभी उनसे मिले रहनेकी, उनके कटु-व्यवहारको भूल जानेकी, उनकी अप्रिय बातोंको सह लेनेकी चेष्टा नहीं की। मुझसे एक अङ्गुल खसके तो मैं उनसे हाथभर हट गया। सिद्धान्तप्रियताका यह आशय नहीं है कि आत्मीय जनोंसे विरोध कर लिया जाय। सिद्धान्तोंको मनुष्योंसे अधिक मान्य समझना अक्षम्य है। उनके हृदयको अपनी तरफसे साफ करनेका यह अच्छा अवसर है।

सन्ध्या हो गयी थी। ज्ञानशङ्कर अपने सुरम्य बंगलेके सामने मौलवी ईजाद हुसेनके साथ बैठे बातें कर रहे थे। मौलवी साहबने सरकारी नौकरीमें मनोनीत सफलता न देखकर इस्तीफा दे दिया था और अब कुछ दिनोंसे जातिसेवामें तल्लीन हो गये थे। उन्होंने "अंजुमन इत्तहाद" नामकी एक संस्था खोल ली थी, जिसका उद्देश्य हिन्दू-मुसलमानोंमें परस्पर प्रेम और मैत्री बढ़ाना था। यह संस्था चन्दोंसे चलती थी और इसी हेतुसे सैयद साहब यहां पधारे थे।

ज्ञानशङ्करने कहा, मुझे दिन-दिन तजरबा हो रहा है, कि

जमींदारी करनेके लिये बड़ी सख्तीकी जरूरत है। जमींदार नजर-नजराना, हरी-बेगार, डांड़-बांध, सब कुछ छोड़ सकता है; लेकिन लगान तो नहीं छोड़ सकता। वह भी अब बगैर अदालती कार-वाईके नहीं वसूल होता।

ईजाद हुसेन—जनाब बजा फ़रमाते हैं, लेकिन गुलामने ऐसे रईसोंको भी देखा है जो कभी अदालतके दरवाजेतक न गये। जहां किसी असामीने सरकशी की उसकी मरम्मत कर दी और लुत्फ़ यह कि कभी डंडे या हन्टरसे काम नहीं लिया। गरमीमें झुलसती हुई धूप और जाड़ेमें बर्फ़कासा ठण्डा पानी। बस, इसी लटकेसे उनकी सारी मालगुजारी वसूल हो जाती है। मई और जूनकी धूप जरा देर सिरपर लगी और असामीने कमर ढीली की।

ज्ञानशङ्कर—मालूम नहीं, ऐसे असामी कहां हैं। यहां तो ऐसे बदमाशोंसे पाला पड़ा है, जो बात-बातपर अदालतका रास्ता लेते हैं। मेरे ही मौजेको देखिये, कैसा तूफान उठ गया और महज चरावरको रोक देनेके पीछे।

इतनेमें डाक्टर इर्फान अली बार-एट-लाकी मोटर आ पहुंची। ज्ञानशंकरने उनका स्वागत किया।

डाक्टर—अबकी आपने बड़ा इन्तजार कराया। मैं तो आपसे मिलनेके लिये गोरखपूर आनेवाला था।

ज्ञान—रियासतका काम इतना फैला हुआ है कि कितना ही समेटूं नहीं सिमटता।

डाक्टर—आपको मालूम तो होगा, यहां युनिवर्सिटीमें इक-नोमिक्सकी जगह खाली है। अब तो आप सिण्डिकेटमें आ गये हैं।

ज्ञान—जी हां, सिण्डिकेटमें तो लोगोंने ज़बरदस्ती घर घसीटा, लेकिन यहां रियासतके कामोंसे कहां फुरसत कि इधर तवज्जह करूं। कुछ कागज़ात गये थे लेकिन मुझे उनके देखने-का मौका ही न मिला।

डाक्टर—डाक्टर दासके चले जानेसे यह जगह खाली हो गयी है और मैं इसका उमेदवार हूं।

ज्ञानशंकरने आश्चर्य्यसे कहा, आप!

डाक्टर—जी हां, अब मैंने यही फैसला किया है। मेरी तबीयत रोज बरोज वकालतसे बेजार होती जाती है।

ज्ञानशङ्कर—आखिर क्यों? आपकी वकालत तो ३-४ हजारसे कमकी नहीं। हुक्कामकी खुशामद तो नहीं खलती? या कान्सेंन्स (आत्मा) का खयाल है?

डाक्टर—जी नहीं, सिर्फ इसलिये कि इस पेशेमें इन्सानकी तबीयत बेजा जरपरस्तीकी तरफ मायल हो जाती है। कोई वकील कितना ही हकशिनास क्यों न हो, उसे हमदर्दी और इन्सानियतसे वह खुशी नहीं होती जो एक शरीफ आदमीको होनी चाहिये। इसके खिलाफ आपसकी लड़ाइयों और दग़ाबाज़ियोंसे एक खास दिलचस्पी हो जाती है। वह एक दूसरी ही दुनियामें पहुंच जाता है जो लतीफ जजबातसे खाली है। मैं महीनोंसे इसी कशमकशमें पड़ा हुआ हूं और अब यही इरादा है कि जितनी जल्द मुमकिन हो इस पेशेको सलाम करूं।

यही बातें हो रही थीं कि फैजू और कर्तारसिंहने सामने आकर सलाम किया। ज्ञानशङ्करने पूछा, कहो, सब खैरियत है?

फैजू—हजूर खैरियत क्या कहें! रातको किसीने खां साहबको मार डाला।

ईजाद हुसेन और ईर्फान अली चौंक पड़े, लेकिन ज्ञानशङ्कर लेशमात्र भी विचलित न हुए, मानों उन्हें यह बात पहलेहीसे मालूम थी। बोले, तुम लोग कहां थे? कहीं सैर-सपाटा करने चल दिये थे या अफीमकी पिनकमें पड़े हुए थे?

फैजू—हजूर, थे तो चौपालहीमें, पर किसीको क्या खबर थी कि यह वारदात होगी।

ज्ञान—क्यों, खबर क्यों न थी? जो आदमी सांपको पैरोंसे

कुचल रहा हो उसे यह मालूम होना चाहिये कि सांपके दांत जहरीले होते हैं। जमींदारी करना साँपको नचाना है। वह संपेरा अनाड़ी है जो सांपको काटनेका मौका दे। खैर, कातिलका कुछ पता चला ?

फैजू जी हां, यही मनोहर अहीर है। उसने सवेरे ही थानेमें जाकर एकबाल कर दिया। दोपहरको थानेदार साहब आ गये और तहकीकात कर रहे हैं। खां साहबका तार हजूरको मिल गया था ? जिस दिन खांसाहबने चरावरको रोकनेका हुक्म दिया, उसी दिन गांववालोंमें एका हो गया। खांसाहबने घबराकर हजूरको तार दिया। मैं ३ बजे तारघरसे लौटा तो गांवमें मुकदमा लड़नेके लिये चन्देका गुट्ट हो रहा था। रातको यह वारदात हो गयी।

अकस्मात् प्रेमशंकर लाला प्रभाशंकरके साथ आ गये। ज्ञानशंकरको देखते ही प्रेमशंकर टूटकर उनसे गले-गले मिले और पूछा, कब आये ? सब कुशल है न ?

ज्ञानशंकरने रुखाईसे उत्तर दिया, कुशलका हाल इन आदमियोंसे पूछिये, जो अभी लखनपूरसे आये हैं। गांववालोंने गौसखांका काम तमाम कर दिया।

प्रेमशंकर स्तम्भित हो गये, मुंहसे निकला, अरे ! यह कब ?

ज्ञान—आजही रातको।

प्रेम—क्या बात ?

ज्ञान—गांववालोंकी बदमाशी और सरकशीके सिवा और क्या बात हो सकती है ? मैंने चरावरको रोकनेका हुक्म दिया था। वहां एक बाग लगानेका विचार था। बस, इतना बहाना पाकर सब खून खच्चरपर उद्यत हो गये।

प्रेम—कातिलका कुछ पता चला ?

ज्ञान—अभी तो मनोहरने थानेमें जाकर एकबाल किया है।

प्रेम—मनोहर तो बड़ा सीधा, गम्भीर पुरुष मालूम होता था।

ज्ञान—(व्यङ्गसे) जी हां, देखता था।

ठाकुर साहबने मार्मिक भावसे देखकर कहा, यह किसी एक आदमीका फेल हर्गिज नहीं है।

ज्ञान—यही मेरा भी खयाल है। मनोहरकी इतनी मजाल नहीं है कि वह अकेला यह काम कर सके। निस्सन्देह सारा गांव मिला हुआ है। मनोहरको सबोंने तबेलेका बन्दर बना रक्खा है। देखिये थानेदारको तहकीकातका क्या नतीजा होता है। कुछ भी हो, अब मैं इस मौजेको वीरान करके ही छोड़ूंगा। क्यों फैजू, तुम्हारा क्या खयाल है? मनोहर अकेले यह काम कर सकता है?

फैजू—नहीं हजूर, साठ बरसका बुड्ढा भला क्या खाकर हिम्मत करता। और कोई चाहे उसका मददगार न हो, लेकिन उसका लड़का तो जरूरही साथ रहा होगा।

कर्तार—वह बुड्ढा है तो क्या, बड़े जीवटका आदमी है। उसके सिवाय गांवमें किसीका इतना कलेजा नहीं है।

ज्ञान—तुम गंवार आदमी हो, इन बातोंको क्या समझो। तुम्हें तो भंगका गोला चाहिये। ठाकुर साहब, इस मुआमलेमें मुद्दई तो सरकार होगी, लेकिन आप भी मेरी तरफसे पैरवी कीजियेगा। मैंने फैसला कर लिया है कि गांवके किसी बालिग आदमीको बेदाग न छोड़ूंगा।

प्रेमशंकरने दबी जबानसे कहा, अगर तुम्हें विश्वास हो कि यह एक आदमीका काम है तो सारे गांवको समेटना उचित नहीं। ऐसा न हो कि गेहूंके साथ घुन भी पिस जाय।

ज्ञानशङ्कर क्रुद्ध होकर बोले, बहुत अच्छा हो, अगर आप इस विषयमें अपने सत्य और न्यायके नियमोंका स्वांग न रचें। यह उन्हींकी बर्कत है कि आज इन दुष्टोंको इतना साहस हुआ है। आप मुझे साफ-साफ कहनेपर मजबूर कर रहे हैं। ये सब आपहीके बलपर कूद रहे हैं। आपने प्रत्येक अवसरपर मेरे

विपक्षमें उनकी सहायता की है, उनसे भाईचारा किया है और उनके सिरपर हाथ रखनेके लिये हमेशा तैयार रहते हैं। आपके इसी भ्रातृभावने उनके सिर फिरा दिये। मेरा भय उनके दिलसे जाता रहा। आपके सिद्धांतों और विचारोंका मैं आदर करता हूं, लेकिन आप कड़वी नीमको दूधसे सींच रहे हैं और आशा करते हैं कि मीठे फल लगेंगे। ऐसे कुपात्रोंके साथ इन ऊंचे नियमोंका व्यवहार करना दीवानेके हाथमें मशाल दे देना है।

प्रेमशङ्करने फिर जबान न खोली और न सिर उठाया। लाला प्रभाशङ्करको यह बातें ऐसी बुरी लगीं कि वह तुरन्त उठकर चले गये। लेकिन प्रेमशङ्कर आत्मपरीक्षामें मग्न, मूर्तिवत् बैठे रहे। दीन देहातियोंके साथ साधारण सज्जनताका बर्ताव करनेका परिणाम ऐसा भयङ्कर होगा यह एक बिलकुल नया अनुभव था। केवल एक आदमीकी जान ही नहीं गयी, वरन् और भी कितने ही प्राणोंके बलिदान होनेकी आशङ्का थी। भगवन्, उन गरीबोंपर दया करो। मैंने सच्चे हृदयसे उनकी सेवा नहीं की। द्वेषका भाव मुझे प्रेरित करता रहा। मैं ज्ञानशङ्करको नीचा दिखाना चाहता था। यह समस्या उसी द्वेषभावका दंड है। क्या एक लखनपूर ही अपने जमींदारके अत्याचारोंसे पीड़ित था? ऐसा कौनसा इलाका है जो जमींदारके हाथों रक्तके आंसू न बहा रहा हो। तो लखनपूरवालोंके ही प्रति मेरी सहानुभूति क्यों इतनी प्रचण्ड हो गयी और फिर ऐसे अत्याचार क्या इससे पहले न होते थे? यह तो आये दिन ही होता रहता था, लेकिन कभी असामियोंको चूं करनेकी हिम्मत न पड़ती थी। इस बार वह क्यों मार-काटपर उद्यत हो गये? इन शंकाओंका उन्हें एकही उत्तर मिलता था और यह उस उत्तरदायित्वके भारको और गुरुतर बना देता था। हाय! मैंने प्राणोंको अपनी ईर्षाग्निके कुण्डमें झोंक दिया! अब मेरा कर्तव्य क्या है? क्या यह आग लगाकर दूरसे खड़ा तमाशा देखूं? यह सर्वथा निन्द्य है। अब तो इन अभागोंकी यथायोग्य

सहायता करनी ही पड़ेगी, चाहे ज्ञानशङ्करको कितना ही बुरा लगे। इसके सिवा मेरे लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

प्रेमशङ्कर इन्हीं विचारोंमें डूबे हुए थे कि मायाशङ्करने आकर कहा, चचाजी, अम्मां कहती हैं अब तो बहुत देर हो गयी, हाजीपूर कैसे जाइयेगा, यहीं भोजन कर लीजिये और आप यहीं रह जाइये।

प्रेमशङ्कर शोकमय विचारोंकी तरङ्गमें भूल गये थे कि अभी मुझे हाजीगंज लौटना है। मायाको प्यार करके बोले, नहीं बेटा, मैं चला जाऊंगा, अभी ज्यादा रात नहीं गयी है। यहां रह जाऊं तो वहां बड़ा हर्ज होगा।

यह कहकर वह उठ खड़े हुए, ज्ञानशंकरकी ओर करुण नेत्रोंसे देखा और बिना कुछ कहे ही चले गये। ज्ञानशंकरने उनकी तरफ ताका भी नहीं।

उनके जानेके बाद डाक्टर महोदय बोले, मैं तो इनकी बड़ी तारीफ सुना करता था, पर पहली ही मुलाकातमें तबीयत आसूदा हो गयी। कुछ ख़ब्ती से मालूम होते हैं।

ज्ञान—बड़े भाई हैं, उनकी शानमें मैं क्या कहूं! कुछ दिनों अमेरिका क्या रह आये हैं गोया हक़ और इन्साफ़का ठेका ले लिया है, हालांकि अभीतक अमेरिकामें भी यह ख़यालात अमलके मैदानसे कोसों दूर है। दुनियामें इन ख़यालोंके चर्चे हमेशा रहे हैं और हमेशा रहेंगे, देखना सिर्फ यह है कि वह कहांतक अमलमें लाये जा सकते हैं। मैं ख़ुद इन उसूलोंका क़ायल हूं, पर मेरे ख़यालमें अभी बहुत दिनोंतक इस जमीनमें यह बीज सरसब्ज नहीं हो सकता।

इसके बाद कुछ देरतक इस दुर्घटनाके सम्बन्धमें बातचीत होती रही। जब डाक्टर साहब और ईजाद हुसेन चले गये तो ज्ञानशङ्कर घरमें आकर बोले, देखा, भाई साहबने लखनपूरमें क्या गुल खिलाया। अभी खबर आयी है कि गौसखांको लोगोंने मार डाला।

दोनों स्त्रियां हक्कीबक्की होकर एक दूसरीका मुंह ताकने लगीं। ज्ञानशङ्करने फिर कहा, यह बरसोंसे वहां जा-जाकर असामियोंसे न जाने क्या कहते थे, न जाने क्या सिखाते थे, जिसका यह नतीजा निकला है। मैंने जब इनके वहां आने जानेकी खबर पाई तो उसी वक्त मेरे कान खड़े हुए और मैंने इनसे विनय की थी कि आप गंवारोंको बहुत सिर न चढ़ायें। उन्होंने मुझे वचन भी दिया कि उनसे कोई सम्बन्ध न रक्खूंगा। लेकिन अपने आगे किसीको समझते हो नहीं। मुझे भय है कि कहीं इस मामलेमें वह भो न फंस जायं। पुलिसवाले एक ही कट्टर होते हैं। वह किसी न किसी मोटे असामीको जरूर फांसेंगे। गांववालोंपर जहां जरा सख्ती की कि सबके सब खुल पड़ेंगे और सारा अपराध भाई साहबके सिर डाल देंगे।

श्रद्धाने ज्ञानशंकरकी ओर कातर नेत्रोंसे देखा और सिर झुका लिया। अपने मनके भावोंको प्रकट न कर सकी। विद्याने कहा, तुम जरा थानेदारके पास क्यों नहीं चले जाते? जैसे बने उन्हें राजी कर लो।

ज्ञान—हां, कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा, लेकिन एक छोटे आदमीकी खुशामद करना, उसके नखरे उठाना कितने अपमानकी बात है! भाई साहबको ऐसा न समझता था।

श्रद्धाने सिर झुकाए हुए सरोष स्वरसे कहा, पुलिसवाले उनपर जो अपराध लगावें, वह ऐसे आदमी नहीं हैं कि गांववालोंको बहकाते फिरें, बल्कि अगर गांववालोंकी नीयत उन्हें पहले मालूम हो जाती तो यह नौबत ही न आती। तुम्हें थानेदारकी खुशामद करनेकी कोई जरूरत नहीं। वह अपनी रक्षा आप कर सकते हैं।

विद्या—मैं तुम्हें बराबर समझाती आती थी कि देहातियोंसे राड़ न बढ़ाओ। बिल्ली भी भागनेकी राह नहीं पाती तो शेर हो जाती है। लेकिन तुमने कभी कान ही न दिये।

ज्ञान—कैसी बेसिर पैरकी बातें करती हो ? मैं इन टुकड़गदे किसानोंसे दबता फिरूं ? जमींदार न हुआ कोई चरकटा हुआ ! उनकी मजाल थी कि मेरे मुकाबलेमें खड़े होते ? हां, जब अपने ही घरमें आग लगानेवाले मौजूद हों तो जो कुछ न हो जाय वह थोड़ा है। मैं एक नहीं सौ बार कहूंगा कि अगर भाई साहबने इन्हें सिर न चढ़ाया होता तो आज इनके हौसले इतने न बढ़ते।

विद्या—(दबी जबानसे) सारा शहर जिसकी पूजा करता है उसे तुम घरमें आग लगानेवाला कहते हो ?

ज्ञान—यही लोकसम्मान तो इन सारे उपद्रवोंका कारण है।

श्रद्धा और ज्यादा न सुन सकी। उठकर अपने कमरेमें चली गयी। तब ज्ञानशंकरने विद्यासे कहा, मुझे तो इनके फंसनेमें जरा भी सन्देह नहीं है।

विद्या—तुम अपनी ओरसे उनके बचानेमें कोई बात उठा न रखना, यह तुम्हारा धर्म है। आगे विधाताने जो लिखा है वह तो होगा ही।

ज्ञान—भाभीकी तबीयतका कुछ और ही रंग दिखायी देता है।

विद्या—तुम उनका स्वभाव जानते नहीं। वह चाहे दादाजीके सायेसे भी भागें, पर उनके नामपर जान देती हैं, हृदयमें उनकी पूजा करती हैं।

ज्ञान—इधर भी चलती हैं उधर भी।

विद्या—इधर लोक-लाजसे चलती हैं, हृदय उधर ही है।

ज्ञान—तो फिर मुझे कोई और ही उपाय सोचना पड़ेगा।

विद्या—ईश्वरके लिये ऐसी बातें मुझसे न किया करो।

२९

श्रद्धाकी बातोंसे पहले तो ज्ञानशंकरको कुछ शङ्का हुई, लेकिन विचार करनेपर यह शङ्का निवृत्त हो गयी; क्योंकि इस मामलेमें प्रेमशङ्करका अभियुक्त हो जाना अवश्यम्भावी था। ऐसी

अवस्थामें श्रद्धाके निर्बल क्रोधसे ज्ञानशङ्करकी कोई हानि न हो सकती थी।

ज्ञानशङ्करने निश्चय किया कि इस विषयमें मुझे हाथ पैर हिलानेकी कोई जरूरत नहीं है। सारी व्यवस्था मेरे इच्छानुकूल है। थानेदार स्वार्थवश इस मामलेको बढ़ायेगा, सारे गांवको फंसानेकी चेष्टा करेगा और उसका सफल हो जाना असंदिग्ध है। गांवमें कितनाहो एका हो, पर कोई न कोई मुखबिर निकल ही आयेगा। थानेदारने लखनपूरके जमींदारी दफ्तरकी जांच पड़-ताल अवश्य ही की होगी। वहां मेरे ऐसे दो चार पत्र अवश्यही निकल आयेंगे जिनसे गांववालोंके साथ भाई साहबकी सहानु-भूति और सदिच्छा सिद्ध हो सके। मैंने अपने कई पत्रोंमें गौस-खांको लिखा है कि भाई साहबका यह व्यवहार मुझे पसन्द नहीं। हां, एक बात हो सकती है। सम्भव है कि गांववाले रिशवत देकर अपना गला छुड़ा लें और थानेदार अकेले मनोहरका चालान करे। लेकिन ऐसे संगीन मामलेमें थानेदारको इतना साहस नहीं हो सकता। वह यथासाध्य इस घटनाको महत्वपूर्ण सिद्ध करेगा। भाई साहबसे अधिकारिवर्ग उनके निर्भय लोक-वादके कारण पहलेहीसे बदगुमान हो रहे हैं। सब-इन्सपेक्टर उन्हें इस षड्यन्त्रका प्रेरक साबित करके अपना रंग जरूर जमा-येगा। अभियोग सफल हो गया तो उसको तरक्की भी होगी, पारितोषिक भी मिलेगा। गांववाले कोई बड़ी रकम देनेकी सामर्थ्य नहीं रखते और थानेदार छोटी रकमके लिये अपनी तरक्कीकी आशाओंको मिट्टीमें न मिलायेगा। बन्धुविरोधका विचार मिथ्या है। संसारमें सब अपने ही लिये जीते और मरते हैं, भावु-कताके फेरमें पड़कर अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मारना हास्यजनक है।

ज्ञानशङ्करका अनुमान अक्षरशः सत्य निकला। लखनपूरके प्रायः सभी बालिग आदमियोंका चालान हुआ। विशेशर साहको टैक्सकी धमकीने भेदिया बना दिया। जमींदारी दफ्तरका भी

निरीक्षण हुआ। एक सप्ताह पीछे हाजीपुरमें प्रेमशङ्करकी खाना-तलाशी हुई और वह हिरासतमें ले लिये गये।

सन्ध्याका समय था। ज्ञानशङ्कर मून्नूको साथ लिये हवा खाने जा रहे थे कि डाक्टर इर्फ़ान अलीने आकर यह समाचार कहा। ज्ञानशङ्करके रोयें खड़े हो गये, और आंखोंमें आंसू भर आये। एक क्षणके लिये बन्धुप्रेमने क्षुद्र भावोंको दबा दिया, लेकिन ज्योंही जमानतका प्रश्न सामने आया, यह आवेग शांत हो गया। घरमें खबर हुई तो कुहराम मच गया। श्रद्धा मूर्च्छित हो गयी, बड़ी बहू तसल्ली देने आयीं। मुन्नू भी भीतर चला गया और मांकी गोदमें सिर रख फूट फूटकर रोने लगा।

प्रेमशङ्कर शहरसे कुछ ऐसे अलग रहते थे कि उनका शहरके बड़े लोगोंसे बहुत कम परिचय था। वह रईसोंसे बहुत कम मिलते जुलते थे। कुछ विद्वज्जनोंने पत्रोंमें उनके कृषि-सम्बन्धी लेख अवश्य देखे थे और उनकी योग्यताके कायल थे, किन्तु उन्हें झक्की समझते थे। उनके सच्चे शुभचिन्तकोंमें अधिकांश कालेजोंके युवक, दफ्तरोंके कर्मचारी या देहातोंके लोग थे। उनके हिरासत-में आनेकी खबर पाते ही हजारों आदमी एकत्र हो गये और प्रेम-शङ्करके पीछे पीछे पुलिस-स्टेशनतक गये, लेकिन उनमें कोई भी ऐसा न था जो जमानत देनेका प्रयत्न कर सकता।

लाला प्रभाशंकरने सुना तो उन्मत्तकी भांति दौड़े हुए ज्ञान-शंकरके पास जाकर बोले, बेटा, तुमने तो सुना ही होगा, कुल-मर्याद मिट्टीमें मिल गया। (रोकर) भैयाकी आत्माको इस समय कितना दुःख हो रहा होगा। जिस मान प्रतिष्ठाके लिये हमने जायदादें बर्बाद कर दीं वह आज नष्ट हो गयी। हाय! भैया जीवनपर्यन्त कभी अदालतके द्वारपर नहीं गये। घरमें चोरियां हुईं, लेकिन कभी थानेमें इत्तला तक न की कि तहकीकात होगी और पुलिस दरवाजेपर आयेगी। आज उन्हींका प्रिय पुत्र······ क्यों बेटा, जमानत न होगी?

ज्ञानशंकर इस कातर अधीरतापर रुष्ट होकर बोले, मालूम नहीं, हाकिमोंकी मर्जीपर है।

प्रभा—तो जाकर हाकिमोंसे मिलते क्यों नहीं? कुछ तुम्हें भी अपनी इज्जतकी फिक्र है या नहीं?

ज्ञान—कहना बहुत आसान है, करना कठिन है।

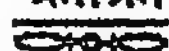
प्रभा-भैया, कैसी बातें करते हो? यहांके हाकिमोंमें तुम्हारा कितना मान है? बड़े साहबतक तुम्हारी कितनी खातिर करते हैं! यह लोग किस दिन काम आयेंगे? क्या इसके लिये कोई दूसरा अवसर आयेगा?

ज्ञान—अगर आपका यह आशय है कि मैं जाकर हाकिमोंकी खुशामद करूं, उनसे रियायतकी याचना करूं तो यह मुझसे नहीं हो सकता। मैं उनके खोदे हुए गढ़ेमें नहीं गिरना चाहता। मैं किस दावेपर उनकी जमानत कर सकता हूं, जब मैं जानता हूं कि वह अपनी टेक नहीं छोड़ेंगे, और मुझे भी अपने साथ ले डूबेंगे?

प्रभाशंकरने लम्बी सांस लेकर कहा, हा भगवन! यह भाइयोंका हाल है! मुझे न मालूम था कि तुम्हारा हृदय इतना कठोर है! तुम्हारा सगा भाई आफतमें पड़ा हुआ है और तुम्हारा कलेजा जरा भी नहीं पसीजता। खैर, कोई चिन्ता नहीं, अगर मेरे सामर्थ्यसे बाहर नहीं है तो मेरे भाईका प्यारा पुत्र मेरे सामने यों अपमानित न होने पायेगा।

ज्ञानशङ्करको अपने चचाकी दयार्द्रतापर क्रोध आ रहा था। वह समझते थे कि केवल मेरी अवहेला करनेके लिये यह इतने प्रगल्भ हो रहे हैं। इनकी इच्छा है कि मुझे भी अधिकारियोंकी दृष्टिमें गिरा दें। लेकिन प्रभाशङ्कर बनावटी भावोंके मनुष्य न थे। वह कुल-प्रतिष्ठापर अपने प्राणतक समर्पण कर सकते थे। उनमें वह गौरवप्रेम था जो स्वयं उपवास करके आतिथ्य-सत्कार-को अपना सौभाग्य समझता था, और जो अब, हा शोक! इस

देशसे लुप्त हो गया है। धन उनके विचारमें केवल मान-मर्यादाकी रक्षाके लिये था, भोग-विलास और इन्द्रिय सेवाके लिये नहीं। उन्होंने तुरन्त जाकर कपड़े पहने, चुगा पहना, अमामा बांधा और एक पुराने रईसके भेषमें मैजिस्ट्रेटके पास जा पहुंचे। रातके ८ बज चुके थे, इसकी जरा भी परवाह न की। साहबके सामने उन्होंने जितनी दीनता प्रकट की, जितने विनीत शब्दोंमें अपनी संकट-कथा सुनायी, जितनी नीच खुशामद की, जिस भक्तिसे हाथ बांधकर खड़े हो गये, अमामा उतारकर साहबके पैरोंपर रख दिया और रोने लगे, अपने कुल-मर्य्यादाकी जो गाथा गायी और उसकी राज-भक्तिके जो प्रमाण दिये, उसे एक नव-शिक्षित युवक अत्यन्त लज्जाजनक ही नहीं, बल्कि हास्यास्पद समझता। लेकिन साहब पसीज गये, जमानत ले लेनेका वादा किया, पर रात हो जानेके कारण उस वक्त कोई कार्रवाई न हो सकी। प्रभाशङ्कर वहांसे निराश लौटे। उनकी यह इच्छा कि प्रेमशङ्कर हिरासतमें रातको न रहे, न पूरी हो सकी। रातभर चिन्तामें पड़े हुए करवटें बदलते रहे। भैयाकी आत्माको कितना कष्ट हो रहा होगा। कई बार उन्हें ऐसा धोखा हुआ कि भैया द्वारपर खड़े रो रहे हैं। हाय! बेचारे प्रेमशंकरपर क्या बीत रही होगी! एक तङ्ग अंधेरे, दुर्गन्धित पिंजरेमें भूमिपर पड़ा होगा, आंखोंसे आंसू न थमते होंगे। इस वक्त उनसे कुछ न खाया गया होगा। वहांके सिपाही और चौकीदार उसे दिक कर रहे होंगे। मालूम नहीं, पुलिसवाले उसके साथ कैसा बर्ताव कर रहे हैं। न जाने उससे क्या कहलाना चाहते हों। इस विभागमें जाकर आदमी पशु हो जाता है। मेरा दयाशंकर पहले कैसा सुशील लड़का था, जबसे पुलिसमें गया है, मिज़ाज ही और हो गया। अपनी खीतककी बात नहीं पूछता। अगर मुझपर कोई मामला आ पड़े तो मुझसे बिना रिशवत लिये न रहे। प्रेमशंकर पुलिसवालोंकी बातोंमें न आता होगा और वह सब-के-सब उसे



और भी कष्ट दे रहे होंगे। भैया इसपर जान देते थे, कितना प्यार करते थे और आज इसकी यह दशा।

प्रातःकाल लाला प्रभाशंकर फिर मैजिस्ट्रेटके बंगलेपर गये, मालूम हुआ कि साहब शिकार खेलने चले गये हैं। वहांसे पुलिसके सुपरिन्टेन्डेन्टके पास गये। यह महाशय अभी निद्रामें मग्न थे। उनसे १० बजेके पहले भेंट होनेकी संभावना न थी। बेचारे यहांसे भी निराश हुए और तीसरे पहरतक बेदाना, बेपानी, हैरान परेशान, इधर-उधर दौड़ते रहे, कभी इस दफ्तरमें जाते, कभी उस दफ्तरमें। उन्हें आश्चर्य होता था कि दफ्तरोंके छोटे कर्मचारी क्यों इतने बेमुरौवत और निर्दय होते हैं, सीधी बात करनी तो दूर रही, खोटी खरी सुनानेमें भी संकोच नहीं करते। अन्तमें ४ बजे मैजिस्ट्रेटने जमानत मंजूर की, लेकिन न हज़ारकी न दो हजारकी, पूरे १० हजारकी, और वह भी नक्द। प्रभाशंकरका दिल बैठ गया। एक बड़ी सांस लेकर वहांसे उठे और धीरे-धीरे घर चले, मानों शरीर निर्जीव हो गया है। घर आकर वह चारपाईपर गिर पड़े और सोचने लगे १० हजारका प्रबन्ध कैसे करूं। इतने रुपये मुझे विश्वासपर कौन देगा? तो क्या जायदाद रेहन रख दूं? हां, इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। मगर घरवाले किसी तरह राज़ी न होंगे, घरमें लड़ाई ठन जायगी। वह बहुत देरतक इसी हैस बैसमें पड़े रहे, भोजनका समय आ पहुंचा। बड़ी बहू बुलाने आयीं। प्रभाशङ्करने उनकी ओर विनीत भावसे देखकर कहा, मुझे बिलकुल भूख नहीं है।

बड़ी बहू—कैसी भूख है जो लगती ही नहीं? कल रात नहीं खाया, दिनको नहीं खाया, क्या इस चिन्तामें प्राण दे दोगे? जिन्हें चिन्ता होनी चाहिये, जो उनका हिस्सा उड़ाते हैं उनके माथेपर तो बलतक नहीं है और तुम दाना पानी छोड़े बैठे हो। अपने साथ घरके प्राणियोंको भी भूखों मार रहे हो। प्रभाशङ्करने सजल नेत्र होकर कहा, क्या करूं मेरी तो भूख प्यास बन्द सी

हो गयी है ! कैसा सुशील, कितना कोमलप्रकृति, कितना शान्त-चित्त लड़का था। उसकी सूरत मेरी आंखोंके सामने फिर रही है, भोजन कैसे करूं ? विदेशमें था तो भूल गये थे, उसे खो बैठे थे, पर खोये हुए रत्नको पानेके बाद उसे चोरोंके हाथमें देखकर सब्र नहीं होता।

बड़ी बहू—लड़का तो ऐसा है कि भगवान सबको दें। बिलकुल वही लड़कपनका स्वभाव है. वही भोलापन, वही मीठी बातें, वही प्रेम, देखकर छाती फूल उठती है। घमण्ड तो छू नहीं गया। पर दाना पानी छोड़नेसे तो काम न चलेगा, चलो, कुछ थोड़ा सा खा लो।

प्रभाशङ्कर—१० हजार नकद जमानत मांगी गयी है।

बड़ी बहू—ज्ञानूसे कहते क्यों नहीं, कि मीठा-मीठा गप्प, कड़वा-कड़वा थू ? प्रेमूका आधा नफा क्या श्रद्धाके भोजन वस्त्रोंमें ही खर्च हो जाता है ?

प्रभाशंकर—उससे क्या कहूं, सुने भी ? वह पच्छिमी सभ्यताका मारा हुआ है, जो लड़केको बालिग होते ही माता-पितासे अलग कर देती है। उसने वह शिक्षा पायी है जिसका मूल तत्व स्वार्थ है। उसमें अब दया, धर्म, विनय, सौजन्य कुछ भी न रहा। वह अब केवल अपनी इच्छाओंका, इन्द्रियोंका दास है।

बड़ी बहू—तो तुम इतने रुपयोंका क्या बन्दोबस्त करोगे ?

प्रभाशंकर—क्या कहूं, किसीसे ऋण लेना पड़ेगा।

बड़ी बहू—ऐसा जान पड़ता है कि थोड़ासा हिस्सा जो बचा हुआ है उसे भी अपने सामने ही ठिकाने लगा दोगे। यह तो कभी नहीं देखा कि जो रुपये एक बार लिये गये वह फिर दिये गये हों। बस जमीनहीके माथे जाती है।

प्रभाशंकर—जमीन मेरी गुलाम है, मैं जमीनका गुलाम नहीं हूं।

बड़ी बहू—मैं कर्ज न लेने दूंगी, जाने कैसा पड़े कैसा न पड़े,

तो यह सब बोझ हमारे सिर पड़ेगा। लड़कोंको कहीं बैठनेका ठांव भी न रहेगा।

प्रभाशंकरने पत्नीकी ओर कठोर दृष्टिसे देखकर कहा, मैं तुमसे सलाह नहीं लेता हूं और न तुमको इसका अधिकारी समझता हूं, तुम उपकारको भूल जाओ मैं नहीं भूल सकता। मेरा खून सुफेद नहीं है। लड़कोंकी तकदीरमें आराम लिखा होगा, आराम करेंगे, तकलीफ लिखी होगी, तकलीफ भोगेंगे। मैं उनकी तकदीर नहीं हूं। आज दयाशंकरपर कोई बात आ पड़े तो गहने बेच डालनेमें भी किसीको इनकार न होगा। मैं प्रेमूको दयाशंकरसे जौ भर भी कम नहीं समझता।

बड़ी बहूने फिर भोजन करनेके लिये अनुरोध किया और प्रभाशंकर फिर नहीं नहीं करने लगे। अन्तमें उसने कहा, आज कद्दूके कबाब बने हैं। मैं जानती कि तुम न खाओगे तो क्यों बनवाती?

प्रभाशंकरकी उदासीनता लुप्त हो गयी। उत्सुक होकर बोले, किसने बनाये हैं?

बड़ी बहू—बहूने।

प्रभा—अच्छा, तो थाली परसाओ, भूख तो नहीं है, पर दो चार कौर खा ही लूंगा।

भोजनके पश्चात् प्रभाशंकर फिर उसी चिन्तामें मग्न हुए। रुपये कहांसे आयें? बेचारे प्रेमशंकरको आज फिर हिरासतमें रात काटनी पड़ी। बड़ी बहूने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि मैं कर्ज न लेने दूंगी और यहां कर्जके सिवा और कोई तदबीर ही न थी। आज लालाजी फिर सारी रात जागते रहे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि घरवाले चाहे जितना विरोध करें, पर मैं कर्तव्य अवश्य पूरा करूंगा। भोर होते ही वह सेठ दीनानाथके पास जा पहुंचे और अपनी विपत्तिकथा कह सुनायी। सेठजीसे उनका पुराना व्यवहार था। उन्हींकी बदौलत सेठजी जमींदार

हो गये थे। मामला करनेपर राजी हो गये। लिखा-पढ़ी हुई और १० बजते-बजते प्रभाशङ्करके हाथोंमें १० हजारकी थैली आ गयी। वह ऐसे प्रसन्न थे मानों कहीं पड़ा हुआ धन मिल गया हो। गद्गद् होकर बोले, सेठजी, किन शब्दोंमें आपको धन्यवाद दूं, आपने मेरे कुलकी मर्य्यादा रख ली। भैयाकी आत्मा स्वर्गमें आपका यश गायेगी।

यहांसे वह सीधे कचहरी गये और जमानतके रुपये दाखिल कर दिये। इस समय उनका हृदय ऐसा प्रफुल्लित था जैसे कोई बालक मेला देखने जा रहा हो। इस कल्पनासे उनका कलेजा उछला पड़ता था कि भैया मेरी भक्तिपर कितने मुग्ध हो रहे होंगे।

११ बजेका समय था। मैजिस्ट्रेटके इजलासपर लखनपूरके अभियुक्त हाथोंमें हथकड़ियां पहने खड़े थे। शहरके सहस्रों मनुष्य इन विचित्र जीवधारियोंको देखनेके लिये एकत्र हो गये थे। सभी मनोहरको एक निगाह देखनेके लिये उत्सुक हो रहे थे। कोई उसे धिक्कारता था, कोई कहता था अच्छा किया अत्याचा-रियोंके साथ ऐसा ही करना चाहिये। सामने एक वृक्षके नीचे बिलासी मन मारे बैठी हुई थी। बलराजके चेहरेपर निर्भयता झलक रही थी, डपटसिंह और दुखरन भगत चिन्तित दीख पड़ते थे। कादिरखां धैर्य्यकी मूर्ति बने हुए थे, लेकिन मनोहर लज्जा और पश्चात्तापसे उद्विग्न हो रहा था। वह अपने साथियोंसे आंखें न मिला सकता था। मेरी ही बदौलत गांवपर यह आफत आयी है, यह खयाल उसके चित्तसे एक क्षणके लिये भी न उतरता था। अभियुक्तोंसे जरा हटकर बिशेशर साह खड़े थे, ग्लानिकी सजीव मूर्ति। पुलिसके कर्मचारी उन्हें इस प्रकार घेरे खड़े थे जैसे किसी मदारीको बालकवृन्द घेरे रहते हैं। सबसे पीछे प्रेमशङ्कर थे, शान्त, गंभीर और अदम्य। मैजिस्ट्रेटने सूचना दी—प्रेमशङ्कर जमानतपर रिहा किये गये।

प्रेमशङ्करने सामने आकर कहा, मैं इस दया-दृष्टिके लिये आपका अनुगृहीत हूं, लेकिन जब मेरे ये निरपराध भाई बेड़ियां पहने खड़े हैं तो मैं उनका साथ छोड़ना उचित नहीं समझता।

अदालतमें हजारों ही आदमी खड़े थे। सब लोग प्रेमशङ्करको विस्मित होकर देखने लगे। प्रभाशंकर करुणासे गद्‌गद् होकर बोले, बेटा, मुझपर दया करो, कुछ मेरी दौड़धूप, कुछ अपने कुल-मर्य्याद और कुछ अपने सम्बन्धियोंके शोक-विलापका ध्यान करो। तुम्हारे इस निश्चयसे मेरा हृदय फटा जाता है।

प्रेमशङ्करने आंखोंमें आंसू भरे हुए कहा, चचाजी, मैं आपके पितृवत् प्रेम और सदिच्छाका हृदयसे अनुगृहीत हूं। मुझे आज ज्ञात हुआ कि मानव-हृदय कितना पवित्र, कितना उदार, कितना वात्सल्यमय हो सकता है। पर मेरा साथ छूटनेसे इन बेचारोंकी हिम्मतें टूट जायंगी, यह सब हताश हो जायगे। इसलिये मेरा इनके साथ रहना परमावश्यक है, मुझे यहां कोई कष्ट नहीं है। मैं परमात्माको धन्यवाद देता हूं कि उनने मुझे इन दीनोंको तसकीन और तसल्ली देनेका अवसर प्रदान किया। मेरी आपसे एक और विनती है। मेरे लिये वकीलकी जरूरत नहीं है। मैं अपनी निर्दोषिता स्वयं सिद्ध कर सकता हूं। हां, यदि हो सके तो आप इन बेजबानोंके लिये कोई वकील ठीक कर लीजियेगा, नहीं तो सम्भव है कि इनके ऊपर अन्याय हो जाय।

लाला प्रभाशंकर हतोत्साह होकर इजलासके कमरेसे बाहर निकल आये।

३०

इस मुकदमेने सारे शहरमें हलचल मचा दी। जहां देखिये, यही चर्चा थी। सभी लोग प्रेमशंकरके आत्मबलिदानकी सराहना कर रहे थे।

यद्यपि प्रेमशंकरने स्पष्ट कह दिया था कि मेरे लिये किसी वकीलकी जरूरत नहीं है, पर लाला प्रभाशंकरका जी न माना।

उन्हें भय था कि वकीलके बिना काम बिगड़ जायगा। नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता। कहीं मामला बिगड़ गया तो लोग यही कहेंगे कि लोभके मारे वकील नहीं किया, उसीका फल है। अपने मनमें भी यही पछतावा होगा। अतएव वह सारे शहरके नामी वकीलोंके पास गये। लेकिन कोई भी इस मुकदमेकी पैरवी करने-पर तैयार न हुआ। किसीने कहा, मुझे अवकाश नहीं है, किसी-ने कोई और ही बहाना करके टाल दिया। सबको विश्वास था कि अधिकारिवर्ग प्रेमशंकरसे कुपित हो रहे हैं, उनकी वकालत करना स्वार्थनीतिके विरुद्ध है। प्रभाशंकरका यह प्रयास सफल न हुआ तो उन्होंने अन्य अभियुक्तोंके लिये कोई प्रयत्न न किया। उनकी सहानुभूति अपने परिवार हीतक परिमित थी।

अभियोग तैयार हो गया और मैजिस्ट्रेटके इजलासमें पेशियां होने लगीं। थानेदारका बयान हुआ, फैजूका बयान हुआ, तह-सीलदार, चपरासियों और चौकीदारोंके इजहार लिये गये। आठवें दिन ज्ञानशंकर इजलासके सामने आकर खड़े हुए। प्रभाशंकरको ऐसा दुःख हुआ कि वह कमरेके बाहर चले गये और एक वृक्षके नीचे बैठकर रोने लगे। सगे भाइयोंमें यह वैम-नस्य! पुलिसका पक्ष सिद्ध करनेके लिये एक भाई दूसरे भाईके वरुद्ध साक्षी बने! दर्शकोंको भी कौतूहल हो रहा था कि देखें इनका क्या बयान होता है। सब टकटकी लगाये उनकी ओर ताक रहे थे। पुलिसको विश्वास था कि इनका बयान प्रेमशङ्कर-के लिये ब्रह्मफांस बन जायगा, लेकिन उसको और उससे अधिक दर्शकोंको कितना विस्मय हुआ जब ज्ञानशंकरने लखनपूरवालों-पर अपने दिलका सारा बुखार निकाला, प्रेमशङ्करका नामतक न लिया।

सरकारी वकीलने पूछा, आपको मालूम है कि प्रेमशङ्कर उस गांवमें अक्सर आया जाया करते थे?

ज्ञान—उनका उस गांवमें आधा हिस्सा है।

वकील—आप जानते हैं कि जब इन्सपेक्टर जेनरल पुलिस-का दौरा हुआ था तो प्रेमशङ्करने लखनपूरवालोंकी वेगार बन्द करनेकी कोशिश की थी और तहसीलदारसे लड़नेपर आमादा हो गये थे ?

ज्ञान—मुझे इसकी खबर नहीं।

वकील—आप यह तो जानते ही हैं कि जब आपने वेशी लगानका दावा किया था तो प्रेमशङ्करने गांववालोंको ५००) मुकदमेकी पैरवी करनेके लिये दिये थे ?

ज्ञान—इस विषयमें मुझे कुछ नहीं मालूम है।

ज्ञानशङ्करकी गवाही हो गयी। सरकारी वकीलका मुंह लटक गया। लेकिन दर्शकगण एक स्वरसे कहने लगे, "भाई फिर भी भाई ही है, चाहे एक दूसरेसे खूनका प्यासा ही क्यों न हो।"

इसके बाद मिस्टर ज्वालासिंह इजलासपर आये। उन्होंने कहा, मैं यहां कई सालतक हाकिम परगना रहा। लखनपूर मेरे ही इलाकेमें था। कई बार वहां दौरा करने गया। याद नहीं आता कि वहां गांववालोंसे रसद या वेगारके बारेमें उससे ज्यादा झंझट हुआ हो जितना दूसरे गांवोंमें होता है। मेरे इजलासमें एक बार बाबू ज्ञानशङ्करने इजाफा लगानका दावा किया था, लेकिन मैंने उसे खारिज कर दिया था।

सरकारी वकील—आपको मालूम है कि उस मामलेकी पैरवीके लिये प्रेमशङ्करने लखनपूरवालोंको ५००) दिये थे ?

ज्वालासिंह—मालूम है। लेकिन जहां तक मैं समझता था, उनके यह रुपये किसी दूसरे आदमीने गांववालोंकी मददके लिये दिये थे।

वकील—आपको यह तो मालूम ही होगा कि प्रेमशङ्करकी उस गांवमें बहुत आमदरफ्त रहती थी ?

ज्वाला—हां, वह ताऊन या दूसरी बीमारियोंके अवसरपर अक्सर वहां जाते थे।

यह गवाही भी पूरी हो गयी। सरकारी वकीलके सभी प्रश्न व्यर्थ सिद्ध हुए।

तब बिसेशर साह इजलासपर आये। उनका बयान बहुत विस्तृत, क्रमबद्ध और सारगर्भित था, मानों किसी उपन्यासकारने इस परिस्थितिकी कल्पनामय रचना की हो। सबको आश्चर्य हो रहा था कि इस अपढ़ गंवारमें इतना वाक्य-चातुर्य्य कहांसे आ गया। उसके घटनाप्रकाशमें इतनी वास्तविकताका रंग था कि उसपर विश्वास न करना कठिन था। गौसखांके साथ गांववालोंका शत्रुभाव, बेगारके अवसरोंपर उनसे हुज्जत और तकरार, चरावरको रोक देनेपर गांववालोंका उत्तेजित हो जाना और रातको सब आदमियोंका मिलकर गौसखांका वध करनेकी तदबीरें सोचना, इन सभी बातोंकी अत्यन्त विशद विवेचना की गयी थी, मुख्यतः षड्यन्त्र-रचनाका वर्णन ऐसा मूर्तिमान और मार्मिक था कि उसपर चाणक्य भी मुग्ध हो जाता। रातको नौ बजे मनोहरने आकर कादिरखांसे कहा, बैठे क्या हो, चरावर रोक दी गयी है, इस भांति चुप लगानेसे काम न चलेगा, इसका कुछ उपाय करो। कादिरखां चौकीपर बैठे नमाज पढ़नेके लिये वजू कर रहे थे, बोले, बैठ जाओ, अकेले हम तुम क्या बना लेंगे। जब मुसल्लम गांवकी राय हो तभी कुछ हो सकता है, नहीं तो इसी तरह कारिन्दा हमको दबाता जायगा, एक दिन खेतसे भी बेदखल कर देगा, जाके दुखरन भगतको बुला लाओ। मनोहर दुखरनके घर गये। मैं भी मनोहरके साथ गया। दुखरनने कहा, मेरे पैरमें कांटा लग गया है, मैं चल नहीं सकता। खांसाहबको यहीं बुला लाओ। मैं आकर कादिरखांको बुला लाया। मनोहर डपटसिंह और कल्लूको बुला लाये। कादिरखांने कहा, हम लोग गंवार हैं, अपने मनसे कोई बात करेंगे तो न जाने चित्त पड़े या पट, चलकर बाबु प्रेमशङ्करसे सलाह लो। डपटसिंह बोले, उनके पास जानेकी क्या जरूरत है, मैं जाकर कल उन्हें बुला

लाऊंगा। दूसरे दिन सांझको बाबू प्रेमशङ्कर एक्केपर सवार होकर आये। मैं दूकान बढ़ा रहा था, मनोहरने आकर कहा, चलो बाबू साहब आये हैं, मैं मनोहरके साथ कादिरके घर गया। प्रेम-शङ्करने कहा, ज्ञानबाबू मेरे भाई हैं तो क्या, ऐसे भाईकी गर्दन काट लेनी चाहिये। कादिरने कहा, हमारी उनसे कोई दुश्मनी नहीं है, हमारा वैर तो गौसखांसे है, इस हत्यारेने इस गांवमें हम लोगोंका रहना मुशकिल कर दिया है, अब आप बताइये हम क्या करें। मनोहरने कहा, यह बेइज्जती नहीं सही जाती। प्रेमशंकर बोले, मर्द होकर इतना अपमान क्यों सहते हो? एक हाथमें तो काम तमाम होता है। कादिरखांने कहा, कर तो डालें, पर सारा गांव बंध जायगा।

प्रेमशंकर बोले, ऐसी नादानी क्यों करो? सब मिलकर नाम किसी एक आदमीका ले लो, अकेले आदमीका यह काम भी नहीं है, तीन-तीन प्यादे हैं, गौसखां खुद बलवान आदमी है।

कादिरखां बोले, जो कहीं सारा गांव फंस जाय तो? प्रेम-शंकरने कहा, ऐसा क्या अंधेर है, वकील लोग किस मरजकी दवा हैं? इसी बीचमें मैं खाना खाने घर चला आया। प्रेमशंकर भी रातहीको एक्केपर लौट गये। रातको १२-१ बजे मुझे कुछ खटका हुआ, घरके चारों ओर घूमने लगा कि इतनेमें कई आदमी जाते दिखायी दिये। मैं समझ गया कि हमारे ही साथी हैं। कादिरका नाम लेकर पुकारा। कादिरने कहा, सामनेसे हट जाओ, टोंक मत मारो, चुपकेसे जाकर पड़ रहो। कादिरखांसे अब न रहा गया। बिसेसर साहकी ओर कठोर नेत्रोंसे देखकर कहा, 'बिसेसर' ऊपर अल्लाह है, कुछ उसका भी डर है?

सरकारी वकीलने कहा, चुप रहो, नहीं तो गवाहपर बेजा दबाव डालनेका दूसरा दफा लग जायगा।

सन्ध्या समय यह लोग हिरासतमें बैठे हुए इधर उधरकी बातें कर रहे थे। मनोहर अलग एक कोठरीमें रक्खा गया था।

कादिरने प्रेमशङ्करसे कहा, मालिक आप तो हक नाहक इस आफतमें फंसे, हम लोग ऐसे अभागे हैं कि जो हमारी मदद करता है उसपर भी आंच आ जाती है। इतनी उमिर गुजर गयी, सैकड़ों पढ़े लिखे आदमियोंको देखा, पर आपको छोड़कर और कोई ऐसा न मिला जिसने हमारी गरदनपर छुरी न चलायी हो। विद्याकी सारी दुनिया बड़ाई करती है। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि विद्या पढ़कर आदमी और भी छली कपटी हो जाता है। वह गरीबोंका गला रेतना सिखा देती है। आपको अल्लाहने सच्ची विद्या दी थी। उसके पीछे लोग आपके भी दुश्मन हो गये।

दुखरन—यह सब मनोहरकी करनी है। गांवभरको डुबा दिया।

बलराज—न जाने उनके सिर कौन-सा भूत सवार हो गया? गुस्सा हमें भी आया था; लेकिन उनको तो जैसे नशा चढ़ जाय।

डपट—बराबरकी बिसातही क्या थी, उसके पीछे यह तूफान!

कादिर—यारो! ऐसी बातें न करो, बेचारेने तुम लोगोंके लिये, तुम्हारे हककी रक्षा करनेके लिये यह सब कुछ किया। उसके जीवट और हियावकी तारीफ तो नहीं करते और उसकी बुराई करते हो! हम सबके सब कायर हैं, वही एक मर्द है।

कल्लू—चिरौंशरकी मतिही उल्टी हो गयी।

दुखरन—बयान क्या देता है जैसे कोई तोता पढ़ रहा है।

डपट—क्या जाने किसके लिये इतना डरता है? कोई आगे पीछे भी तो नहीं है।

कल्लू—अगर यहांसे छूटा तो बच्चूके मुंहमें कालिख लगाके गांव भरमें घुमाऊंगा।

डपट—ऐसा कंजूस है कि किसी भिखमंगेको देखता है तो छछून्दरकी तरह घरमें जाकर दबक जाता है।

कल्लू—सहुआइन उसकी भी नानी है, बिसेसर तो चाहे एक कौड़ी फेंक भी दे, वह दूकानपर रहती है तो गालियां छोड़ और कुछ नहीं देती, पैसेका सौदा लेने जाओ, तो धेलेका देती है। ऐसी डांड़ी मारती है कि कोई परख ही नहीं सकती।

बलराज—क्यों कादिर दादा, काले पानी जाकर लोग खेती बारी करते हैं न?

कादिर—सुना है वहां ऊख बहुत होती है।

बलराज—तब तो चांदी है, खूब ऊख बोयेंगे।

कल्लू—लेकिन दादा, तुम चौदह बरस थोड़ेही जिओगे। तुम्हारी कबर कालेपानीहीमें बनेगी।

कादिर—हम तो लौट आना चाहते हैं, जिसमें अपनी हड्डा घरमें दफन हो। वहां तुम लोग न जाने मिट्टीकी क्या गत करो।

दुखरन—भाई मरने जीनेकी बात मत करो। मनाओ कि भगवान सबको जीता जागता फिर अपने बाल बच्चोंमें ले आये।

बलराज—कहते हैं वहां पानी बहुत लगता है।

दुखरन—यह सब तुम्हारे बापकी करनी है। मारा, गांव-भरका सत्यानास कर दिया।

अकस्मात् कमरेका द्वार खुला और जेलके दारोगाने आकर कहा, बाबू प्रेमशङ्कर, आपके ऊपरसे सरकारने मुकदमा उठा लिया, आप बरी हो गये, आपके घरवाले बाहर खड़े हैं।

प्रेमशङ्करको ग्रामीणोंके सरल वार्त्तालापमें बड़ा आनन्द आ रहा था। चौंक पड़े। ज्ञानशङ्कर और ज्वालासिंहके बयान उनके अनुकूल हुए थे, लेकिन यह आशय न थी कि वह इस आधारपर निर्दोष ठहराये जायेंगे। वह तुरत ताड़ गये कि यह चचासाहबकी करामात है, और वास्तवमें था भी यही। प्रभाशङ्करको जब वकीलोंसे कोई आशा न रही तो उन्होंने कौशलसे काम लिया और दो ढाई हजार रुपयोंका बलिदान करके यह वरदान पाया

था। रिशवत, खुशामद, मिथ्यालाप यह सभी उनकी दृष्टिमें हिरासतके अपमानसे बचनेके लिये क्षम्य थे!

प्रेमशङ्करने जेलरसे कहा, यदि नियमोंके विरुद्ध न हो तो कम-से-कम मुझे रातभर और यहां रहनेकी आज्ञा दीजिये। जेलरने विस्मित होकर कहा, यह आप क्या कहते हैं? आपका स्वागत करनेके लिये सैकड़ों आदमी बाहर खड़े हैं।

प्रेमशङ्करने विचार किया, इन गरीबोंको मेरे यहां रहनेसे कितना ढाढ़स था। कदाचित् उन्हें आशा थी कि इनके साथ हमलोग भी बरी हो जायंगे। मेरे चले जानेसे यह सब निराश हो जायगे। उन्हें तसल्ली देते हुए बोले, भाइयो, मुझे विवश होकर तुम्हारा साथ छोड़ना पड़ रहा है, पर मेरा हृदय आपहीके साथ रहेगा। सम्भव है बाहर जाकर मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूं। मैं प्रतिदिन आपसे मिलता रहूंगा।

साथियोंसे विदा होकर ज्योंही वह फाटकपर पहुंचे कि लाला प्रभाशङ्करने दौड़कर उन्हें छातीसे लगा लिया। जेलके चपरासियों-उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और इनाम मांगने लगे। प्रभाशङ्करने हरएकको २) २) दिये। बग्घी चलनेही वाली थी कि बाबू ज्वालासिंह अपने मोटरसाइकिलपर आ पहुंचे और प्रेमशङ्करके गले लिपट गये। प्रभाशङ्कर चाहते थे कि दोनों मित्रोंको अपने घर ले जायं और उनकी दावत करें, किन्तु प्रेमशङ्करने पहले हाजीपुर जाकर फिर लौटनेका निश्चय किया। ज्योंही बग्घी बागीचेमें पहुंची, हलवाहे और माली, सब दौड़ और प्रेमशङ्करके चारों ओर खड़े हो गये।

प्रेम—क्यों जी दमड़ी, जुताई हो रही है न?

दमड़ीने लज्जित होकर कहा, मालिक, औरोंकी तो नही कहता पर मेरा मन काम करनेमें जरा भी नहीं लगता था। यही चिन्ता लगी रहती थी कि आप न जाने कैसे होंगे? (निकट आकर) भोला कल एक टोकरी अमरूद तोड़कर बेच लाया है।

भोला—दमड़ी तुमने सरकारके कानमें कुछ कहा तो ठीक न होगा। मुझे जानते हो कि नहीं, यहां जेहलसे नहीं डरते? जो कुछ कहना हो मुंहपर बरमला कहो।

दमड़ी—तो तुम नाहक जामेसे बाहर हो गये। तुम्हें कोई कुछ थोड़ा ही कहता है?

भोला—तुमने कानाफूसी की क्यों? मेरी बात न कही होगी किसी औरकी कही होगी? तुम कौन होते हो, किसीकी चुगली खानेवाले?

मस्ता कोरीने समझाया—भोला, तुम खामखा झगड़ा करने लगते हो। तुमसे क्या मतलब? जिसके जीमें जो आता है, मालिकसे कहता है। तुम्हें क्यों बुरा लगता है?

भोला—चुगली खाने चले हैं, कुछ काम करें न धन्धा, सारे दिन नशा खाये पड़े रहते हैं, इनका मुंह है कि दूसरोंकी शिकायत करें!

इतनेमें भवानीसिंह भी आ पहुंचे जो मुखिया थे। यह विवाद सुना तो बोले—क्यों लड़े मरते हो यारो, क्या फिर दिन न मिलेगा! मालिकसे कुशल क्षेम पूछना तो दूर रहा, कुछ सेवा टहल तो हो न सकी, लगे आपसमें तकरार करने।

इस सामयिक चेतावनीने सभोंको शान्त कर दिया। कोई दौड़कर झोपड़ेमें झाड़ू लगाने लगा, किसीने पलंग डाल दिया, कोई मोढ़े निकाल लाया, कोई दौड़कर पानी लाया, कोई लालटेन जलाने लगा। भवानीसिंह अपने घरसे दूध लाये। जब तीनों सज्जन जलपान करके आरामसे बैठे तो ज्वालासिंहने कहा, इन आदमियोंसे आप क्योंकर काम लेते हैं? मुझे तो सभी निकम्मे जान पड़ते हैं।

प्रेमशंकर—जी नहीं, यह सब लड़ते हैं तो क्या, खूब मन लगाकर काम करते हैं। दिनभरके लिये जितना काम बता देता हूं, उतना दोपहरतक ही कर डालते हैं।

लाला प्रभाशंकर जीमें डर रहे थे कि कहीं प्रेमशंकर अपने बरी हो जानेके विषयमें कुछ पूछ न बैठें। वह इस रहस्यको गुप्त ही रखना चाहते थे। इसलिये वह ज्वालासिंहसे बातें करने लगे। जबसे इनकी बदली हो गयी थी, इन्हें शान्ति न नसीब हुई थी, ऊपरवाले नाराज, नीचेवाले नाराज, जमींदार नाराज, बात-बातपर जवाब तलब होते थे। एक बार मुअत्तल भी होना पड़ा था। कितना ही चाहा कि यहांसे कहीं और भेज दिया जाऊं, पर सफल न हुए। बेचारे नौकरीसे तंग आ गये थे और अब इस्तीफा देनेका विचार कर रहे थे। प्रभाशंकरने कहा, बेटा, भूलकर भी इस्तीफा देनेका इरादा न करना, यह कोई मामूली ओहदा नहीं है। इसी ओहदेके लिये बड़े-बड़े रईसों और अमीरोंके माथे घिस जाते हैं, और फिर भी कामना नहीं पूरी होती। यह सम्मान और अधिकार आपको और कहां प्राप्त हो सकता है?

ज्वाला—लेकिन इस सम्मान और अधिकारके लिये अपनी आत्माका कितना हनन करना पड़ता है? अगर निःस्पृह भावसे अपना काम कीजिये तो बड़े बड़े लोग पीछे पड़ जाते हैं, अपने सिद्धान्तोंका स्वाधीनतासे पालन कीजिये तो हाकिम लोग त्योरियां बदलते हैं। यहां उसीकी सफलता होती है जो खुशा-मदी और चलता हुआ है, जिसे सिद्धान्तोंकी परवा नहीं। मैंने तो आजतक किसी सहृदय पुरुषको फलते फूलते नहीं देखा। बस, शतरंजबाजोंकी चांदी है। मैंने अच्छी तरह आजमा कर देख लिया। यहां मेरा निवाह नहीं है। अब तो यही धारणा है कि इस्तीफा देकर इसी बगीचेमें आ बसूं और बाबू प्रेमशंकरके साथ जीवन व्यतीत करूं, अगर इन्हें कोई आपत्ति न हो।

प्रेमशंकर—आप शौकसे आइये, लेकिन खूब दृढ़ होकर आइयेगा।

ज्वालासिंह—अगर कुछ कोर-कसर होगी, तो यहां पूरी हो

जायगी। प्रेमशंकरने अपने आदमियोंसे खेती बारीके सम्बन्धमें कुछ बातें कीं और ८ बजते-बजते लाला प्रभाशंकरके घर चले।

२१

रातके १० बजे थे। ज्वालासिंह तो भोजन करके प्रभाशंकरके दीवानखानेमें ही लेटे, लेकिन प्रेमशंकरको मच्छरोंने इतना तंग किया कि नींद न आयी। कुछ देरतक तो वह पंखा झलते रहे, अंतको जब भीतर न रहा गया तो व्याकुल हो बाहर आकर सहनमें टहलने लगे। सहनकी दूसरी ओर ज्ञानशंकरका द्वार था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। नीरवताने प्रेमशंकरको विचारध्वनिको गुंजित कर दिया। सोचने लगे, मेरा जीवन कितना विचित्र है! श्रद्धा जैसी देवीको पाकर भी मैं दाम्पत्य सुखसे वंचित हूं। सामने श्रद्धाका शयनगृह है; पर मैं उधर ताकनेका साहस नहीं कर सकता। वह इस समय कोई धर्मग्रन्थ पढ़ रही होगी; पर मुझे उसकी कोमल वाणी सुननेका अधिकार नहीं।

अकस्मात् उन्हें ज्ञानशंकरके द्वारसे कोई स्त्री निकलती हुई दिखाई दी। उन्होंने समझा मजूरनी होगी, काम धन्धेसे छुट्टी पा अपने घर जाती होगी। लेकिन नहीं, यह सिरसे पैरतक चादर ओढ़े हुए है। महरियां इतनी लज्जाशीला नहीं होतीं। फिर यह कौन है? चाल तो श्रद्धाकी सी है, कद भी वही है। पर इतनी रात गये, इस अन्धकारमें श्रद्धा कहां जायगी? नहीं, कोई और होगी। मुझे भ्रम हो रहा है। इस रहस्यको खोलना चाहिये। यद्यपि प्रेमशंकरको एक अपरिचित और अकेली स्त्रीके पीछे पीछे भेदिया बनकर चलना सर्वथा अनुचित जान पड़ता था, पर इस गांठको खोलनेकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि वह उसे रोक न सके।

कुछ दूरतक गलीमें चलनेके बाद वह स्त्री सड़कपर आ

पहुंची और दशाश्वमेध घाटकी ओर चली। सड़कपर लाल-टेनें जल रही थीं। रास्ता बन्द न था, पर बहुत कम लोग चलते दिखायी देते थे। प्रेमशंकरको उस स्त्रीकी चालसे अब पूरा विश्वास हो गया कि वह श्रद्धा है। उनके आश्चर्यकी कोई सीमा न रही। यह इतनी रात गये इस तरफ कहां जाती है! उन्हें उसपर कोई सन्देह न हुआ। वे उसके पातिव्रत्यको अखण्ड और अविचल समझते थे। पर इस विश्वासने उनकी प्रश्नात्मक शंकाको और भी उत्तेजित कर दिया। उसके पीछे पीछे चलते रहे, यहांतक कि गङ्गातटकी ऊंची ऊंची अट्टालिकायें आ पहुचीं। गलीमें अंधेरा था, पर कहीं-कहीं खिड़कियोंसे प्रकाशज्योति आ रही थी, मानों कोई सोता हुआ आदमी स्वप्न देख रहा हो। पग पगपर सांडोंका सामना होता था। कहीं कहीं कुत्ते भूमिपर पड़ी हुई पत्तलोंको चाट रहे थे। श्रद्धा सीढ़ियोंसे उतरकर गङ्गातटपर जा पहुंची। अब प्रेमशंकरको भय हुआ, कहीं इसने अपने मनमें कुछ और तो नहीं ठानी है। उनका हृदय कांपने लगा। वह लपककर सीढ़ियोंसे उतरे और श्रद्धासे केवल इतनी दूर खड़े हो गये कि तनिक खटका होते ही एक छलांगमें उसके पास जा पहुचें। गङ्गा निद्रामें मग्न थी। कहीं-कहीं जलजन्तुओंके छपकनेकी आवाज आ जाती थी। सीढ़ियोंपर कितने ही भिक्षुक पड़े सो रहे थे। प्रेमशङ्करको इस समय असह्य ग्लानि-वेदना हो रही थी। यह मेरी क्रूरताका, मेरी हृदयशून्यताका फल है। मैंने अपने सिद्धान्त प्रेम और आत्मगौरवके घमंडमें इसके विचारोंकी अवहेलना की, इसके मनोभावोंको पैरोंसे कुचला, इसकी धर्मनिष्ठाको तुच्छ समझा। जब सारी बिरादरी मुझे दूधकी मक्खी समझ रही है, जब मेरे विषयमें नाना प्रकारके अपवाद फैले हुए हैं, जब मैं विधर्मी, नास्तिक और जातिच्युत समझा जा रहा हूं तो एक धार्मिक वृत्तिकी महिलाका मुझसे विमुख हो जाना सर्वथा

स्वाभाविक था। न जाने कितनी हृदय-वेदना, कितने आत्मिक कष्ट और मानसिक उत्तापके बाद, आज इस अवलाने ऐसा भयंकर संकल्प किया है।

श्रद्धा कई मिनिट जलतटपर चुपचाप खड़ी रही। तब वह धीरे-धीरे पानीमें उतरी। प्रेमशङ्करने देखा, अब विलम्ब करनेका अवसर नहीं है। उन्होंने एक छलांग मारी और अन्तिम सीढ़ीपर खड़े होकर श्रद्धाको जोरसे पकड़ लिया। श्रद्धा चौंक पड़ी, सशंक होकर बोली—कौन है, दूर हट!

प्रेमशंकरने सदोष नेत्रोंसे देखकर कहा, मैं हूं अभागा प्रेमशङ्कर! श्रद्धाने पतिकी ओर ध्यानसे देखा और भयभीत होकर बोली, आप—यहां?

प्रेमशङ्कर—हां, आज अदालतने मुझे बरी कर दिया। चचासाहबके यहां दावत थी। भोजन करके निकला तो तुम्हें इधर आते देखा। साथ हो लिया। अब ईश्वरके लिये पानीसे निकलो। मुझपर दया करो।

श्रद्धा पानीसे निकलकर जीनेपर आयी और कर जोड़कर गङ्गाको देखती हुई बोली, माता, तुमने मेरी विनती सुन ली, किस मुंहसे तुम्हारा यश गाऊं। इस अभागिनीको तुमने तार दिया।

प्रेम—तुम अंधेरेमें इतनी दूर कैसे चली आयी? डर नहीं लगा?

श्रद्धा—मैं तो यहां कई दिनसे आती हूं, डर किस बातका?

प्रेम—क्या यहांके बदमाशोंका हाल नहीं जानतीं?

श्रद्धाने कमरसे छुरा निकाल लिया और बोली, मेरी रक्षाके लिये यह काफी है। संसारमें जब कोई सहारा नहीं होता तो आदमी निर्भय हो जाता है।

प्रेम—घरके लोग तुम्हें यों आते देखकर अपने मनमें न जाने क्या कहते होंगे।

श्रद्धा—जो चाहें समझें, किसीके मनपर मेरा क्या बस है? पहले लोकलाजका भय था, अब वह भय नहीं रहा, उसका मर्म जान गयी। वह रेशमका जाल है, देखनेमें सुन्दर किन्तु कितना जटिल! वह बहुधा धर्मको अधर्म और अधर्मको धर्म बना देता है।

प्रेमशङ्करका हृदय उछलने लगा, बोले—ईश्वर, क्या मेरा भाग्यचन्द्र फिर उदित होगा! श्रद्धा मैं तुमसे सत्य कहता हूं, मेरी कितनी ही बार इच्छा हुई कि फिर अमेरिका लौट जाऊं, किन्तु आशाका एक अत्यन्त सूक्ष्म, काल्पनिक बन्धन पैरोंमें बेड़ियोंका काम करता रहा। मैं सदैव अपने चारो ओर तुम्हारे प्रेम और सत्यव्रतको फैले हुए देखता हूं। मेरे आत्मिक अन्धकारमें यही ज्योति दीपकका काम देती है। मैं तुम्हारी सदिच्छाओंको किसी सघन वृक्षकी भांति अपने ऊपर छाया डालते हुए अनुभव करता हूं। मुझे तुम्हारी अकृपामें दया, तुम्हारी निष्ठुरतामें हार्दिक स्नेह, तुम्हारी भक्तिमें अनुराग छिपा हुआ दीखता है। अब मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे ही उद्धारके लिये तुम यह अनुष्ठान कर रही हो। यदि मेरा प्रेम भी निष्काम होता तो मैं इस आत्मिक संयोगपर ही संतोष करता, किन्तु मैं रूप और रसका दास हूं, इच्छाओं और वासनाओंका गुलाम, मुझे इस आत्मानुरागसे संतोष नहीं होता।

श्रद्धा—मेरे मनसे यह शंका कभी दूर नहीं होती कि आपसे मेरा मिलना अधर्म है और अधर्मसे मेरा हृदय कांप उठता है।

प्रेम—यह शंका कैसे शान्त होगी?

श्रद्धा—आप जानकर मुझसे क्यों पूछते हैं?

प्रेम—तुम्हारे मुंहसे सुनना चाहता हूं।

श्रद्धा—प्रायश्चित्तसे।

प्रेम—वही प्रायश्चित्त जिसका विधान स्मृतियोंमें है?

श्रद्धा—हां, वही।

प्रेम—क्या तुम्हें विश्वास है कि कई नदियोंमें नहानेसे, कई लकड़ियोंके जलानेसे, घृणित वस्तुओंके खानेसे, ब्राह्मणोंके खिलानेसे मेरी अपवित्रता जाती रहेगी? खेद है, कि तुम इतनी विवेकशील होकर इतनी मिथ्यावादिनी हो।

श्रद्धाका एक हाथ प्रेमशंकरके हाथमें था। यह कथन सुनते ही उसने हाथ खींच लिया और दोनों अंगूठोंसे दोनों कान बन्द करते हुए बोली, ईश्वरके लिये मेरे सामने शास्त्रोंको निन्दा मत करो। हमारे ऋषि मुनियोंने शास्त्रोंमें जो कुछ लिख दिया है वह हमें मानना चाहिए। उनमें मीन मेख निकालना हमारे लिये उचित नहीं। हममें इतनी बुद्धि कहां है कि शास्त्रके सभी आदेशोंको समझ सकें? उनको माननेहीमें हमारा कल्याण है।

प्रेम—मुझसे वह काम करनेको कहती हो जो मेरे सिद्धान्त और विश्वासके सर्वथा विरुद्ध है। मेरा मन इसे कदापि स्वीकार नहीं करता कि विदेशयात्रा कोई पाप है। ऐसी दशामें प्रायश्चित्तकी शर्त लगाकर तुम मुझपर बड़ा अन्याय कर रही हो।

श्रद्धाने लम्बी सांस खींचकर कहा, आपके चित्तसे अभी अहंकार नहीं मिटा। जबतक इसे न मिटाइयेगा, ऋषियोंकी बातें आपकी समझमें न आयेंगी।

यह कहकर वह सीढ़ियोंपर चढ़ने लगी। प्रेमशंकर कुछ न बोल सके। उसे रोकनेका भी साहस न हुआ। श्रद्धा देखते देखते सामने गलीमें घुसी और अन्धकारमें विलुप्त हो गयी।

प्रेमशंकर कई मिनिटतक वहीं चुपचाप खड़े रहे, तब वह सहसा इस अर्धचैतन्यावस्थासे जागे, जैसे कोई रोगी देरतक मूर्छित रहनेके बाद चौंक पड़े। अपनी अवस्थाका ज्ञान हुआ। हा! अवसर हाथसे निकल गया। मैंने विचारको मनुष्यसे उत्तम समझा। सिद्धान्त मनुष्यके लिये हैं, मनुष्य सिद्धान्तोंके लिये नहीं है। मैं इतना भी न समझ सका! माना, प्रायश्चित्तपर मेरा विश्वास नहीं है, पर उससे दो प्राणियोंका जीवन सुखमय हो

सकता था। इस सिद्धान्तप्रेमने दोनोंहीका सर्वनाश कर दिया। क्यों न चलकर श्रद्धासे कह दूं कि मुझे प्रायश्चित्त करना अङ्गीकार है, अभी बहुत दूर न गयी होगी। उसका विश्वास मिथ्या हो, सही, पर कितना दृढ़ है! कितनी निस्स्वार्थ पतिभक्ति है, कितनी अविचल धर्मनिष्ठा। प्रेमशंकर इन्हीं विचारोंमें डूबे हुए थे कि यकायक उन्होंने दो आदमियोंको ऊपरसे उतरते देखा। गहरे विचारके बाद मस्तिष्कको विश्रामकी इच्छा होती है। वह उन दोनों मनुष्योंकी ओर ध्यानसे देखने लगे। यह कौन हैं? इस समय यहां क्या करने आये हैं? शनैः शनैः वह दोनों नीचे आये और प्रेमशंकरसे कुछ दूर खड़े हो गये। प्रेमशंकरने उन दोनोंकी बातें सुनीं तो आवाज पहचान गये। यह दोनों पद्मशंकर और तेजशंकर थे।

तेजशंकरने कहा, तुम्हारी बुरी आदत है कि जिससे होता है उसीसे इन बातोंकी चर्चा करने लगते हो। यह सब बातें गुप्त रखनेकी हैं। खोल देनेसे उनका असर जाता रहता है।

पद्म—मैंने तो किसीसे नहीं कहा।

तेज—क्यों? आज ही बाबू ज्वालासिंहसे कहने लगे कि हम लोग साधु हो जायेंगे। कई दिन हुए अम्मांसे यही बात कही थी। इस तरह बकते फिरनेसे क्या फायदा? हम लोग साधु होंगे अवश्य, पर अभी नहीं। अभी इस "बीसा" को सिद्ध कर लो, घरमें लाख दो लाख रुपये रख दो, बस निश्चिन्त होकर निकल खड़े हो। भैया घरकी कुछ खोज खबर लेते ही नहीं, हम लोग भी निकल जायें तो लालाजी इतने प्राणियोंका पालन-पोषन कैसे करेंगे? इम्तहान तो मेरा दिया न दिया जायगा, कौन भूगोल इतिहास रटता फिरे। और मैट्रिक होही गये तो कौन राजा हो जायंगे। बहुत होगा कहीं (१५-२०) के नौकर हो जायेंगे। तीन सालसे फेल हो रहे हैं, अबकी तो योंही कहीं पढ़नेको जगह न मिलेगी।

पद्म—अच्छा, अब किसीसे कुछ न कहूंगा। यह मन्त्र सिद्ध हो जाय तो चचासाहब मुकदमा जीत जायंगे न?

तेज—अभी देखा नहीं क्या ? लालाजी २० हजार जमानत देते थे, पर मैजिस्ट्रेट न लेता था। तीन ही दिन यहां आसन जमाया और आज वह बिलकुल बरी हो गये। एक कौड़ी भी जमानत न देनी पड़ी।

पद्म—चचासाहब बड़े अच्छे आदमी हैं। मुझे उनकी बहुत मुहब्बत लगती है। छोटे चचाकी ओर तो ताकते हुए भी डर मालूम होता है।

तेज—उन्होंने बड़े चचाको फंसाया है। डरता हूं, नहीं एक सप्ताहभर भी आसन लगाऊं तो उनको जान ही लेकर छोड़ूं।

पद्म—मुझसे तो कभी बोलते ही नहीं। छोटी चचीका अदब करता हूं, नहीं तो एक दिन मायाको खूब पीटता।

तेज—अबकी तो माया भी गोरखपुर जा रहा है। वहीं पढ़ेगा।

पद्म—जबसे मोटर आयी है मायाका मिजाज ही नहीं मिलता। यहां कोई मोटरका भूखा नहीं है।

यों बातें करते हुए दोनों सीढ़ीपर बैठ गये। प्रेमशंकर उठकर उनके पास आये और कुछ कहना चाहते थे कि पद्मशंकरने चौंककर जोरसे चीख मारी, और तेजशंकर खड़ा होकर कुछ बुद बुदाने और छू छू करने लगा। प्रेमशङ्कर बोले, डरो मत, मैं हूं।

तेज—चचासाहब! आप यहां इस वक्त कैसे आये ?

पद्म—मुझे तो ऐसी शंका हुई कि कोई प्रेत आ गया।

प्रेम—तुम लोग इस पाखंडमें पड़कर अपना समय व्यर्थ गंवा रहे हो। यह बड़े जोखिमका काम है और तत्व कुछ नहीं। इन मंत्रोंको जगाकर तुम जीवनमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। चित्त लगाकर पढ़ो, उद्योग करो सच्चरित्र बनो। धन और कीर्तिका यही महामंत्र है। यहांसे उठो।

तीनों आदमी घरकी ओर चले। रास्तेभर प्रेमशङ्कर दोनो युवकोंको समझाते रहे। घर पहुंचकर वह फिर निद्रादेवीकी

आराधना करने लगे, मच्छरोंकी जगह अब उनके सामने एक और बाधा आ खड़ी हुई। यह श्रद्धाका अन्तिम वाक्य था, तुम्हारे चित्तसे अभी अहंकार नहीं मिटा। प्रेमशंकर बड़ी निर्दयतासे अपने कृत्योंका समीक्षण कर रहे थे। अपने अन्तःकरणके एक एक परदेको खोलकर देख रहे थे और प्रति क्षण उन्हें विश्वास होता जाता था कि मैं वास्तवमें अहंकारका पुतला हूं। वह अपने किसी कामको, किसी संकल्पको, अहंकार-रहित न पाते थे। अपनी दया और दीनभक्तिमें भी अहंकार छिपा हुआ जान पड़ता था। उन्हें शंका हो रही थी, क्या सिद्धान्तप्रेम अहंकारही का दूसरा स्वरूप है। इसके विपरीत श्रद्धाकी धर्मपरायणतामें अहंकारकी गन्धतक न थी।

इतनेमें ज्वालासिंहने आकर कहा, क्या सोते ही रहियेगा? सवेरा हो गया।

प्रेमशङ्करने चौंककर द्वारकी ओर देखा तो वास्तवमें दिन निकल आया था। बोले, मुझे तो मच्छरोंके मारे नींद ही नहीं आयी। आंखें तक न झपकीं।

ज्वाला—और यहां एकही करवटमें भोर हो गया।

प्रेमशंकर उठकर हाथ मुंह धोने लगे। आज उन्हें बहुत काम करना था। ज्वालासिंह भी स्नानादिसे निवृत्त हुए। अभी दोनों आदमी कपड़े ही पहन रहे थे कि तेजशंकर जलपानके लिये ताजा हलुआ, सेवका मुरब्बा, तले हुए पिस्ते और बादाम और गर्म दूध लाया। ज्वालासिंहने कहा, आपके चचासाहब बड़े मेह-मानेवाज आदमी हैं। ऐसा जान पड़ता है कि आतिथ्यसत्कारमें उन्हें हार्दिक आनन्द आता है और एक हम हैं कि मेहमानकी सूरत देखते ही मानों दब जाते हैं, उनका जो कुछ सत्कार करते हैं, वह केवल प्रथापालनके लिये. मनसे यही चाहते हैं कि किसी तरह यह व्याधि सिरसे टले।

प्रेम—वह पवित्र आत्मायें अब संसारसे उठती जाती हैं।

अब तो जिधर देखिये, उधर स्वार्थसेवाका आधिपत्य है। चचा-साहब जैसा भोजन करते हैं वैसा अच्छे अच्छे रईसोंको भी मयस्सर नहीं होता। वह स्वयं पाकशास्त्रमें निपुण हैं। लेकिन खानेका इतना शौक नहीं है जितना खिलानेका। मेरा तो जी चाहता है कि अवकाश मिले तो यह विद्या उनसे सीखूं।

दोनों मित्रोंने जलपान किया। और लाला प्रभाशङ्करसे बिदा होकर घरसे निकले। ज्वालासिंहने कहा, कोई वकील ठीक करना चाहिये।

प्रेम—हां, यही सबसे जरूरी काम है। देखें, कोई महाशय मिलते हैं या नहीं। चचासाहबको तो लोगोंने साफ जवाब दे दिया था।

ज्वाला—डाक्टर इर्फानअलीसे मेरा खूब परिचय है। आइये, पहले वहीं चलें।

प्रेम—वह तो शायदही राजी हों। ज्ञानशङ्करसे उनकी बातचीत पहले ही हो चुकी है।

ज्वाला—अभी वकालतनामा तो दाखिल नहीं हुआ। ज्ञानशङ्कर ऐसे नादान नहीं हैं कि ख्वाहमख्वाह हजारों रुपयोंका खर्च उठायें। उनकी जो इच्छा थी वह पुलिसके हाथों पूरी हुई जाती है। सारा लखनपूर चक्करमें फंस गया। अब उन्हें वकील रखकर क्या करना है!

डाक्टर महोदय अपने बागमें टहल रहे थे। दोनों सज्जनोंको देखते ही बढ़कर हाथ मिलाया और बङ्गलेमें ले गये।

डाक्टर—(ज्वालासिंहसे) आपसे तो एक मुद्दतके बाद मुलाकात हुई है। आजकल तो आप हरदोईमें हैं न? आपके बयानने तो पुलिसवालोंकी बोलती बन्द कर दी। मगर याद रखिये, इसका परिणाम आपको उठाना पड़ेगा।

ज्वाला—उनकी नौबत ही न आयेगी। इन दोरंगी चालोंसे नफरत हो गयी। इस्तीफा देनेका फैसला कर चुका हूं।

डाक्टर—हालतही ऐसी है कि कोई खुद्दार आदमी उसे गवारा नहीं कर सकता। बस, यहां उन्हीं लोगोंकी चान्दी है, जिनके कान्शंस मुरदा हो गये हैं। मेरे ही पेशेको लीजिये, कहा जाता है कि यह आज़ाद पेशा है। लेकिन लाला प्रभाशङ्करको सारे शहरमें (प्रेमशङ्करको तरफ देखकर) आपकी पैरवी करनेके लिये कोई वकील न मिला। मालूम नहीं, वह मेरे यहां तशरीफ क्यों नहीं लाये।

ज्वाला—उस गलतीकी तलाफी (प्रायश्चित्त) करनेके लिये हम लोग हाजिर हुए हैं। गरीब किसानोंपर आपको रहम करना पड़ेगा।

डाक्टर—मैं इस खिदमतके लिये हाजिर हूं। पुलिससे मेरी पुरानी दुश्मनी है। ऐसे मुकदमोंकी मुझे तलाश रहती है। बस, यही मेरा आखिरी मुकद्मा होगा। मुझे भी वकालतसे नफरत हो गयी है। मैंने युनिवर्सिटीकी दरख्वास्त दी है। मंजूर हो गयी तो बोरिया-बधना समेटकर उधरको राह लूंगा।

३२

डाक्टर इर्फानअलीकी बातोंसे प्रेमशङ्करको बड़ी तसकीन हुई। मेहनतानेके सम्बन्धमें उनसे कुछ रिआयत चाहते थे, लेकिन संकोचवश कुछ कह न सकते थे। इतनेमें हमारे पूर्व परिचित सैयद ईजाद हुसेनने कमरेमें प्रवेश किया और ज्वालासिंहको देखते ही सलाम करके उनके सामने खड़े हो गये। उनके साथ एक हिन्दू युवक और भी था, जो चाल-ढालसे धनाढ्य वैश्य जान पड़ता था।

ज्वालासिंह बोले—आइये, आइये, मिजाज तो अच्छा है। आजकल किसकी पेशीमें हैं?

ईजाद—जबसे हुजूर तशरीफ ले गये मैंने भी नौकरीको सलाम किया। जिन्दगी शिकमपर्वरीमें गुजरी जाती थी। इरादा हुआ कुछ दिन कौमकी खिदमत करूं। इसी गरजसे "अंजुमन

इत्तहाद" खोल रक्खी है। उसका मकसद हिन्दू मुसल्मानोंमें मेल-जोल पैदा करना है। मैं इसे कौमका सबसे अहम* मसला समझता हूं। आप दोनों साहब अगर अंजुमनको अपने कदमोंसे मुमताज फरमायें तो मेरी खुशनसीबी ही है।

ज्वाला—आप वाकई कौमकी सच्ची खिद्मत कर रहे हैं।

ईजाद—शुक्र है जनाबकी जबानसे यह कलाम निकला। यहां मुझे मियां "इत्तहाद" कहकर मेरा मजाक उड़ाया जाता है। अंजुमनपर आवाजें कसी जाती हैं। मुझे खुद मतलब और खुदगरज कहा जाता है। यह सब जिल्लत उठाता हूं। दोनों कौमोंके बाहमी निफाकको देखता हूं तो जिगरके टुकड़े हो जाते हैं। वह मुहब्बत और एखलास जिसपर कौमकी हस्ती कायम है रोज बरोज गायब होता जाता है। अगर एक हिन्दू इस्लामपर यकीन लाता है तो शोर मच जाता है कि हिन्दू कौम तबाह हुई जाती है। अगर एक हिन्दू कोई ऊंचा ओहदा पा जाता है तो मुसलमानोंमें 'हाय! हाय!' की सदा उठने लगती है, कोई कहता है इसलाम गारत हुआ, कोई कहता है इसलामकी किश्ती भंवरमें पड़ी। लाहौल बिला कूवत। मजहब रूहानी तसकीन और निजातका जरिया है, न कि दुनिया कमानेका ढकोसला। इस बाहमी कुदूरतको हमारे मुल्ला और पण्डित और भी भड़काते हैं। मेरी आवाज नक्कारखानेमें तूतीकी सदा है, पर कौमी दर्द, कौमी गैरत चुप नहीं बैठने देती। गला फाड़-फाड़ चिल्लाता हूं, कोई सुने या न सुने। अंजुमनमें इस वक्त १०० मेम्बर हैं। कोई ७० हिन्दू साहबान हैं और ३० मुसलमान। उसके इन्तजामसे एक कुतुबखाना और मदरसा चलता है। अंजुमनका इरादा है कि एक इत्तहादी इबादतगाह बनायी जाय, जिसके एक जानिब शिवाला हो और दूसरी जानिब मस्जिद। एक यतीमखानेकी बुनियाद डाल दी गयी है।

* महत्वपूर्ण

दोनों क़ौमोंके यतीमोंको दाखिल किया जाता है, मगर अभीतक इमारतें नहीं बन सकीं। यह सब इरादे रुपयेके मुहताज हैं। फ़क़ीरने तो अपना सब कुछ निसार कर दिया। अब क़ौमको अख्तियार है, उसे चलाये या बन्द कर दे। क्यों डाक्टर साहब, मेरा हिब्बनामा आपने तैयार फ़रमाया?

इर्फ़ानअली—कोई तातील आये तो इतमीनानसे आपका काम करूं।

प्रेमशङ्करने श्रद्धाभावसे कहा, सैयद साहबकी जात क़ौमके लिये बरकत है। मैं अंजुमनके लिये १००) की हक़ीर रक़म नज़र करता हूं और यतीमख़ानेके लिये ५० मन गेहूं, ५ मन शक्कर और २०) माहवार।

ईजादहुसेन—ख़ुदा आपको सवाब अता करे। अगर इजाज़त हो तो जनाबका नाम भी ट्रस्टियोंमें दाख़िल कर लिया जाय।

प्रेमशंकर—मैं इस इज़्ज़तके लायक नहीं हूं।

ईजाद—नहीं जनाब, मेरी यह इल्तजा आपको क़बूल करनी होगी। ख़ुदाने आपको एक दर्दमन्द दिल अता किया है। क्यों नहीं, आप लाला जटाशङ्कर मरहूमके ख़लफ़ हैं, जिनकी ग़रीबपरवरीसे सारा शहर मालामाल होता था। यतीम आपको दुआयें देंगे और अंजुमन हमेशा आपकी ममनून रहेगी।

इर्फ़ानअलीने ज्वालासिंहसे पूछा, आपका क़ायम यहां कबतक रहेगा?

ज्वाला—कुछ अर्ज नहीं कर सकता। आया तो इस इरादेसे हूं कि बाबू प्रेमशङ्करकी गुलामीमें जिन्दगी गुज़ार दूं। मुलाज़मतसे इस्तीफा देना तै कर चुका हूं।

इर्फ़ानअली—वल्लाह आप दोनों साहब बड़े जिन्दादिल हैं। दुआ कीजिये कि ख़ुदा मुझे भी क़ेनाअत (संतोष) की दौलत अता करे और मैं भी आप लोगोंकी सोहबतसे फ़ैज उठाऊं।

ज्वालासिंहने मुस्कुराकर कहा, हमारे मुलाज़िमोंको बरी करा दीजिये तब हम शबोरोज़ आपके लिये दुआयें करेंगे।

इर्फ़ानअली हंसकर बोले, शर्त तो टेढ़ी है, मगर मंज़ूर है। डाक्टर चोपड़ाका बयान अपने मुआफ़िक़ हो जाय तो बाज़ी अपनी है।

ईजाद—अब ज़रा इन ग़रीबकी भी ख़बर लीजिये। मेरे मुहल्लेमें रहते हैं, कपड़ेकी बड़ी दूकान है, इनके बड़े भाई इनसे बेरुख़ीसे पेश आते हैं, इन्हें जेबख़र्चेके लिये कुछ नहीं देते। हिसाब भी नहीं दिखाते, सारा नफ़ा खुद हज़्म कर जाते हैं, कल इन्हें बहुत सख्त सुस्त कहा। जब इनका आधा हिस्सा है तो यह क्यों न अपने हिस्सेका दावा करें। यह बालिग़ हैं, अपना फायदा-नुकसान समझते हैं, भाईकी रोटियोंपर नहीं रहना चाहते। बोलो, भाई मथुरादास, बालिस्टर साहबसे कहो, क्या कहते हो?

मथुरादासने जमीनकी तरफ देखा और ईजादहुसेनकी ओर कनखियोंसे ताकते हुए बोले—मैं यही चाहता हूं कि भैयासे आप मेरी राजी खुशी करा दें। कल मैंने उन्हें गाली दे दी थी। अब वह कहते हैं, तू ही घर संभाल,मुझसे कोई वास्ता नहीं। कुञ्जियां सब फेंक दी हैं और दूकानपर नहीं जाते।

ईजादहुसेनने मथुरादासकी ओर वक्रदृष्टिसे देखकर कहा, साफ-साफ अपना मतलब क्यों नहीं कहते? आप इनका मंशा समझ गये होंगे। अभी नातजुरबेकार आदमी, बातचीत करनेकी तमीज़ नहीं है, जभी तो रोज धक्के खाते हैं। इनका मंशा है कि आप दावा दायर करें, लेकिन यह मामलेको तूल नहीं देना चाहते, सिर्फ अलहदा होना चाहते हैं, क्यों ठीक है न?

मथुरादास—(सरल भावसे) जी हां, बस यही चाहता हूं कि उनसे मेरी राजी-खुशी हो जाय।

मुंशी रमज़ानअली मुहर्रिर थे। ईजादहुसेन मथुरादासको

उनके कमरेमें ले गये। वहां खासा दफ्तर था, कई आदमी बैठे लिख रहे थे। रमजानअलीने पूछा, कितनेका दावा होगा?

ईजाद—यही कोई एक लाखका।

रमजानअलीने वकालतनामा लिखा। कोर्टफीस, तलबाना, मेहनताना, नजराना आदि वसूल किये, जो मथुरादासने ईजाद हुसेनकी ओर अविश्वासकी दृष्टिसे देखते हुए दिये, जैसे कोई किसान पछता पछताकर दक्षिणाके पैसे निकालता है और तब दोनों सज्जनोंने घरकी राह ली।

रास्तेमें मथुरादासने कहा, आपने जबरदस्ती मुझे भैयासे लड़ा दिया। सैकड़ों रुपयेकी चपत पड़ गयी और अभी कोर्ट-फीस बाकी ही है।

ईजादहुसेन बोले, एहसान तो न मानोगे कि भाईकी गुलामीसे आज़ाद होनेका इन्तजाम कर दिया। आधी दूकानके मालिक बनकर बैठोगे, उल्टे और शिकायत करते हो!

३३

डाक्टर प्रियनाथ चोपड़ा बहुत ही उदार, विचारशील और सहृदय सज्जन थे। चिकित्साका अच्छा ज्ञान था और सबसे बड़ी बात यह कि उनका स्वभाव अत्यन्त कोमल और नम्र था। अगर रोगियोंके हिस्सेकी शाक, भाजी, दूध, मक्खन, उपले, ईंधनका एक भाग उनके घरमें पहुंच जाता था तो यह केवल वहांकी प्रथा थी। उनके पहले भी ऐसा ही व्यवहार होता था। उन्होंने इसमें हस्तक्षेप करनेकी जरूरत न समझी। इसलिये उन्हें कोई बदनाम न कर सकता था और न उन्हें स्वयं ही इसमें कुछ दूषण दिखायी देता था। वह कम वेतनवाले कर्मचारियोंसे केवल आधी फीस लिया करते थे और रातकी फीस भी मामूली ही रक्खी थी। उनके यहां सरकारी चिकित्सालयसे मुफ्त दवा मिल जाती थी, इसलिये उनकी अन्य डाक्टरोंसे अधिक चलती थी। इन कारणोंसे उनकी आमदनी बहुत अच्छी हो गयी थी। तीन

साल पहले वह वहाँ आये थे तो पैरगाड़ीपर चलते थे, अब एक फिटन थी, बच्चोंको हवा खिलानेके लिये छोटी-छोटी सेजगाड़ियां थीं, फर्निचर और फर्श आदि अस्पतालहीके थे, नौकरोंका वेतन भी गांठसे न देना पड़ता था। पर इतनी मितव्ययितापर भी वह अपनी अवस्थाकी तुलना जिलेके सबइञ्जिनियर या कतिपय वकीलोंसे करते थे तो उन्हें विशेष आनन्द न होता था। यद्यपि उन्हें कभी-कभी ऐसे अवसर मिलते थे जो उनकी आर्थिक कामनाओंको सफल कर सकते थे, पर उनकी विचारशीलता कभी उन्हें बहकने न देती थी। कालेज छोड़नेके बाद कई वर्षतक उन्होंने निर्भीकतासे अपने कर्त्तव्यका पालन किया था, लेकिन जब कई बार पुलिसके विरुद्ध गवाही देनेपर मुंहकी खानी पड़ी तो चेत गये। अब वह नित्य पुलिसका रुख देखकर अपनी नीति स्थिर किया करते थे। तिसपर भी अपने निदानोंको पुलिसकी इच्छाके अधीन रखनेमें उन्हें मानसिक कष्ट होता था। अतएव जब गौसखांकी लाश उनके पास निरीक्षणके लिये भेजी गयी तो वह बड़े असमंजसमें पड़े। निदान कहता था कि यह एक व्यक्तिका काम है, एक ही वारमें काम तमाम हुआ है किन्तु पुलिसकी धारणा थी कि यह एक गुट्टका काम है। बेचारे बड़ी दुविधामें पड़े हुए थे। यह महत्वपूर्ण अभियोग था। पुलिसने अपनी सफलताके लिये कोई बात उठा न रक्खी थी। उसका खंडन करना उससे बैर मोल लेना था और अनुभवसे सिद्ध हो गया था कि यह बहुत मंहगा सौदा है। गुनाह था मगर बेलज्जत। कई दिनतक इसी हैस-बैसमें पड़े रहे, पर बुद्धि कुछ काम न करती थी। इसी बीचमें एक दिन ज्ञानशङ्कर उनके पास रानी गायत्रीदेवीका एक पत्र और ५००) पारितोषिक लेकर पहुंचे। रानी महोदयाने उनकी कीर्ति सुनकर अपनी गुणग्राहकताका परिचय दिया था। उनसे शिशु-पालनपर एक पुस्तक लिखवाना चाहती थीं। इसके अतिरिक्त उन्हें अपना गृह चिकित्सक भी नियत किया था और प्रत्येक

"विज़िट" के लिये १००) का वादा था। डाक्टर साहब फूले न समाये। ज्ञानशंकरकी ओर अनुग्रहपूर्ण नेत्रोंसे देखकर बोले, श्रीमतीजीकी इस उदार गुण-ग्राहकताका धन्यवाद देनेके लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। आप मुझे अपना सेवक समझिये। यह सब आपकी कृपादृष्टि है, नहीं तो मेरे-जैसे हजारों डाक्टर पड़े हुए हैं। ज्ञानशंकरने इसका यथोचित उत्तर दिया। इसके बाद देश-काल सम्बन्धी विषयोंपर वार्तालाप होने लगा। डाक्टर साहबका दावा था कि मैं चिकित्सामें आई० एम० एस० वालोंसे कहीं कुशल हूं, और ऐसे असाध्य रोगियोंका उद्धार कर चुका हूं, जिन्हें सर्वज्ञ आई० एम० एस० वालोंने जवाब दे दिया था। लेकिन फिर भी मुझे इस जीवनमें इस पराधीनतासे मुक्त होनेकी कोई आशा नहीं। मेरे भाग्यमें विलायतके नवशिक्षित युवकोंकी मातहती ही लिखी हुई है।

ज्ञानशंकरने इसके उत्तरमें देशकी राजनीतिक परिस्थितिका उल्लेख किया। चलते समय उनसे बड़े निस्स्वार्थ भावसे पूछा, लखनपुरके मामलेमें आपने क्या निश्चय किया? लाश तो आपके यहां आयी होगी?

प्रियनाथ—जी हां, लाश आयी थी। चिह्नोंसे तो यह पूर्णतः सिद्ध होता है कि यह केवल एक आदमीका काम है, किन्तु पुलिस इसमें कई आदमियोंको घसीटना चाहती है। आपसे क्या छिपाऊं, पुलिसको असन्तुष्ट नहीं कर सकता, लेकिन यों निर-पराधियोंको फंसाते हुए आत्माको घृणा होती है।

ज्ञानशंकर—सम्भव है, आपने चिह्नोंसे जो राय स्थिर की है वही मान्य हो, लेकिन वास्तवमें यह हत्या कई आदमियोंकी साजिशसे हुई है। लखनपुर मेरा ही गांव है।

प्रियनाथ—अच्छा, लखनपुर आपका ही गांव है? तो यह कारिन्दा आपका नौकर था?

ज्ञान—जी हां, और बड़ा स्वामिभक्त, अपने काममें कुशल।

गांववालोंको उससे केवल यही चिढ़ थी कि वह उनसे मिलता न था, प्रत्येक विषयमें मेरे ही हानि-लाभका विचार करता था। यह उसकी स्वामिभक्तिका दण्ड है। लेकिन मैं इस घटनाको पुलिसकी दृष्टिसे नहीं देखता। हत्या हो गयी, एकने की या कई आदमियोंने मिलकर की। मेरे लिये यह समस्या इससे कहीं जटिल है। यह जमींदार और किसानोंका प्रश्न है। अगर हत्याकारियोंको उचित दण्ड न दिया गया तो इस तरहकी दुर्घटनायें आये दिन होने लगेंगी और जमींदारोंको अपनी जान बचाना कठिन हो जायगा।

प्रस्तुत प्रश्नको यह नया स्वरूप देकर ज्ञानशंकर विदा हुए। यद्यपि हत्याके सम्बन्धमें डाक्टर साहबकी अब भी वही राय थी लेकिन अब यह गुनाह बेलज़्ज़त न था। ५००) का पारितोषिक, १००) रोज फीस, सालमें हज़ार दो हजार मिलते रहनेकी आशा, उसपर पुलिसकी खुशनूदी अलग! अब आगे-पीछेकी जरूरत न थी। हां, अब अगर भय था तो डाक्टर इर्फानअलीकी जिरहों-का। डाक्टर साहबकी जिरह प्रसिद्ध थी। अतएव प्रियनाथने इस विषयके कई ग्रन्थोंका अवलोकन किया और अपने पक्ष-समर्थनके तत्व खोज निकाले। कितने ही बेगुनाहोंकी गर्दनपर छुरी फिर जायगी, इसकी उन्हें एक क्षणके लिये भी चिन्ता न हुई। इस ओर उनका ध्यान ही न गया। ऐसे अवसरोंपर हमारी दृष्टि कितनी संकीर्ण हो जाती है!

दिनके १० बजे थे। डाक्टर महोदय ग्रन्थोंकी एक पोट लेकर फिटनपर सवार हो कचहरी चले। उनका दिल धड़क रहा था, जिरहमें उखड़ जानेकी शंका लगी हुई थी। वहां पहुंचते ही मेजिस्ट्रेटने उन्हें तलब किया। जब वह कटघरेके सामने आकर खड़े हुए और अभियुक्तोंको अपनी ओर दीन नेत्रोंसे ताकते देखा तो एक क्षणके लिये उनका चित्त अस्थिर हो गया। लेकिन यह एक क्षणिक आवेश था, आया और चला गया। उन्होंने

बड़ी तात्विक गंभीरता और मर्मज्ञतापूर्ण भावसे इस हत्याकांड-का निर्वाचन किया। चिह्नोंसे यह केवल एक आदमीका काम मालूम होता है। लेकिन हत्याकारियोंने बड़ी चालाकीसे काम लिया है। इस विषयमें वे बड़े सिद्धहस्त हैं। मृत्युका कारण कुल्हाड़ी या गंड़ासेका आघात नहीं है, बल्कि गलेका घोंटना है, और कई आदमियोंकी सहायताके बिना गौसखां जैसे बलिष्ठ मनुष्यका गला घोंटना असम्भव है। प्राणान्त हो जानेपर एक वारसे उसकी गर्दन काट ली गयी है, जिसमें यह एकही व्यक्ति-का कृत्य समझा जाय।

इर्फान अलीकी जिरह शुरू हुई।

आपने कौन सा इम्तहान पास किया है?

मैं लाहौरका एल० एम० एस० और कलकत्तेका एम० बी० हूं

आपकी उम्र क्या है?

४० वर्ष।

आपका मकान कहां है?

दिल्ली।

आपकी शादी हुई है? अगर हुई है तो औलाद है या नहीं?

मेरी शादी हो गयी है और कई औलादें हैं।

उनकी परवरिशपर आपका माहवार कितना खर्च होता है?

इर्फानअली यह प्रश्न ऐसे पांडित्यपूर्ण स्वाभिमानसे पूछ रहे थे, मानों इन्हींपर मुकदमेका दारमदार है। प्रत्येक प्रश्नपर ज्वालासिंहकी ओर गर्वके साथ देखते थे, मानों उनसे अपनी प्रखर नैयायिकताकी प्रशंसा चाहते हैं। लेकिन इस अन्तिम प्रश्नपर मैजिस्ट्रेटने एतराज किया, "इस प्रश्नसे आपका क्या अभिप्राय है?"।

इर्फानअलीने गर्वसे कहा—अभी मेरा मन्शा जाहिर हुआ जाता है।

यह कहकर उन्होंने प्रियनाथसे जिरह शुरू की। बेचारे प्रिय-

नाथ मनमें सहमे जाते थे। मालूम नहीं, यह महाशय मुझे किस ज़ालमें फांस रहें हैं।

इर्फानअली—आप मेरे आखिरी सवालका जवाब दीजिये।

मेरे पास इसका कोई हिसाब नहीं है।

आपके यहां माहवार कितना दूध आता है और उसकी क्या कीमत देनी पड़ती है?

इसका हिसाब मेरे नौकर रखते हैं।

घीपर माहवार क्या खर्च होता है?

मैं अपने नौकरोंसे पूछे बगैर इन गृहसम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तर नहीं दे सकता।

इर्फानअलीने मैजिस्ट्रेटसे कहा, मेरे सवालोंके काबिल इत्मीनान जवाब मिलने चाहिये।

मैजिस्ट्रेट—मैं नहीं समझता, कि इन सवालोंसे आपका मंशा क्या है?

इर्फानअली—मेरा मंशा गवाहकी एखलाकी हालतका परदा फाश करना है। इन सवालोंसे मैं यह साबित करना चाहता हूं, कि वह बहुत ऊंचे उसूलोंका आदमी नहीं है।

मैजिस्ट्रेट—मैं इस प्रश्नको दर्ज करनेसे इन्कार करता हूं।

इर्फानअली—तो मैं भी जिरह करनेसे इन्कार करता हूं।

यह कहकर बारिस्टर साहब इजलाससे बाहर निकल आये और ज्वालासिंहसे बोले, आपने देखा, यह हजरत कितनी बेजा तरफदारी कर रहे हैं। वल्लाह मैं डाक्टर साहबके लत्ते उड़ा देता। यहां ऐसी वैसी जिरह नहीं करते। मैं साफ साबित कर देता कि जो आदमी छोटी-छोटी रकमोंपर गिरता है वह ऐसे बड़े मामलेमें बेलौस नहीं रह सकता। कोई मुजायका नहीं, दीवानीमें चलने दीजिये, वहां इनकी खबर लूंगा।

इसके एक घण्टा पीछे मैजिस्ट्रेटने फैसला सुना दिया। सब अभियुक्त सेशन सुपुर्द हुए।

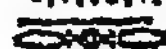
सन्ध्या हो गयी थी। ये विपत्तिके मारे फिर हवालात चले। सबोंके मुखपर उदासी छायी हुई थी। प्रियनाथके बयानने उन्हें हताश कर दिया था। वह यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि ऐसा उच्च पदाधिकारी प्रलोभनोंके फेरमें पड़कर असत्यकी ओर जा सकता है। सभी गर्दन झुकाये चले जाते थे। अकेला मनोहर रो रहा था।

इतनेमें प्रियनाथकी फिटन सड़कसे निकली। अभियुक्तोंने उन्हें अवहेलापूर्ण नेत्रोंसे देखा। मानों कह रहे थे, 'आपको इन दीन दुखियारोंपर तनिक भी दया न आयी।' डाक्टर साहबने भी उन्हें देखा, आंखोंमें ग्लानिका भाव झलक रहा था।

३४

जब मुकदमा सेशन सुपुर्द हो गया और ज्ञानशंकरको विश्वास हो गया कि अब अभियुक्तोंका बचना कठिन है तब उन्होंने गौस-खांकी जगहपर फैजुल्लाहको नियुक्त किया और खुद गोरखपूर चले आये। यहांसे गायत्रीकी कई चिट्ठियां गयी थीं। मायाशंकर-को भी साथ लाये। विद्याने बहुत कहा कि मेरा जी घबरायेगा, पर उन्होंने न माना।

इस एक महीनेमें ज्ञानशंकरने वह समस्या हल कर ली थी, जिसपर वह कई सालोंसे विचार कर रहे थे, उन्होंने वह मार्ग निर्धारित कर लिया था, जिससे गायत्रीदेवीके हृदयतक पहुंच सकें। इस मार्गकी दो शाखाएं थीं, एक विरोधात्मक थी और दूसरी विधायात्मक। ज्ञानशंकरने यही दूसरा मार्ग ग्रहण करना निश्चय किया। गायत्रीके उन धार्मिक भावोंको मिटाना जो किसी गढ़की दुर्भेद्य दीवारोंकी भांति उसके मनको वासनाओंसे बचाये हुए थे, दुस्तर था। ज्ञानशङ्कर एक बार इस प्रयत्नमें असफल हो चुके थे और कोई कारण नहीं था कि उस साधनका आश्रय लेकर वह फिर असफल न हों। इसकी अपेक्षा दूसरा मार्ग कितना सुगम और सुलभ था। उन धार्मिक भावोंको मिटानेके बदले



उन्हें और दृढ़ क्यों न कर दूं ? इमारतको विध्वंस करनेके बदले उसी भित्तिपर क्यों न और रद्दे चढ़ा दूं ? पानीके बहावका रुख पलटनेकी जगह उसी धाराको और तेज क्यों न कर दूं ? उसको अपना बनानेके बदले क्यों न आप ही उसका हो जाऊं ?

ज्ञानशंकरने गोरखपुर आकर पहलेसे भी अधिक उत्साह और अध्यवसायसे काम करना शुरू किया। धर्मशालाका काम स्थगित हो गया था। अबकी ठेकेदारोंसे काम न लेकर उन्होंने उसे अपनी ही निगरानीमें बनवाना शुरू किया। उसके सामने ही एक ठाकुरद्वारेका शिलारोपण भी कर दिया। वह नित्य प्रति प्रातःकाल मोटरपर सवार होकर घरसे निकल जाते और इलाकेका चक्कर लगाकर संध्यातक लौट आते। किसी कारिन्दे या कर्मचारीकी मजाल न थी कि एक कौड़ीतक खा सके, किसी शहना या चपरासीकी ताब न थी कि असामियोंपर किसी प्रकारकी सख्ती कर सके, और न किसी असामीका दिन था कि लगान चुकानेमें एक दिनका भी विलम्ब कर सके। सहकारी बैंकका काम भी चल निकला। किसान महाजनोंके जालसे मुक्त होने लगे और उनमें यह सामर्थ्य होने लगी कि खरीदारोंके भावपर जिन्स न बेचकर अपने भावपर बेच सकें। ज्ञानशङ्करका यह सुप्रबन्ध और कार्यपटुता देखकर गायत्रीकी सदिच्छा श्रद्धाका रूप धारण करती जाती थी। वह विविध रूपसे प्रत्युपकारकी चेष्टा करती। विद्याके लिये तरह-तरहके सौगात भेजती और मायाशङ्करपर तो जान ही देती थी। उसकी सवारीके लिये दो टांघन थे, पढ़ानेके लिये दो मास्टर। एक सुबहको आता था दूसरा शामको। उसकी टहलके लिये अलग दो नौकर थे। उसे अपने सामने बुलाकर नाश्ता कराती थी। आप अच्छी-अच्छी चीजें बनाकर उसे खिलाती। उसे कहानियां सुनाती और उसकी कहानियां सुनती। उसे आये दिन इनाम देती रहती। मायाशङ्कर अपनी मांको भूल गया। वह ऐसा समझदार, ऐसा मिष्टभाषी,

ऐसा विनयशील, ऐसा सरल बालक था, कि थोड़े ही दिनोंमें गायत्री उसे हृदयसे प्यार करने लगी।

ज्ञानशङ्करके जीवनमें भी एक विशेष परिवर्त्तन हुआ। अब वह नित्य सन्ध्या समय भागवतकी कथा सुना करते। दो चार साधु-सन्त जमा हो जाते, मेल-जोलके दस पांच सज्जन आ जाते, मुहल्लेके दो चार श्रद्धालु पुरुष आ बैठते और एक छोटी मोटी धार्मिक सभा हो जाती। यहां कृष्ण भगवानकी चर्चा होती, उनकी प्रेमकथायें सुनाई जातीं और कभी कभी कीर्तन भी होता था, लोग प्रेममें मग्न होकर रोने लगते, और सबसे अधिक अश्रुवर्षा ज्ञानशङ्करहीकी आंखोंसे होती थी। वह प्रेमके हाथों बिक गये थे।

एक दिन गायत्रीने कहा, अब तो आपके यहां नित्य कृष्णचर्चा होती है, परदेका प्रबन्ध हो जाय तो मैं भी आया करूं। ज्ञानशङ्करने श्रद्धापूर्ण नेत्रोंसे गायत्रीको देखकर कहा, यह सब आपहीके सत्संगका फल है। आपहीने मुझे यह भक्ति मार्ग दिखाया है और मैं आपहीको अपना गुरु मानता हूं। आजसे कई मास पहले मैं मायामोहमें फंसा हुआ, इच्छाओंका दास, वासनाओंका गुलाम, और सांसारिक बन्धनोंमें जकड़ा हुआ था। आपने मुझे बता दिया कि संसारमें निर्लिप्त होकर क्योंकर रहना चाहिये। इतनी सम्पत्तिशालिनी होकर भी आप संन्यसिनी हैं। आपके जीवनने मेरे लिये सदुपदेशका काम किया है।

गायत्री ज्ञानशंकरको विद्या और ज्ञानका अगाध सागर समझती थी। वह महान् पुरुष जिसकी लेखनीमें यह सामर्थ्य हो कि मुझे रानीके पदसे विभूषित करा दे, जिसकी वक्तृताओंको सुनकर बड़े बड़े अंगरेज उच्चाधिकारी दंग रह जायं, जिसके सुप्रबन्धकी आज सारे जिलेमें धूम है, मेरा इतना भक्त हो, इस कल्पनाहीसे उसका गौरवशील हृदय विह्वल हो गया। ऐसे सम्मानोंके अवसरोंपर उसे अपने स्वामीकी याद आ जाती थी

विनीत भावसे बोली, बाबूजी यह सब भगवानकी दया है, उन्होंने आपको यह भक्ति प्रदान की है, नहीं तो लोग यावज्जीवन धर्मोपदेश सुनते रह जाते हैं और फिर भी उनके ज्ञानचक्षु नहीं खुलते। कहीं स्वामीजीसे आपकी भेंट हो गयी होती तो आप उनके दर्शनमात्रहीसे मुग्ध हो जाते। वह धर्म और प्रेमके अवतार थे। मैं जो कुछ हूं उन्हींको बनायी हुई हूं। यथासाध्य उन्हींकी शिक्षाओंका पालन करती हूं, नहीं तो मेरी इतनी गति कहां थी कि भक्तिरसका स्वाद पा सकती।

ज्ञानशंकर—मुझे भी यही खेद है कि उन महात्माके दर्शनोंसे वंचित रह गया। जिसके सदुपदेशमें यह महान् शक्ति है वह स्वयं कितना प्रतिभाशाली होगा! मैं कभी कभी स्वप्नमें उनके दर्शनसे कृतार्थ हो जाता हूं। कितनी सौम्य मूर्ति थी, मुखारविन्दसे प्रेमकी ज्योतिसी प्रसारित होती हुई जान पड़ती है। साक्षात् कृष्ण भगवानके अवतार मालूम होते हैं।

दूसरे दिनसे परदेकी आयोजना हो गयी और गायत्री नित्य प्रति इन सत्संगोंमें भाग लेने लगी। भक्तोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी। कीर्तनके समय लोग भावोन्मत्त होकर नाचने लगते। गायत्रीके हृदयमें भी यही प्रेमतरंगें उठतीं, यहांतक कि ज्ञानशंकर भी स्थिरचित्त न रह सकते। कृष्णके पवित्र प्रेमकी लीलायें उनके चित्तको भी एक क्षणके लिये प्रेमसे आभासित कर देती थीं। और इस प्रकाशमें उन्हें अपनी कुटिलता और क्षुद्रता अत्यन्त घृणोत्पादक दीख पड़ती। लेकिन सत्संगके समाप्त होते ही यह क्षणिक ज्योति फिर स्वार्थान्धकारमें विलीन हो जाती थी। बालक कृष्णकी भोली भाली क्रीड़ायें, उनकी वह मनोहर तोतली बातें, यशोदाका वह विलक्षण पुत्रप्रेम, गोपियोंकी वह आत्मविस्मृति, प्रीतिके वह भावमय रहस्य, वह अनुरागके उद्गार, वह बन्सीकी मतवाली तान, वह यमुनातटके विहारकी कथायें लोगोंको अतीव आनन्दप्रद आत्मिक उल्लासका अनुभव देती थीं।

भूतवादियोंकी दृष्टिमें यह कथायें कितनी ही लज्जास्पद क्यों न हों, पर उन भक्तोंके अन्तःकरण इनके श्रवणमात्रहीसे गद्गद् हो हो जाते थे, राधा और यशोदाका नाम आते ही आंखोंसे आंसूकी झड़ी लग जाती थी। कृष्णके नाममें क्या जादू है, इसका अनुभव हो जाता था।

एक बार वृन्दावनसे रासलीला-मंडली आयी और महीनेभर-तक लीला करती रही। सारा शहर देखनेको फट पड़ता था। ज्ञानशङ्कर प्रेमकी मूर्ति बने हुए लोगोंका आदर-सत्कार करते, छोटे बड़े सबको खातिरसे बैठाते। स्त्रियोंके लिये विशेष प्रबन्ध कर दिया गया था। यहां गायत्री उनका स्वागत करती, उनके बच्चोंको प्यार करती और मिठाई-मेवे बांटती। जिस दिन कृष्णके मथुरा-गमनकी लीला हुई, दर्शकोंकी इतनी भीड़ हुई कि सांस लेना मुश्किल था। यशोदा और नन्दकी हृदयविदारिणी बातें सुनकर दर्शकोंमें कोहराम मच गया। रोते रोते कितने ही भक्तोंकी घिग्घी बंध गयीं और गायत्री तो मूर्च्छित होकर गिर ही पड़ी। होश आनेपर उसने अपनेको अपने शयनगृहमें पाया। कमरेमें सन्नाटा छाया था, केवल ज्ञानशङ्कर खड़े उसे पंखा झल रहे थे। गायत्रीपर इस समय वह अलसता छायी हुई थी जब मनुष्य किसी थके हुए पथिककी भांति अधीर होकर छांहकी ओर दौड़ता है। उसका हृदय निर्मल, विशुद्ध प्रेमसे परिपूर्ण हो रहा था। उसने ज्ञानशङ्करको बैठ जानेका संकेत किया और तब शैशवोचित सरलतासे उनकी गोदमें सिर रखकर आकांक्षापूर्ण भावसे बोली, मुझे वृन्दावन ले चलो।

तीसरे दिन रासलीला समाप्त हुई। उसी दिन ज्ञानशङ्कर गायत्रीको संग ले बड़े समारोहके साथ वृन्दावन चले।

३५

सेशन्स जजके इजलासमें एक महीनेसे मुकदमा चल रहा है। अभियुक्तोंने फिर सफाई दी। आज मनोहरका बयान था।

इजलासमें एक मेलासा लगा हुआ था। मनोहरने बड़ी निर्भीक दृढ़ताके साथ सारी घटना आदिसे अन्ततक बयान की और यदि जनताको अधिकार होता तो अन्य अभियुक्तोंका बेदाग छूट जाना निश्चय था; किन्तु अदालत जाब्ते और नियमोंके बन्धनमें जकड़ी हुई थी। यह जानकर भी अनजान बननेपर बाध्य थी। मनोहरके अन्तिम वाक्य बड़े मार्मिक थे—सरकार, माजरा यही है जो मैंने आपसे अरज किया! मैंने गौसखांको इसी कुल्हाड़ीसे और इन्हीं हाथोंसे मारा; कोई मेरा साथी, मेरा सलाहकार मेरा मददगार नहीं था। अब आपको अख्तियार है, चाहे सारे गांवको फांसीपर चढ़ा दें, चाहे कालेपानी भेज दें, चाहे छोड़ दें। फैजू, बिशेशर, दरोगाने जो कुछ कहा है, सब झूठ है। दरोगाजीकी बात तो मैं नहीं चलाता, पर सरकार फैजू और बिशेशरको अपने घरपर बुलायें और दिलासा दें कि पुलिस तुम्हारा कुछ न कर सकेगी तो मेरी सच-झूठकी परख हो जाय। और मैं क्या कहूं! उन लोगोंका काठका कलेजा होगा जो इतने गरीबोंको बेकसूर फांसीपर चढ़वाये देते हैं। भगवान झूठ सच सब देखते हैं। बिशेशर और फैजूकी तो थोड़ी औकात है और दरोगाजी झूठकी रोटी ही खाते हैं, पर डाक्टर साहब इतने बड़े आदमी और ऐसे विद्वान् होकर कैसे झूठी गङ्गामें तैरने लगे, इसका मुझे अचरज है। इसके सिवा और क्या कहा जाय कि गरीबोंका नसीबा ही खोटा है कि बिना कसूर किये फांसी पाते हैं। अब सरकारसे और पंचोंसे यही बिनती है कि तुम इस घड़ी न्यायके आसनपर बैठे हो, अपने इनसाफसे दूध का-दूध और पानी-का-पानी कर दो।

अदालत उठी। यह दुखियारे हवालात चले। और सभोंने तो मनको समझा लिया था कि भाग्यमें जो कुछ बदा है वह होकर रहेगा, पर दुखरन भगतकी छातीपर सांप लोटता रहता था। उसे रह रहकर उत्तेजना होती थी कि अवसर पाऊं तो

मनोहरको खूब आड़े हाथों लूं। किन्तु मजबूर था; क्योंकि मनोहर सबसे अलग रक्खा जाता था। हां, वह बलराजको ताने दे देकर अपने चित्तकी दाहको शान्त किया करता था। आज मनोहरका बयान सुनकर उसे और भी चिढ़ हुई, जब चिड़ियां खेत चुग गयीं तो यह हांक लगाने चले हैं। उस घड़ी अकल कहां चली गयी थी, जब एक जरा सी बातपर कुल्हाड़ा बांधकर घरसे चले थे। इस समय मार्गमें उसे मनोहर-पर अपना क्रोध उतारनेका मौका मिल गया। बोला—आज क्या झूठ मूठमें बकवाद कर रहे थे। आदमीको तीर चलानेके पहले ही सोच लेना चाहिये कि यह किसको लगेगा? जब तीर कमानसे निकल गया तो फिर पछतानेसे क्या होता है? तुम्हारे कारण सारा गांव चौपट हो गया। अनाथ लड़कों और औरतों-की कौन सुध लेनेवाला है? बेचारे रोटियोंको तरसते होंगे। तुमने सारे गांवको मटियामेट कर दिया।

मनोहरको स्वयं आठों पहर यही शोक सताया करता था। गौसखांका वध करते समय भी उसे यही चिन्ता थी। इसीलिए उसने खुद थानेमें आकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। गांवको आफतसे बचानेके लिए उसके किये जो कुछ हो सकता था वह उसने किया और उसे दृढ़ विश्वास था कि चाहे मुझे अपने दुष्कृत्यपर कितना ही पश्चात्ताप हो रहा हो, अन्य लोग मुझे क्षम्य ही न समझते होंगे, मुझसे सहानुभूति भी रखते होंगे। मुझे जलानेके लिए अन्दरकी आग क्या कम है कि ऊपरसे भी तेल छिड़का जाय। वह दुखरनकी यह कटु बातें सुनकर तिल-मिला उठा, जैसे पके हुए फोड़ेमें ठेंस लग जाय। कुछ जवाब न दे सका।

आज अभियुक्तोंके लिए प्रेमशंकरने जेलके दारोगाकी अनु-मतिसे कुछ स्वादिष्ट भोजन बनवा कर भेजे थे। अपने उच्च सिद्धान्तोंके विरुद्ध जेलखानेके छोटे छोटे कर्मचारियोंकी भी

खातिर और खुशामद किया करते थे। जिसमें वह अभियुक्तोंपर कृपादृष्टि रक्खें। जीवनके अनुभवोंने उन्हें बतला दिया था कि सिद्धान्तोंकी अपेक्षा मनुष्य अधिक आदरणीय वस्तु हैं। औरोंने तो इच्छापूर्ण भोजन किया, लेकिन मनोहर इस समय हृदयतापसे विकल था। उन पदार्थोंकी रुचिवर्द्धक सुगन्धि भी उसकी क्षुधाको जागृत न कर सकी। आज वह शब्द उसके कानोंमें गूंज रहे थे जो अबतक केवल हृदयहीमें सुनायी देते थे—तुम्हारे कारण सारा गांव मटियामेट हो गया, तुमने सारे गांवको चौपट कर दिया। हां, यह कलङ्क मेरे माथेपर सदाके लिये लग गया, अब यह दाग कभी न छूटेगा। जो अभी बालक हैं वे मुझे गालियां दे रहे होंगे। उनके बच्चे मुझे गांवका द्रोही समझेंगे। जब मरदोंके यह विचार हैं जो सब बातें जानते हैं, जिन्हें भली भांति मालूम है कि मैंने गांवको बचानेके लिये अपनी ओरसे कोई बात उठा नहीं रक्खी और जो यह अंधेर हो रहा है वह समयका फेर है, तो भला स्त्रियां क्या कहती होंगी, जो बेसमझ होती हैं। बेचारी बिलासी गांवमें किसीको मुंह न दिखा सकती होगी। उसका घरसे निकलना मुश्किल हो गया होगा। और क्यों न कहें? उनके सिरपर बीत रही है तो कहेगा कौन? अभी तो अगहनी घरमें खानेको हो जायगी। लेकिन खेत तो बोये न गये होंगे, चैतमें जब एक दाना भी न उपजेगा, बाल बच्चे दाने दानेको रोयेंगे, तब उनकी क्या दशा होगी! मालूम होता है इस कम्बलमें खटमल हो गये हैं, नोचे डालते हैं। और यह रोना साल दो सालका नहीं है, कहीं सब कालेपानी भेज दिये गये, तो जन्मभरका रोना है। कादिर मियांका लड़का तो घर संभाल लेगा, लेकिन और सभी मिट्टीमें मिल जायेंगे और यह सब मेरी करनीका फल है।

सोचते सोचते मनोहरको झपकी आ गयी। उसने स्वप्न देखा कि एक चौड़े मैदानमें हजारों आदमी जमा हैं, फांसी खड़ी

है और मुझे फांसीपर चढ़ाया जा रहा है। हजारों आंखें मेरी ओर घृणाकी दृष्टिसे ताक रही हैं। चारों तरफसेसे यही ध्वनि आ रही है, इसीने सारे गांवको चौपट किया। फिर उसे ऐसी भावना हुई कि मैं मर गया हूं और कितने ही भूत पिशाच मुझे चारों ओरसे घेरे हुए हैं और कह रहे हैं, कि इसीने हमें दाने-दानेको तरसाकर मार डाला, यही पापी है, इसे पकड़कर आगमें झोंक दो। मनोहरके मुखसे सहसा एक चीख निकल आयी, आंखें खुल गयी, कमरा खूब अन्धेरा था, लेकिन जागनेपर भी वही पैशाचिक, भयङ्कर मूर्त्तियां उसके चारों तरफ मंडलाती हुई जान पड़ती थी। मनोहरकी छाती बड़े वेगसे धड़क रही थी, जी चाहता था बाहर निकल भागूं, किन्तु द्वार बन्द थे।

अकस्मात् मनोहरके मनमें यह विचार अङ्कुरित हुआ—क्या मैं यही सब कौतुक देखने और सुननेके लिये जीऊं? सारा गांव, सारा देश मुझसे घृणा कर रहा है। बलराज भी मनमें मुझे गालियां दे रहा होगा। उसने मुझे कितना समझाया, लेकिन मैंने एक न मानी। लोग कहते होंगे सारे गांवको बंधवाकर अब भी मुस्टण्डा बना हुआ है, इसे तनिक भी लज्जा नहीं, सिर पटककर मर क्यों नहीं जाता? बलराजपर भी चारों ओरसे बौछारें पड़ती होंगी, सुन सुनकर फटता जाता होगा। अरे!—भगवान! यह कैसा उजाला है! नहीं, उजाला नहीं है। किसी पिशाचकी लाल लाल आंखें हैं, मेरी ही तरफ लपकी आ रही हैं, या नारायण! क्या करूं? मनोहरकी पिंडलियां कांपने लगीं, यह लाल आंखें प्रति क्षण उसके समीप आती आती थीं। वह न तो उधर देख ही सकता था और न उधरसे आंखें ही हटा सकता था, मानों किसी आसुरिक शक्तिने उसके नेत्रोंको बांध दिया हो। एक क्षणके बाद मनोहरको एककी जगह कई आंखें दिखाई देने लगीं, नहीं, प्रज्व-लित, अग्निमय, रक्तयुक्त नेत्रोंका एक समूह है, धड़ नहीं, सिर नहीं, कोई अङ्ग नहीं, केवल चिदग्धित आंखें ही हैं जो मेरी तरफ

टूटे हुए तारोंकी भांति सर्राटा भरती चली आती हैं। पृथ्वी। और हुआ, यह नेत्र समूह शरीरयुक्त होने लगा और गोरखत याहुत स्वरूपमें बदल गया। यकायक बाहर घड़ाकेकी आवाज हुई। मनोहर बदहवास होकर पीछेकी दीवारकी ओर भागा, लेकिन एक ही पगमें दीवारसे टकराकर गिर पड़ा, सिरमें चोट आयी, फिर उसे ज्ञान पड़ा कि कोई द्वारका ताला खोल रहा है, तब किसीने पुकारा 'मनोहर! मनोहर!' मनोहरने आवाज पहचानी, जेलका दारोगा था। उसकी जानमें जान आयी। फड़ककर बोला, 'हां साहब, जागता हूं।' पैशाचिक जगतसे निकल कर वह फिर चैतन्य संसारमें आया। उसे अब नेत्रसमूहका रहस्य खुला। दारोगाकी लालटेनकी ज्योति थी, जो किवाड़की दरारों-से कोठरीमें आ रही थी। इसी साधारण सी बातने उसे इतना सशंक कर दिया था। दारोगा आज गश्त करने निकला था।

दारोगाके चले जानेके बाद मनोहर कुछ सावधान हो गया। शङ्कोत्पादक कल्पनाएं शान्त हुईं; लेकिन अपने तिरस्कार और अपमानकी चिन्ताओंने फिर आ घेरा। सोचने लगा, एक वह हैं जो उजड़े हुए गांवोंको आबाद करते हैं और जिनका जस संसार गाता है। एक मैं हूं जिसने गांवको उजाड़ दिया। अब कोई भोरके समय मेरा नाम न लेगा। ऐसा जान पड़ता है कि सभी डामुल जायंगे, एक भी न बचेगा। अभी न जाने कितने दिन यह मामला चलेगा। महीने भर लगें, दो महीने लग जायें, इतने दिनोंतक मैं सबकी आंखोंमें कांटेकी तरह खटकता रहूंगा, सब मुझे कोसेंगे, गालियां दिया करेंगे। आज दुखरनने कह ही सुनाया, कल कोई और ताने देगा, कादिरखांको भी यह कैद अखरती ही होगी। और तो और, कहीं बलराज भी न खुल पड़े। हा! मुझे उसकी जवानीपर भी तरस न आया, मेरा लाल मेरे ही हाथों······ मैं अपने जवान बेटेको अपने ही हाथों··············हा भगवान, अब यह दुःख नहीं सहा जाता, फांसी अभी न जाने कब होगी,

है और ?
ओर ,जाने कहीं सबके साथ मेरा भी डामुल हो जाय, तब तो
छूते दमतक इन लोगोंके जले कटे वचन सुनने पड़ेंगे। बलराज,
तुझे कैसे बचाऊं ? कौन जाने हाकिम यही फैसला करे कि यह
जवान है, इसीने कुल्हाड़ा मारा होगा। हा भगवान! तब क्या
होगा! क्या अपनी ही आंखोंसे यह..........नहीं ऐसे जीनेसे
तो मरना ही अच्छा है। नकटा जिया बुरे हवाल। बस, एकही
उपाय है—हां !!

३६

फैजुल्लाहखांका गौसखांके पदपर नियुक्त होना गांवके दुखियारोंके घावपर नमक छिड़कना था। पहले ही दिनसे खींचतान होने लगी और फैजूने विरोधाग्निको शान्त करनेकी कोई जरूरत न समझी। अब वह मुसल्लम गांवके सत्ताधारी शासक थे। उनका हुक्म कानूनके तुल्य था। किसीको चूं करनेकी मजाल न थी। गांवका दूध घी, उपलें लकड़ी, घास पयाल, कद्दू कुम्हड़े, हल बैल सब उनके थे। जो अधिकार गौसखांको जीवनपर्यन्त न प्राप्त हुए वह समयके उलट-फेर और सौभाग्यसे फैजुल्लाहको पहले ही दिनसे प्राप्त हो गये। अन्याय और स्वेच्छाके मैदानमें अब उनके घोड़ोंको किसी ठोकरका भय न था। पहले फत्तारसिंहकी ओरसे कुछ शङ्का थी, किन्तु उनकी नीतिकुशलताने शीघ्र ही उसकी अभक्तिको परास्त कर दिया। वह अब उनका आज्ञाकारी सेवक, उनका परम शुभेच्छु था। वह अब गला फाड़ फाड़ कर रामायणका पाठ करता, सारे गांवके ईंट पत्थर जमा करके चौपालके सामने ढेर लगा दिये और उनपर घड़ों पानी चढ़ाता। घण्टों चन्दन रगड़ता, घण्टों भंग घोटता, कोई रोक टोक करनेवाला न था। फैजुल्लाहखां नित्य प्रातःकाल टांघनपर सवार होकर गांवका चक्कर लगाते, फत्तार और बिन्दा महाराज लठ लिए उनके पीछे पीछे चलते। जो कुछ नीचे खसोटे मिल जाता, वह लेकर लौट आते थे। यों तो समस्त गांव उनके अत्याचारसे

पीड़ित था, पर मनोहरके घरपर इन लोगोंकी विशेष कृपा थी। पूसहीमें बिलासीपर बकाया लगानकी नालिश हुई और उसके सब जानवर कुर्क हो गये। फैजूको पूरा विश्वास था कि अबकी चैतमें किसीसे मालगुजारी वसूल तो होगी नहीं, सभोंपर बेदखलीके दावे कर दूंगा और एक ही हल्लेमें सभोंको समेट लूंगा। मुसल्लम गांवको बेदखल कर दूंगा, आमदनी चटपट दूनी हो जायगी। पर इस दुष्कल्पनासे उन्हें संतोष न होता था। डांट फटकार, गाली गलौजके बिना रोब जमाना कठिन था। अतएव नियमपूर्वक इस नीतिका सदुपयोग किया जाने लगा। बिलासी मारे डरके घरमेंसे निकलती ही न थी। उसकी रब्बी खेतमें खड़ी सूख रही थी, पानी कौन दे? न बैल अपने थे और न किसीसे मांगनेहीका मुंह था।

एक दिन संध्या समय बिलासी अपने द्वारपर बैठी रो रही थी। यही उसका मामूल था। मनोहरकी आत्महत्याकी खबर उसे कई दिन पहले मिल चुकी थी। उसे अपने सर्वनाशका इतना शोक न था जितना इस बातका कि कोई उसकी बात पूछनेवाला न था। जिसे देखिये, उसे जली-कटी सुनाता था। न कोई उसके घर आता न जाता। यदि वह बैठे-बैठे उकताकर किसीके घर चली जाती, तो वहां भी उसका अपमान किया जाता। वह गांवकी नागिन समझी जाती थी, जिसके विषने समस्त गांवको कालका ग्रास बना दिया। और तो और, उसकी बहू भी उसे ताने देती थी। सहसा उसने सुना कि सुक्खू चौधरी अपने मन्दिरमें आकर बैठे हैं। वह तुरत मन्दिरकी ओर चली। वह सहानुभूतिकी प्यासी थी। सुक्खू इन घटनाओंके विषयमें क्या कहते हैं, यह जाननेकी उसे उत्कट इच्छा थी। उसे आशा थी कि सुक्खू अवश्य निष्पक्ष भावसे अपनी सम्मति प्रकट करेंगे। जब वह मन्दिरके निकट पहुंची तो गांवकी कितनी ही नारियों और बालकोंको वहां जमा पाया। सुक्खूकी दाढ़ी बढ़ी

हुई थी, सिरपर एक कंटोप था और शरीरपर एक रामनामी चादर। बहुत उदास और दुःखी जान पड़ते थे। नारियां उनसे गौसखांकी हत्याकी चर्चा कर रही थीं। मनोहरकी खूब ले दे हो रही थी। विलासी मन्दिरके निकट पहुंचकर ठिठक गयी कि इतनेमें सुक्खूने उसे देखा और बोले, आओ विलासी, आओ बैठो, मैं तो तुम्हारे पास आप ही आनेवाला था।

विलासी—तुम तो कुसलसे रहे?

सुक्खू—जीता हूं, बस यही कुसल है। जेहलसे छूटा तो बद्रीनाथ चला गया, वहांसे जगन्नाथ होता हुआ चला आता हूं। बद्रीनाथमें एक महात्मके दर्शन हो गये, उनसे गुरुमंत्र भी ले लिया। अब मांगता खाता फिरता हूं। गृहस्थीके जंजालसे छूट गया।

विलासीने डरते डरते पूछा, यहांका हाल तो तुमने सुना ही होगा?

सुक्खू—हां, जबसे आया हूं यही चर्चा हो रही है और उसे सुनकर मुझे तुमपर ऐसी श्रद्धा हो गयी है कि तुम्हारी पूजा करनेको जी चाहता है। तुम क्षत्राणी हो, अहीरकी कन्या होकर भी तुम क्षत्राणी हो। तुमने वही किया जो क्षत्राणियां किया करती हैं। मनोहर भी क्षत्री है, उसने वही किया जो क्षत्री करते हैं, वह वीर आत्मा था। इस मन्दिरमें अब उसकी समाधि बनेगी और उसीकी पूजा होगी। इसमें अभीतक किसी देवताकी स्थापना नहीं हुई है, अब उसी वीर मूर्त्तिकी स्थापना होगी। उसने गांवकी लाज रख ली, स्त्रीकी मर्जाद रख ली, यह सब क्षुद्र आत्मायें बैठी उसे बुरा भला कह रही हैं। कहती हैं, उसने गांवका सर्वनाश कर दिया। इनमें लज्जा नहीं है, अपने मर्जादका कुछ गौरव नहीं है। उसने गांवका सर्वनाश नहीं किया, उसे वीरगति दे दी, उसका उद्धार कर दिया। नारियोंकी रक्षा करनी पुरुषोंका धर्म है। मनोहरने अपने धर्मका पालन किया।

उसको बुरा वही कह सकता है जिसकी आत्मा मर गयी है, जो बेहया हो गया है। गांवके दस पांच पुरुष फांसी चढ़ जायं तो कोई चिन्ता नहीं। यहां एक एक स्त्रीके पीछे लाखों सिर कट गये हैं। सीताके पीछे रावणका राज्यविध्वंस हो गया। द्रौपदीके पीछे १८ लाख जोधा मर मिटे। इज्जतके लिये दस पांच जानें चली जायं तो क्या बड़ी बात है! धन्य है मनोहर, तेरे साहसको, तेरे पराक्रमको, तेरे कलेजेको।

सुक्खूका एक एक शब्द वीर रसमें डूबा हुआ था। विलासी-के हृदयमें वह गुदगुदी हो रही थी जो अपनी सराहना सुनकर हो सकती है। जी चाहता था सुक्खूके चरणोंपर सिर रख दूं। किन्तु अन्य स्त्रियां सुक्खूकी ओर कुतूहलसे ताक रही थीं कि यह क्या बकता है।

एक क्षणके बाद सुक्खूने विलासीसे पूछा, खेती बारीका क्या हाल है?

विलासीके खेत सूख रहे थे, पर अपनी विपत्ति कथा सुनाकर वह सुक्खूको दुःखी नहीं करना चाहती थी। बोली, दादा, तुम्हारी दयासे खेती अच्छी हो गयी है, कोई चिन्ता नहीं है। कई और साधु आ गये जो सुक्खूके साथी जान पड़ते थे। उन्होंने धूनी जलायी और चरसके दम लगाने शुरू किये। गांवके लोग भी एक एक करके वहांसे चलने लगे। जब विलासी जाने लगी तो सुक्खूने कहा, विलासी, मैं पहर रात रहे यहांसे चला जाऊंगा, घूमता घामता कई महीनोंमें आऊंगा। तब यहां मूर्तिकी स्थापना होगी। उस यज्ञके लिये भीख मांगकर रुपये जमा करने हैं। तुम्हें किसी बातकी तकलीफ हो तो कहो।

विलासी—नहीं दादा, तुम्हारी दयासे कोई तकलीफ नहीं है।

सुक्खू तो प्रातःकाल चले गये, पर विलासीपर उनकी भाव-पूर्ण बातोंका गहरा असर पड़ा। अब वह किसी दलित दीनको

भांति गांववालोंके व्यंग्य और लांछन न सुनती और न किसीको उसपर उतनी निर्भयतासे आक्षेप करनेका साहस ही होता था। इतना ही नहीं, बिलासीकी बातचीत, चाल-ढालसे अब आत्म-गौरव टपक पड़ता था। कभी कभी वह बढ़ बढ़कर बातें करने लगती, पड़ोसियोंसे कहती,—"तुम अपनी लाज बेचकर अपनी चमड़ीको बचाओ, यहां इज्जतके पीछे जानतक दे देते हैं। मैं विधवा हो गयी तो क्या, घर सत्यानास हुआ तो क्या, किसीके सामने आँख तो नीची नहीं हुई। अपनी लाज तो रक्खी।" पतिकी मृत्यु और पुत्रका वियोग अब उतना असह्य न था।

एक दिन उसने इतनी डींग मारी कि उसकी बहूसे न रहा गया। चिढ़कर बोली—अम्मां, ऐसी बातें करके घावपर नमक न छिड़को, तुम सब सुख बिलास कर चुकी हो, अब विधवा ही हो गयी तो क्या, उन दुखियारियोंसे पूछो जिनकी अभी पहाड़-सी उमिर पड़ी है, जिन्होंने अभी जिन्दगीका कुछ सुख नहीं जाना। अपनी मरजाद सबको प्यारी होती है, पर उसके लिये जनमभरका रंड़ापा सहना कठिन है। तुम्हें क्या, आज नहीं कल रांड़ होतीं। तुम्हारे भी खेलने खानेके दिन होते तो देखती कि अपनी लाजको कितनी प्यारी समझती हो।

बिलासी तिलमिला उठी। उस दिनसे बहूसे बोलना छोड़ दिया, यहांतक कि बलराजकी भी चर्चा न करती। जिस पुत्र-पर जान देती थी उसके नामसे भी घृणा करने लगी, बहूके इन अमृदुल शब्दोंने उस मातृस्नेहका अन्त कर दिया जो २५ सालसे जीवनका अवलम्ब और आधार बना हुआ था। कुछ दिनोंतक तो उसने मौनरूपसे अपना कोप प्रकट किया, किन्तु जब यह प्रयोग सफल न होता देख पड़ा तो उसने बहूकी निन्दा करनी शुरू की। गांवमें कितनी ही ऐसी वृद्धा महिलाएं थीं जो अपनी बहुओंसे जला करती थीं। उन्हें बिलासीसे सहानुभूति हो गयी। शनैः शनैः यह कैफियत हुई कि बिलासीके बरोठेमें सासोंकी नित्य

बैठक होती और बहुओंके खूब दुखड़े रोये जाते। उधर बहुओंने भी अपनी आत्मरक्षाके लिये एक सभा स्थापित की। इसकी बैठक नित्य दुखरन भगतके घर होती। विलासीकी बहू इस सभाकी संचालिका थी। इस प्रकार दोनों दलोंमें विरोध बढ़ने लगा। यहांकी बातें किसी-न-किसी प्रकार वहां जा पहुंचतीं और वहांकी बातें भी किसी गुप्त दूत द्वारा यहाँ आ जातीं। उनके उत्तर दिये जाते, उत्तरोंके प्रत्युत्तर मिलते। और नित्य यही कार्य्यक्रम चलता रहता था। इस प्रश्नोत्तरमें जो आकर्षण था, वह अपनी विपत्ति और विडम्बनापर आँसू बहानेमें कहां था? इस व्यंग-संग्राममें एक सजीव आनन्द था। द्वेषकी कनफुसकियां मनोहर गानसे भी अधिक शोकहारी होती हैं!

यहां तो यह हाल था, उधर फस्ल खेतोंमें सूख रही थी। मियां फैज़ुल्लाह सूखे खेतोंको देखकर खिल जाते थे। देखते-देखते चैतका महीना आ गया, मालगुजारीका तकाज़ा होने लगा। गांवके बचे हुए लोग अब चेते। वह भूलसे गये थे कि मालगुजारी भी देनी है। दरिद्रतामें मनुष्य प्रायः भाग्यका आश्रेता हो जाता है। फैज़ुल्लाहने सख्ती करनी शुरू की। किसीको चौपालके सामने धूपमें खड़ा करते, किसीको मुश्कें कसकर पिटवाते। दीन नारियोंके साथ और भी पाशविक व्यवहार किया जाता, किसीकी चूड़ियां तोड़ी जातीं, किसीके जूड़े नोचे जाते। इन अत्याचारोंको रोकनेवाला अब कौन था? सत्याग्रहमें अन्यायको दमन करनेकी शक्ति है, यह सिद्धान्त भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध हो गया। फैजू जानता था कि पत्थरको दबानेसे तेल न निकलेगा, लेकिन इन अत्याचारोंसे उसका उद्देश्य गांववालोंका मान मर्दन करना था। इन दुष्कृत्योंसे उसकी पशुवृत्तिको असीम आनन्द मिलता था।

धीरे-धीरे जेठ भी गुजरा, लेकिन एक कौड़ी लगान न वसूल हुआ, खेतमें अनाज होता तो कोई-न-कोई महाजन खड़ा हो

जाता। लेकिन सूखी खेतीको कौन पूछता है ? अन्तमें ज्ञानशङ्कर-ने बेदखली दायर करनेकी ठान ली। इसीकी देर थी, नालिश हो गयी, किन्तु गांवमें रुपयोंका कोई बन्दोबस्त न हो सका। उज्र-दारी करनेवाला भी कोई न निकला। सबको विश्वास था कि एकतरफा डिग्री होगी और सबके सब बेदखल हो जायंगे। फैजू और कर्तार बगलें बजाते फिरते थे। अब मैदान मार लिया है! खां साहब गये तो क्या, गांव साफ हो गया। कोई दखीलकार असामी रहेगा ही नहीं, जितनी चाहें जमीनका दर बढ़ा सकते हैं। हजारकी जगह दो हजार वसूल होंगे। इस कारगुजारीका सेहरा मेरे सिर बंधेगा। दूर-दूरतक मेरी धूम हो जायगी। इन कल्पना-ओंसे फैजू मियां फूले न समाते।

निदान फैसलेकी तारीख आ गयी। कर्तारसिंहने मलमलका ढीला कुरता और गुलाबी पगड़ी निकाली, जूतेमें कड़वा तेल भरा, लाठीमें तेल मला, बाल बनवाये और माथेपर भभूत लगायी। फैजुल्लाहखांने चारजामेकी मरम्मत करायी, अपनी काली अच-कन और सुफेद पगड़ी निकाली। बिन्दा महाराजने भी धुली हुई गाढ़ेकी मिर्जई और गेरूमें रंगी हुई धोती पहनी। बेगारोंके सिरोंपर कम्बल फर्श आदि लादे गये और तीनों आदमी कचहरी चलनेको तैयार हुए। केवल खांसाहबकी नमाजकी देर थी।

किन्तु गांवमें जरा भी हलचल न थी। मर्दोंमें कादिरके छोटे लड़केके सिवा और सभी नीच जातियोंके लोग थे, जिन्हें मान अपमानका ज्ञान ही न था। और वह बेचारा कानूनी बातोंसे अनभिज्ञ था। झपटके दिलमें ऐसा हौल समाया हुआ था कि घरसे बाहर ही न निकलते थे। रहीं स्त्रियाँ, वह दीन अबलायें कानूनका मर्म क्या जानें! आज भी नियमानुसार उनके दोनों अखाड़े जमे हुए थे। बुढ़िया कहती थी खेत निकल जायें, हमारी बलासे, हमें क्या करना है! आज मरे कल दूसरा दिन, रहे भी तो हमारे किस काम आयेंगे! इन रानियोंका घमण्ड तो

चूर हो जायगा! यहाँतक कि बिलासी भी जो इस सारी विपत्ति-कथाकी कैकेयी थी, आज निश्चिन्त बैठी हुई थी। विपक्षी दलको आज सन्धि-प्रार्थनाकी इच्छा हो रही थी, लेकिन कुछ तो अभिमान, और कुछ प्रार्थनाकी स्वीकृतिकी निराशा इच्छाको व्यक्त न होने देती थी।

आठ बजे खाँसाहबकी नमाज पूरी हुई, उधर बिन्दा महराज-ने चबेना खाकर तम्बाकू फांका और कर्तारसिंहने घोड़ेको लाने-का हुक्म दिया, कि इतनेमें सुक्खू चौधरी सामनेसे आते हुए दिखायी दिये। वही पहलेका-सा भेष था, सिरपर कन्टोप, चन्दन, गलेमें चादर हाथमें एक चिमटा। आकर चौपालमें जमीनपर बैठ गये। गांवके कई लड़के जो उनके साथ दौड़ते आये थे, बाहर ही रुक गये। फैजूने पूछा, चौधरी, कहो खैरि-यतसे तो रहे। तुम्हें जेलसे निकले कितना अरसा हुआ?

चौधरीने कर्तारसे चिलम ली, एक लम्बा दम लगाया और मुंहसे धुएंका बादल निकालते हुए बोले, आज बेदखलीकी तारीख है न?

कर्तार—कागद पत्तर देखा जाय तो जान पड़े। यहां नित्त एक न एक मामला लगा ही रहता है। कहांतक कोई याद रक्खे!

चौधरी—बेचारोंपर एक विपत्ति तो थी ही, यह एक और बला सवार हो गयी।

फैजू—मैं मजबूर हो गया। क्या करता? जाब्ते और कानूनसे बंधा हुआ हूं। चैत, बैशाख, जेठ—तीन महीनेतक तकाजे करता रहा, इससे ज्यादा मेरे बसमें और क्या था?

यह कहकर उन्होंने चौधरीकी ओर इस अन्दाजसे देखा, मानों वह शील और दयाके पुतले हैं।

चौधरी—अगर आज सब रुपये वसूल हो जायँ तो मुकदमा खारिज हो जायगा न?

फैजूने विस्मित होकर चौधरीको देखा और बोले—खर्चेका सवाल है।

चौधरी—अच्छा, बतलाइये, आपके कुल कितने रुपये होते हैं? खर्चा भी जोड़ लीजिये।

यह कहकर चौधरीने कमरसे नोटोंका एक पुलिन्दा निकाला, एक थैलीमेंसे कुछ रुपये भी निकाले और खांसाहबकी ओर प्रतीक्षा भावसे देखने लगे। फैजूके होश उड़ गये, कर्तारके चेहरेका रंग उड़ गया, मानों घरसे किसीके मरनेकी खबर आ गयी हो। बिन्दा महराजने ध्यानसे रुपयोंको देखा। उन्हें सन्देह हो रहा था कि यह कोरे इन्द्रजाल न हों। किसीके मुंहसे बात न निकलती थी। जिस आशालताको बरसोंसे पाल और सींच रहे थे वह आंखोंके सामने एक पशुके विकराल मुखका ग्रास बनी जाती थी। इस सुअवसरके लिये इन लोगोंने कितनी आयोजनायें की थीं, कितनी कूटनीतिसे काम लिया था, कितने अत्याचार किये थे और जब वह शुभ घड़ी आयी तो निर्दय भाग्यविधाता उसे हाथोंसे छीने लेता था। गौसखांका खून रंग लाकर अब निष्फल हुआ जाता था। आखिर फैजूने बड़े गम्भीर भावसे कहा—इसका फैसला तो अब अदालतके हाथ है।

अदालतका नाम लेकर वह चौधरीको भयभीत करना चाहते थे।

चौधरी—अच्छी बात है, तो वहीं चलो।

कर्तारने नैतिक सर्वज्ञताके भावसे कहा, पहले यह लोग मोहलतकी दर्खास दें, उस दर्खासपर हमारी तरफसे उजुरदारी होगी, इसपर हाकिम जो कुछ तजवीज करेगा वह होगा। हम लोग रुपया कैसे ले सकते हैं? जाब्तेके खिलाफ है।

बिन्दा महराजके सम्मुख एक दूसरी ही समस्या उपस्थित थी—इसे इतने रुपये कहां मिल गये? अभी तो जेलसे छूटकर आया है। गांववालोंसे फूटी कौड़ी भी न मिली होगी। इसके

पास जो लेई पूंजी थी वह तालाब और मन्दिर बनवानेमें खर्च हो गयी। अवश्य इसे कोई ऐसी जड़ी बूटी हाथ लग गयी है जिससे यह रुपये बना लेता है। साधुओंके हाथमें बड़े बड़े करतब होते हैं।

फैजू समझ गये कि इस घांधलीसे काम न चलेगा। कहीं इसने अदालतके सामने आकर सब रुपये गिन दिये तो अपना-सा मुंह लेकर रह जाना पड़ेगा। निराश होकर जूते उतार दिये और नालिशकी पर्तें निकालकर हिसाब जोड़ने लगे, उसपर अदालतका खर्च, अमलोंकी रिशवत, वकीलका मेहनताना, जमींदारका नजराना आदि, और बढ़ाया तब बोले, कुल १७५०) होते हैं।

चौधरी—फिर देख लीजिये, कोई रकम रह न गयी हो। मगर यह समझ लेना कि हिसाबसे एक कौड़ी भी बेसी ली तो तुम्हारा भला न होगा।

बिन्दा महराजने सशंक होकर कहा, खांसाहब, जरा फिरसे जोड़ लो।

कर्तार—सब जोड़ा जोड़ाया है, रात दिन तो यही किया करते हैं, लाओ निकालो १७५०)।

चौधरी—१७५०) लेना है तो अदालतमें ही लेना, यहां तो मैं १०००) से बेसी न दूंगा।

फैजू—और अदालतका खर्चा?

सहसा चौधरीने अपना चिमटा उठाया और इतने जोरसे फैजुल्लाहके सिरपर मारा कि वह जमीनपर गिर पड़ा। तब बोले—यही अदालतका खर्चा है, जी चाहे और ले लो। बेईमान, पापी कहींका। कारिन्दा बना फिरता है। कलका बानी आजका सेठ! इतनी जल्द आंखोंमें चरबी छा गयी। तू भी तो किसी जमींदारका असामी है, तेरा घर देख आया हूं, तेरे मां बाप, भाई बन्द, सबका हाल देख आया हूं। वहां उन सभोंका बेगार भरते भरते कचूमर निकला जाता है। तूने चार अक्षर पढ़ लिये तो जमीनपर पांव नहीं रखता, दीन दुखियारोंको लूटता फिरता है। ८००) की

नालिश है, १००) अदालतका खर्चा है। मैं कचहरी जाकर पेसकारसे पूछ आया। उसके तू १७५०) मांगता है। और क्यों रे ठाकुर, तू भी इस तुरुकके साथ पड़कर अपनेको भूल गया ! चिल्ला-चिल्लाकर रामायण पढ़ता है, भागवतकी कथा कहता है, ईंट-पत्थरके देवता बनाकर पूजता है, क्या पत्थर पूजते-पूजते तेरा हृदय भी पत्थरका हो गया ? यह चन्दन क्यों लगाता है ? तुझे इसका क्या अधिकार है ? तू धनके पीछे धरमको भूल गया ? तुझे धन चाहिये ? तेरे भागमें धन लिखा है तो यह थैली उठा ले। (यह कहकर चौधरीने रुपयोंकी थैली कर्तारकी ओर फेंकी) देख तो तेरे भागमें धन है या नहीं ? तेरा मन इतना पापी हो गया है कि तू सोना भी छुए तो मिट्टी हो जायगा। थैली छूकर देख ले, अभी ठीकरी हुई जाती है।

कर्तारने पहले बड़ी धृष्ट अश्रद्धासे बातें करनी शुरू की थीं। वह यह दिखाना चाहता था कि मैं साधुओंका भेष देखकर रोबमें आनेवाला असामी नहीं हूं। ऐसे भोले-भाले काठके उल्लू कहीं और होंगे। पर चौधरीकी यह हिम्मत देखकर और यह कठोपदेश सुनकर उसकी अभक्ति लुप्त हो गयी। उसे अब ज्ञान हुआ कि यह वह चौधरी नहीं है जो गौसखांको हां-में-हां मिलाया करता था। किन्तु बिना परीक्षा किये वह अब भी भक्तिसूत्रमें न बंधना चाहता था। यहांतक कि वह उनकी सिद्धिका परदा खोलकर उनकी खबर लेनेपर भी उतारू था। उसने थैलीको ध्यानसे देखा, रुपयोंसे भरी हुई थी। तब उसने डरते-डरते थैली उठायी, किंतु उसके छूते ही एक अत्यन्त विस्मयकारी दृश्य दिखायी दिया। रुपये ठीकरे हो गये ! यह कोई मायालीला थी, अथवा कोई जादू, या सिद्धि, कौन कह सकता है ! मदारीका खेल था या नजरबन्दी-का तमाशा, चौधरी ही जानें। रुपयोंकी जगह साफ लाल लाल ठीकरे झलक रहे थे। कर्तारके हाथसे थैली छूटकर गिर पड़ी, वह हाथ बांधकर बड़ी भक्ति भावसे चौधरीके पैरोंपर गिर पड़ा और

बोला, बाबा, मेरा अपराध छमा कीजिये, मैं अधम, पापी, दुष्ट हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। मैं अब आपकी ही सेवामें रहूंगा, मुझे इस लोभके गड्ढेसे निकालिये।

चौधरी–दीनोंपर दया करो और वही पुण्य तुम्हें इस गड्ढेसे निकालेगा। दया ही सब मन्त्रोंका मूल है।

फैजू मियां गद झाड़कर उठ बैठे थे। वृद्ध, दुर्बल चौधरी इस समय उनकी आंखोंमें एक देवसा दीख पड़ता था। यह चमत्कार देखकर वह भी दंग रह गये। अपनी खता माफ कराने लगे—बाबाजी, क्या करें, जञ्जालमें फंसकर सभी कुछ करना पड़ता है! अहलकार, अमले, अफसर, अर्दली, चपरासी सभीकी खातिर करनी पड़ती है। अगर यह चालें न चलें तो उनका पेट कैसे भरें? यहां एक दिन भी निबाह न हो। अब मुझे भी गुलामीमें कबूल कीजिये।

कर्तारने चिलमपर चरस रखकर चौधरीको दी। ग़िन्दा महराजका संशय भी मिट चुका था। बोले, कुछ जलपानकी इच्छा हो तो सर्बत बनाऊं। फैजुल्लाहने उनके बैठनेको अपना कालीन बिछा दिया। चौधरी प्रसन्न हो गये। अपनी झोलीसे एक जड़ी निकालकर तीनोंको दी और कहा, यह मिर्गीकी आजमाई हुई दवा है, जनमकी मिर्गी भी इससे जाती रहती है। इसे हिफाजतसे रखना और देखो, आज ही मुकदमा उठा लेना, यह एक हजारके नोट हैं, गिन लो, सब असामियोंको अलग अलग बेबाकीकी रसीद दे देना। अब मैं जाता हूं। कुछ दिनोंमें फिर आऊंगा।

३७

प्रातःकाल ज्योंही मनोहरकी आत्महत्याका समाचार विदित हुआ जेलमें हाहाकार मच गया। जेलके दारोगा, अमले, सिपाही, पहरेदार–सबके हाथोंके तोते उड़ गये। जरा देरमें पुलिसको खबर मिली, तुरन्त छोटे बड़े अधिकारियोंका दल आ पहुंचा। मौकेकी

जांच होने लगी, जेल कर्मचारियोंके बयान लिखे जाने लगे। एक घण्टेमें सिविल सरजन और डाक्टर प्रियनाथ भी आ गये, फिर मैजिस्ट्रेट, कमिश्नर और सिटी मैजिस्ट्रेटका आगमन हुआ। दिन भर तहकिकात होती रही, दूसरे दिन भी यही जमघट रहा और यही कार्य्यवाही होती रही, लेकिन सांप मर चुका था, उसकी बांबीको लाठीसे पीटना व्यर्थ था। हां, जेलकर्मचारियों-पर बन आयी, जेल दारोगा ६ महीनेके लिये मुअत्तल कर दिये गये, रक्षकोंपर कड़े जुर्माने हुए। जेलके नियमोंमें सुधार किया गया, खिड़कियोंपर दोहरी छड़ें लगा दी गयीं, शेष अभियुक्तोंके हाथोंमें हथकड़ियां न डाली गयी थीं, अब दोहरी हथकड़ियां डाल दी गयीं। प्रेमशङ्कर यह खबर पाते ही दौड़े हुए जेल आये, पर अधिकारियोंने उन्हें फाटकके सामनेहीसे भगा दिया। अबतक जेल-कर्मचारियोंने उनके साथ सब प्रकारकी रियायत की थी, अभियुक्तोंसे उनकी मुलाकात करा देते थे, उनके यहांसे आया हुआ भोजन अभियुक्तोंतक पहुंचा देते थे। पर आज उन सभों-का रुख बदला हुआ था। प्रेमशङ्कर जेलके सामने खड़े सोच रहे थे, अब क्या करूं, कि पुलिसका प्रधान अफसर जेलसे निकला और उन्हें देखकर बोला, यह तुम्हारे ही उपदेशोंका फल है, तुम्हींने शेष अपराधियोंको बचानेके लिये यह आत्महत्या करायी है। जेलके दारोगाने भी उनसे इसी तरहकी बातें कीं। इन तिर-स्कारोंसे प्रेमशङ्करको बड़ा दुःख हुआ। जीवन उन्हें नये नये अनु-भवोंकी पाठशाला-सी जान पड़ता था। यह पहला ही अवसर था कि उनकी दयार्द्रता और सदिच्छाकी अवहेलना की गयी। वह आध घण्टेतक चिन्तामें डूबे वहीं खड़े रहे, तब अपने झोपड़े-की ओर चले, मानों अपने किसी प्रिय बन्धुकी दाहक्रिया करके आ रहे हों।

घर पहुंचकर वह फिर उन्हीं विचारोंमें मग्न हुए। कुछ समझमें न आता कि जीवनका क्या लक्ष्य बनाया जाय। क्षुद्र-



लौकिकतासे चित्तको घृणा होती थी और उत्कृष्ट नियमोंपर चलनेके नतीजे उल्टे होते थे। उन्हें अपनी विवशताका ऐसा निराशाजनक अनुभव कभी न हुआ था। मानवबुद्धि कितनी भ्रम-युक्त है, उसकी दृष्टि कितनी संकीर्ण ! इसका ऐसा स्पष्ट प्रमाण कभी न मिला था। यद्यपि वह अहंकारको अपने पास न आने देते थे, पर वह किसी गुप्त मार्गसे उनके हृदयस्थलमें पहुंच जाता था। अपने सद्कार्योंको सफल होते देखकर उनका चित्त उल्लसित हो जाता था और हृदयकर्णोंमें किसी ओरसे मन्दस्वरोंमें सुनायी देता था—मैंने कितना अच्छा काम किया ! लेकिन ऐसे प्रत्येक अवसरपर, एकही क्षणके उपरान्त, उन्हें कोई ऐसी चेतावनी मिल जाती थी जो उनके अधिकारको चूर-चूर कर देती थी। मूर्ख ! तुझे अपनी सिद्धान्तप्रियताका अभिमान है ! देख वह कितने कच्चे हैं। तुझे अपनी बुद्धि और विद्याका घमण्ड है ! देख वह कितनी भ्रान्तिपूर्ण है। तुझे अपने ज्ञान और सदाचारका गरूर है ! देख वह कितना अपूर्ण और भ्रष्ट है। क्या तुम्हें निश्चय है कि तुम्हारी ही उत्तेजनायें गौसखांकी हत्याका कारण नहीं हुईं ? तुम्हारे ही कटुपदेशोंने मनोहरकी जान नहीं ली ? तुम्हारे ही वक्र नीतिपालनने ज्ञानशङ्करको, श्रद्धाको तुमसे विमुख नहीं किया।

यह सोचते सोचते उनका ध्यान अपनी आर्थिक कठिनाइयों-की ओर गया। अभी न जाने यह मुकदमा कितने दिनों चलेगा। इर्फानअली कोई तीन हजार ले चुके और शायद अभी उनका इतना ही बाकी है। गन्ने तैयार हैं, लेकिन हजार रुपयेसे ज्यादा न ला सकेंगे। बेचारे गांववालोंको कहांतक दबाऊं। फलोंसे जो कुछ मिला वह सब खर्च हो गया, किसीको अभी हिसाबतक नहीं दिखाया। न जाने यह सब अपने मनमें क्या समझते हों। लखनपूरकी कुछ खबर न ले सका। मालूम नहीं, उन दुखियारि-योंपर क्या बीत रही है।

अकस्मात् भोलाकी स्त्री बुधिया आकर बोली, बाबूजी, दो दिनसे घरमें चूल्हा नहीं जला और आपका हलवाहा मेरी जान खाये जाता है। बताइये मैं क्या करूं? क्या चोरी करूं? दिन-भर चक्की पीसती हूं और जो कुछ पाती हूं वह सब इसी गृहस्तीमें झोंक देती हूं, तिसपर भी भरपेट दाना नसीब नहीं होता। आप उसके हाथमें तलब न दिया करें। सब जुएमें उड़ा देता है। आप उसे न डांटते हैं, न समझाते हैं। आप समझते हैं कि मजूरी बढ़ाते ही वह ठीक हो जायगा। आप उसे हजारका महीना भी दें तोभी उसके लिये पूरे न पड़ेंगे। आजसे आपसे आप तलब मेरे हाथमें दिया करें।

प्रेमशङ्कर—जुआ खेलना तो उसने छोड़ न दिया था?

बुधिया—यही दो एक महीने नहीं खेला था। बीच बीचमें भी कभी छोड़ देता है, लेकिन उसकी तो लत पड़ गयी है। आप तलब मुझे दे दिया करें, फिर देखूं कैसे जुआ खेलता है। आपका सीधा सुभाव है, जब मांगता है तभी निकालकर दे देते हैं।

प्रेम—मुझसे तो वह यही कहता है कि मैंने जुआ छोड़ दिया। जब कभी रुपये मांगता है तो यही कहता है कि खानेको नहीं है। न दूं तो क्या करूं?

बुधिया—तभी तो उसके मिजाज नहीं मिलते। कुछ पेशगी तो नहीं ले गया है?

प्रेम— उसीसे पूछो, ले गया होगा तो बतायेगा न।

बुधिया—आपके यहां हिसाब किताब नहीं है क्या?

प्रेम—मुझे कुछ याद नहीं है।

बुधिया—आपको याद नहीं है तो वह बता चुका। सराबियों जुआरियोंके भी कहीं ईमान होता है?

प्रेम—क्यों, क्या शराबसे ईमान धुल जाता है?

बुधिया—धुल नहीं जाता और क्या? देखिये बुलाके आपके

मुंहपर पूछती हूं। या नारायन, निगोड़ा तलबकी तलब उड़ा देता है, उसपर पेशगी लेकर खेल डालता है। अब देखूं कहांसे भरता है।

यह कहकर वह झल्लायी हुई गयी और ज़रा देरमे भोलाको साथ लिये आयी। भोलाकी आंखें लाल थीं। लज्जासे सिर झुकाये हुए था। बुधियाने पूछा, बताओ, तुमने बाबूजीसे कितने रुपये पेशगी लिये हैं।

भोलाने स्त्रीकी ओर सरोप नेत्रोंसे देखकर कहा—तू कौन होती है पूछनेवाली? बाबूजी जानते नहीं क्या?

बुधिया—बाबूजी ही तो पूछते हैं, नहीं तो मुझे क्या पड़ी थी!

भोला—इनके मेरे ऊपर लाख आते हैं और मैं इनका जनम-भरका गुलाम हूं।

बुधिया—देखा बाबूजी! मैं कहती न थी वह कुछ न बतायेगा? जुआरी कभी ईमानके सच्चे हुए हैं कि यही होगा?

भोला—तू समझती है कि मैं बातें बना रहा हूं। बातें उनसे बनायी जाती हैं जो दिलके खोटे होते हैं, जो एक धेला देकर पैसेका काम कराना चाहते हैं। देवताओंसे बात नहीं बनायी जाती। यह जान इनकी है, यह तन इनका है, इसारामर मिल जाय।

बुधिया—अरे जा जालिये कहींके। बाबूजी बीसों बार समझाके हार गये। तुझसे एक जुआ तो छोड़ा जाता नहीं, तू और क्या करेगा? जानपर खेलनेवाले और होते हैं।

भोला—झूठी कहींकी, मैं कब जुआ खेलता हूं?

प्रेम—सच कहना भोला, क्या तुम अब भी जुआ खेलते हो? तुम मुझसे कई बार कह चुके हो कि मैंने बिलकुल छोड़ दिया।

भोलाका गला भर आया। नशेमें हमारे मनोभाव अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाते हैं। वह जोरसे रोने लगा। जब ग्लानिका वेग कम हुआ तो सिसकियां लेता हुआ बोला—मालिक यह

आपका एक हुकुम है जिसे मैंने टाला है। और कोई बात नहीं टाली। आप मुझे यहीं बैठाकर सिरपर १०० जूते गिनकर लगायें तब यह भूत उतरेगा। मैं रोज सोचता हूं कि अब कभी न खेलूंगा, पर सांझ होते ही मुझे जैसे कोई ढकेलकर फड़की ओर ले जाता है। हा! मैं आपसे झूठ बोला, आपसे कपट किया। भगवान मेरी क्या गति करेंगे? यह कहकर वह फिर फूट फूटकर रोने लगा।

लज्जाभावकी यह पवित्रता देखकर प्रेमशङ्करकी आंखें भी भर आयीं। वह शराबी और जुआरी भोला, जिसे वह नीच समझते थे, ऐसा पवित्रात्मा, ऐसा निर्मलहृदय था! उन्होंने उसे गलेसे लगा लिया ; तुम क्यों रोते हो? मैं तुम्हें कुछ कहता थोड़े ही हूं?

भोला—आपका कुछ न कहना ही तो मुझे मारे डालता है। मुझे गालियां दीजिये, कोड़ोंसे मारिये, तब यह नशा उतरेगा। हम लातोंके देवता बातोंसे नहीं मानते।

प्रेम—तुम्हारी तलब बुधियाको दे दिया करूं?

भोला—जी हां, आजसे मुझे एक कौड़ी भी न दिया कीजिये।

प्रेम—(बुधियासे) लेकिन जो यह जुएसे भी बुरी कोई आदत पकड़ ले तो?

बुधिया—जुएसे बुरी चोरी है। जिस दिन इसे चोरी करते देखूंगी जहर दे दूंगी। मुझे रांड़ बनना मंजूर है, चोरकी लुगाई नहीं बन सकती।

उसने भोलाका हाथ पकड़कर घर चलनेका इशारा किया और प्रेमशङ्करके लिये एक जटिल समस्या छोड़ गयी।

३८

डा० इर्फ़ान अली बैठे सोच रहे थे कि मनोहरकी आत्महत्याका शेष अभियुक्तोंपर क्या असर पड़ेगा। क़ानूनी ग्रन्थोंका ढेर

सामने रक्खा हुआ। बीचमें विचार करने लगते थे, मैंने यह मुकदमा नाहक लिया। रोज १००) का नुकसान हो रहा है और अभी मालूम नहीं, कितने दिन लगेंगे। लाहौल! फिर रुपयेकी तरफ ध्यान गया! कितना चाहता हूं कि दिलको इधर न आने दूं, मगर खयाल आ ही जाता है। वकालत छोड़ते भी नहीं बनती। ज्ञानशंकरसे प्रोफेसरीके लिये कह तो आया है, लेकिन जो सचमुच यह जगह मिल गयी तो टेढ़ी खीर होगी। मैं अब ज्यादा दिनोंतक तो इस पेशेमें रह नहीं सकता, और न सही तो सेहतके लिए जरूर ही छोड़ना पड़ेगा। बस, यही चाहता हूं कि घर बैठे १०००) माहवारकी रकम मिल जाया करे। अगर प्रोफेसरीसे १०००) भी मिले तो भी काफी होगा। नहीं, अभी छोड़नेका वक्त नहीं आया। ३ सालतक सख्त मेहनत करनेके बाद अलबत्ता छोड़नेका इरादा कर सकता हूं। लेकिन इन तीन बरसोंतक मुझे चाहिये कि रियायत और मुरौवतको बालायताक रख दूं। सबसे पूरा मेहनताना लूं, वरना आजकलकी तरह फँसता रहा तो जिन्दगीभर छुटकारा न होगा।

हां, तो आज इस मुकदमेमें बहस होगी। उफ़! अभीतक तैयार नहीं हो सका। गवाहोंके बयानोंपर निगाह डालनेका भी मौका न मिला। खैर, कोई मुजायका नहीं। कुछ न कुछ बातें तो याद ही हैं। बहुत कुछ उधरके वकीलकी तकरीरसे सूझ जायंगी। जरा नमक मिर्च और मिला दूंगा, खासी बहस हो जायगी। यह तो रोजहीका काम है, इसका क्या फिक्र......

इतनेमें अमोलीके राजा साहबका मोटर आ पहुंचा। डाक्टर साहबने बाहर निकलकर राजा साहबका स्वागत किया। राजा साहब अंग्रेजीमें कोरे, लेकिन अंग्रेजी रहन सहन, रीति नीतिमें पारंगत थे। उनके कपड़े विलायतसे सिलाकर आते थे, लड़कोंको पढ़ानेके लिये लेडियां नौकर थीं और रियासतका मैनेजर भी अंग्रेज था। राजा साहबका समय अधिकांश अंग्रेजी दूकानोंकी

सैर करनेमें कटता था। टिकट और सिक्के जमा करनेका शौक था, थियेटर जानेमें कभी नागा न करते थे। कुछ दिनोंसे उनके मैनेजरने रियासतकी आमदनीपर हाथ लपकाना शुरू किया था। इसलिये उन्हें हटाना चाहते थे, किन्तु अंग्रेज अधिकारियोंके भयसे साहस न होता था। मैनेजर स्वयं राजा साहबको कुछ न समझता था, आमदनीका हिसाब देना तो दूर रहा। राजा साहब इस मामलेको दीवानीमें लानेका विचार कर रहे थे। लेकिन मैनेजर साहबकी जजसे गहरी मैत्री थी, इसलिये अदालतके और वकीलोंने इस मुकदमेको हाथमें लेनेसे इनकार कर दिया था। निराश होकर राजा साहबने इर्फानअलीकी शरण ली थी। डाक्टर साहब देरतक उनकी बातें सुनते रहे, बीच बीचमें तस्कीन देते जाते थे, आप घबरायें नहीं। मैं मैनेजर साहबसे एक एक कौड़ी वसूल कर लूंगा। यहांके वकील दब्बू हैं, खुशामदी टट्टू, पेशेको बदनाम करनेवाले। हमारा पेशा आजाद है। हककी हिमायत करना हमारा काम है, चाहे बादशाहहीसे क्यों न मुकाबला करना पड़े। आप जरा भी तरद्दुद न करें, मैं सब बातें ऐसी खूबसूरतीसे तय कर दूंगा कि आपपर छींटा भी न आने पायेगा। अकस्मात् तारके चपरासीने आकर डाक्टर साहबको एक तारका लिफाफा दे दिया। ज्ञानशङ्करने एक मुकदमेकी पैरवी करनेके लिये ५००) रोजपर बुलाया था।

डाक्टर महोदयने राजा साहबसे कहा, यह पेशा बड़ा मूजी है, कभी आरामसे बैठना नसीब नहीं होता। रानी गायत्रीदेवीका तार है, गोरखपुर बुला रही हैं।

राजा—मैं अपने मुकदमेको मुलतवी नहीं कर सकता। मुमकिन है मैनेजर कोई और चाल चल जाय।

डाक्टर—आप मुतलक अन्देशा न करें, मैंने मुकदमेको हाथमें ले लिया। अपने दीवान साहबको भेज दीजियेगा, वकालतनामा तैयार हो जायगा। मैं कागजात देखकर फौरन दावा

दायर कर दूंगा। गोरखपूर गया भी तो आपके कागजात लेता जाऊंगा।

घड़ीमें १० बजे। खानसामाने दस्तरखान बिछाया। भोजनालय इस दफ्तरके बगलहीमें था। मसालेकी सुगन्धि कमरेमें फैल गयी। लेकिन डाक्टर साहब अपने शिकार फंसानेमें तल्लीन थे। भय होता था, मैं भोजन करने चला जाऊं और शिकार हाथसे निकल न जाय। लगभग आध घंटेतक वह राजासे मुकदमेके सम्बन्धमें बातें करते रहे। राजा साहबके जानेके बाद वह दस्तरखानपर बैठे। खाना ठंढा हो गया था। दो ही चार कौर खाने पाये थे कि ११ बजे। दस्तरखानसे उठ बैठे। जल्दी जल्दी कपड़े पहने और कचहरी चले। रास्तेमें पछताते जाते थे कि भरपेट खाने भी न पाया। आज पुलाव कैसे लजीज बने थे। इस पेशेका बुरा हो, खानेकी फुर्सत नहीं। हां, रानीको क्या जवाब दूं? नीति तो यही है कि जबतक किसानोंका मामला तय न हो जाय, कहीं न जाऊं। लेकिन यह ४00) रोजका नुकसान कैसे बर्दाश्त करूं? फिर एक बड़ी रियासतसे ताल्लुक हो रहा है; सालमें सैकड़ों मुकदमे होते होंगे, सैकड़ों अपीलें होती होंगी। वहां अपना रङ्ग जरूर जमाना चाहिये। मुहर्रिर साहब सामने ही बैठे थे, पूछा—क्यों मुन्शीजी, रानी साहबाको क्या जवाब दूं? आपके खयालमें इस वक्त वहां मेरा जाना मुनासिब है?

मुहर्रिर—हुजूर किसीके तावेदार नहीं है, शौकसे जायें। सभी वकला यही करते हैं। ऐसे मौकेको न छोड़ें।

डाक्टर—बदनामी होती है।

मुहर्रिर—जरा भी नहीं। जब यही आम रिवाज है तो कौन किसे बदनाम कर सकता है?

इन शब्दोंने इर्फान अलीकी द्विविधाओंको दूर कर दिया। औचतेको ठेलतेका बहाना मिल गया। ज्योंही मोटर कचहरीमे

पहुंची, प्रेमशङ्कर दौड़े हुए आये और बोले, मैं तो बड़ी चिन्तामें था, पेशी हो गयी।

डाक्टर—अमोलीके राजा साहब आ गये। इससे जरा देर हो गयी, खाना भी न नसीब हुआ। इस पेशेकी न जाने क्यों लोग इतनी तारीफ करते हैं? असलमें इससे बदतर कोई पेशा नहीं। थोड़े दिनोंमें आदमी कोल्हूका बैल हो जाता है।

प्रेमशङ्कर—आप उधर कहां तशरीफ लिये जाते हैं?

डाक्टर—जरा सब-जजके इजलासमें एक बात पूछने। आप चलें, मैं अभी आता हूं।

प्रेम—सरकारी वकीलने बहस शुरू कर दी है।

डाक्टर—कोई मुजायका नहीं, करने दीजिये। मैं उसका जवाब पहलेहीसे तैयार कर चुका हूं।

प्रेमशङ्कर उनके साथ सब-जजके इजलासतक गये। डाक्टर साहब लगभग एक घण्टेतक दफ्तरवालोंसे बातें करते रहे। अन्तमें निकले तो बड़े संकोचभावसे बोले, आपको यहां खड़े खड़े बेहद तकलीफ हुई, मुआफ फरमाइयेगा। मुझे यह कहते हुए आपसे बहुत नादिम होना पड़ता है कि मैं तीन चार दिन इस मुकदमेकी पैरवी न कर सकूंगा।

प्रेम—यह तो आपने बुरी खबर सुनायी। आप खुद अन्दाज कर सकते हैं कि ऐसे नाजुक मौकेपर आपका न रहना कितना जुल्म है।

डाक्टर—मजबूर हूं, आपके भाई साहबने तारसे गोरखपूर बुलाया है।

प्रेम—इस खबरसे मेरी तो रूह ही फना हो गयी।

आप इन बेचारे किसानोंको मंझधारमें छोड़े देते हैं। खयाल फरमाइये इनकी क्या हालत होगी। यहां इतने तङ्ग वक्तमें कोई दूसरा वकील भी तो नहीं मिल सकता।

डाक्टर—मुझे खुद निहायत अफसोस है, मगर जबतक दूकान

है तबतक खरीदारोंकी खातिर करनी ही पड़ेगी। यह पेशा ऐसा मनहूस है कि इसमें आईनपर कायम रहना दुशवार है। मुझे इन मुसीबतजदका खुद खयाल है, लेकिन मिस्टर ज्ञानशङ्करको नाराज भी तो नहीं कर सकता। और जनाब, साफ बात तो यह है कि जब काफिर हुए तो शराबसे क्यों तोबा करें? जब वकालतका सियाह जामा पहना तो उसपर शराफतका सुफेद दाग क्यों लगायें? जब लूटनेपर आये तो दोनों हाथोंसे क्यों न समेटें? दिलमें दौलतका अरमान क्यों रह जाय? बनियोंको लोग ख्वामख्वाह लालची कहते हैं। इस लक़बका हक़ हमको है। दौलत हमारा दीन है, हमारा ईमान है। यह न समझिये कि इस पेशेमें जो लोग चोटीपर पहुंच गये हैं वह ज्यादा रोशन-खयाल हैं। नहीं जनाब, वह बगुलेभगत हैं। ऐसे खमोश-बैठे रहते हैं गोया दुनियांसे कोई वास्ता ही नहीं, लेकिन शिकार नजर आते ही आप उनकी झपट और फुरती देखकर दंग हो जायँगे। जिस तरह कसाव बकरेको सिर्फ उसके वजनके पत-वारसे देखता है उसी तरह हम इन्सानको महज इस पतवारसे देखते हैं कि वह कहांतक आंखका अंधा और गांठका पूरा है। लोग इसे आजाद पेशा कहते हैं, मैं इसे इन्तहा दरजेकी गुलामी कहता हूं। अभी चन्द महीने हुए मेरे भाईकी शादी दरपेश थी। सादातके कस्बेमें बरात गयी थी। तीन दिन बरात वहां मुकीम रही। मैं रोज सवेरे वहां चला आता था और रातको गाड़ीसे लौट जाता था। सभी रस्में मेरी गैरहाजिरीमें अदा हुईं। एक दिन भी कचहरीका नागा नहीं किया। मैं अपनी इस हवसको मकरूह समझता हूं और जिन्दगीभर उस आदमीका शुक्रगुजार रहूंगा जो मुझे इस मर्जसे नजात दे दे।

यह कहकर डाक्टर साहब मोटरपर आ बैठे और एक क्षणमें घर पहुंच गये। १ बजे गाड़ी जाती थी। सफरका सामान होने लगा। दो चमड़ेके सन्दूक, एक हैण्डबेग, हैट रखनेका

सन्दूक, आफिस-बक्स, भोजन सामग्रियोंका सन्दूक आदि सभी सामान बग्घीपर लादा गया। प्रत्येक वस्तुपर डाक्टर साहबका नाम लिखा हुआ था। समय बहुत कम था, डाक्टर साहब घरमें न गये। मोटरपर बैठना ही चाहते थे कि महरीने आकर कहा, हजूर, जरा अन्दर चलें, बेगम साहबा बुला रही हैं, मुनीराको कई दस्त और कै आये हैं।

डाक्टर—तो जरा काफूरका अर्क क्यों नहीं पिला देतीं? खाने में कोई बदपरहेजी हुई होगी। चीखने चिल्लानेकी क्या जरूरत है?

महरी—हजूर, दवा तो पिलायी है, जरा आप चलकर देख लें। बेगम साहबा डाक्टर बुलानेको कहती हैं।

इर्फानअली झल्लाये हुए अन्दर गये और बेगमसे बोले, तुमने यह क्या जरासी बातका तूफान मचा रक्खा है?

बेगम—मुनीराकी हालत अच्छी नहीं मालूम होती। जरा चल कर देखो तो। उसके हाथ-पांव अकड़े जाते हैं। मुझे तो खौफ होता है, कहीं कालरा न हो।

इर्फान—यह सब तुम्हारा वहम है। सिर्फ खाने पीनेकी बेएहतियाती है और कुछ नहीं। अर्क काफूर दो-दो घंटे बाद पिलाती रहो; शामतक सारी शिकायत दूर हो जायगी। घबरानेकी जरूरत नहीं। इसी ट्रेनसे जरा गोरखपूर जा रहा हूं। तीन-चार दिनमें वापस आऊंगा। रोजाना खैरियतकी इत्तला देती रहना। मैं रानी गायत्रीके बंगलेमें ठहरूंगा।

बेगमने उन्हें तिरस्कार भावसे देखकर कहा, लड़कीकी यह हालत है और आप उसे छोड़े चले जाते हैं। खुदा न करे, उसकी हालत ज्यादा खराब हुई तो?

इर्फान—तो मैं रहकर क्या करूंगा? उसकी तीमारदारी तो मुझसे होगीही नहीं और न बीमारीसे मेरी दोस्ती है कि मेरे साथ रिआयत करे।

बेगम—लड़कीकी जानको खुदाके हवाले करते हो, लेकिन

रुपये खुदाके हवाले नहीं किये जाते। लाहौल विलाकूवत! एक आदमीमें इन्सानियत न हो, औलादकी मुहब्बत तो हो। दौलतकी हवस औलादहीके लिये होती है, जब औलाद ही न रही तो रुपयों का क्या अलाव लगेगा?

इर्फान—तुम अहमक हो, तुमसे कौन सिर-मगजन करे?

यह कहकर वह बाहर चले आये, मोटरपर बैठे और स्टेशन चले।

३९

सैयद ईजाद हुसेनका घर दारानगरकी एक गलीमें था। बरामदेमें दस बारह वस्त्रविहीन बालक एक फटे हुए बोरियेपर बैठे करीमा और खालिकबारीकी रट लगाया करते थे। कभी कभी जब वह उमंगमें आकर उच्च स्वरसे अपने पाठ याद करने लगते तो कानों पड़ी आवाज न सुनायी देती, मालूम होता है बाजार लगा हुआ है। इस हरबोंगमें लौंडे गालियां बकते, एक दूसरेको मुंह चिढ़ाते, चुटकियां काटते। यदि कोई लड़का शिकायत करता तो सबके सब मिलकर ऐसा कोलाहल मचाते कि उसकी आवाज ही दब जाती थी। बरामदेके मध्यमें मौलवी साहबका तख्त था। उसपर एक दढ़ियल मौलवी, लुंगी बांधे, एक मैला-कुचैला तकिया लगाये अपना मदरिया पिया करते और इस कलरवमें भी शान्तिपूर्वक झपकियां लेते रहते थे। उन्हें हुक्का पीनेका रोग था। एक किनारे अंगीठीमें उपले सुलगा करते थे और चिमटा पड़ा रहता था। चिलम भरना बालकों-के मनोरंजनकी मुख्य सामग्री थी। उनकी शिक्षोन्नति चाहे बहुत प्रशंसाके योग्य न हो, लेकिन गुरुसेवामें सबके सब निपुण थे। यही सैयद ईजाद हुसेनका "इत्तहादी यतीमखाना" था।

किन्तु बरामदेके ऊपरवाले कमरेमें कुछ और ही दृश्य था। साफ-सुथरा फर्श बिछा हुआ था, कालीन और मसनद भी

करीनेसे सजे हुए थे। पानदान, खासदान, उगालदान आदि मौकेसे रखे हुए थे। एक कोनेमें नमाज पढ़नेकी दरी बिछी हुई थी। तस्वीह खूंटीपर लटक रही थी। छतमें झालरदार छतगीर थी, जिसकी शोभा रंगीन हांडियोंसे और भी बढ़ गयी थी। दीवारें बड़ी बड़ी तस्वीरोंसे अलंकृत थीं।

प्रातःकाल था। मिर्जासाहब मसनद लगाये हारमोनियम बजा रहे थे। उनके सम्मुख तीन छोटी छोटी सुन्दर बालिकायें बैठी हुई डाक्टर एकबालकी सुविख्यात रचना 'शिवाजी' के शेरोंको मधुर स्वरमें गा रही थीं। ईजाद हुसेन स्वयं उनके साथ गाकर ताल स्वर बताते जाते थे। यह "इत्तहादी" यतीमखानेकी लड़कियां बतायी जाती थीं, किन्तु वास्तवमें एक उन्हींकी पुत्री थी और दो भांजियां थीं। "इत्तहाद" के प्रचारमें यह त्रिमूर्ति लोगोंको वशीभूत कर लेती थी। एक घंटेके अभ्यासके बाद मिर्जासाहबने प्रसन्न होकर सगर्व नेत्रोंसे लड़कियोंको देखा और उन्हें छुट्टी दी। इसके बाद लड़कोंकी बारी आयी। किन्तु यह मकतबवाले दुर्बल, बलहीन बालक न थे। थे तो चार ही, पर चारों स्फूर्ति और सजीविताकी मूर्ति थे। सुन्दर, सुकुमार, सुवस्त्रित, चहकते हुए घरमेंसे आये और फर्शपर बैठ गये। मिर्जासाहबने फिर हारमोनियमके स्वर मिलाये और लड़कोंने हकानीमें एक ग़ज़ल गानी शुरू की जो स्वयं मिर्जासाहबकी सुरचना थी। इसमें हिन्दू-मुस्लिम एकताको एक सुन्दर वाटिकासे उपमा दी गयी थी और जनतासे अत्यन्त करुण और प्रभावयुक्त शब्दोंमें प्रेरणा की गयी थी कि वह इस बागको अपनाये, उसकी रमणीकताका आनन्द उठाये, और द्वेष तथा वैमनस्यकी कंटकमय झाड़ियोंमें न उलझे। लड़कोंके सुकोमल, ललित स्वरोंमें यह ग़ज़ल ग़ज़ब ढाती थी। भावोंके व्यक्त करनेमें भी वह बहुत चतुर थे। यह "इत्तहादी यतीमखाने" के लड़के बताये जाते थे, किन्तु वास्तवमें यह मिर्जासाहबकी दोनों बहनोंके पुत्र थे।

मिर्जासाहब अभी गानाभ्यासमें मग्न थे कि इतनेमें एक आदमी नीचेसे आया और सामने खड़ा होकर बोला, लाला गोपालदासने भेजा है और कहा है आज हिसाब चुकता न हो गया तो कल नालिश कर दी जायगी। कपड़ेका व्यवहार महीने दो महीनेका है और आपको कपड़े लिये हुए तीन सालसे ज्यादा हो गये।

मिर्जासाहबने ऐसा मुंह बनाया, मानों समस्त संसारका चिन्ताभार उन्हींके सिरपर लदा हुआ है और बोले, नालिश क्यों करेंगे? कह दो थोड़ासा ज़हर भेज दें, खाकर मर जाऊं। किसी तरह दुनियासे नजात मिले। उन्हें तो खुदाने लाखों दिये हैं, घरमें रुपयेके ढेर लगे हुए हैं, उन्हें क्या खबर कि यहां जानपर क्या गुज़र रही है? कुन्बा बड़ा, आमदनीका कोई ज़रिया नहीं, दुनिया चालाक, हत्थे नहीं चढ़ती, क्या करूं, मगर इन्शा अल्लाह एक महीनेके अन्दर आकर सब नया पुराना हिसाब साफ कर दूंगा। अबकी मुझे वह चाल सूझी है जो कभी पट ही नहीं पड़ सकती। इन लड़कोंकी गज़लें सुनकर मजलिसें फड़क उठेंगी। जाकर सेठजीसे कह दो, जहां इतने दिनों सब्र किया है, एक महीना और करें।

प्यादेने हँसकर कहा, आप तो मिर्जासाहब, ऐसी ही बातें करके टाल देते हैं और वहां मुझपर लताड़ पड़ती है। मुनीमजी कहते हैं, तुम जाते हो न होगे या कुछ ले देके चले आते होगे।

मिर्जासाहबने एक चवन्नी उसके भेंट की। उसके चले जानेके बाद उन्होंने मौलवी साहबको बुलाया और बोले, क्यों मियां अमजद, मैंने तुमसे ताकीद न कर दी थी कि कोई आदमी ऊपर न आने पाये। इस प्यादेको क्यों आने दिया? मुंहमें दही जमा हुआ था! इतना कहते न बनता था कि कहीं बाहर गये हुए हैं। अगर इस तरह तुम लोगोंको आने दोगे तो सुबहसे शाम-तक तांता लगा रहेगा। आखिर तुम किस मरजकी दवा हो?

अमजद—मैं तो उससे बार बार कहता रहा कि मिर्जासाहब कहीं बाहर गये हुए हैं, लेकिन वह जबरदस्ती जीनेपर चढ़ आया। क्या करता? उससे फौजदारी करता?

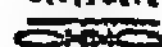
मिर्ज़ा—बेशक, उसे धक्के देकर हटा देना चाहिये था।

अमजद—तो जनाब रूखी रोटियों और पतली दालमें इतनी ताकत नहीं होती, उसपर दिमाग लौंडे चर जाते हैं। हाथापाई किस बूतेपर करूं? कभी सालनतक तो नसीब नहीं होता। दरवाजेपर पड़ा पड़ा मसाले और प्याजको खुशबू लिया करता हूं। सारा घर पुलाव और जरदे उड़ाता है, यहां खुश्क रोटियों हीपर बसर है। दस्तरखानपर खानेको तरस गया। रोज़ वही मिट्टीकी प्याली सामने आ जाती है। मुझे भी तर माल खिलाइये, फिर देखूं, कौन घरमें कदम रखता है।

मिर्ज़ा—लाहौल विलाकूवत, तुम हमेशा पेटहीका रोना रोते रहे। अरे मियां, खुदाका शुक्र करो कि बैठे बैठे रोटियां तो मिली जाती हैं, वरना इस वक्त कहीं फक फक फांयं फांय करते होते।

अमजद—आपसे दिलकी बात कहता हूं तो आप गालियां देने लगते हैं। लीजिये जाता हूं, अब अगर फिर सूरत दिखाऊं तो समझियेगा कोई कमीना था। खुदाने मुंह दिया तो रोजी भी देगा, इस स्वदेशीके जमानेमें मैं भूखों न मरूंगा।

यह कहकर मियां अमजद सजल नेत्र हो उतरने लगे कि ईजाद हुसेनने फिर बुलाया और नम्रतासे बोले, आप तो बस जरा सी बातपर बिगड़ जाते हैं। देखते नहीं हो, यहां घरमें कितना खर्च है। औलादकी कसरत खुदाकी मार है, उसपर रिश्तेदारोंका बटोर टिड्डियोंका दल है, जो आनकी आनमें दरख्त को ठूठ कर देता है। क्या करूं? औलादकी परवरिश फर्ज ही है और रिश्तेदारोंसे बेमुरौवती करना अपनी आदत नहीं। इस जालमें फंसकर तरह तरहकी चालें चलता हूं,



तरह तरहके स्वांग भरता हूं, फिर भी चूल नहीं बैठती। अब अन्दर ताकीद कर दूंगा कि जो कुछ पके वह आपको जरूर मिले, देखिये अब कोई ऊपर न आने पाये।

अमजद—मैंने तो कसम खा ली है।

ईजाद—अरे मियां, कैसी बातें करते हो? ऐसी कसमें दिनमें सैकड़ों बार खाया करते हैं। जाइये देखिये, फिर कोई शैतान आया है।

मियां अमजद नीचे आये तो सचमुच एक शैतान खड़ा था, ठिगना क़द, गठा हुआ शरीर, श्याम वर्ण, तंजेबका नीचा कुरता पहने हुए, अमजदको देखते ही बोला, मिर्जाजीसे कह दो वफाती आया है।

अमजदने कड़ककर कहा—मिर्जा साहब कहीं बाहर तशरीफ ले गये हैं।

वफाती—मियां, क्यों झूठ बोलते हो? अभी गोपालदास-का आदमी मिला था। कहता था ऊपर कमरेमें बैठे हुए हैं। इतनी जल्द क्या उड़कर चले गये?

अमजद—उसने तुम्हें झांसा दिया होगा। मिर्जासाहब कलहीसे नहीं हैं।

वफाती—तो मैं जरा ऊपर जाकर देख ही न आऊं?

अमजद—ऊपर जानेका हुक्म नहीं है, बेगमात बैठी होंगी! यह कहकर वह जीनेका द्वार रोककर खड़े हो गये। वफातीने उन-का हाथ पकड़कर अपनी ओर घसीट लिया और जीनेपर चढ़ा। अमजदने पीछेसे उसको पकड़ लिया। वफातीने झल्लाकर ऐसा झोंका दिया कि मियां अमजद गिरे और लुढ़कते हुए नीचे आ गये। लौंडोंने जोरसे कहकहा मारा। वफातीने ऊपर जाकर देखा तो मिर्जा साहब साक्षात् मसनद लगाये विराजमान हैं। बोला, वाह मिर्जाजी वाह, आपका निराला हाल है कि घरमें बैठे रहते हैं और नीचे मियां अमजद कहते हैं, बाहर गये हुए हैं। अब

भी दाम दीजियेगा या हश्रके दिन ही हिसाब होगा? दौड़ते दौड़ते तो पैरोंमें छाले पड़ गये।

मिर्जा—वाह, इससे बेहतर क्या होगा? हश्रके दिन तुम्हारी कौड़ी कौड़ी चुका दूंगा। उस वक्त जिन्दगीभरकी कमाई पास रहेगी, कोई दिक्कत न होगी।

वफाती—लाइये लाइये, आज दिलवाइये, बरसों हो गये। आप यतीमखानेके नामपर चारों तरफसे हजारों रुपये लेते हैं, मेरा क्यों नहीं देते?

मिर्जा—मियां, कैसी बातें करते हो! दुनिया न ऐसी अंधी है न ऐसी अहमक। अब लोगोंके दिल पत्थर हो गये हैं, कोई पसीजता ही नहीं। अगर इस तरह रुपये बरसते तो तकाजोंमें ऐसा क्या मजा है जो उठाया करता! यह अपनी बेवसी है जो तुम लोगोंसे नादिम कराती है। खुदाके लिये एक माह और सब्र करो, दिसम्बरका महीना आने दो। जिस तरह क्वार और कातिक हकीमोंके फस्लके दिन होते हैं, उसी तरह दिसम्बरमें हमारी भी फस्ल तैयार होती है। हरएक शहरमें जलसे होने लगते हैं। अबकी मैंने वह मंत्र जगाया है जो कभी खाली जा ही नहीं सकता।

वफाती—इस तरह हीला हवाला करते तो आपको बरसों हो गये। आज कुछ न कुछ पिछले हिसाबमें तो दे दीजिये।

मिर्जा—आज तो अगर हलाल भी कर डालो तो लाशके सिवा और कुछ न पाओगे।

वफाती निराश होकर चला गया। मिर्जा साहबने अबकी जाकर जीनेका द्वार भीतरसे बन्द कर दिया और फिर हारमोनियम संभाला कि अकस्मात् डाकियेने पुकारा। मिर्जा साहब चिट्ठियोंके लिये बहुत उत्सुक रहा करते थे, जाकर द्वार खोला और समाचारपत्रों तथा चिट्ठियोंका एक पुलिन्दा लिये प्रसन्न मुख ऊपर आये। पहला पत्र उनके पुत्रका था जो प्रयागमें कानून

पढ़ रहे थे। उन्होंने एक सूट और कानूनी पुस्तकोंके लिये रुपये मांगे थे। मिर्जाजीने झुंझलाकर पत्रको पटक दिया। जब देखो रुपयोंका तकाजा, गोया यहां रुपये फलते हैं। दूसरा पत्र एक अनाथ बालकका था। मिर्जाजीने इसे सावधानीसे सन्दूकमें रखा। तीसरा पत्र एक सेवासमितिका था, उसने 'इत्तहादी' अनाथालयके लिये २०) महीनेकी सहायता देनेका निश्चय किया था। इस पत्रको पढ़कर वह उछल पड़े और उसे कई बार आंखोंसे लगाया। इसके बाद समाचारपत्रोंकी बारी आयी। लेकिन मिर्जाजीकी निगाह लेखों या समाचारोंपर न थी, वह केवल 'इत्तहादी' अनाथालयकी प्रशंसाके इच्छुक थे। पर इस विषयमें उन्हें बड़ी निराशा हुई, किसी पत्रमें भी इसकी चर्चा न देख पड़ी। सहसा उनकी निगाह एक ऐसी खबरपर पड़ी कि वह खुशीके मारे फड़क उठे। गोरखपुरमें सनातनधर्म-सभाका अधिवेशन होनेवाला था। ज्ञानशङ्कर प्रबन्धक मंत्री थे। विद्वज्जनोंसे प्रार्थना की गयी थी कि वह उत्सवमें सम्मिलित होकर उसकी शोभा बढ़ायें। मिर्जा साहब यात्राकी तैयारियां करने लगे।

४०

महाशय ज्ञानशङ्करका धर्मानुराग इतना बढ़ा कि सांसारिक बातोंसे उन्हें अरुचि-सी होने लगी, दुनियासे जी उचाट हो गया। वह अब भी रियासतका प्रबन्ध उतने ही परिश्रम और उत्साहसे करते थे, लेकिन अब सख्तीकी जगह नरमीसे काम लेते थे। निर्दिष्ट लगानके अतिरिक्त प्रत्येक असामीसे ठाकुरद्वारे और धर्मशालेका चन्दा भी लिया जाता था, पर इस रकमको वह इतनी नम्रतासे वसूल करते थे कि किसीको शिकायत न होती थी। अब वह इखराज, इज़ाफा और बक़ायाके मुकदमे बहुत कम दायर करते, असामियोंको बैंकसे नाममात्र ब्याज लेकर रुपये देते और

डेवढ़े सवाईकी जगह केवल अष्टांश ही वसूल करते। इन कामों-से जितना अवकाश मिलता उसका अधिकांश ठाकुरद्वारे और धर्मशालेकी निगरानीमें व्यय करते। दूर दूरसे कुशल कारीगर बुलाये गये थे, जो पच्चीकारी, गुलकारी, चित्रांकण, कटाव, जड़ावकी कलाओंमें निपुण थे। जयपुरसे संगमर्मरकी गाड़ियां भरी चली आती थीं। चुनार, ग्वालियर आदि स्थानोंसे तरह तरहके पत्थर मंगवाये जाते थे। ज्ञानशङ्करकी परम इच्छा थी कि यह दोनों इमारतें अद्वितीय हों, और गायत्री तो यहांतक तैयार थी कि रियासतकी सारी आमदनी निर्माण कार्य्यहीकी भेंट हो जाय तो चिन्ता नहीं, मैं केवल सीरकी आमदनीपर निर्वाह कर लूंगी। लेकिन ज्ञानशङ्कर आमदनीके ऐसे ऐसे विधान ढूंढ़ निकालते थे कि इतना कुछ व्यय होनेपर भी रियासतकी वार्षिक आयमें ज़रा भी कमी न होती थी। बड़े बड़े ग्रामोंमें पांच, छः बाजार लगवा दिये, दो तीन नालोंपर पुल बनवा दिये, कई जगह पानीको रोकनेके लिये बांध बनवा दीं, सिंचाईकी कलें मंगाकर किरायेपर चलाने लगे, तेल निकालनेका एक बड़ा कारखाना खोल दिया। इन आयोजनोंसे इलाकेका नफा घटनेके बदले कुछ और बढ़ गया। गायत्री तो उनकी कार्य्यपटुताकी इतनी कायल हो गयी थी कि किसी विषयमें ज़बान न खोलती।

ज्ञानशङ्करके आहार व्यवहार रंग ढंगमें भी अब विशेष अन्तर दीख पड़ता था। सिरपर बड़े बड़े केश थे, बूटकी जगह प्रायः खड़ाऊं, कोटके बदले एक ढीला ढाला घुटनियोंसे नीचे तकका गेरुवे रंगमें रंगा हुआ कुरता पहनते थे। यह पहनावा उनके सौम्य रूपपर बहुत खिलता था। उनके मुखारविन्दपर अब एक दिव्य ज्योति आभासित होती थी, और बातोंमें अनुपम माधुर्य्य-पूर्ण सरलता थी। अब तर्क और न्यायसे उन्हें रुचि न थी, इस तरह बातें करते मानों उन्हें दिव्यज्ञान प्राप्त हो गया है। यदि कोई उनसे भक्ति या प्रेमके विषयमें शंका करता तो वह उसका उत्तर

एक मार्मिक मुस्कानसे देते थे, जो हजारों दलीलोंसे अधिक प्रभावोत्पादक होती थी।

उनके दीवानखानेमें अब कुरसियों और मेज़ोंके स्थानपर एक साफ सुथरा फ़र्श था, जिसपर मसनद और गावतकिये लगे हुए थे। सामने एक चन्दनके सुन्दर रत्नजटित सिंहासनपर कृष्णकी बालमूर्त्ति विराजमान थी। कमरेमें नित्य अगरकी बत्तियां जला करती थीं। उसके अन्दर जाते ही सुगन्धिसे चित्त प्रसन्न हो जाता था। उसकी स्वच्छता और सादगी हृदयको भक्तिभावसे परिपूर्ण कर देती थी। वह श्रीवल्लभ सम्प्रदायके अनुयायी थ; फूलोंसे, ललित गानसे, सुरम्य दृश्योंसे, काव्यमय भावोंसे उन्हें विशेष रुचि हो गयी थी, जो आध्यात्मिक विकासका लक्षण है। सौन्दर्य्योपासना ही उनके धर्मका प्रधान तत्व था, इस समय वह एक सितारियेसे सितार बजाना सीखते थे, सितारपर सूरके पदोंको सुनकर वह मस्त हो जाते थे।

गायत्रीपर इस प्रेमभक्तिका रंग और भी गाढ़ा चढ़ गया था। वह मीराबाईके सदृश कृष्णकी मूर्तिको स्नान कराती, वस्त्राभूषणोंसे सजाती, उनके लिये नाना प्रकारके स्वादिष्ट भोग बनाती और मूर्त्तिके सम्मुख अनुराग-मग्न होकर घंटों कीर्तन किया करती। आधी राततक उनकी क्रीड़ायें और लीलायें सुनती और सुनाती। अब उसने परदा करना छोड़ दिया था, साधु-सन्तोंके साथ बैठकर उनकी प्रेम और ज्ञानकी बातें सुना करती। लेकिन इस सत्संगसे शान्ति मिलनेके बदले उसका हृदय सदैव एक तृष्णा, एक विरहमय कल्पनासे विकल रहता था। उसकी हृदयवीणा एक अज्ञात आकांक्षासे गूंजती रहती थी। वह स्वयं निश्चय न कर सकती थी कि मैं क्या चाहती हूं? वास्तवमें वह राधा और कृष्णके प्रेमतत्वको समझनेमें असमर्थ थी। उसकी भौतिक दृष्टि उस प्रेमके ऐन्द्रिक स्वरूपसे आगे न बढ़ सकती थी और उसका हृदय इन प्रेम-सुख-कल्पनाओंसे तृप्त न होता।

वह उन भावोंको अनुभव करना चाहती थी। विरह और वियोग, ताप और व्यथा, मान और मनावन, रास और विहार, आमोद और प्रमोदका प्रत्यक्ष स्वरूप देखना चाहती थी। पहले पतिप्रेम उसका सर्वस्व था, नदी अपने पेटेहीमें हलकोरे लिया करती थी। अब उसे उस प्रेमका स्वरूप कुछ मिटा हुआ फीका, विकृत मालूम होता था। नदी उमड़ गयी थी। पतिभक्तिका वह बांध जो कुलमर्य्यादा और आत्मगौरवपर आरोपित था, इस प्रेमभक्तिकी बाढ़में टूट गया। भक्ति लौकिक बन्धनोंको कब ध्यानमें लाती है? वह अब उन भावनाओं और कल्पनाओंको बिना किसी आत्मिक संकोचके हृदयमें स्थान देती थी, जिन्हें वह पहले अग्नि ज्वाला समझा करती थी। उसे अब केवल कृष्णक्रीड़ाके दर्शन-मात्रसे संतोष न होता था। वह स्वयं कोई न कोई पार्ट खेलना चाहती थी। वह उन मनोभावोंको वाणीसे, कर्मसे, व्यवहारसे व्यक्त करना चाहती थी, जो उसके हृदयस्थलमें पक्षियोंकी भांति अबाध्य रूपसे उड़ा करते थे और उसका कृष्ण कौन था, वह स्वयं इसे स्वीकार करनेका साहस न कर सकती थी, पर उसका स्वरूप ज्ञानशङ्करसे बहुत मिलता था। वह अपने कृष्णको इसी रूपमें प्रकट देखती थी।

गायत्रीका हृदय पहले भी उदार था। अब वह और भी दान-शील हो गयी थी। उसके यहां अब नित्य सदाव्रत चलता था और जितने साधु सन्त आ जायं सबको इच्छापूर्वक भोजन-वस्त्र दिया जाता था। वह देशकी धार्मिक और पारमार्थिक संस्थाओंकी भी यथासाध्य सहायता करती रहती थी। अब उसे सनातनधर्मसे विशेष अनुराग हो गया। अतएव अबकी जब सनातनधर्म-मण्डलका वार्षिकोत्सव गोरखपुरमें होना निश्चय किया गया तब सभासदोंने बहुमतसे रानी गायत्रीको सभापति नियुक्त किया। यह पहला अवसर था कि यह सम्मान एक विदुषी महिलाको प्राप्त हुआ। गायत्रीको रानीकी पदवी मिलनेसे

भी इतनी खुशी न हुई थी जितनी इस सम्मानपदसे हुई। उसने ज्ञानशङ्करको, जो सभाके मंत्री थे, बुलाया और अपने गहनोंका सन्दूक देकर बोली, इसमें ५० हजारके गहने हैं, मैं इन्हें सनातन-धर्म-सभाको समर्पण करती हूं।

समाचारपत्रोंमें यह खबर छप गयी। तैयारियां होने लगी। मन्त्रीजीका यह हाल था कि दिनको दिन और रातको रात न समझते। ऐसा विशाल सभाभवन कदाचित् ही पहले कभी बना हो, मेहमानोंके आगत-स्वागतका ऐसा उत्तम प्रबन्ध कभी न किया गया था; उपदेशकोंके लिये ऐसे बहुमूल्य उपहार न रखे गये थे और न जनताने,कभी सभासे इतना अनुराग ही प्रकट किया था। स्वयंसेवकोंके दलके दल भड़कीली वर्दियां पहने हुए चारों तरफ दौड़ते फिरते थे। पण्डालके अहातेमें सैकड़ों दूकानें सजी हुई नजर आती थीं। एक सरकस और दो नाटककी समितियां बुलायी गयीं थीं। सारे शहरमें चहल पहल देख पड़ती थी। बाजारोंमें भी विशेष सजावट और रौनक थी। सड़कोंपर दोनों तरफ बन्दनवारें और पताकाएं शोभायमान थीं।

जलसेके एक दिन पहले उपदेशकगण आने लगे। उनके लिये स्टेशनपर मोटरें खड़ी रहती थीं। इनमें कितने ही महानुभाव संन्यासी थे। वह तिलकधारी पंडितोंको तुच्छ समझते थे और मोटरपर बैठनेके लिये अग्रसर हो जाते थे। एक संन्यासी महात्मा, जो विद्यारत्नकी पदवीसे अलंकृत थे, मोटर न मिलनेसे इतने अप्रसन्न हुए कि बहुत मिन्नत-समाजत करनेपर भी फिटनपर न बैठे। सभा-भवनतक पैदल आये।

लेकिन जिस समारोहसे सैयद ईजाद हुसेनका आगमन हुआ वह और किसीको नसीब न हुआ। जिस समय वह पंडालमें पहुंचे हैं, जलसा शुरू हो गया था और एक विद्वान पण्डितजी विधवा-विवाहपर भाषण कर रहे थे। ऐसे निन्द्य विषयपर गम्भीरतासे विचार करना अनुपयुक्त समझकर वह इसकी खूबी हंसी उड़ा रहे

थे और यथोचित हास्य और व्यंग, धिक्कार और तिरस्कारसे काम लेते थे।

"सज्जनो, यह कोई कल्पित घटना नहीं, मेरी आंखों देखी बात है। मेरे पड़ोसमें एक बाबू साहब रहते हैं। एक दिन वह अपनी मातासे विधवा-विवाहकी प्रशंसा कर रहे थे। माताजी चुपचाप सुनती जाती थीं। जब बाबू साहबकी वार्ता समाप्त हुई तो माताने बड़े गम्भीर भावसे कहा, बेटा, मेरी एक विनती है, उसे मानो, क्यों मेरा भी किसीसे पाणिग्रहण नहीं करा देते? देशभरकी विधवायें सोहागिनी हो जायंगी तो मुझसे क्योंकर रहा जायगा?" श्रोताओंने प्रसन्न होकर तालियां बजायीं, कहकहोंसे पंडाल गूंज उठा।

इतनेमें सैयद ईजाद हुसेनने पंडालमें प्रवेश किया। आगे-आगे चार लड़के एक कतारमें थे,—दो हिन्दू, दो मुसलमान। हिन्दू बालकोंकी धोतियां और कुरते पीले थे, मुसलमान बालकोंके कुरते और पाजामे हरे। इनके पीछे चार लड़कियोंकी पंक्ति थी,—दो हिन्दू और दो मुसलमान। उनके पहनावमें भी वही अन्तर था। सभोंके हाथोंमें रङ्गीन झंडियां थीं, जिनपर उज्ज्वल अक्षरोंमें अङ्कित था—'इत्तहादी यतीमखाना।' इनके पीछे सैयद ईजाद हुसेन थे, गौर वर्ण, श्वेत केश, सिरपर हरा अमामा, काले अलपाकेकी अबा, सुफेद तंजेबकी अचकन, सलेमशाही जूते, सौम्यता और प्रतिभाकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति थी। उनके हाथमें भी वैसी ही झंडी थी। उनके पीछे उनके सुपुत्र सैयद इर्शादहुसेन थे, लंबा कद, नाकपर सुनहरी ऐनक, अलबर्ट फैशनकी दाढ़ी, तुरकी टोपी, नीची अचकन, सजीविताकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति मालूम होते थे। सबसे पीछे साजिन्दे थे। एकके हाथमें हारमोनियम था, दूसरेके हाथमें तबले, शेष दो आदमी करताल लिये हुए थे। इन सभोंकी वर्दी एक ही तरहकी थी और उनकी टोपियोंपर "अंजुमन इत्तहाद" की मोहर लगी हुई थी। पंडालमें कई हजार आदमी जमा थे।

सबके सब 'इत्तहाद' के प्रचारकोंकी ओर टकटकी बांधकर देखने लगे। पण्डितजीका रोचक व्याख्यान फीका पड़ गया। उन्होंने बहुत उछल-कूद की, अपनी सम्पूर्ण हास्यशक्ति व्यय कर दी, अश्लील कवित्त सुनाये, एक भद्दी-सी गजल भी बेसुरे रागसे गायी, पर रंग न जमा। समस्त श्रोतागण "इत्तहादियों" पर आसक्त हो रहे थे। ईजाद हुसेन एक शानके साथ मंचपर आ पहुंचे, वहां कई संन्यासी महात्मा, कई उपदेशक चांदीकी कुरसियोंपर बैठे हुए थे। सैयद साहबको सभोंने ईर्षापूर्ण नेत्रोंसे देखा और जगहसे न हटे। केवल भक्त ज्ञानशङ्कर ही एक व्यक्ति थे, जिन्होंने उनका सहर्ष स्वागत किया और मंचपर उनके लिये एक कुरसी रखवा दी। लड़के और साजिन्दे मंचके नीचे बैठ गये। उपदेशकगण मन ही मन ऐसे कुढ़ रहे थे, मानों हंस-समाजमें कोई कौवा आ गया हो। दो एक सहृदय महाशयोंने दबी जबानसे फबतियां भी कहीं, पर ईजाद हुसेनके तीवर जरा भी मैले न हुए। वह इस अवहेलनाके लिये तैयार थे। उनके चेहरेसे वह शान्तिपूर्ण दृढ़ता झलक रही थी, जो कठिनाइयोंकी परवा नहीं करती और कांटोंमें भी राह निकाल लेती है।

पण्डितजीने अपना रङ्ग जमते न देखा तो अपनी वक्तृता समाप्त कर दी और जगहपर आ बैठे। श्रोताओंने समझा, अब इत्तहादियोंके राग सुननेमें आयेंगे, सबने कुरसियां आगे खसकायीं और सावधान हो बैठे। किन्तु उपदेशक-समाज इसे कब पसन्द कर सकता था कि कोई मुसलमान उनसे बाजी ले जाय। एक संन्यासी महात्माने चट अपना व्याख्यान शुरू कर दिया। यह महाशय वेदान्तके पण्डित और योगाभ्यासी थे। संस्कृतके उद्भट विद्वान थे। वह सदैव संस्कृतहीमें बोलते थे। उनके विषयमें किवदन्ती थी कि संस्कृत ही उनकी मातृभाषा है। उनकी वक्तृताको लोग उसी शौकसे सुनते थे, जैसे चण्डूलका गाना सुनते हैं। किसीकी भी समझमें कुछ न आता था, पर उनकी विद्वत्ता और

वाक्यप्रवाहका रोब लोगोंपर छा जाता था। वह एक विचित्र जीव समझे जाते थे और यही उनकी बहुप्रियताका मंत्र था। श्रोतागण कितने ही ऊबे हुए हों, उनके मञ्चपर आते ही उठनेवाले, बैठ जाते थे, जानेवाले थम जाते थे। महफिल जम जाती थी। इसी घमंडपर इस वक्त उन्होंने अपना भाषण आरम्भ किया, पर आज उनका जादू भी न चला। इत्तहादियोंने उनका रंग भी फीका कर दिया। उन्होंने संस्कृतकी झड़ी लगा दी, खूब तड़पे, खूब गरजे, पर यह भावोंकी नहीं, चैतकी वर्षा थी। अन्तमें वह भी थककर बैठ रहे और अब किसी अन्य उपदेशकको खड़े होनेका साहस न हुआ। इत्तहादियोंने मैदान मार लिया।

ज्ञानशङ्करने खड़े होकर कहा, अब इत्तहाद संस्थाके सञ्चालक सैयद ईजाद हुसेन अपनी अमृतवाणी सुनायेंगे। आप लोग ध्यान-पूर्वक श्रवण करें।

सभाभवनमें सन्नाटा छा गया। लोग संभल बैठे। ईजाद हुसेनने हारमोनियम उठाकर मेजपर रक्खा, साजिन्दोंने साज निकाले, अनाथ बालकवृन्द वृत्ताकार बैठे। सैयद ईर्शाद हुसेनने इत्तहाद सभाकी नियमावलीका पुलिंदा निकाला, एक क्षणमें ईशवन्दनाके मधुर स्वर पंडालमें गूंजने लगे। बालकोंकी ध्वनिमें एक खास लोच होता है, उनका स्वर मिलाकर गाना, उसपर साजोंका मेल, एक समां छा गया—सारी सभा मुग्ध हो गयी।

राग बन्द हो गया और सैयद ईजाद हुसेनने बोलना शुरू किया, प्यारे दोस्तो, आपको हैरत होगी कि हंसोंमें यह कौवा क्योंकर आ घुसा, औलियाके जमघटमें यह भांड़ कैसे पहुंचा। यह मेरी तकदीरकी खूबी है। उलमा फरमाते हैं, जिस्म हादिस (अनित्य) है, रूह कदीम (नित्य) है। मेरा तजर्बा बिल्कुल इसके बरअक्स (उल्टा) है। मेरे जाहिरमें कोई तबदीली नहीं हुई, नाम वही है, लम्बी दाढ़ी वही है, लिबास-पोशाक वही है, पर मेरे

रूहकी काया पलट गयी। जाहिरसे मुगालतेमें न आइये, दिलमें पैठकर देखिये, वहां मोटे हरूफमें लिखा हुआ है :—

'हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्तां हमारा'

लड़कों और साजिन्दोंने एकताळको गजल अलापनी शुरू की, सभा लोट-पोट हो गयी। लोगोंकी आंखोंसे गौरवकी किरणें-सी निकलने लगी, कोई मोछोंपर ताव देने लगा, किसीने वेबसीकी लम्बी सांस खींची, किसीने अपनी भुजाओंपर निगाह डाली और कितनेही सहृदय सज्जनोंकी आंखें भर आयीं। विशेष करके इस मिसरेपर—

'हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलिस्तां हमारा'

तो सारी मजलिस तड़प उठी, लोगोंने कलेजे थाम लिये, 'वन्देमातरम्' से भवन गूंज उठा। गाना बन्द होते ही फिर व्याख्यान शुरू हुआ—

'भाइयो, मजहब दिलको तस्कीनके लिये है, दुनिया कमानेके लिये नहीं, मुल्की हक़ूक हासिल करनेके लिये नहीं। वह आदमी जो मजहबकी आड़में दौलत और इज्जत हासिल करना चाहता है, अगर हिन्दू है तो मलिच्छ है, मुसलमान है तो काफिर है, हां काफिर है, मरदूद है, रूसियाह है।

करतलध्वनिसे पंडाल कांप उठा।

'हम सत्तर पुश्तोंसे इसी सरजमीनका दाना खा रहे हैं, इसी सरजमीनके आब व गिल (पानी और मिट्टी) से हमारी शिरशिरी हुई है। तुफ है उस मुसलमानपर जो हिजाज और एराकको अपना वतन कहता है।'

फिर तालियां बजीं। एक घंटेतक व्याख्यान हुआ। सैयद साहबने सभापर मानों मोहिनी डाल दी। उनकी गौरवयुक्त विनम्रता, उनकी निर्भीक यथार्थवादिता, उनकी मीठी चुटकियां, उनकी जातीयतामे डूबी हुई वाक्य-कुशलता, उनकी उत्तेजनापूर्ण

आलोचना, उनके स्वदेशाभिमान, उसपर उनके शब्दप्रवाह, भावोत्कर्ष और राष्ट्रीय गानने लोगोंको उन्मत्त कर दिया। हृदयोंमें जागृतिकी तरंगें उठने लगीं। कोई सोचता था, न हुए मेरे पास एक लाख रुपये, नहीं तो इसी दम लुटा देता। कोई मनमें कहता था, बाल-बच्चोंकी चिन्ता न होती तो गलेमें झोली लटकाकर जातिके लिये भिक्षा मांगता।

इस तरह जातीय भावोंको उभारकर भूमिको पोली बनाकर, सैयद साहब मतलबपर आये, बीज डालना शुरू किया।

'दोस्तो, अब मजहबपरस्तीका जमाना नहीं रहा, पुरानी बातोंको भूल जाइये। एक जमाना था कि आरियोंने यहांके असली बाशिन्दोंपर सदियोंतक हुकूमत की, आज वही शूद्र आरियोंमें घुले मिले हुए हैं। दुश्मनोंको अपने सलूकसे दोस्त बना लेना आपके बुजुर्गोंका जौहर था। वह जौहर आपमें मौजूद है। आप बारहा हमसे गले मिलनेके लिये बढ़े, लेकिन हम पिदरम सुलतां बूदके जोममें हमेशा आपसे दूर भागते रहे। लेकिन दोस्तो, हमारी बदगुमानीसे नाराज न हो, तुम जिन्दा कौम हो, तुम्हारे दिलोंमें दर्द है, हिम्मत है, फैयाजी है, हमारी संगदिलीको भूल जाइये, उसी बेगाना कौमका एक फर्द, यह फकीर आज आपकी खिदमतमें इत्तहादका पैगाम लेकर हाजिर हुआ है, उसकी अर्ज कबूल कीजिये, यह फकीर इत्तहादका सौदाई है, इत्तहादका दीवाना है, उसका हौसला बढ़ाइये, इत्तहादका यह नन्हासा मुर्झाया हुआ पौदा आपकी तरफ भूखी, प्यासी आंखोंसे ताक रहा है, उसे अपनी दरियादिलीके उबलते हुए चश्मोंसे सेराब कर दीजिये तब आप देखेंगे कि यह पौदा कितनी जल्द तनावर दरख्त हो जाता है और उसके मीठे फलोंसे कितनोंकी जबानें तर होती हैं। हमारे दिलमें बड़े बड़े हौसले हैं, बड़े बड़े मंसूबे हैं। हम इत्तहादकी सदासे इस पाक जमीनके एक एक गोशेको भर देना चाहते हैं। अबतक जो कुछ किया है आपहीने किया है, आइन्दा जो

कुछ करेंगे, आपही करेंगे। चन्देकी फिहरिस्त देखिये, वह आपहीके नामोंसे भरी हुई है और हक पूछिये तो आपही उसके बानी हैं। रानी गायत्री कुंवर साहिबाकी सखावतकी इस वक्त सारी दुनियांमें शोहरत है, भगत ज्ञानशङ्करकी कौमपरस्ती क्या पोशीदा है? वजीर ऐसा, बादशाह ऐसा, ऐसी पाक रुहें जिस कौममें हों वह खुशनसीब है। आज जब मैंने इस शहरकी पाक जमीनपर कदम रखा तो बाशिन्दोंके एखलाक और मुरोवत, मेहमाननेवाज़ी और खातिरदारीने मुझे हैरतमें डाल दिया। तहक़ीक़ करनेसे मालूम हुआ कि यह इसी मजहबी जोशकी बरकत है, यह प्रेमके औतार सिरी किरिश्नकी भगतीका असर है, जिसने लोगोंको इन्सानियतके दरजेसे उठाकर फरिश्तोंका हमसर बना दिया है। हजरात मैं अर्ज नहीं कर सकता कि मेरे दिलमें सिरी किरिश्नजीकी कितनी इज्जत है। इससे चाहे मेरी मुसलमानीपर ताने ही क्यों न दिये जायं, पर मैं बेखौफ कहता हूं कि वह रुहे पाक इलूहियत (ईश्वरत्व) के उस दरजेपर पहुंची हुई थी जहांतक किसी नबी या पैगम्बरको पहुंचना नसीब न हुआ। आज इस सभामें मैं सच्चे दिलसे अंजुमन इत्तहादको उसी रुहपाकके नाम मानून (समर्पित) करता हूं। मुझे उम्मीद ही नहीं, यकीन है कि उनके भगतोंके सामने मेरा सवाल खाली न जायगा। इत्तहादी यतीमखानेके बच्चे और बच्चियां आपहीकी तरफ बेकस निगाहोंसे देख रही हैं। यह कौमी भिखारी आपके दरवाजेपर खड़ा दोआएं दे रहा है। इस लम्बी दाढ़ीपर निगाह डालिये, इन सुफेद बालोंकी लाज रखिये।

फिर हारमोनियम बजा, तबलेपर थाप पड़ी, करतालने झंकार की और ईजाद हुसेनकी करुणारसपूर्ण गजल शुरू हुई। श्रोताओंके कलेजे मसोस उठे। चन्देकी अपील हुई तो रानी गायत्रीकी ओरसे १०००) की सूचना हुई, भक्त ज्ञानशङ्करने यतीमखानेके लिये एक गाय भेंट की, चारों तरफसे लोग चन्दा देनेको लपके। इधर

थो चन्देकी सूची चक्कर लगा रही थी, उधर इर्शाद हुसेनने अंजुमनके पैमफ्लेट तमगे बेचने शुरू किये। तमगे अतीव सुन्दर बने हुए थे। लोगोंने शौकसे हाथोंहाथ लिये। एक क्षणमें हजारों वक्षस्थलोंपर यह तमगे चमकने लगे। हृदयोंपर दोनों तरफसे इत्तहादकी छाप पड़ गयी। कुल चन्देका योग ५०००) हुआ। ईजादहुसेनका चेहरा फूलकी तरह खिल उठा। उन्होंने फिर लोगोंको धन्यवाद देते हुए एक गजल गायी और आजकी कार्य्यवाही समाप्त हुई। रातके दस बजे थे।

जब ईजादहुसेन भोजन करके लेटे और खमीरेका रसपान करने लगे तब उनके सुपुत्रने पूछा, इतनी उम्मेद तो आपको भी न थी।

ईजाद—हरगिज नहीं। मैंने ज्यादासे ज्यादा १०००) का अन्दाज किया था, मगर आज मालूम हुआ कि यह सब कितने अहमक होते हैं। इसी अपीलपर किसी इसलामी जलसेमें मुश्किलसे १००) मिलते, इन बछियाके ताउओंकी खूब तारीफ कीजिये। इनकी मलीहकी हदतक हो तो मुजायका नहीं, फिर इनसे जितना चाहे वसूल कर लीजिये।

इर्शाद—आपकी तकरीर लाजवाब थी।

ईजाद—उसीपर तो जिन्दगीका दारमदार है। न किसीके नौकर न गुलाम। बस, दुनियामें कामयाबीका नुसखा है तो वह शरतञ्जबाजी है। आदमी जरा लस्सान (वाक्य-चतुर) हो, जरा मर्दुम शनास हो और जरा गिरहबाज हो, बस उसकी चांदी है। दौलत उसके घरकी लौंडी है।

इर्शाद—सच फरमाइयेगा अब्बा जान, क्या आपका कभी यह खयाल था कि यह सब दुनियासाजी है।

ईजाद—क्या मुझे मामूली आदमियोंसे भी गया गुजरा समझते हो? यह दगाबाजी है, पर करूं क्या? औलाद और खानदानकी मुहब्बत अपनी नजातकी फिकरसे ज्यादा है।

४१

जलसा बड़ी सुन्दरतासे समाप्त हुआ। रानी गायत्रीके व्याख्यानपर समस्त देशमें वाह वाह मच गयी। उसमें सनातन-धर्म-संस्थाका ऐतिहासिक दिग्दर्शन करानेके बाद, उसकी उन्नति और पतन, उसके उद्धार और सुधार, और उसकी विरोधी तथा सहायक शक्तियोंका बड़ी योग्यतासे निरूपण किया गया था। संस्थाकी वर्तमान दशा और भावी लक्ष्यकी बड़ी मार्मिक आलोचना की गई थी। पत्रोंमें उस वक्तृताको पढ़कर लोग चकित हो जाते थे, और जिन्होंने उसे अपने कानोंसे सुना वे उसका स्वर्गीय आनन्द कभी न भूलेंगे। क्या वाक्यशैली थी, कितनी सरल, कितनी मधुर, कितनी प्रतिभाशाली, कितनी भावमय! वक्तृता क्या थी एक मनोहर गान था।

तीन दिन बीत चुके थे। ज्ञानशङ्कर अपने भव्य भवनमें समाचारपत्रोंका एक दफ्तर सामने रखे बैठे हुए थे। आजकल उनका यही काम था कि पत्रोंमें जहां कहीं इस जलसेकी आलोचना हुई तुरत काटकर रख लेते। गायत्री अब ज्ञानशङ्करको देवतुल्य समझती थी। उन्हींकी बदौलत आज समस्त देशमें उसकी सुकीर्तिकी धूम मची हुई थी। उनके इस अतुल उपकारका एक ही उपहार था और वह प्रेममय श्रद्धा थी।

सन्ध्या हो गयी थी कि अकस्मात् ज्ञानशङ्कर पत्रोंकी एक पोट लिये हुए अन्दर गये और गायत्रीसे बोले, देखिये, रायसाहबने यह नया शिगोफा छोड़ा।

गायत्रीने भौंहें चढ़ाकर कहा, मेरे सामने उनका नाम न लीजिये; मैंने उनकी कितनी चिरौरी की थी कि एक दिनके लिये जलसेमें अवश्य आइये, पर उन्होंने जरा भी परवा न की, पत्रका उत्तरतक न दिया। बाप हैं तो क्या, मैं उनके हाथों भी अपना अपमान नहीं सह सकती!

ज्ञान—मैंने तो समझा था यह उनकी लापरवाही है, लेकिन

इस पत्रसे विदित होता है कि आजकल वह एक दूसरी ही धुनमें हैं। शायद इसी कारण अवकाश न मिला हो।

गायत्री—क्या बात है, किसी अँग्रेजसे लड तो नहीं बैठे ?

ज्ञान—नहीं, आजकल एक सङ्गीत सभाकी तैयारी कर रहे हैं।

गायत्री—उनके यहां तो बारहो मास सङ्गीत-सभा होती रहती है!

ज्ञान—नहीं, यह उत्सव बड़ी धूमसे होगा। देशके समस्त गवैयोंके नाम निमन्त्रणपत्र भेजे गये हैं, युरोपसे भी कई जगद्विख्यात गायनाचार्य बुलाये जा रहे हैं। रईसों और अधिकारियोंको दावत दी गयी है। एक सप्ताहतक जलसा होगा। यहांके सङ्गीतशास्त्र और पद्धतिमें सुधार करना उसका उद्देश्य है।

गायत्री—हमारा सङ्गीतशास्त्र ऋषियोंका रचा हुआ है। उसमें कोई क्या सुधार करेगा? इसी भैरव और ध्रुपदके शब्द यशोदानन्दकी वंशीसे निकलते थे। पहले कोई गा तो ले, सुधारना तो छोटे मुंह बड़ी बात है।

ज्ञान—रायसाहबको कोई और चिन्ता तो है नहीं, एक न एक स्वांग रचते रहते हैं। कर्ज बढ़ता जाता है, रियासत बोझसे दबी जाती है, पर वह अपनी धुनमें किसीकी कब सुनते हैं। मेरा अनुमान है कि इस समय उनपर कोई ३॥ लाखका देना है।

गायत्री—इतना धन कृष्ण भगवानकी सेवामें खर्च करते तो परलोक बन जाता। चिट्ठियां तो खोलिये, जरूर उनका कोई पत्र होगा।

ज्ञान—हां, देखिये, यह लिफाफा उन्हींका मालूम होता है हां, उन्हींका है, मुझे बुला रहे हैं और आपको भी बुला रहे हैं।

गायत्री—मैं जा चुकी। जब वह यहां आनेमें अपनी हेठी समझते हैं, तो मुझे क्या पड़ी है कि उनके जलसों तमाशोंमें जाऊं। हां, विद्याको चाहे पहुंचा दीजिये, मगर शर्त यह है कि आप भी दो दिनसे ज्यादा वहां न ठहरें।

ज्ञान—इसके विषयमें सोचकर निश्चय करूंगा। यह दो पत्र बरहल और आमगांवके कारिन्दोंके हैं। दोनों लिखते हैं कि असामी सभाका चन्दा देनेसे इन्कार करते हैं।

गायत्रीकी तिउरियां बदल गयीं। प्रेमकी देवी क्रोधकी मूर्ति बन गयी। बोली, क्या देहातोंमें भी यह हवा फैलने लगी? कारिन्दोंको लिख दीजिये कि इन पाजियोंके घरमें आग लगवा दें और उन्हें कोड़ोंसे पिटवायें। उनका यह दिन कि मेरी आज्ञाका अनादर करें! देवकीनन्दन, तुम इन नरपिशाचोंको क्षमा करो। आप आजही वहां आदमी रवाना करें। मैं यह अवज्ञा नहीं सह सकती। यह सबके सब कृतघ्न हैं। किसी दूसरे राजमें होते तो आटे दालका भाव खुलता। मैं इनके साथ इतनी रिआयत करती हूं, उनकी मददके लिये नित्य तैयार रहती हूं, उनके लिये नुकसान उठाती हूं और उसका यह फल!

ज्ञान—यह मुंशी रामसनेहीका पत्र है, लिखते हैं, ठाकुर-द्वारेका काम तीन दिनसे बन्द है। बेगारोंको कितनी ही ताकीद की जाती है, कामपर नहीं आते।

गायत्री—उन्हे मजूरी तो दी जाती है न?

ज्ञान—जी हां, लेकिन जमींदारीकी दरसे दी जाती है। जमींदारी शरह ≈) है। आम शरह ।≈) है।

गायत्री—आप उचित समझें तो रामसनेहीको लिख दीजिये कि ।) के हिसाबसे मजूरी दी जाय।

ज्ञान—लिख तो दूं, वास्तवमें ≈) में एक पेट भी नहीं भरता, लेकिन इन मूर्ख, उजड्ड गंवारोंपर दया भी की जाय तो वह समझते है कि दब गये। कलको ।≈) मांगने लगेंगे और फिर बात भी न सुनेंगे।

गायत्री—तो फिर लिख दीजिये कि बेगारोंको जबरदस्ती पकड़वा लें। अगर न आयें तो उन्हे गांवसे निकाल दीजिये। हम स्वयं दयाभावसे उनके साथ चाहे जो सलूक करें, मगर यह

कदापि नहीं हो सकता कि कोई असामी मेरे सामने हेकड़ी जताये। अपना रोब और भय बनाये रखना चाहिये।

ज्ञान—यह पत्र अमोलियाके बाजारसे आया है। ठेकेदार लिखता है कि लोग गोलेके भीतर गाडियां नहीं लाते। बाहर ही पेड़ोंके नीचे अपना सौदा बेचते हैं। कहते हैं, हमारा जहां जी चाहेगा बैठेंगे। ऐसी दशामें ठीका रद्द कर दिया जाय, अन्यथा मुझे बड़ी हानि होगी।

गायत्री—बाजारके बाहर भी तो मेरी ही जमीन है। वहां किसीको दूकान रखनेका क्या अधिकार है?

ज्ञान—कुछ नहीं, बदमाशी है। बाजारमें रुपये पीछे एक पैसा बयाई देनी पड़ती है, तौल ठीक ठीक होती है, कुछ धर्मार्थ कटाती देनी पड़ती है, बाहर मनमाना राज है।

गायत्री—यह क्या बात है कि जो काम जनताके सुभीते और आरामके लिये किये जाते हैं, उनका भी लोग विरोध करते हैं?

ज्ञान—कुछ नहीं, यह मानवप्रकृति है। मनुष्यको स्वभावतः दबावसे, रोक थामसे, चाहे वह उसीके उपकारके लिये क्यों न हो, चिढ़ होती है। किसान अपने मूर्ख पुरोहितके पैर धो धो पीयेगा, लेकिन कारिन्दाको, चाहे वह विद्वान ब्राह्मण ही क्यों न हो, सलाम करनेमें भी उसे संकोच होता है। यों चाहे वह दिन-भर धूपमें खड़ा रहे, लेकिन कारिन्दा या चपरासीको देखकर चारपाईसे उठना भी उसे असह्य होता है। वह आठों पहर अपनी दीनता और विवशताके भारसे दबा रहना नहीं चाहता। अपनी खुशीसे नीमकी पत्तियां चबायेगा, लेकिन जबरदस्ती दूध और शर्बत भी न पीयेगा। यह जानते हुए भी हम उनपर सख्ती करनेके लिये बाध्य हैं।

इतनेमें मायाशङ्कर एक पीताम्बर ओढ़े हुए ऊपरसे उतरा। अभी उसकी उम्र १४ वर्षसे अधिक न थी, किन्तु मुखपर एक



विलक्षण गंभीरता और विचारशीलता झलक रही थी, जो इस अवस्थामें बहुत कम देखनेमें आती है। ज्ञानशङ्करने पूछा, कहां चले मुन्नू?

मायाने तीव्र नेत्रोंसे देखते हुए कहा, घाटकी तरफ संध्या करने जाता हूं।

ज्ञान—आज सरदी बहुत है। यहीं बागमें क्यों नहीं कर लेते?

माया—वहां एकान्तमें चित्त खूब एकाग्र हो जाता है।

वह चला गया तो ज्ञानशङ्करने कहा, इस लड़केका स्वभाव विचित्र है। समझहीमें नहीं आता। सवारियां सब तैयार हैं, पर पैदल ही जायगा। किसीको साथ भी नहीं लेता।

गायत्री—महरियां कहती हैं अपना बिछावनतक किसीको नहीं छूने देते। वह बेचारियां इनका मुंह जोहा करती हैं कि कोई काम करनेको कहें, पर इन्हें किसीसे कुछ मतलब ही नहीं।

ज्ञान—इस उम्रमें कभी कभी यह सनक सवार हो जाया करती है। संसारका कुछ ज्ञान तो होता नहीं, पुस्तकोंमें जिन नियमोंकी सराहना की गयी है उनके पालन करनेको प्रस्तुत हो जाता है। लेकिन मुझे तो यह कुछ मंदबुद्धि-सा जान पड़ता है। इतना बड़ा हुआ, पैसेकी कदर ही नहीं जानता। अभी १००) दे दीजिये, तो शामतक पास कौड़ी न रहेगी। न जाने कहां उड़ा देता है, किन्तु इसके साथ ही मांगता कभी नहीं। जबतक खुद न दीजिये, अपनी जबानसे कभी न कहेगा।

गायत्री—मेरी समझमें तो यह पूर्वजन्ममें कोई संन्यासी रहे होंगे।

ज्ञानशङ्करने आजकी गाड़ीसे बनारस जाकर विद्याको साथ लेते हुए लखनऊ जानेका निश्चय किया। गायत्री बहुत कहने-सुननेपर भी राजी न हुई।

४२

राय कमलानन्दको देखे हुए हमें लगभग सात वर्ष हो गये,पर इस कालक्षेपका उनपर कोई चिह्न नहीं दिखायी देता। बल-पौरुष, रंग-ढंग सब कुछ वही है। यथापूर्व उनका समय सैर और शिकार, पोलो और टेनिस, राग और रंगमें व्यतीत होता है। योगाभ्यास भी करते जाते हैं। धनपर वह कभी लोलुप नहीं हुए और अब भी उसका आदर नहीं करते। जिस कामकी धुन हुई उसे करके छोड़ते हैं, इसकी जरा भी चिन्ता नहीं करते कि रुपये कहांसे आयंगे। वह अब भी सलाहकारी सभाके मेम्बर हैं। इस बीचमें दो बार चुनाव हुआ और दोनों बार वही बहुमतसे चुने गये। यद्यपि किसानों और मध्य श्रेणीके मनुष्योंको भी वोट देनेका अधिकार मिल गया था, तथापि रायसाहबके मुकाबलेमें कौन जीत सकता था? किसानोंके वोट उनके और उनके अन्य भाइयोंके हाथोंमें थे, और मध्य श्रेणीके लोगोंको जातीय संस्थाओंमें चन्दे देकर वशीभूत कर लेना कठिन न था।

रायसाहब इतने दिनोंतक मेम्बर बने रहे, पर उन्हें इस बातका अभिमान था कि मैंने अपनी ओरसे कौंसिलमें कभी कोई प्रस्ताव नहीं किया। वह कहते, मुझे खुशामदी टट्टू कहनेमें अगर किसीको आनन्द मिलता है तो कहे, मुझे देश और जातिका द्रोही कहनेसे अगर किसीका पेट भरता हो तो भरे, मुझे कोई शिकायत नहीं है; पर मैं अपने स्वभावको नहीं बदल सकता। अगर रस्सी तुड़ाकर मैं जंगलमें स्वाधीन चर सकूं तो मैं आजही खूंटा उखाड़ फेंकूं। लेकिन जब जानता हूं कि रस्सी तुड़ानेपर भी मैं बाड़ेसे बाहर नहीं जा सकता, बल्कि ऊपरसे और डण्डे पड़ेंगे तो फिर खूंटेपर चुपचाप खड़ा क्यों न रहूं? और कुछ नहीं तो मालिककी कृपादृष्टि तो रहेगी? जब राज्यसत्ता अधिकारियोंके हाथोंमें है, हमारे असहयोग या असम्मतिसे उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता, तो इसकी क्या जरूरत है कि हम व्यर्थ अधिकारियोंपर टीका

टिप्पणी करने बैठें और उनकी आंखोंमें खटकें। हम काठके पुतले हैं, तमाशे दिखानेके लिये खड़े किये गये हैं, इसलिए हमें डोरोंके इशारेपर नाचना चाहिए। यह हमारी खामखियाली है कि हम अपनेको राष्ट्रका प्रतिनिधि समझते हैं। जाति हम जैसोंको, जिसका अस्तित्व ही उसके रक्तपर अवलम्बित है, कभी अपना प्रतिनिधि न बनायेगी। जिस दिन जातिमें अपनी हानि लाभ समझनेकी शक्ति होगी, हम और आप खेतोंमें फावड़े चलाते नजर आयेंगे। हमारा प्रतिनिधित्व सम्पूर्णतः हमारी स्वार्थपरता और सम्मानलिप्सापर निर्भर है, हम जातिके हितैषी नहीं हैं, हम उसे केवल स्वार्थसिद्धिका यन्त्र बनाये हुए हैं। हम लोग अपने वेतनकी तुलना अङ्गरेजोंसे करते हैं। क्यों? हमें तो यह सोचना चाहिये कि ये रुपये हमारी मुट्ठीमें न आकर यदि जातिकी उन्नति और उपकारमें खर्च हों तो अच्छा है। अंग्रेज लोग अगर दोनों हाथोंसे धन बटोरते हैं तो बटोरने दीजिये। वह इसी उद्देश्यसे इस देशमें आये हैं। उन्हें हमारे जातिप्रेमका दावा नहीं है। हम तो जातिभक्तिकी हांक लगाते हुए भी देशका गला घोंटे देते हैं। हम अपने जातीय व्यवसायके अधःपतनका रोना रोते हैं। मैं कहता हूं, आपके हाथों यह दशा और भी असाध्य हो जायगी। हम अगणित मिलें खोलेंगे, बड़ी संख्यामें कारखाने कायम करेंगे, परिणाम क्या होगा? हमारे देहात वीरान हो जायेंगे, हमारे कृषक कारखानोंके मजूर बन जायेंगे। राष्ट्रका सत्यानाश हो जायगा। आप इसीको जातीय उन्नतिकी चरम सीमा समझते हैं, मेरी समझमें यह जातीयताका घोर अधःपतन है। जातिकी जो कुछ दुर्गति हुई है हमारे हाथों हुई है। हम जमींदार हैं, साहूकार हैं वकील हैं, सौदागर हैं, डाक्टर हैं, राज्यपदाधिकारी हैं। इनमें कौन जातिकी सच्ची वकालत करनेका दावा कर सकता है? आप जातिके साथ बड़ी भलाई करते हैं तो कौंसिलमें अनिवार्य्य शिक्षाका प्रस्ताव पेश कर देते हैं। अगर आप जातिके सच्चे

नेता होते तो यह निरंकुशता कभी न करते। कोई अपनी इच्छाके विरुद्ध स्वर्ग भी नहीं चाहता। हममें तो कितने हो महोदयोंने बड़ी बड़ी उपाधियां प्राप्त की हैं। पर इस उच्च शिक्षाने हममें सिवा विलासलालसा और सम्मानप्रेम, स्वार्थ सिद्धि और अहम्मन्यताके और कौनसा सुधार कर दिया? हम अपने घमंडमें अपनेको जातिका अत्यावश्यक अंग समझते हैं, पर वस्तुतः हम कीट-पतंगसे भी गये बीते हैं। जातिसेवा करनेके लिये दो हजार रुपये मासिक या दैनिक, मोटर, बिजली, पखे, फिटन, नौकर चाकरकी क्या जरूरत है? आप रूखी रोटियां खाकर जातिकी सेवा इससे कहीं उत्तम रीतिसे कर सकते हैं। आप कहेंगे वाह, हमने परिश्रमसे विद्योपार्जन किया है, क्या इसीलिये? तो जब आपने कायिक सुखभोगके लिये इतना अध्यवसाय किया है तब जाति-पर इसका क्या एहसान? आप किस मुंहसे जातिके नेतृत्वका दावा करते हैं? आप मिलें खोलते हैं, तो समझते हैं हमने जाति-की बड़ी सेवा की। पर यथार्थमें अपने दस बीस हजार आद-मियोंको वनवास दे दिया। आपने उनके नैतिक और सामाजिक पतनका सामान पैदा कर दिया। हां, आपने और आपके साझे-दारोंने ४५) प्रति सैकड़ेका लाभ अवश्य उठाया। तो भई, जबतक यह धींगाधींगी चलती है चलने दो, न तुम मुझे बुरा कहो न मैं तुम्हें बुरा कहूं। हम और आप, नरम और गरम दोनोंही जातिके शत्रु हैं। अन्तर यह है कि मैं अपनेको शत्रु समझता हूं और आप अपने अहङ्कारके मदमें अपनेको उनका मित्र समझते हैं।

इन तर्कोंको सुनकर लोग उन्हें बक्की और झक्की कहते थे। अवस्थाके साथ रायसाहबका संगीतप्रेम और भी बढ़ता जाता था। अधिकारियोंसे मुलाकातका उन्हें अब उतना व्यसन नहीं था। जहां कहीं किसी उस्तादकी खबर पाते तुरत बुलाते और यथायोग्य उसका सम्मान करते। संगीतकी वर्तमान अभि-रुचिको देखकर उन्हें भय होता था कि अगर कुछ दिनों यही

दशा और रही तो इसका स्वरूप ही मिट जायेगा, देश और भैरव-की तमीज भी किसीको न होगी। वह संगीतकलाको जातिकी सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति समझते थे। उसकी अवनति उनकी समझमें जातीयपतनका निकृष्टतम स्वरूप था। व्ययका अनुमान चार लाख किया गया था। रायसाहबने किसीसे सहायता मांगना उचित न समझा था, लेकिन कई रईसोंने स्वयं २-२ लाखके वचन दिये थे। तब भी रायसाहबपर २-२॥ लाखका भार पड़ना सिद्ध था। युरोपसे ६ नामी सङ्गीतके ज्ञाता आ गये थे, २ जर्मनीसे, २ इटलीसे, १ फ्रांस और १ इङ्गलिस्तानसे। मैसूर, ग्वालियर, ढाका, जयपुर, काश्मीरके उस्तादोंको निमन्त्रणपत्र भेज दिये गये थे। रायसाहबका प्राइवेट सेक्रेटरी सारे दिन पत्रव्यवहारमें व्यस्त रहता था, तिसपर भी चिट्ठियोंकी इतनी कसरत हो जाती थी कि बहुधा रायसाहबको स्वयं जवाब लिखने पड़ते थे। इसी कामको निवटानेके लिये उन्होंने ज्ञानशङ्करको बुलाया था और वह आज ही विद्याके साथ आ गये थे। रायसाहबने गायत्रीके न आनेपर बहुत खेद प्रकट किया और बोले, वह इसीलिये नहीं आयी है कि मैं सनातनधर्मके उत्सवमें न आ सका था। अब रानी हो गयी हैं, क्या इतना गर्व भी न होगा? यहां तो मरनेकी भी छुट्टी न थी, जाता क्योंकर?

ज्ञानशङ्कर रातभरके जागे थे, भोजन करके लेटे तो तीसरे पहर उठे। रायसाहब दीवानखानेमें बैठे हुए चिट्ठियां पढ़ रहे थे। ज्ञानशङ्करको देखकर बोले, आइए, भगतजी आइए, तुमने तो काया ही बदल दी, बड़े भाग्यवान हो कि इतनी ही अवस्थामें ज्ञान प्राप्त कर लिया। यहां तो मरनेके किनारे आये, पर अभी माया-मोहसे मुक्त न हुआ। यह देखो, पूनासे प्रोफेसर मधोलकरने यह पत्र भेजा है। उन्हें न जाने कैसे यह शंका हो गयी है कि मैं इस देशमें विदेशी संगीतका प्रचार करना चाहता हूं। इसपर आपने मुझे खूब आड़े हाथों लिया है।

ज्ञानशङ्कर मतलबकी बात छेड़नेके लिये अधीर हो रहे थे, अवसर मिल गया। बोले, आपने युरोपसे लोगोंको नाहक बुलाया, इसीसे यहां जनताको ऐसी शंकायें हो रही हैं। उन लोगोंकी कुछ फीस तय हो गयी है?

रायसाहब—हां, यह तो पहली बात थी। दो सज्जनोंको फीस तो रोजाना दो दो हजार है। सफरका खर्च अलग। जर्मनीके दोनों महाशय डढ डेढ़ हजार रोजाना लेंगे। केवल इटलीके दोनों आदमियोंने निस्स्वार्थ भावसे शरीक होना स्वीकार किया है।

ज्ञान—अगर यह चारों महाशय यहां १५ दिन भी रहें तो एक लाख रुपये तो उन्हींको चाहिये?

राय—हां, इससे क्या कम होगा?

ज्ञान—तो कुल खर्च चाहे ५—५॥ लाखतक जा पहुंचे।

राय—तखमीना तो ४ लाखका किया गया था, लेकिन शायद इससे कुछ ज्यादा पड़ जाय।

ज्ञान—यहांके रईसोंने भी कुछ हिम्मत दिखायी?

राय—हां, कई सज्जनोंने वचन दिये हैं। सम्भव है, दो लाख मिल जायं।

ज्ञान—अगर वह अपने वचन पूरे भी कर दें तो आपको २॥—३ लाखकी जेरबारी होगी।

रायसाहबने व्यंगपूर्ण हास्यके साथ कहा, मैं इसे जेरबारी नहीं समझता। धन सुखभोगके लिये है, उसका और कोई उद्देश्य नहीं है। मैं धनको अपनी इच्छाओंका गुलाम समझता हूं, उसका गुलाम नहीं बनना चाहता।

ज्ञान—लेकिन वारिसोंको भी तो सुखभोगका कुछ-न-कुछ अधिकार है?

रायसाहब—संसारमें सब प्राणी अपने कर्मानुसार दुःख सुख भोगते हैं। मैं किसीके भाग्यका विधाता नहीं हूं।

ज्ञान—क्षमा कीजियेगा यह शब्द ऐसे पुरुषके मुंहसे शोभा नहीं देते जो अपने जीवनका अधिकांश बिता चुका हो।

रायसाहबने कठोर स्वरसे कहा, तुमको मुझे उपदेश करनेका कोई अधिकार नहीं है। मैं अपनी सम्पत्तिका स्वामी हूं। उसे अपनी इच्छा और रुचिके अनुसार खर्च करूंगा। यदि इससे तुम्हारे सुख-स्वप्न नष्ट होते हैं तो हों, मैं इसकी परवा नहीं करता। यह मुमकिन नहीं कि सारे संसारमें इस कान्फरेन्सकी सूचना देनेके बाद अब मैं उसे स्थगित कर दूं। अगर मेरी सारी जायदाद बिक जाय तोभी मैंने जो काम उठाया है उसे अन्ततक पहुंचाकर छोड़ूंगा। मेरी समझमें नहीं आता कि तुम कृष्णके ऐसे भक्त, और त्याग और वैरागके ऐसे साधक होकर माया मोहमें इतने लिप्त क्यों हो? जिसने कृष्णका दामन पकड़ा, प्रेमका आश्रय लिया, भक्तिकी शरण गही, उसके लिये सांसारिक विभव क्या चीज है! तुम्हारी बातें सुनकर और तुम्हारे चित्तकी यह वृत्ति देखकर मुझे संशय होता है कि तुमने यह बहुरूप धरा है और प्रेम-भक्तिका स्वाद नहीं पाया। कृष्णका अनुरागी, कभी इतना संकीर्ण-हृदय नहीं हो सकता। मुझे अब शङ्का हो रही है कि तुमने यह जाल कहीं सरलहृदया गायत्रीके लिये न फैलाया हो।

यह कहकर रायसाहबने ज्ञानशङ्करको तीव्र नेत्रोंसे देखा। उनके संदेहका निशाना इतना ठीक बैठा था कि ज्ञानशङ्करका हृदय कांप उठा। इस भ्रमका मूलोच्छेदन करना परमावश्यक था। रायसाहबके मनमें इसका जगह पाना अत्यन्त भयङ्कर था। इतना ही नहीं, इस भ्रमको दूर करनेके लिये निर्भीकताकी आवश्यकता थी। शिष्टाचारका समय न था। बोले, आपके मुखसे स्वांग और बहुरूपकी लाञ्छना सुनकर एक मसल याद आती है। लेकिन आपपर उसे घटित करना नहीं चाहता। जो प्राणी धर्मके नामपर विषयवासना और विषपानको स्तुत्य समझता हो, वह यदि दूसरोंकी धार्मिक वृत्तिको पाखण्ड समझे तो क्षम्य है।

रायसाहबने ज्ञानशङ्करको फिर चुभती हुई दृष्टिसे देखा और कड़ी आवाजसे बोले—तुम्हें सच कहना होगा।

ज्ञानशङ्करको ऐसा अनुभव हुआ, मानों उनके हृदयपरसे कोई परदा-सा उठा जा रहा है। उनपर एक अर्द्ध विस्मृतिकी दशा छा गयी। दीन भावसे बोले—जी हां, सच कहूंगा।

राय—तुमने यह जाल किसके लिये फैलाया है ?

ज्ञान—गायत्रीके लिये।

राय—तुम उससे क्या चाहते हो ?

ज्ञान—उसकी सम्पत्ति और उसका प्रेम।

रायसाहब खिलखिलाकर हंसे। ज्ञानशङ्करको जान पड़ा, मैं कोई स्वप्न देखते-देखते जाग उठा। उनके मुंहसे जो बातें निकली थीं, वह उन्हें याद थीं। उनका कृत्रिम क्रोध शान्त हो गया था। उसकी जगह उस लज्जा और दीनताने ले ली थी जो किसी अपराधीके चेहरेपर नजर आती है। वह समझ गये कि रायसाहबने मुझे अपने आत्मबलसे वशीभूत करके मेरी दुष्कल्पनाओंको स्वीकार करा लिया। इस समय वह उन्हें अत्यन्त भयावह रूपमें देख पड़ते थे। उनके मनमें इस अत्याचारका प्रत्याघात करनेकी घातक चेष्टा लहरें मार रही थी, पर इसके साथ ही उनपर एक विचित्र भय आच्छादित हो गया था। वह इस शैतानके सामने अपनेको सर्वथा निर्बल और अशक्त पाते थे। इन परिस्थितियोंसे वह ऐसे उद्विग्न हो रहे थे कि जी चाहता था आत्महत्या कर लूं। जिस भवनको वह ६-७ वर्षोंसे एक एक ईंट जोड़कर बना रहे थे वह इस समय हिल रहा था और निकट था कि गिर पड़े। उसे सम्भालना उनकी शक्तिसे बाहर था। शोक ! मेरे सारे मंसूबे मिट्टीमें मिले जाते हैं। इधरसे भी गया, उधरसे भी गया। यकायक रायसाहब बोले,—बेटा, तुम व्यर्थ मुझपर इतना कोप कर रहे हो, मैं इतना क्षुद्रहृदय नहीं हूं कि तुम्हें गायत्रीकी दृष्टिमें गिराऊं। उसकी जायदाद तुम्हारे हाथ लग जाय तो मेरे लिये

इससे ज्यादा हर्षकी बात और क्या होगी ? लेकिन तुम्हारी चेष्टा उसकी जायदादहीतक रहती तो मुझे कोई आपत्ति न होती। आखिर वह जायदाद किसी न किसीको मिलेगी ही, और जिन्हें मिलेगी वह मुझे तुमसे ज्यादा प्यारे नहीं हो सकते। किन्तु मैं उसके सतीत्वको उसकी जायदादसे कहीं ज्यादा बहुमूल्य समझता हूं और उसपर किसीकी लोलुप दृष्टिका पड़ना सहन नहीं कर सकता। तुम्हारी सच्चरित्रताकी मैं सराहना किया करता था, तुम्हारी योग्यता और कार्य्यपटुताका मैं कायल था, लेकिन मुझे इसका गुमान भी न था कि तुम इतने स्वार्थभक्त हो। तुम मुझे पाखण्डी और विषयी कहते हो, मुझे इसका जरा भी दुःख नहीं है, अनात्मवादियोंको ऐसी शंका होनी स्वाभाविक है, किन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि मैंने कभी सौन्दर्य्यको वासनाकी दृष्टिसे नहीं देखा। मैं सौन्दर्यको उपासना करता हूं, उसे अपने आत्म-निग्रहका साधन समझता हूं, उससे आत्मबल संग्रह करता हूं, उसे अपनी कुचेष्टाओंकी सामग्री नहीं बनाता। और मान लो मैं विषयी ही सही, बहुत दिन बीत गये हैं, थोड़े दिन और बाकी हैं, जैसा अबतक रहा वैसा ही आगे भी रहूंगा, अब मेरा सुधार नहीं हो सकता। लेकिन तुम्हारे सामने अभी सारी उम्र पड़ी हुई है, इसलिए मैं तुमसे अनुरोध करता हूं, प्रार्थना करता हूं, कि इच्छाओंके, कुवासनाओंके गुलाम मत बनो। तुम इस भ्रममें पड़े हुए हो कि मनुष्य अपने भाग्यका विधाता है। यह सर्वथा मिथ्या है। हम तकदीरके खिलौने हैं, विधाता नहीं। वह हमें अपने इच्छानुसार नचाया करती है। तुम्हें क्या मालूम है कि जिसके लिये तुम सत्यासत्यमें विवेक नहीं करते, पुण्य और पाप-को समान समझते हो, वह उस शुभ मुहूर्त्ततक सभी विघ्न व्याधियोंसे सुरक्षित रहेगा ? सम्भव है कि ठीक उस समय जब जायदादपर उसका नाम चढ़ाया जा रहा हो एक फुंसी उसका काम तमाम कर दे। यह न समझो कि मैं तुम्हारा बुरा चेत रहा

हूं, तुम्हें आशाओंकी असारताका केवल एक स्वरूप दिखाना चाहता हूं। मैंने तकदीरकी कितनीही लीलायें देखी हैं और स्वयं उसका सताया हुआ हूं। उसे अपनी शुभ कल्पनाओंके सांचेमें ढालना हमारे सामर्थ्यसे बाहर है। मैं नहीं कहता कि तुम अपने और अपनी सन्तानके हितकी चिन्ता मत करो, धनोपार्जन न करो। नहीं, खूब धन कमाओ और खूब समृद्धि प्राप्त करो; किन्तु अपनी आत्मा और ईमानको उसपर बलिदान न करो।—धूर्तता और पाखण्ड, छल और कपटसे बचते रहो। मेरी जायदाद २० लाखसे कमकी मालियत नहीं है। अगर दो चार लाख कर्ज ही हो जायं तो तुम्हें घबराना न चाहिये। क्या इतनी सम्पत्ति मायाशंकरके लिये काफी नहीं है। तुम्हारी पैत्रिक सम्पत्ति भी २ लाखसे कमकी नहीं है। अगर इतना काफी नहीं समझते तो गायत्रीकी जायदादपर भी निगाह रक्खो, इसे मैं बुरा नहीं कहता। अपने सुप्रबन्धसे, कार्य्यकुशलतासे, किफायतसे, हितेच्छासे, उसके कृपापात्र बन जाओ, न कि उसके भोलेपन, उसकी सरलता और मिथ्या भक्तिको अपनी कूटनीतिका लक्ष्य बनाओ और प्रेमका स्वांग भरकर उसके जीवनरत्नपर हाथ बढ़ाओ।

इतनेमें प्राइवेट सेक्रेटरी साहब आये। रायसाहब उनकी ओर आकृष्ट हो गये। ज्ञानशंकर रो रहे थे। भेद खुल जानेका शोक था, चिरसिंचित अभिलाषाओंके विनष्ट हो जानेका दुःख, कुछ ग्लानि, कुछ अपनी दुर्जनताका खेद, कुछ निर्बल क्रोध। तर्कनाशक्ति इतने आघातोंका प्रतिरोध न कर सकती थी।

ज्ञानशंकर उठकर बागमें एक बेंचपर जा बैठे। माघका महीना था और संध्याका समय। लेकिन उन्हें इस समय जरा भी सरदी न लगती थी। समस्त शरीर अन्तरस्थ चिन्तादाहसे खौल रहा था। रायसाहबका उपदेश सम्पूर्णतः विस्मृत हो गया था। केवल यह चिन्ता थी कि गिरती हुई दीवारको क्योंकर

थामें, मरती हुई अभिलाषाओंको क्योंकर संभालें। यह महाशय कहते तो हैं कि मैं गायत्रीसे कुछ न कहूंगा, लेकिन इनका एतबार ही क्या? इन्होंने जहां उसके कान भरे, वह मेरी सूरतसे घृणा करने लगेगी। गौरवशील स्त्री है, उसे अपने सतीत्वपर घमण्ड है। यद्यपि उसे मुझसे प्रेम है; किन्तु अभीतक उसका आधार धर्मपर है, मनोवेगोंपर नहीं। उसकी स्थितिका क्या भरोसा? दुष्ट अपनी जायदादका सर्वनाश तो किये ही डालता है, उधरका द्वार भी बन्द किये देता है कि मुझे कहीं निकलनेका मार्ग ही न मिले। मैं इतनी निराशाओंका भार नहीं सह सकता! इस जीवनमें अब कोई आनन्द नहीं रहा। जब अभिलाषाओंहीका अन्त हुआ जाता है तो जीकर करना ही क्या है? हा! क्या सोचता था और क्या हो रहा है!

रायसाहब तो शामको क्लब चले गये और ज्ञानशंकर उसी निर्जन स्थानपर बैठे हुए जीवन और मृत्युका निर्णय करते रहे। उनकी दशा उस व्यापारीकी सी थी जिसका सब कुछ जलमग्न हो गया हो, या उस विद्यार्थीकीसी जो वर्षोंके कठिन श्रमके बाद परीक्षामें गिर गया हो। जब बागमें खूब ओस पड़ने लगी तो वह उठकर कमरेमें चले गये। फिर उन्हीं चिन्ताओंने आ घेरा। जीवनमें अब निराशा और अपमानके सिवा और कुछ नहीं रहा। ठोकरें खाता रहूंगा। जीवनका अन्त ही अब मेरे डूबते हुए बेड़ेको पार लगा सकता है। रायसाहब इतने नीच नहीं हैं कि मरनेपर भी मुझे बदनाम करें। उन्होंने बहुत सच कहा था कि मनुष्य अपने भाग्यका खिलौना है। मैं इस दशामें हूं कि मृत्यु ही मेरे सारे दुःखोंका एकमात्र उपाय है। सामान्यतः लोग यही समझेंगे कि मैंने संसारसे विरक्त होकर प्राण त्याग दिये, माया-मोहके बन्धनसे मुक्त हो गया। ऐसी मुक्त आत्माके लिये यह अन्धकारमय जगत् अनुकूल न था। विद्याकी निगाहमें मेरा आदर कई गुना बढ़ जायगा और गायत्री तो मुझे कृष्णका

अवतार समझने लगेगी। बहुत संभव है कि मेरी आत्माको प्रसन्न करनेके लिये वह मायाको गोद ले ले। चचा और भाई दोनों मुझपर कुपित हैं। मौत उनको भी नर्म कर देगी। और मुश्किल ही क्या है ? कल गोमती स्नान करने जाऊं। एक सीढ़ी भी और नीचे उतर गया तो काम तमाम है! बीस हजार जो मैं नगद छोड़े जाता हूं विद्याके निर्वाहके लिये काफी है। लखनपूरकी आमदनी अलग।

यह सोचते सोचते ज्ञानशंकर इतने शोकातुर हुए कि जोर जोर सिसकियां लेकर रोने लगे। यही जीवनका फल है! इसी-लिये दुनियाभरके मंसूबे बांधे थे! यह दुष्ट कमलानन्द मेरी गरदनपर छुरी फेर रहा है। यही निर्दयी मेरी जानका गाहक हो रहा है।

इतनेमें विद्यावती आ गयी और बोली, आज दादाजी और तुमसे कुछ तकरार हो गयी क्या ? मुखतार साहब कहते थे कि रायसाहब बड़े क्रोधमें थे। तुम नाहक उनके बीचमें बोला करते हो, वह जो कुछ करें करने दो। अम्मा समझाते-समझाते मर गयीं, इन्होंने कभी रत्तीभर परवा न की! अपने सामने किसीको कुछ समझतेही नहीं।

ज्ञान—मैंने तो केवल इतना कहा था कि आपको व्यर्थ २-३ लाख रुपये फूंक देना उचित नहीं है, बस, इतनी-सी बातपर बिगड़ गये।

विद्या—यह तो इनका स्वभाव ही है। जहां इनकी बात किसीने काटी और यह आग हुए। बुरा मुझे भी लग रहा है, पर मुंह खोलते कांपती हूं।

ज्ञान—मुझे इनकी जायदादकी परवा नहीं है। मैंने वृन्दा-वनविहारीका आश्रय लिया है, अब किसी बातकी अभिलाषा नहीं, लेकिन यह अनर्थ नहीं देखा जाता।

विद्या चली गयी। थोड़ी देरमें महराजने भोजनकी थाली

लाकर रख दी। लेकिन ज्ञानशंकरको कुछ खानेकी इच्छा न हुई, थोड़ा सा दूध पी लिया और फिर विचारोंमें मग्न हुए— स्त्रियोंके विचार कितने संकुचित होते हैं, तभी तो इन्हें संतोष हो जाता है। वह समझती हैं आदमीको चैनसे भोजन वस्त्र मिल जायं, गहने पाते बनते जायं, संतानें होती जायं, बस और क्या चाहिये ; मानों मानव-जीवन भी अन्य जीवधारियोंकी भांति केवल स्वाभाविक आवश्यकतायें पूरी करने हीके लिये है। विद्या-को कितना संतोष है! लोग स्त्रियोंके इस गुणकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। मेरा विचार तो यह है कि यह धैर्य्य और संतोष उन-की बुद्धिहीनताका प्रमाण है। उनमें इतना बुद्धि-सामर्थ्य ही नहीं होता कि अवस्था और स्थितिका यथार्थ अनुमान कर सकें। रायसाहबकी फूंक ताप विद्याको भी अखरती है, लेकिन कुछ बोलती नहीं, जरा भी चिन्तित नहीं है। यह नहीं समझती कि यह सरासर अपनी ही हानि, अपना ही सर्वनाश है। दशाने कैसा पलटा खाया है। अगर मेरे मन्सूबे कायल हो जाते तो दो चार वर्षमें मैं ३ लाख रुपये वार्षिकका आदमी होता। १०-१५ वर्षोंमें मैं अतुल सम्पत्तिका स्वामी होता"'लेकिन मनकी मिठाई खानेसे क्या होता है!

ज्ञानशंकर बड़ी गम्भीर प्रकृतिके मनुष्य थे। उनमें शुद्ध संकल्पकी भी कमी न थी। झोंकोंमें उनके पैर न उखड़ते थे, कठिनाइयोंमें उनकी हिम्मत न छूटती थी। गोरखपुरमें उनपर चारों ओरसे दांव पेच होते रहे, लेकिन उन्होंने कभी परवा न की। लेकिन उनकी अविचलता वह न थी जो परिस्थिति-ज्ञान-शून्यताकी हदतक जा पहुंचती है। वह उन जुआरियोंमें न थे जो अपना सब कुछ एक दांवपर हारकर अकड़ते हुए चलते हैं। छोटी-छोटी हारोंका, छोटी-छोटी असफलताओंका असर उनपर न होता था, लेकिन उन मन्तव्योंका नष्ट भ्रष्ट हो जाना, जिनपर जीवन उत्सर्ग कर दिया गया हो, धैर्य्यको भी विचलित, अस्थिर

कर देता है। और फिर यहां केवल नैराश्य और शोक न था। वहां लोकनिन्दा और उपहास्यकी आगमें जलना था। मेरे छल कपटका परदा खुल गया! मेरी भक्ति और धर्मनिष्ठाकी, मेरे वैराग और त्यागकी, मेरे उच्चादर्शोंकी, मेरे पवित्र आचरणकी कलई खुल गयी! संसार अब मुझे यथार्थ रूपमें देखेगा। अबतक मैंने अपनी तर्कनाओंसे, अपनी प्रगल्भतासे, अपनी कलुषताको छिपाया। अब वह बात कहां!

ज्ञानशंकरको नींद न आयी। जरा आंखें झपक जातीं तो भयावह स्वप्न दिखायी देने लगते। कभी देखते, मैं गोमतीमें डूब गया हूं और मेरा शव चितापर जलाया जा रहा है। कभी नजर आता, मेरा विशाल भवन विध्वंस हो गया है और मायाशंकर उसके भग्नावशेषपर बैठा हुआ रो रहा है। एक बार ऐसा जान पड़ा कि गायत्री मेरी ओर कोपदृष्टिसे देखकर कह रही है, तुम मक्कार हो, मेरी आंखोंसे दूर हो जाओ।

प्रातःकाल ज्ञानशंकर उठे तो चित्त बहुत खिन्न था, ऐसे अलसाये हुए थे मानों कोई मंजिल तय करके आये हों। उन्होंने किसीसे कुछ बातचीत न की, धोती उठाई और पैदल गोमतीकी ओर चले। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था, लेकिन तमाखूवालोंकी दूकानें खुल गयी थीं। ज्ञानशंकरने सोचा, क्या तमाखूही जीवनकी मुख्य वस्तु है कि सबसे पहले इसीकी दूकान खुलती है? जरा देरमें 'मलाई मक्खन' की ध्वनि कानोंमें आयी। दुष्ट कितना जीभ ऐंठकर बोलता है। समझता होगा कि यह कर्णकटु शब्द रुचिवर्धक होंगे। भला गाता तो एक बात भी थी। अच्छा, "चाय गरम" भी आ पहुंची। गर्म तो अवश्य ही होगी, बिना फूंके पियो तो जीभ जल जाय, मगर स्वाद वही गर्म पानीका। यह कौन महाशय घोड़ा दौड़ाये चले आते हैं, कोई फौजी अफसर हैं। घोड़ा जरा ठोकर ले तो साहब बहादुरकी हड्डियां चूर हो जायं।

वह गोमतीके तटपर पहुंचे तो भक्तजनोंकी भीड़ देखी। श्यामल जलधारापर श्यामल कुहिरघटा छायी हुई थी। सूर्य्यकी सुनहरी किरणें इस श्याम घटामें प्रविष्ट होनेके लिये उत्सुक थीं। दो चार नौकायें पानीमें खड़ी कांप रही थीं।

ज्ञानशंकरने धोती एक चौकीपर रख दी और पानीमें घुसे तो सहसा उनकी आंखें सजल हो गयीं। कमरतक पानीमें गये, और आगे बढ़नेका साहस न हुआ। अपमान और नैराश्यके जिन भावोंने उनकी प्रेरणाओंको उत्तेजित कर रक्खा था वह अकस्मात् शिथिल पड़ गये। कितने रण-मदके मतवाले रणक्षेत्रमें आकर पीठ फेर लेते हैं। मृत्यु दूरसे इतनी विकराल नहीं दीख पड़ती, जितनी सम्मुख आकर। सिंह कितना भयंकर जीव है, इसका अनुमान उसे सामने देखकर ही हो सकता है। पहाड़ोंको दूरसे देखो तो ऊंची मेंड़के सदृश देख पड़ते हैं। उनपर चढ़ना आसान मालूम होता है, किन्तु समीप जाइये तो उनकी गगनस्पर्शी चोटियोंको देखकर चित्त कैसा भयभीत हो जाता है! ज्ञानशंकरने मरनेको जितना सहज समझा था उससे कहीं कठिन ज्ञात हुआ। उन्हें विचार हुआ, मैं कैसा मन्दबुद्धि हूं कि एक ज़रा-सी बातके लिये प्राण देनेपर तत्पर हो रहा हूं। माना मैं रायसाहबकी नज़रोंमें गिर गया, माना गायत्री भी मुझे मुंह न लगायेगी और विद्या भी मुझसे घृणा करने लगेगी; तब भी क्या मैं जीवनमें कुछ काम नहीं कर सकता? अपना जीवन सफल नहीं बना सकता? संसारका कर्मक्षेत्र इतना तङ्ग नहीं है। मैं इस समय आजसे ६-७ वर्ष पूर्वकी अपेक्षा कहीं अच्छी दशामें हूं। मेरे २० हजार रुपये बैंकमें जमा हैं, २००) मासिककी आमदनी गांवसे है, बंगला है, मोटर है, मकान किरायेपर उठा दूं तो ५०-६०) माहवार और मिलने लगें। अगर किसीकी चाकरी न करूं तौभी एक भले आदमीकी भांति जीवन व्यतीत कर सकता हूं। रायसाहब यदि मेरी कलई खोल दें, तो क्या मैं उनकी ख़बर नहीं ले सकता? उन्हें अपने कलमके

जोरसे इतना बिगाड़ सकता हूं कि वह किसीको मुंह दिखाने योग्य न रहेंगे। गायत्री भी मेरे पंजेमें है, मेरी तरफसे जरा भी निगाह मोटी करे तो आनकी आनमें उसे इस उच्चासनसे गिरा सकता हूं। उसे मैंने ही इतना नेकनाम बनाया है, और बदनाम भी कर सकता हूं। मेरी बुद्धि न जाने कहां चली गयी थी! कूट-नीतिकी रंगभूमि क्या इतनी संकीर्ण है? अबतक मुझे जो कुछ सफलता हुई है इसीकी बदौलत हुई है, तो अब मैं उसका दामन क्यों छोड़ूं? उससे निराश क्यों हो जाऊं? अगर इस टूटी हुई नौकापर बैठकर मैंने आधी नदी पार कर ली है तो अब उसपरसे जलमें क्यों कूद पड़ूं?

ज्ञानशंकर स्नान करके जलसे निकल आये। उनका चेहरा विजयज्योतिसे चमक रहा था।

लेकिन जिस प्रकार कोई विजयी सेना शत्रुदलको मैदानसे हटाकर और भी उत्साहित हो जाती है और शत्रुको इतना निर्बल और अपंग बना देती है कि फिर उसके मैदानमें आनेकी संभावना ही न रहे, उसी प्रकार ज्ञानशंकरके हौसले भी बढ़े। सोचा, इसकी नौबत ही क्यों आने दूं कि मुझपर चारों ओरसे आक्षेप होने लगें, और मैं अपनी सफाई देता फिरूं? मैं मरकर नेकनाम बनना चाहता था। क्यों न मारकर वही उद्देश्य पूरा करूं? इस समय यही पुरुषोचित कर्त्तव्य है। मरनेसे मारना कहीं सुगम है। भाग्यविधाता! तुम्हारी लीला कितनी विचित्र है। तुमने मुझे मृत्युके मुंहसे निकाल लिया! बाल बाल बचा! मैं अब भी अपने मन्सूबोंको पूरा कर सकता हूं; विभव, यश, सुकीर्त्ति, सब कुछ मेरे अधीन है, केवल थोड़ी-सी हिम्मत चाहिये। ईश्वरका कोई भय नहीं, वह सर्वज्ञाता है, परदा तो केवल मनुष्योंकी आंखोंपर डालना है। और मैं इस काममें सिद्धहस्त हूं।

ज्ञानशंकर एक किरायेके तांगेपर बैठकर घर आये। रास्ते-

भर वह इन्हीं विचारोंमें लीन रहे। उनकी ऋद्धिप्राप्तिके मार्गमें रायसाहब ही बाधक हो रहे थे। इस बाधाको हटाना आवश्यक था। पहले ज्ञानशंकरने निराश होकर इस मार्गसे लौट जानेका निश्चय किया था। अपने प्राण देकर इस संकटसे निवृत्त होना चाहते थे। अब उन्होंने रायसाहबहीको अपनी आकांक्षाओंकी वेदीपर बलिदान करनेकी ठानी। संसार इसे हिंसा कहेगा, उसकी दृष्टिमें यह घोर पाप है—सर्वथा अक्षम्य, अमानुषीय। लेकिन दार्शनिक दृष्टिसे देखिये तो इसमें पापका सम्पर्कतक नहीं है। रायसाहबके मरनेसे किसीकी क्या हानि होगी? उनके बाल-बच्चे नहीं हैं जो अनाथ हो जायंगे, वह कोई ऐसा महान् कार्य्य नहीं कर रहे हैं जो उनके मर जानेसे अधूरा रह जायगा, उनकी जयदादका भी ह्रास नहीं होता, बल्कि एक ऐसी व्यवस्थाका आरोपण हुआ जाता है जिससे वह सुरक्षित रहेगी। समाज और अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंके अनुसार तो इसे हत्या कह ही नहीं सकते। नैतिक दृष्टिसे भी इसपर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। केवल धार्मिक दृष्टिसे इसे पाप कहा जा सकता है। और लौकिक नीतिके अनुसार तो यह काम केवल सराहनीय ही नहीं, परमावश्यक है। यह जीवनसंग्राम है। इस क्षेत्रमें विवेक, धर्म और नीतिका गुजर नहीं। यह कोई धर्मयुद्ध नहीं है। यहां कपट, दगा, फरेब सब कुछ उपयुक्त है, अगर उससे अपना स्वार्थ सिद्ध होता हो। यहां छापा मारना, आड़से शस्त्र चलाना विजय प्राप्तिके साधन हैं। यहां औचित्य अनौचित्यका निर्णय हमारी सफलताके अधीन है। अगर जीत गये तो सारे धोखे और मुगालते सुअवसरके नामसे पुकारे जाते हैं, हमारी कार्यकुशलताकी प्रशंसा होती है। हारे तो उन्हें पाप कहा जाता है। बस, इस पत्थरको मार्गसे हटा दूं और मेरा रास्ता साफ है।

ज्ञानशंकरने नाना प्रकारके तर्कोंसे इन मनोगत विचारोंको

उसी तरह प्रोत्साहित किया जैसे कोई कबूतरबाज बहके हुए कबूतरोंको दाने बिखेर-बिखेरकर अपनी छतरीपर बुलाता है। अन्तमें उनकी हिंसात्मक प्रेरणा दृढ़ हो गयी। जगत हिंसाके नामसे कांपता है, हिंसकपर बिना समझे बूझे चारों ओरसे वार होने लगते हैं, वह दुरात्मा है, दण्डनीय है, उसका मुंह देखना भी पाप है, लेकिन यह अनन्त संसार केवल मूर्खोंकी बस्ती है, इसके विचारोंका, इसके भावोंका सम्मान करना कांटोंपर चलना है। यहां कोई नियम नहीं, कोई सिद्धान्त नहीं, कोई न्याय नहीं। इसकी जबान बन्द करनेका बस एक ही उपाय है। इसकी आंखोंपर परदा डाल दो और वह तुमसे जरा भी एतराज न करेगी; इतना ही नहीं, तुम समाजके सम्मानके अधिकारी हो जाओगे।

घर पहुंचकर ज्ञानशंकर तुरंत रायसाहबके पुस्तकालयमें गये और अंगरेजीका बृहत् रसायनकोष निकालकर विषाक्त पदार्थोंके गुण और प्रभावका अन्वेषण करने लगे।

४३

दो दिन हो गये और ज्ञानशंकरने रायसाहबसे साक्षात् न किया। रायसाहब उन निर्दय पुरुषोंमें न थे जो घाव लगाकर उसपर नमक छिड़कते हैं। वह जब किसीपर नाराज होते तो यह मानी हुई बात थी कि उसका नक्षत्र बलवान है, सौभाग्य चन्द्र उसके दाहिने है क्योंकि क्रोध शान्त होते ही वह अपने कटु व्यवहारोंका बड़ी उदारताके साथ प्रायश्चित्त किया करते थे। एक बार एक टहलुवेको इसलिये पीटा था कि उसने फर्शपर पानी गिरा दिया था। दूसरे ही दिन पांच बीघे जमीन उसे मुआफी दे दी। एक कारिन्देसे गबनके मामलेमें बहुत बिगड़े और अपने हाथोंसे हंटर लगाये, किन्तु थोड़े ही दिन पीछे उसका वेतन बढ़ा दिया। हां, यह आवश्यक था कि चुपचाप धैर्यके साथ उनकी बातें सुन ली जायं, उनसे बतबढ़ाव न किया जाय

ज्ञानशङ्करको धिक्कारनेके एक ही क्षण पीछे उन्हें पश्चात्ताप होने लगा, भय हुआ कि कहीं वह रूठ कर चल न दें। संसारमें ऐसा कौन प्राणी है जो स्वार्थके लिये अपनी आत्माका हनन न करता हो। मैं खुद भी तो निःस्पृह नहीं हूं। जब संसारकी यही प्रथा है तो मुझे उनका इतना तिरस्कार करना उचित न था; कमसे कम मुझे उनके आचरणको कलंकित न करना चाहिये था, विचारशील पुरुष हैं, उनके लिये इशारा काफी था। लेकिन मैंने गुस्सेमें आकर खुली खुली गालियां दीं। अतएव आज वह भोजन करने बैठे तो तो महराजसे कहा, बाबूजीको भी यहां बुला लो और उनकी थाली भी यहां लाओ। न आयें तो कहना आप न चलेंगे तो वह भी भोजन न करेंगे। ज्ञानशङ्कर राजी न होते थे, पर विद्याने समझाया, चले क्यों नहीं जाते? जब वह बड़े होकर बुलाते हैं तो न जानेसे उन्हें दुःख होगा। उनकी आदत है कि गुस्सेमें जो कुछ मुंहमें आया, बक जाते हैं; लेकिन पीछेसे लज्जित होते हैं। ज्ञानशङ्कर अब कोई हीला न कर सके। रोनी सूरत बनाये हुए आये और रायसाहबसे जरा हटकर आसन पर बैठ गये। रायसाहबने कहा, इतनी दूर क्यों बैठे हो? मेरे पास आ जाओ। देखो, आज मैंने तुम्हारे लिये कई अंग्रेजी चीजें बनवायी हैं। लाओ महराज, यहीं थाली रक्खो।

ज्ञानशङ्करने दबी जबानसे कहा, मुझे तो इस समय जरा भी इच्छा नहीं है, क्षमा कीजिये।

रायसाहब—इच्छा तो सुगन्धसे हो जायगी, थाली सामने तो आने दो। महराजको मैंने इनाम देनेका वादा किया है। उसने अपनी सारी अक्ल खर्च कर दी होगी।

महराजने थाली लाकर ज्ञानशङ्करके सामने रख दी। ज्ञानशङ्करके चेहरेपर हवाइयां उड़ रही थीं, एक रङ्ग आता था, एक रङ्ग जाता था, छाती बड़े वेगसे धड़क रही थी। भयने आशाको दबा लिया था। वह किसी प्रकार यहांसे भागना चाहते

थे। यह दृश्य उनके लिये असह्य था। उनके शरीरका एक-एक अङ्ग थर थर कांप रहा था, यहांतक कि स्वर भी भंग हो रहा था। उन्हें इस समय अनुभव हो रहा था कि जान लेनी जान देनेसे कहीं दुस्तर है।

रायसाहबने पाच ही चार कौर खाये थे कि सहसा उन्होंने थालीसे हाथ खींच लिया और ज्ञानशङ्करको तीव्र और मर्मभेदी दृष्टिसे देखा। ज्ञानशङ्करके प्राण सूख गये। रायसाहबने यदि गोली चलायी होती तौभी उन्हें इतनी चोट न लगती। संज्ञा-शून्यसे हो गये। ऐसा जान पडता था मानों कोई आकर्षणशक्ति प्राणोंको खींच रही है। अपनी नावको भँवरमें डूबते पाकर भी कोई इतना भयभीत, इतना असावधान न होता होगा। राय-साहबकी तीव्र दृष्टिने सिद्ध कर दिया कि रहस्य खुल गया, मेरे सारे यत्न, सारी आयोजनायें, निष्फल हो गयीं। हा हतभाग! कहींका न रहा! क्या जानता था कि यह महाशय ऐसे आत्म-दर्शी हैं।

इतनेमें रायसाहबने अपमानसूचक भावसे मुस्कुराकर कहा, मैंने एक बार तुमसे कह दिया कि धन-सम्पत्ति तुम्हारे भाग्यमें नहीं है, तुम जो चालें चलोगे वह सब उलटी पड़ेंगी, केवल लज्जा और ग्लानि हाथ रहेगी।

ज्ञानशङ्करने अज्ञान भावसे कहा, मैंने आपका आशय नहीं समझा।

रायसाहब—बिलकुल—झूठ है, तुम मेरा आशय खूब समझ रहे हो, इससे ज्यादा कुछ कहूंगा तो उसका परिणाम अच्छा न होगा। मैं चाहूं तो सारी रामकहानी तुम्हारी जबानसे कहला लूं, लेकिन इसकी जरूरत नहीं, तुम्हें बड़ा भ्रम हुआ। मैं तुम्हें बड़ा चतुर समझता था, लेकिन अब विदित हुआ कि तुम्हारी निगाह बहुत मोटी है। तुम्हारा इतने दिनोंतक मुझसे सम्पर्क रहा, लेकिन अभीतक तुम मुझे पहचान न सके। तुम सिंहका

शिकार बांसकी तीलियोंसे करना चाहते हो, इसलिये अगर उसके दबोचमें आ जाओ तो वह तुम्हारा अपना दोष है। मुझे मनुष्य मत समझो, मैं सिंह हूं। अगर अभी अपने दांत और पंजे दिखा दूं तो तुम कांप उठोगे। यद्यपि यह थाल २०-२५ आदमियोंको सुलानेके लिये काफी है, शायद एक कौर खानेके बाद उन्हें दूसरे कौरकी नौबत न आयेगी, लेकिन मैं पूरा थाल हजम कर सकता हूं और तुम्हें मेरे माथेपर बल भी न दिखायी देगा। मैं शक्तिका उपासक हूं, ऐसी वस्तुयें मेरे लिये दूध और पानी हैं।

यह कहते कहते रायसाहबने थालसे कई कौर उठाकर जल्द जल्द खाये। अकस्मात् ज्ञानशंकर तेजीसे लपके, थाल उठाकर भूमिपर पटक दिया और रायसाहबके पैरोंपर गिरकर बिलख बिलख रोने लगे। रायसाहबकी योगसिद्धिने आज उन्हें परास्त कर दिया, उन्हें आज ज्ञात हुआ कि यह चूहे और सिंहकी लड़ाई है।

रायसाहबने उन्हें उठाकर बिठा दिया और बोले—लाला, मैं इतना कोमलहृदय नहीं हूं कि इन आंसुओंसे पिघल जाऊं। आज मुझे तुम्हारा यथार्थ रूप दिखायी दिया। तुम अंधस्वार्थके पंजेमें दबे हुए हो। यह तुम्हारा दोष नहीं, तुम्हारी धर्मविहीन शिक्षाका दोष है। तुम्हें आदिहीसे भौतिक शिक्षा मिली। हृदयके भाव दब गये। तुम्हारे गुरुजन स्वयं स्वार्थके पुतले थे। उन्होंने कभी सरल संतोषमय जीवनका आदर्श तुम्हारे सामने नहीं रखा। तुम अपने घरमें, स्कूलमें, जगतमें नित्य देखते थे कि बुद्धिबलका कितना मान है, तुमने सदैव इनाम और पदक पाये, कक्षामें तुम्हारी प्रशंसा होती रही, प्रत्येक अवसरपर तुम्हें आदर्श बनाकर दूसरोंको दिखाया जाता था। तुम्हारे आत्मिक विकासकी ओर किसीने ध्यान नहीं दिया, तुम्हारे मनोगत भावोंको, तुम्हारे उद्गारोंको सन्मार्गपर ले आनेकी चेष्टा नहीं की गयी, तुमने धर्म और भक्तिका प्रकाश कभी नहीं देखा, जो मनपर छाये

हुए तिमिरको नष्ट करनेका एक ही साधन है। तुम जो कुछ हो, अपनी शिक्षा-प्रणालीके बनाये हुए हो। पूर्व संस्कारोंने जो अंकुर जमाया था उसे शिक्षाने सघन वृक्ष बना दिया। तुम्हारा कोई दोष नहीं, काल और देशका दोष है। मैं क्षमा करता हूं और ईश्वरसे विनती करता हूं कि वह तुम्हें सद्‌बुद्धि दें।

रायसाहबके ओठ नीले पड़ गये, मुख कान्तिहीन हो गया, और आंखें पथराने लगीं। माथेपर स्वेदबिन्दु चमकने लगे, पसीनेसे सारा शरीर तर हो गया, सांस बड़े वेगसे चलने लगी। ज्ञानशङ्कर उनकी यह दशा देखकर विकल हो गये, कांपते हुए हाथोंसे पङ्खा झलने लगे, लेकिन रायसाहबने इशारा किया कि यहांसे चले जाओ, मुझे अकेला रहने दो और तुरन्त भीतरसे द्वार बन्द कर लिया। ज्ञानशंकर मूर्तिवत् द्वारपर खड़े थे, मानों किसीने उनके पैरोंको गाड़ दिया हो। इस समय उन्हें अपने कुकृत्यपर इतना अनुताप हो रहा था कि जी चाहता था उसी थालका एक कौर खाकर इस जीवनका अन्त कर लूं। पहले रायसाहबकी अभिमानपूर्ण बातें सुनकर उन्हें आशा हो गयी थी कि विषका इनपर कुछ असर न होगा, लेकिन अब इस आशाकी जगह भय हो रहा था कि उन्होंने अपनी योगशक्तिका भ्रमात्मक अनुमान किया था। क्या करूं? किसी डाक्टरको बुलाऊं? उस धन-लिप्साका सत्यानास हो, जिसने मेरे मनमें यह विषम प्रेरणा उत्पन्न की, जिसने मुझसे यह हत्या करायी। हा कुटिल स्वार्थ! तूने मुझे नरपिशाच बना दिया! मैं क्यों इनका शत्रु हो रहा हूं? इसी जायदादके लिये, इसी रियासतके लिये, इसी सम्पत्तिके लिये। क्या वही सम्पत्ति मेरे हाथोंमें आकर दूसरोंको मेरा शत्रु न बना देगी? कौन कह सकता है कि मेरा भी यही अन्त न होगा?

ज्ञानशंकरने द्वारपर कान लगाकर सुना। ऐसा जान पड़ा कि रायसाहब हाथ-पैर पटक रहे हैं। मारे भयके ज्ञानशंकरको रोमाञ्च हो गया। उन्हें अपनी अधम नीचता, अपनी घोरतम पैशा-

त्विक प्रवृत्तियोंपर ऐसा शोकमय पश्चात्ताप कभी न हुआ था। उन्हें इस समय परिणामकी चिन्ता न थी, न यह शंका थी कि मेरा क्या हाल होगा। बस, यही धड़का लगा हुआ था कि राय साहबकी न जाने क्या गति हो रही है। कोई बलात्कार भी करता तो वह वहांसे न हटते। मालूम नहीं, एक क्षणमें क्या हो जाय!

इतनेमें महराज थालीमें कुछ और पदार्थ लाया। उसे देखते ही ज्ञानशंकरका रक्त सूख गया। समझ गये कि अब प्राण न बचेंगे। यह दुष्ट अभी यहांका हाल देखकर शोर मचा देगा, खोज पूछ होने लगेगी, गिरफ्तार हो जाऊंगा। वह इस समय उन्हें काल-स्वरूप देख पड़ता था। उन्होंने उसे समीप न आने दिया, दूरहीसे कहा, हम लोग भोजन कर चुके, अब और कुछ न लाओ।

महराजने बन्द किवाड़ोंको कुतूहलसे देखा और आगे बढ़नेकी चेष्टा की कि अकस्मात् ज्ञानशंकर बाजकी तरह झपटे और उसे जोरसे धक्का देकर कहा, तुमसे कहता हूं कि यहां किसी चीजकी जरूरत नहीं है, बात क्यों नहीं सुनते? महराज हक्का-बक्का होकर ज्ञानशंकरका मुंह ताकने लगा। ज्ञानशंकर इस समय उस सशंक दशामें थे, जब कि मनुष्य पत्तेका खड़का सुनकर लाठी सम्भाल लेता है। उन्हें अब रायसाहबकी चिन्ता न थी, उनके विचारमें वह चिन्ताकी उद्घाटक शक्तिसे बाहर हो गये थे। वह अब अपनी जानकी खैर मना रहे थे। सम्पूर्ण इच्छा-शक्ति इस रहस्यको गुप्त रखनेमें व्यस्त हो रही थी।

यकायक भीतरसे द्वार खुला और रायसाहब बाहर निकले। उनका मुखड़ा रक्तवर्ण हो रहा था। आंखें भी लाल थीं। पसीनेसे तर थे; मानों कोई लोहार भट्ठीके सामने उठकर आया हो। दोनो थाल समेटकर एक जगह रख दिये गये थे। कटोरे भी साफ थे। सब भोजन एक अंगेठीमें जल रहा था। अग्नि उन पदार्थोंका रसास्वादन कर रही थी।

क्षणमात्रमें ज्ञानशंकरके विचारोंने पलटा खाया। अबतक उन्हें

शंका थी कि रायसाहब दम तोड़ रहे हैं तबतक वह उनकी प्राण-रक्षाके लिये ईश्वरसे प्रार्थना कर रहे थे। जब बाहर खड़े-खड़े निश्चय हो गया कि रायसाहबके प्राणान्त हो गये तब वह अपनी जानकी खैर मनाने लगे। अब उन्हें सामने देखकर उन्हें क्रोध आ रहा था कि यह मर क्यों न गये। इतना तिरस्कार, इतना मानसिक कष्ट व्यर्थ सहना पड़ा! उनकी दशा इस समय उस थके मांदे हलवाहेकी-सी हो रही थी जिसके बैल खेतसे द्वारपर आकर बिदक गये हों; दिनभरके कठिन परिश्रमके बाद सारी रात अंधेरेमें बैलोंके पीछे दौड़नेकी संभावना उसकी हिम्मतको तोड़ डालती हो।

रायसाहबने बाहर निकलकर कई बार जोरसे सांस ली, मानों दम घुट रहा हो, तब कांपते हुए स्वरसे बोले, मरा नहीं, लेकिन मरनेसे बदतर हो गया। यद्यपि मैंने विषको योगक्रियाओंसे निकाल दिया लेकिन ऐसा मालूम हो रहा है कि मेरी धमनियोंमें रक्तकी जगह कोई पिघली हुई धात दौड़ रही है। यह दाह मुझे कुछ दिनोंमें भस्म कर देगी। अब मुझे फिर पोलो और टेनिस खेलना नसीब न होगा। मेरे जीवनकी अनन्त शोभाका अन्त हो गया। अब जीवनमें वह आनन्द कहां जो शोक और चिन्ताको तुच्छ समझता था। मैंने वाणीसे तो तुम्हें क्षमा कर दिया है, लेकिन मेरी आत्मा तुम्हें क्षमा न करेगी। तुम मेरे लड़के हो, मैं तुम्हारे पिताके तुल्य हूं, लेकिन हम अब एक दूसरेका मुंह न देखेंगे। मैं जानता हूं कि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। यह हमारे वर्तमान लोकव्यवहारका दोष है, किन्तु यह जानकर भी हृदयको संतोष नहीं होता। यह सारी विडम्बना इसी जायदादका फल है। इसी जायदादके कारण हम और तुम एक दूसरेके खूनके प्यासे हो रहे हैं। संसारमें जिधर देखो, ईर्षा और द्वेष, आघात और प्रत्याघातका साम्राज्य है, भाई भाईका बैरी, बाप बेटेका बैरी, पुरुष स्त्रीका बैरी, इसी जायदादके लिये, इसी धनके लिये। इसके

हाथों जितना अनर्थ हुआ, हो रहा है और होगा उसके देखते कहीं अच्छा था कि अधिकारकी प्रथा ही मिटा दी जाती। यही वह खेत है जहां छल और कपटके पौधे लहराते हैं, जिसके कारण संसार रणक्षेत्र बना हुआ है, इसीने मानवजातिको पशुओंसे भी नीचे गिरा दिया है।

यह कहते कहते रायसाहबकी आंखें बन्द हो गयीं। वह दीवारका सहारा लिये हुए दीवानखानेमें आये और फर्शपर गिर पड़े। ज्ञानशंकर भी पीछे पीछे थे, मगर इतनी हिम्मत न पड़ती थी कि उन्हें सम्भाल लें। नौकरोंने यह हालत देखी तो दौड़े और उन्हें उठाकर कोचपर लेटा दिया। गुलाब और केवड़ेका जल छिड़कने लगे। कोई पंखा झलने लगा, कोई डाक्टरके लिये दौड़ा। सारे घरमें खलबली मच गयी। दीवानखानेमें एक मेलासा लग गया। दस मिनिटके बाद रायसाहबने आंखें खोलीं और सबको हट जानेका इशारा किया। लेकिन जब ज्ञानशङ्कर भी औरोंके साथ जाने लगे तो रायसाहबने उन्हें बैठनेका संकेत किया और बोले, यह जायदाद नहीं है, इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी दलाली है। इस भूमिपर मेरा क्या अधिकार है? मैंने इसे बाहुबलसे नहीं लिया। नवाबोंके जमानेमें किसी सूबेदारने इस इलाकेकी आमदनी वसूल करनेके लिये मेरे दादाको नियुक्त किया था। मेरे पितापर भी नवाबोंकी कृपादृष्टि बनी रही। इसके बाद अंगरेजोंका जमाना आया और यह अधिकार पिताजीके हाथसे निकल गया। लेकिन राजविद्रोहके समय पिताजीने तनमनसे अंगरेजोंकी सहायता की। शान्ति स्थापित होनेपर हमें वही पुराना अधिकार फिर मिल गया। यही इस रियासतकी हकीकत है। हम केवल लगान वसूल करनेके लिये रखे गये हैं। इसी दलालीके लिए हम एक दूसरेके खूनसे अपने हाथ रँगते हैं, इसी दीन हत्याको हम रोब कहते हैं, इसी कारिन्दगीपर हम फूले नहीं समाते। सरकार अपना मतलब निकालनेके लिये हमें

इस इलाकेका मालिक कहती है, लेकिन जब सालमें दो बार हम-से मालगुजारी वसूल की जाती है तब हम मालिक कहां रहे? यह सब धोखेकी टट्टी है। तुम कहोगे, यह सब कोरी बकवाद है, रियासत इतनी बुरी चीज है तो उसे छोड़ क्यों नहीं देते? हा! यही तो रोना है कि इस रियासतने हमें विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया। हम अब किसी कामके नहीं रहे। हम पालतू चिड़ियां हैं, हमारे पंख शक्तिहीन हो गये हैं। हममें अब उड़नेका सामर्थ्य नहीं है। हमारी दृष्टि सदैव अपने पिंजरे-के कुल्हिए और प्यालीपर रहती है। हमने अपनी स्वाधीनता-को मीठे टुकड़ोंपर बेच दिया है।

रायसाहबके चेहरेपर एक दुस्सह आन्तरिक वेदनाके चिह्न दिखायी देने लगे। लेटे थे, कराहकर उठ बैठे। मुखाकृति विकृत हो गयी, पीड़ासे विकल होकर हृदयस्थलपर हाथ रक्खे हुए बोले, आह! बेटा, तुमने वह हलाहल खिला दिया कि कलेजेके टुकड़े टुकड़े हुए जाते हैं। अब प्राण न बचेंगे। अगर एक मरणासन्न पुरुषके शापमें कुछ भी शक्ति है तो तुम्हें इस रियासतका सुख भोगना नसीब न होगा। जाओ, आंखोंके सामनेसे हट जाओ, संभव है, मैं इस क्रोधावस्थामें तुम्हें दोनों हाथोंमें दबाकर मसल डालूं। मैं अपने आपेमें नहीं हूं। मेरी दशा मतवाले सर्पकी सी हो रही है। मेरी आंखोंसे दूर हो जाओ और फिर कभी मुंह मत दिखाना। मेरे मर जानेपर तुम्हें आनेका अख्तियार है। और याद रखो कि अगर तुम फिर कभी गोरखपुर गये, या गायत्रीसे कोई सम्बन्ध रक्खा तो तुम्हारे हकमें बुरा होगा। मेरे दूत परछाईंकी भांति तुम्हारे साथ लगे रहेंगे। तुमने इस चेतावनीका जरा भी उल्लंघन किया तो फिर जीते न बचोगे। हाय! शरीर फुंका जाता है, पापी, दुष्ट, अभी गया नहीं, दोस्तों......कोई है?......मेरा पिस्तौल लाओ, (चिल्लाकर) मेरा पिस्तौल लाओ......क्या सब मर गये?

ज्ञानशंकर तुरन्त उठकर वहांसे भागे। अपने कमरेमें आकर द्वार बन्द कर लिया। जल्दीसे कपड़े पहने, मोटर साइकिल निकलवायी और सीधे रेलवे स्टेशनकी ओर चले। विद्यासे मिलनेका भी अवसर न मिला।

४४

संध्याका समय था। बनारसके सेशन्स जजके इजलासमें हजारों आदमी जमा थे। लखनपुरके मामलेसे जनताको अब एक विशेष अनुराग हो गया था। मनोहरकी आत्महत्याने उसकी चर्चा सारे शहरमें फैला दी थी। प्रत्येक पेशीके दिन नगरकी जनता अदालतमें आ जाती थी। जनताको अभियुक्तोंकी निर्दोषिताका पूरा विश्वास हो गया था। मनोहरके आत्मघातकी विविध प्रकार-से मीमांसा की जाती थी और सभोंका तत्त्व यही निकलता था कि वही कातिल था, और लोग तो केवल अदावतके कारण फंसा दिये गये हैं। डाक्टर प्रियनाथ और इर्फानअलीकी स्वार्थ-परतापर खुली-खुली चोटें की जाती थीं। प्रेमशंकरकी निष्काम सेवाकी सभी सराहना करते थे। इस मुकदमेने उन्हें बहुजनप्रिय बना दिया था।

आज फैसला सुनाया जानेवाला था, इसलिये जमाव भी और दिनोंसे अधिक था। लखनपुरके लोग तो आये ही थे, आसपास-के देहातोंसे लोग बड़ी संख्यामें आ पहुंचे थे। ठीक ४ बजे जजने तजवीज सुनायी। बिशेशर साह रिहा हो गये, बलराज और कादिरखांको कालापानी हुआ, शेष अभियुक्तोंको ७-७ वर्षका सपरिश्रम कारावास दिया गया। बलराजने बिशेशरको सरोष नेत्रोंसे देखा जो कह रहे थे कि अगर क्षण भरके लिये भी छूट जाऊं तो तुम्हारा खून पी लूं। कादिरखां बहुत दुःखी और उदास थे। यह तजवीज सुनी तो आंसूकी कई बूंदें मोछोंपर गिर पड़ीं। जीवनका अंत ही हो गया, कब्रमें पैर लटकाये बैठे थे, सजा मिली कालेपानीकी। चारों ओर कुहराम मच गया। दर्शकगण अभि-

युक्तोंकी ओर लपके, पर रक्षकोंने किसीको उनसे कुछ सुननेकी आज्ञा न दी। मोटर तैयार खड़ी थी, सातों आदमी उसमें बिठाये गये, खिड़कियां बन्द कर दी गयीं और मोटर जेलकी तरफ चली।

प्रेमशङ्कर चिन्ता और शोककी मूर्ति बने एक वृक्षके नीचे खड़े सकरुण नेत्रोंसे मोटरकी ओर ताक रहे थे, जैसे गांवकी स्त्रियां सिवानपर खड़ी सजल नेत्रोंसे ससुराल जानेवाली लड़की-की पालकीको देखती हैं। मोटर दूर निकल गयी तो दर्शकोंने उन्हें घेर लिया और तरह-तरहके प्रश्न करने लगे। प्रेमशंकर उनकी ओर मर्माहत भावसे देखते थे, पर कुछ उत्तर न देते थे। सहसा उन्हें कोई बात याद आ गयी। जेलकी ओर चले। जनताका दल भी उनके साथ चला। सबको आशा थी कि शायद अभियुक्तोंको देखनेका, उनकी बातें सुननेका सौभाग्य प्राप्त हो जाय। अभी यह लोग कचहरीके अहातेसे निकले ही थे कि डाक्टर इर्फान अली अपनी मोटरपर दिखायी दिये। आजही गोरख-पूरसे लौटे थे। हवा खाने जा रहे थे। प्रेमशङ्करको देखते ही मोटर रोक ली और पूछा, कहिये, आज तजवीज सुना दी गयी?

प्रेमशङ्करने रुखाईसे उत्तर दिया, जी हां।

इतनेमें सैकड़ों आदमियोंने चारों ओरसे मोटरको घेर लिया और एक तगड़े आदमीने सामने आकर कहा,—इन्हींकी गर्दनपर इन बेगुनाहोंका खून है।

सैकड़ों स्वरोंसे निकला—मोटरसे खींच लो, जरा इनकी खिदमत कर दी जाय। इसने जितने रुपये लिये हैं, सब इसके पेटसे निकाल लो।

उसी वृहद्‌काय पुरुषने इर्फान अलीका पहुंचा पकड़कर इतने जोरसे झटका दिया कि वह बेचारे गाड़ीसे बाहर निकल पड़े। जबतक मोटरमें थे क्रोधसे चेहरा लाल हो रहा था। नीचे

आकर धक्के खाये तो प्राण सूख गये। दयाप्रार्थी नेत्रोंसे प्रेमशङ्करको देखा। वह हैरान थे कि क्या करूं? उन्हें पहले कभी ऐसी समस्या नहीं हल करनी पड़ी थी और न उस श्रद्धाका ही कुछ ज्ञान था जो लोगोंको उनसे थी। हां, वह सेवाभाव जो दीन जनोंकी रक्षाके लिये उद्यत रहता था सजग हो गया। उन्होंने इर्फान अलीका दूसरा हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा और क्रोधोन्मत्त होकर बोले,—यह क्या करते हो, हाथ छोड़ दो।

एक बलवान युवक बोला—इनकी गर्दनपर एक गांवभरका खून सवार है।

प्रेमशङ्कर—खून इनकी गर्दनपर नहीं, इनके पेशेकी गर्दनपर सवार है।

युवक—इनसे कहिये, इस पेशेको छोड़ दें।

कई कंठोंसे आवाज आयी, बिना कुछ जलपान किये इनकी अक्ल ठिकाने न आयेगी।

सैकड़ों आवाजें आयीं—हां हां लगे—बेभावकी पड़े।

प्रेमशङ्करने गरजकर कहा—खबरदार, जो एक हाथ भी उठा; नहीं तो तुम्हें यहां मेरी लाश दिखायी पड़ेगी। जबतक मुझमें खड़े होनेकी शक्ति है तुम इनका बाल भी बांका नहीं कर सकते।

इस वीरोचित ललकारने तत्क्षण असर किया। लोग डाक्टर साहबके पाससे हट गये। हां, उनकी सेवा सत्कारके ऐसे सुन्दर अवसरके हाथसे निकल जानेपर आपसमें कानाफूसी करते रहे। डाक्टर साहबने ज्योंही मैदान साफ पाया कृतज्ञ नेत्रोंसे प्रेमशङ्करको देखा और मोटरपर बैठकर हवा हो गये। हजारों आदमियोंने तालियां बजायी—भागा! भागा!

प्रेमशङ्कर बड़े संकटमें पड़े हुए थे। प्रति क्षण यही शंका होती थी कि यह लोग न जाने क्या ऊधम मचायें। किसी बग्घी या फिटनको आते देखकर उनका दिल धड़कने लगता था कि यह लोग कहीं उसे रोक न लें। वह किसी तरह उनसे

पीछा छुड़ाना चाहते थे, पर इसका कोई उपाय न सूझता था। हजारों झल्लाये हुए आदमियोंको काबूमें रखना कठिन था। सोचते थे अबकी तो मेरी धमकीने काम किया, कौन कह सकता है कि दूसरी बार भी वह उपयुक्त होगी। कहीं पुलिस आ जाय तो अनर्थ ही हो जाय। अवश्य दो चार आदमियोंकी जानपर आ बनेगी। इन्हीं चिन्ताओंमें डूबे हुए वह आगे बढ़े। रास्ते-हीमें डाक्टर प्रियनाथका बंगला था। वह इस वक्त बरामदेमें टहल रहे थे। टेनिसका रैकेट हाथमें था। शायद गाड़ीकी राह देख रहे थे। यह भीड़ भाड़ देखी तो अपने फाटकपर आकर खड़े हो गये।

सहसा किसीने कहा—जरा इनकी भी खबर लेते चलो। सच पूछो तो इन्हीं महाशयने बेचारोंकी गर्दन काटी है।

कई आदमियोंने इसका अनुमोदन किया—हां हां, पकड़ लो, जाने न पावें।

जबतक प्रेमशङ्कर डाक्टर साहबके पास पहुंचें-पहुचें तबतक सैकड़ों आदमियोंने उन्हें घेर लिया। एक बलिष्ठ युवकने आगे बढ़कर डाक्टर साहबके हाथसे रैकेट छीन लिया और कहा, बताइये साहब, लखनपुरके मामलेमें कितनी रिशवत खायी है?

कई आदमियोंने कहा,—बोलते क्यों नहीं, कितने रुपये उड़ाये थे?

डाक्टर महोदयने चिल्ला-चिल्लाकर नौकरोंको पुकारना शुरू किया, किन्तु नौकरोंने आना उचित न समझा।

एक आदमी बोला—यह बिना समझावन-बुझावनके न बतायेंगे।

प्रियनाथ—मैं सबको जेल भेजवा दूंगा, रैसकल्स!

डाक्टर साहबने भय दिखाकर काम निकालना चाहा, पर यह न समझे कि साधारणतः जो लोग आंखके इशारेपर कांप उठते हैं वे विद्रोहके समय गोलियोंकी भी परवा नहीं करते। उनके

मुंहसे इतना निकलना था कि लोगोंके तीवर बदल गये। शोर मचा, जाने न पावे, मारकर गिरा दो, देखा जायगा।

इतनेमें प्रेमशङ्कर डाक्टर साहबके पास जाकर खड़े हो गये, सैकड़ों लाठियां, छतरियां और छड़ियां उठ चुकी थीं। प्रेमशंकरको सम्मुख देखकर सबकी सब हवामें तनी रह गयीं। केवल एक लाठी न रुक सकी। वह प्रेमशंकरके कंधेमें जोरसे लगी।

उसी बलिष्ठ युवकने डाक्टर साहबको धिक्कार कर कहा, उनके पीछे क्या चोरोंकी तरह छिपे खड़े हो। सामने आ जाओ तो मजा चखा दूं। खूब रिशवतें ले लेकर खफीफको शदीद और शदीदको खफीफ बनाया।

अभी यह वाक्य पूरा न होने पाया था कि लोगोंने प्रेमशंकरको लड़खड़ाकर जमीनपर गिरते देखा। किसीने किसीसे कुछ कहा नहीं, पर सबको किसी अनिष्टको सूचना हो गयी। चारों तरफ सन्नाटा छा गया। लोगोंकी उद्दण्डता शंकामें परिवर्तित हो गयी। लोग पूछने लगे, यह किसकी लाठी थी? यह किसने मारा, उसके हाथ तोड़ दो, पकड़कर गर्दन मरोड़ दो? किसकी लाठी थी, सामने क्यों नहीं आता? क्या ज्यादा चोट आयी?

सहसा डाक्टर प्रियनाथने उच्च स्वरसे कहा, अधमरा ही क्यों छोड़ दिया? एक लाठी और क्यों न जड़ दी कि काम तमाम हो जाता? मूर्खो! तुम्हारा अपराधी तो मैं था, इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?

यह कहकर वह प्रेमशङ्करके पास घुटनोंके बल बैठ गये और ावको भली भांति देखा। कंधेकी हड्डी टूट गयी थी। तुरत माल निकालकर कंधेमें पट्टी बांधी। तब अस्पताल जाकर क लिटर लिवा लाये और प्रेमशंकरको उठाकर ले गये। हजारों ादमी अस्पतालके सामने चिन्तामें डूबे खड़े थे। सबको यही भय हो रहा था कि कहीं चोट ज्यादा न आ गयी हो। लेकिन जब डाक्टर साहबने मरहम पट्टीके बाद आकर कहा, चोट तो

बहुत ज्यादा आयी है, कंधेकी हड्डी टूट गयी है, लेकिन आशा है कि बहुत जल्द अच्छे हो जायंगे तो लोगोंके चित्त शान्त हुए। एक एक करके वहांसे चले गये।

लाला प्रभाशंकरको ज्योंही यह शोकसंवाद मिला वह बद-हवास दौड़े हुए आये और प्रेमशङ्करके पास बैठकर देरतक रोते रहे। प्रेमशंकर सचेत हो गये थ, हां, विषम पीड़ासे विकल थे। डाक्टरने बोलने या हिलनेको मना कर दिया था, इसलिए चुपचाप पड़े हुए थें। लेकिन जब प्रभाशङ्करको बहुत अधीर देखा तो धीरेसे बोले, आप घबरायें नहीं, मैं जल्द अच्छा हो जाऊंगा। कंधोंमें दर्द हो रहा है, इसके सिवा मुझे और कोई कष्ट नहीं है। यह बातें सुनकर प्रभाशङ्करको तस्कीन हुई। चलते समय उन्होंने डाक्टर साहबके पास जाकर बड़े विनीत भावसे कहा—बाबूजी, यह लड़का मेरे कुलका दीपक है, आप इसपर कृपादृष्टि रखियेगा। इसके प्राण बच गये तो यथाशक्ति आपकी सेवा करनेमें कोई बात उठा न रक्खूंगा। यद्यपि मैं किसी लायक नहीं हूं, पर अपनेसे जो कुछ हो सकेगा वह अवश्य आपके भेंट करूंगा।

प्रियनाथने कहा,—लालाजी, आप यह क्या कहते हैं ? अगर मैं इनकी सेवा सुश्रूषामें तन मनसे न लगूं तो मुझसे ज्यादा कृतघ्न प्राणी संसारमें न होगा। मेरे ही कारण इन्हें यह चोट आयी है। अगर यह वहां न होते तो मेरी हड्डियोंका भी पता न मिलता। इन्होंने जानपर खेलकर मेरी प्राणरक्षा की। इनका एहसान कभी मेरे सिरसे नहीं उतर सकता।

तीन चार दिनमें प्रेमशङ्कर इतने स्वस्थ हो गये कि तकियेके सहारे बैठ सकें। लकड़ी लेकर औषधालयके बरामदोंमें टहलने भी लगे। उनका कुशल-समाचार पूछनेके लिये प्रति दिन शहरसे सैकड़ों आदमी आते रहते थे। प्रेमशंकर सबसे डाक्टर साहबकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करते। प्रियनाथके सेवाभावने उन्हें मोहित

कर दिया था। वह दिनमें कई बार उन्हें देखने आते। कभी कभी समाचारपत्र पढ़कर सुनाते, उनके लिये अपने घरमें विशेष रीतिसे भोजन बनवाते। प्रेमशङ्कर मनमें बहुत लज्जित थे कि ऐसे सज्जन, ऐसे देवतुल्य पुरुषके विषयमें मैंने क्यों अनुचित सन्देह किये। वह अपनी विमल श्रद्धासे उस अभक्तिकी पूर्ति कर रहे थे।

एक सप्ताह बीत चुका था। प्रेमशङ्कर उदास बैठे हुए सोच रहे थे कि उन दीन अभियुक्तोंका अब क्या हाल होगा? मैं यहां पड़ा हुआ हूं, अपीलका अभीतक कुछ निश्चय न हो सका। और अपील होगी कैसे? इतने रुपये कहांसे आयंगे? आजकल तो न्याय गरीबोंके लिये एक अलभ्य वस्तु हो गया है, पग-पगपर रुपयेका खर्च! और यह क्या मालूम कि अपीलका नतीजा हमारे अनुकूल होगा? कहीं यही सजायें बहाल रह गयीं तो अपील करना निष्फल हो जायगा। लेकिन कुछ भी हो, अपील करनी चाहिये। रुपयेकी कोई न कोई सबील निकल ही आयेगी और कुछ न होगा तो दूकान दूकान और घर घर घूमकर चन्दा मांगूंगा। दीनोंसे स्वभावतः लोगोंकी सहानुभूति होती है। सम्भव है काफी धन हाथ आ जाय। ज्ञानशङ्करको बुरा लगेगा, लगे, इसमें मेरा कुछ वस नहीं। क्या उन्हें इस दुर्घटनाकी खबर न मिली होगी। आना तो दूर रहा, एक पत्र भी न लिखा कि मुझे तस्कीन होती।

वह इन्हीं विचारोंमें मग्न थे कि प्रियनाथ आ गये और बोले, आप इस समय बहुत चिन्तित मालूम होते हैं। थोड़ी-सी चाय पी लीजिये, चित्त प्रसन्न हो जाय।

प्रेमशङ्कर—जी नहीं, बिलकुल इच्छा नहीं है। आप मुझे यहां-से कबतक विदा करेंगे।

प्रियनाथ—अभी शायद आपको यहां एक सप्ताह और नजर-बन्द रहना पड़ेगा, अभी हड्डीके जुड़नेमें थोड़ी-सी कसर है। और फिर ऐसी जल्दी क्या है? यह भी तो आपहीका घर है।

प्रेमशङ्कर—आप मेरे सिरपर उपकारोंका इतना बोझ रखते जाते हैं कि मैं शायद हिल भी न सकूं। यह आपकी कृपा, स्नेह और शालीनताका फल है कि मुझे पीड़ाका कष्ट कभी जान ही न पड़ा। मुझे याद नहीं आती कि इतनी शान्ति कहीं और मिली हो। आपकी हार्दिक समवेदनाने मुझे दिखा दिया कि संसारमें भी देवताओंका वास हो सकता है। सभ्य जगतपरसे मेरा विश्वास उठ गया था। आपने उसे फिर जीवित कर दिया।

प्रेमशङ्करकी नम्रता और सरलता डाक्टर महोदयके हृदयको दिनोंदिन मोहित करती जाती थी। ऐसे शुद्धात्मा, साधु और निःस्पृह पुरुषका श्रद्धापात्र बनकर उनकी क्षुद्रताय और मलिनतायें आप ही आप मिटती जाती थीं। वह ज्योति दीपककी भांति उनके अन्तःकरणके अन्धेरेको विच्छिन्न किये देती थी। इस श्रद्धारत्नको पाकर वह ऐसे मुग्ध थे, जैसे कोई दरिद्र पुरुष अनायास कोई सम्पत्ति पा जाय। उन्हें सदैव यही चिन्ता रहती थी कि कहीं यह रत्न मेरे हाथसे निकल न जाय। उन्हें कई दिनोंसे यह इच्छा हो रही थी कि लखनपुरके मुकदमेके विषयमें प्रेमशङ्करसे अपनी स्थिति स्पष्ट रूपसे प्रकट कर दें, पर इसका कोई अवसर न पाते थे। इस समय अवसर पाकर बोले, आप मुझे बहुत लज्जित कर रहे हैं। किसी दूसरे सज्जनके मुंहसे यह बातें सुनकर मैं अवश्य समझता कि वह मुझे बना रहा है। आप मुझे उससे कहीं ज्यादा विवेकपरायण और सच्चरित्र समझ रहे हैं जितना मैं हूं। साधारण मनुष्योंकी भांति लोभमें ग्रसित, इच्छाओंका दास और इन्द्रियोंका भक्त हूं। मैंने अपने जीवनमें घोर पाप किये हैं। यदि वह आपसे बयान करूं तो आप चाहे कितने ही उदार क्यों न हों, मुझे तुरन्त नजरोंसे गिरा देंगे। मैं स्वयं अपने कुकृत्योंका परदा बना हुआ हूं, उन्हें बाह्य आडम्बरोंसे ढांके हुए हूं। लेकिन इस मुकदमेके सम्बन्धमें जनताने मुझे जितना बदनाम कर रक्खा है उसका मैं भागी नहीं हूं। मैं आपसे सत्य कहता हूं कि मुझपर

जो आक्षेप किये गये हैं वह सर्वथा निर्मूल हैं। सम्भव है हत्या-निरूपणमें मुझे भ्रम हुआ हो और अवश्य हुआ है, लेकिन मैं इतना निर्दय और विवेकहीन नहीं हूं कि अपने स्वार्थके लिये इतने निरपराधियोंका गला काटता। यह मेरी दासवृत्ति है जिसने मेरे माथेपर अपयशका टीका लगा दिया।

प्रेमशङ्करने ग्लानिमय भावसे कहा—भाई साहब, आपकी इस बदनामीका सारा दोष मेरे सिर है। मैं ही आपका अपराधी हूं। मैंने ही दूसरोंके कहनेमें आकर आपपर अनुचित सन्देह किये। इसका मुझे जितना दुःख और खेद है वह आपसे कह नहीं सकता। आप जैसे साधु पुरुषपर ऐसा घोर अन्याय करनेके लिये परमात्मा मुझे न जाने क्या दण्ड देंगे। पर आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि मेरी अल्पज्ञतापर विचार कर मुझे क्षमा कीजिये।

प्रियनाथके हृदयपरसे एक बोझ-सा उतर गया। प्रेमशङ्कर इसके ३-४ दिन बाद हाजीपुर लौट आये। पर डाक्टर साहब रोज सन्ध्या समय उनसे मिलने आया करते। अब वह पहलेसे कहीं ज्यादा कर्त्तव्यपरायण हो गये थे। १० बजेके पहले प्रातःकाल चिकित्साभवनमें आ बैठते, रोगियोंकी दशा ध्यानसे देखते, उन्हें सान्त्वना देते। इतना ही नहीं, पहले वह पूरी फीस लिये बिना जगहसे हिलते न थे, अब बहुधा गरीबों-को देखने बिना फीस लिये ही चले जाते। छोटे छोटे कर्मचा-रियोंसे आधी ही फीस लेते। नगरकी सफाईका नियमा-नुसार निरीक्षण करते। जिस गली या सड़कसे निकल जाते लोग बड़े आदरसे उन्हें सलाम करते। चन्द ही महीनोंमें सारे नगरमें उनका बखान होने लगा। काशीका प्रसिद्ध समाचारपत्र 'गौरव' उनका पुराना शत्रु था। पहले उनपर खूब चोटें किया करता था। अब वह भी उनका भक्त हो गया। उसने अपने एक लेखमें यह आलोचना की, "काशीके लिये यह परम सौभाग्यकी बात है कि बहुत दिनोंके बाद उसे ऐसा प्रजावत्सल, ऐसा सहृदय, ऐसा

कर्त्तव्यपरायण डाक्टर मिला। चिकित्सकका लक्ष्य धनोपार्जन नहीं, यशोपार्जन होना चाहिये और महाशय प्रियनाथने अपने व्यवहारसे सिद्ध कर दिया है कि वह इस उच्चादर्शका पालन करना अपना ध्येय समझते हैं।" डाक्टर साहबको सुकीर्तिका स्वाद मिल गया। अब दीनोंकी सेवासे उनका चित्त जितना उल्लसित होता था उतना पहले संचित धनकी बढ़ती हुई संख्याओंसे भी न हुआ था। यद्यपि धनकी तृष्णासे वह अभी मुक्त नहीं हुए थे, पर कीर्तिलाभकी सदिच्छाने धनलिप्साको परास्त कर दिया था। प्रेमशंकरके सम्मुख जाते ही उनका हृदय ओस-बिन्दुओंसे धुले हुए फूलोंके सदृश निर्मल हो जाता, निखर उठता। उस सरल, संतोषमय, कामनारहित जीवनके सामने उन्हें अपनी धनलालसा तुच्छ मालूम होने लगती थी। सन्तानकी चिन्ताका बोझ कुछ हलका हो जाता था। जब इस दशामें भी हम संतुष्ट और प्रसन्न रह सकते हैं, यशस्वी बन सकते हैं, दूसरोंकी सहायता कर सकते हैं, प्रेम और श्रद्धाके पात्र बन सकते हैं, तो फिर धनपर जान देना व्यर्थ है। उन्हें ज्ञात होता था कि सफल जीवनके लिये धन कोई अनिवार्य्य साधन नहीं है। उन्हें खेद होता था कि मेरी आवश्यकतायें क्यों इतनी बढ़ी हुई हैं, मैं डाक्टर होकर रसनाका दास क्यों बना हुआ हूं, सुन्दर वस्त्रोंपर क्यों मरता हूं। इन्हींके कारण तो मैं सारे नगरमें बदनाम था, लोभी स्वार्थी, निर्दय बना हुआ था और अब भी हूं। लोगोंको शंका होती थी कि कहीं यह रोगको बढ़ा न दें, इसलिये जल्दी कोई मुझे बुलाता न था। इन विचारोंका डाक्टर साहबके रहनसहनपर प्रभाव पड़ने लगा।

एक दिन डाक्टर साहब किसी मरीजको देखकर लौटते हुए प्रेमशंकरकी कृषिशालाके सामनेसे निकले। १० बज गये थे। धूप तेज थी। सूर्य्यकी प्रखर किरणें आकाशमण्डलको बाणोंसे छेदती हुई जान पड़ती थीं। डाक्टर साहबके जीमें आया, देखता

चलूं, क्या कर रहे हैं। अन्दर पहुंचे तो देखा कि वह अपने झोपड़ोंके सामने वृक्षके नीचे खड़े गेहूंके पोले बिखेर रहे थे। कई मजूर लौनी कर रहे थे। प्रियनाथको देखते ही प्रेमशंकर झोपड़ेमें आ गये और बोले, धूप तेज है।

प्रियनाथ—लेकिन आप तो इस तरह काममें लगे हुए हैं मानों धूप है ही नहीं।

प्रेम—उन मजूरोंको देखिये। धूपकी कुछ परवा नहीं करते।

प्रिय—वह मजूर हैं, इसके आदी हैं।

प्रेम—हमें इस कृत्रिम जीवनने चौपट कर दिया, नहीं तो हम भी ऐसे ही आदी होते और श्रमको बुरा न समझते।

प्रेमशंकर कुछ और कहना चाहते थे कि इतनेमें दो वृद्धायें सिरपर लकड़ीके गट्ठे रखे आयीं और पूछने लगीं—सरकार लकड़ी ले लो। इन स्त्रियोंके पीछे पीछे कई लड़के भी लकड़ीके बोझ लिये हुए थे। सभोंके कपड़े तरबतर हो रहे थे। छाती और पसलीकी हड्डियां निकली हुई थीं, ओठ सूखे हुए, देहपर मैल जमी हुई, उसपर सूखे हुए पसीनेकी धारियां-सी बन गयी थीं। प्रेमशंकरने लकड़ीके दाम पूछे, सभीके गट्ठे उतरवा लिये, लेकिन देखा तो संदूकमें पैसे न थे। गुमास्ताको रुपया भुनाने को दिया। दोनों वृद्धायें वृक्षके नीचे छांहमें बैठ गयीं और लड़के मटरके बिखरे हुए दाने चुन चुन खाने लगे। प्रेमशंकर को उनपर दया आ गयी। थोड़े थोड़े मटर सब लड़कोंको दिये। दोनों स्त्रियां आशीष देती हुई बोलीं—बाबूजी, नारायण तुम्हें सदा सुखी रखें। इन बेचारोंने अभी कलेवा नहीं किया है।

प्रेम—तुम्हारा घर कहां है?

एक बुढ़िया—सरकारने लखनपूरका नाम सुना होगा।

प्रियनाथ—आपने गट्ठे देखे नहीं, सबोंने खूब कैंची लगायी है।

प्रेमशंकर—दरिद्रता सब कुछ करा देती है। (वृद्धासे) तुम लोग इतनी दूर लकड़ी बेचने आ जाती हो?

वृद्धा—क्या करें मालिक, बीचमें और कोई बस्ती नहीं है। घड़ी रातके चले हैं, दुपहरी हो गयी, किसी पेड़के नीचे पड़ रहेंगे, दिन ढलेगा तो सांझतक घर पहुंचेंगे। करमका लिखा भोग रहे हैं, जो कभी न करना पड़ा था वह मरते समय करना पड़ा।

प्रेम—आजकल गांवका क्या हाल है?

वृद्धा—क्या हाल बतायें सरकार, जमींदारकी निगाह टेढ़ी हो गयी, सारा गांव बंध गया, कोई डामुल गया, कोई कैद गया, उनके बालबच्चे अब दाने दानेको तरस रहे हैं। मेरे दो बेटे थे, दो हलकी खेती होती थी। एक तो डामुल गया, दूसरे-की सालभरसे कुछ टोह ही नहीं मिली। बैल थे, वह चारे बिना टूट गये, खेतीबारी कौन करे, बहुयें हैं, वह बाहर आ जा नहीं सकतीं। मैं ही उपले बेचकर ले जाती हूं तो सबके मुंहमें दाना पड़ता है। पोते थे, वह भगवानने पहले ही हर लिये। बुढ़ापेमें यही भोगना लिखा था!

प्रेम—तुम डपटसिंहकी मां तो नहीं हो?

वृद्धा—हां सरकार, आप कैसे जानते हैं?

प्रेम—ताऊनके दिनोंमें जब तुम्हारे पोते बीमार थे तब मैं वहीं था। कई बेर और हो आया हूं। तुमने मुझे पहचाना नहीं। मेरा नाम प्रेमशङ्कर है।

वृद्धाने थोड़ा-सा घूंघट निकाल लिया। दीनताकी जगह लज्जाका हलका-सा रंग चेहरेपर आ गया। बोली—हां बेटा, अब मैंने पहचाना, आंखोंसे अच्छी तरह सूझता नहीं। भैया, तुम जुग जुग जियो। आज सारा गांव तुम्हारा जस गा रहा है, तुमने अपनीवाली कर दी, पर भागमें जो कुछ लिखा था वह कैसे टलता! बेटा, सारे गांवमें हाहाकार मचा हुआ है। दुखरन भगतको तो जानते ही होगे, यह बुढ़िया उन्हींकी घरवाली है। पुराना खाती थी, नया रखती थी, अब घरमें कुछ नहीं रहा। यह दोनों लड़के बन्धूके हैं, एक रंगीका लड़का है और यह दोनों कादिर

मियांके पोते हैं। न जाने क्या हो गया कि घरमे मरदोंके जाते ही जैसे बरक्कत ही उठ गयी। सुनती थी कि कादिरमियांके पास बड़ा धन है, पर इतने ही दिनोमें यह हाल हो गया कि लड़के मजूरी न करें तो मुंहमें मक्खी आये जाये। भगवान इस कलमुंहे फैजूका सत्यानास करे, इसने और भी अंधेर मचा रक्खा है। अबतक तो उसने गांवभरको बेदखल कर दिया होता, पर नारायन सुक्खू चौधरीका भला करे कि उन्होंने सारी बाकी कौड़ी कौड़ी चुका दी। पर अबकी उन्होंने खबर न ली और फिर अकेला आदमी, सारे गांवको कहांतक संभाले! साल दो सालकी बात हो तो निबाह भी दे, यहां तो उम्र-भरका रोना है। कारिन्दा, चपरासी अभीसे धमका रहे हैं कि अबकी बेदखल करके तभी दम लेंगे। अबकी साल तो कुछ आधे साझेमें खेती हो गयी थी। खेत निकल जायंगे तो दैव जाने क्या गत होगी।

यह कहते-कहते बुढ़िया रोने लगी। प्रेमशङ्करकी आंखें भी भर गयीं, पूछा—बिशेशर साहका क्या हाल है?

बुढ़िया—क्या जानूं भैया, मैंने तो सालभरसे उनके द्वारपर झांका भी नही। अब कोई उधर नहीं जाता। ऐसे आदमीका मुंह देखना पाप है। लोग दूसरे गांवसे नोन-तेल लाते हैं। वह भी अब घरसे बाहर नहीं निकलता, दूकान उठा दी है। घरमें बैठा न जाने क्या क्या करता है? जो दूसरेको गड्ढा खोदेगा, उसके लिये कुआं तैयार है। देखा तो नहीं, पर सुनती हूं, जबसे यह मामला उठा है, उसके घरमें किसीको चैन नहीं है। एक-न-एक परानीके सिर भूत आया ही रहता है। ओझे सयाने रात दिन जमा रहते हैं। पूजा पाठ, जप तप हुआ करता है। एक दिन बिलासीसे रास्तेमें मिल गये थे। रोने लगा, बहुत पछताता था कि मैंने दूसरोंकी बातोंमें आकर यह कुकर्म्म किया। मनोहर उसके गले पड़ा हुआ है। मारे डरके सांझसे केवाड़ बन्द हो जाता है। रातको बाहर नहीं निकलता। मनोहर रात दिन

उसके द्वारपर खड़ा रहता है, जिसको पाता है उसीको चपेट लेता है। सुनती हूं अब गांव छोड़कर किसी दूसरे गांवमें बसनेवाला है।

प्रेमशङ्कर यह बातें सुनकर गहरे सोचमें डूब गये। मैं कितना बेपरवाह हूं। इन बेचारोंको सजा पाये हुए सालभर होने आते हैं और मैंने उनके बाल-बच्चोंकी सुधितक न ली। वह सब अपने मनमें क्या कहते होंगे? ज्ञानशङ्करसे बात हार चुका हूं। लेकिन अब वहां जाना पड़ेगा। अपने वचनके पीछे इतने दुखियारोंको मरने दूं? यह नहीं हो सकता। इनका जीवन मेरे वचनसे कहीं ज्यादा मूल्यवान है। अकस्मात् बुढ़ियाने कहा—क्यों भैया, क्या अब कुछ नहीं हो सकता? लोग कहते हैं अभी किसी और बड़े हाकिमके यहां फरियाद लग सकती है।

प्रेमशङ्करने इसका कुछ उत्तर न दिया। धनका प्रबन्ध करना तो बहुत कठिन न था, लेकिन उन्हें अपीलसे कुछ उपकार होनेकी बहुत कम आशा थी। वकीलोंकी भी यही राय थी। इसीलिये वह इस प्रश्नको टालते आते थे। डाक्टर साहबसे भी उन्होंने अपीलकी चर्चा कभी न की थी। प्रियनाथ उनके मुखकी ओर ध्यानसे देख रहे थे। उनके मनके भावोंको भांप गये और उनके असमंजसको दूर करनेके लिये बोले—बूढ़ी, हां, फरियाद लग सकती है, उसका बन्दोबस्त हो रहा है, धीरज रक्खो, जल्द ही अपील दायर कर दी जायगी।

वृद्धा—बेटा, दूधों नहाव, पूतों फलो। सुनती हूं कोई बड़ा डाक्टर था, उसीने जमींदारसे कुछ ले-देकर इन गरीबोंको फंसा दिया। न हो तुम दोनों जने उसी डाक्टरके पास जाकर हाथ पैर जोड़ो, कौन जाने तुम्हारी बात मान जाय। उसके आगे भी तो बाल बच्चे होंगे? क्यों हम गरीबोंको बेकसूर मारता है? किसीकी हाय बटोरना अच्छा नहीं होता।

प्रेमशङ्कर जमीनमें गड़े जाते थे। डाक्टर साहबको कितना

दुःख हो रहा होगा, अपने मनमें कितने लज्जित हो रहे होंगे, कहीं बुढ़िया गाली न देने लगे, इसे कैसे चुप कर दूं। इन विचारोंसे वह बहुत विकल हो रहे थे। किन्तु प्रियनाथके चेहरेपर उदारता झलक रही थी, नेत्रोंसे वात्सल्यभाव प्रस्फुटित हो रहा था। मुस्कुराते हुए बोले—हम लोग उस डाक्टरके पास गये थे। उसे खूब समझाया। है तो लालची, पर कहने सुननेसे राहपर आ गया है, अब सच्ची गवाही देगा।

इतनेमें मस्ता पैसे लेकर आ गया। प्रेमशङ्करने लकड़ीके दाम दिये, बुढ़िया लकड़ीके साथ आशीर्वाद देकर चली गयी। द्वारपर पहुंचकर उसने फिर कहा,—भैया, भूल मत जाना, धरमका काम है, तुम्हें बड़ा जस होगा।

उनके चले जानेके बाद कुछ देरतक प्रेमशङ्कर और प्रियनाथ दोनों मौन बैठे रहे। प्रेमशङ्करका मुंह संकोचने बन्द कर दिया था, डाक्टरका लज्जाने।

सहसा प्रियनाथ खड़े हो गये और निश्चयात्मक भावसे बोले—भाईसाहब, अवश्य अपील कीजिये। आप आज ही इलाहाबाद चले जाइये। आजके दृश्यने मेरे हृदयको हिला दिया। ईश्वरने चाहा तो अबकी सत्यकी विजय होगी।

४५

डाक्टर इर्फानअली उस घटनाके बाद हवा खाने न जा सके, सीधे घरको ओर चले। रास्तेभर उन्हें संशय हो रहा था कि कहीं इन उपद्रवियोंसे फिर मुठभेड़ न हो जाय, नहीं तो अबकी जानके लाले पड़ जायंगे। आज बड़ी खैरियत हुई कि प्रेमशंकर मौजूद थे, नहीं तो इन बदमाशोंके हाथों मेरी न जाने क्या दुर्गत होती। जब वह अपने घरपर सकुशल पहुंच गये और बरामदेमें आराम-कुरसीपर लेटे तो इस समस्याको आलोचना करने लगे। अबतक वह न्याय और सत्यके निर्भीक समर्थक समझे जाते थे। पुलिसके विरुद्ध सदैव उनकी तलवार म्यानसे बाहर रहती थी, यही

उनकी सफलताका तत्व था। यह बहुत अध्ययनशील, तत्त्वान्वेषी, तार्किक वकील न थे; लेकिन उनकी निर्भीकता इन सारी त्रुटियोंपर परदा डाल दिया करती थी। पर इस लखनपुरवाले मुकदमेमें पहली बार उनकी स्वार्थपरताकी कलई खुली। पहले वह प्रायः पुलिससे हारकर भी जीतमें रहते थे, जनताका विश्वास उनके ऊपर जमा रहता था, बल्कि और बढ़ जाता था। आज पहली बार उन्हें सच्ची हार हुई, जनताका विश्वास उनपरसे उठ गया। लोकमतने उनका तिरस्कार कर दिया। उनके कानोंमें उपद्रवियोंके यह शब्द गूंज रहे थे, "इन दोनोंका खून इन्हींकी गर्दनपर है!" इर्फान अली उन मनुष्योंमें न थे जिनकी आत्मा समृद्धि-लालसाके नीचे दबकर निर्जीव हो जाती है। वह सदैव अपने इष्ट-मित्रोंसे कठिनाइयोंका रोना रोया करते थे, और निस्सन्देह यह आंसू उनके हृदयसे निकलते थे। वह बार बार इरादा करते थे कि इस पेशेको छोड़ दे, लेकिन जुआरियोंकी प्रतिज्ञाकी भांति उनका निश्चय भी दृढ़ न होता था; बल्कि दिनोंदिन वह लोभमें और भी डूबते जाते थे। उनकी दशा उस पथिककी सी थी जो संध्या होनेके पहले ठिकानेपर पहुचनेके लिये कदम और भी बढ़ाता है। इर्फानअली वकालत छोड़नेके पहले इतना धन कमा लेना चाहते थे कि जीवन सुखसे व्यतीत हो। अतएव वह लोभमार्गमें और भी तीव्र गतिसे चल रहे थे।

लेकिन आजकी घटनाने उन्हें मर्माहत कर दिया। अबतक उनकी दशा उन रईसोंकी-सी थी जो वहमकी दवा किया करते हैं, कभी कोई स्वादिष्ट अवलेह बनवा लिया, कभी कोई सुगंधित अर्क खिंचवा लिया और रुचिके अनुसार उसका सेवन करते रहे किन्तु आज उन्हें ज्ञात हुआ कि मैं एक जीर्ण रोगसे ग्रसित हूं अब अर्क और अवलेहसे काम न चलेगा। इस रोगका निवारण तेज नश्तरों और तीक्ष्ण औषधियोंसे होगा। मैं सत्यका सेवक बनता था। वास्तवमें मैं अपनी इच्छाओंका दास हूं। प्रेमशङ्करने

मुझे नाहक बचा लिया, जरा दो-चार चोटें पड़ जातीं तो मेरी आंखें और खुल जातीं।

मुआजल्लाह! मैं कितना स्वार्थी हूं। अपने स्वार्थके सामने दूसरोंकी जानकी भी परवा नहीं करता। मैंने इस मुआमलेमें आदिसे अन्ततक कपट व्यवहारसे काम लिया। कभी मिसलोंको गौरसे नहीं पढ़ा, कभी जिरहके प्रश्नोंपर विचार नहीं किया, यहांतक कि गवाहोंके बयान भी आद्योपान्त न सुने, कभी दूसरे मुकदमेमें चला जाता था, कभी मित्रोंसे बातें करने लगता था। मैंने थोड़ा-सा अध्ययन किया होता तो प्रियनाथको चुटकियोंपर उड़ा देता, मुखबिरको दो चार जिरहोंमें उखाड़ सकता था, थानेदारका बयान भी कुछ ऐसा प्रामाणिक न था, लेकिन मैंने तो अपने कर्त्तव्यपर कभी विचार ही नहीं किया। अदालतमें इस तरह जा बैठता था जैसे कोई मित्रोंकी सभामें जा बैठता; मैं इस पेशेको बुरा कहता हूं, यह मेरी मक्कारी है, हमारी अनीति है जिसने इस पेशेको बदनाम कर रक्खा है। उचित तो यह है कि हमारी दृष्टि सत्यपर हो, पर इसके बदले हमारी निगाह सदैव रुपयेपर रहती है। खुदाने चाहा तो आइन्दासे अब वही करूंगा जो मुझे करना चाहिये, हां, अबसे ऐसा ही होगा। अब मैं भी प्रेमशङ्करके जीवनको अपना आदर्श बनाऊंगा, सन्तोष और सेवाके सन्मार्गपर चलूंगा।

जबतक प्रेमशंकर औषधालयमें रहे इर्फानअली प्रायः नित्य उनका समाचार पूछने जाया करते थे। उनके धैर्य और साहसपर डाक्टर साहबको आश्चर्य होता था। प्रेमशङ्करके प्रति उनकी श्रद्धा दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। अपने मुवक्किलोंके साथ उनका व्यवहार अब अधिक विनयपूर्ण होता था। वह उनके मुआमले ध्यानसे देखते, एक समय एकसे अधिक मुकदमा न लेते और एक मुकदमेको इजलासपर छोड़कर दूसरे मुकदमेकी पैरवी करनेकी तो उन्होंने मानों शपथ ही खा ली। वह अपील करनेके लिये

बार बार प्रेमशंकरको प्रेरित करना चाहते थे, पर अपनी असज्जनताको याद करके सकुच जाते थे। अन्तमें उन्होंने सीतापुर जाकर बाबू ज्वालासिंहसे इस विषयमें परामर्श करनेका निश्चय किया। किन्तु वह महाशय अभीतक दुविधेमें पड़े हुए थे। वह प्रेमशंकरको कई बार लिख चुके थे कि त्यागपत्र देकर शीघ्र ही आपकी सेवामें आता हूं, लेकिन फिर कोई न कोई ऐसी बात आ जाती थी कि उन्हें अपने इरादेको स्थगित करनेपर विवश होना पड़ता था। बात यह थी कि शीलमणि उनके इस्तीफा देनेपर राजी न होती थी। वह कहती—बलासे तुम्हारे अफसर तुमसे अप्रसन्न हैं, तरक्की नहीं होती है न सही। तुम्हारे हाथोंमें न्याय करनेका अधिकार तो है? अगर तुम्हारे विधातागण तुम्हारे व्यवहारसे असन्तुष्ट होकर तुम्हें पदच्युत कर दें तो तुम्हें अपील करनी चाहिये और चोटीके हाकिमोंसे लड़ना चाहिये। यह नहीं कि अफसरोंने जरा तीवर बदला और तुमने भयभीत होकर त्यागपत्र देनेकी ठान ली। तुम्हारी इस अकर्मण्यतासे तुम्हारे कितने ही न्यायशील, आत्माभिमानी सहवर्गियोंकी हिम्मतें टूट जायँगी और वह भाग निकलनेका उपाय करने लगेंगे। विभाग सज्जनोंसे खाली हो जायगा और वही खुशामदी टट्टू, हाकिमोंके इशारोंपर नाचनेवाले बाकी रह जायँगे। ज्वालासिंह इस दलीलका कोई जवाब न दे सकते थे। जब डाक्टर इर्फान अली सिरपर जा पहुंचे तो वह अपनी शिथिलता और अधिकारप्रेमका दोष शीलमणिपर रखकर अपनेको मुक्त न कर सके।

शीलमणि समझ गयी कि अब इन्हें रोकना कठिन है, मेरी एक न सुनेंगे। ज्योंही अवसर मिला उसने ज्वालासिंहसे पूछा—डाक्टर साहबको क्या जवाब दिया?

ज्वाला—जवाब क्या देना है, इस्तीफा दिये देता हूं। अब हीला-हवाला करनेसे काम न चलेगा। जबतक मैं न जाऊंगा बाबू प्रेमशंकर कुछ न कर सकेंगे। दुर्भाग्यसे वह मुझपर उससे

कहीं ज्यादा विश्वास करते हैं, जिसके योग्य मैं हूं। अपीलकी अवधि बीत जायगी तो फिर कुछ बनाये न बनेगी। अपीलके सफल होनेकी बहुत कुछ आशा है और अगर मेरे सदुद्योगसे कई निरपराधियोंकी जान बच जायं तो मुझे अब एक क्षण भी विलम्ब न करना चाहिये।

शीलमणि—तो कुछ दिनोंकी छुट्टी क्यों नहीं ले लेते?

ज्वालासिंह—तुम तो जान बूझकर अनजान बनती हो। वहां मुझे कितनी ही ऐसी बातें करनी पड़ेंगी जो दासत्वकी बेड़ियां पहने हुए नहीं कर सकता। रुपयेके लिये चन्दे मांगना, वकीलोंसे मिलना जुलना, लखनपूरवालोंके कष्टनिवारणकी आयोजना करना, यह सभी काम करने पड़ेंगे। पुलिसवालोंकी निगाहपर चढ़ जाऊंगा, अधिकारिवर्ग तन जायँगे। तो इस बेड़ीको काट ही क्यों न दूं? मुझे पूरा विश्वास है कि मैं स्वाधीन होकर जितनी जातिसेवा कर सकता हूं, उतनी इस दशामें कभी न कर सकूंगा।

शीलमणि बहुत देरतक उनसे तर्क वितर्क करती रही, अन्तमें क्रुद्ध होकर बोली—ऊंह, जो इच्छा हो वह करो, मुझे क्या करना है। जैसे सूखा सावन वैसे भरा भादो। आप ही पछताओगे। यह सब आदर सम्मान तभीतक है जबतक हाकिम हुए हो। जब जातिसेवकोंमें जा मिलोगे तो कोई बात भी न पूछेगा। क्या वहां सबके सब सज्जन ही भरे हुए हैं? अच्छे बुरे सभी जगह होते हैं। प्रेमशङ्करको तो मैं नहीं कहती, वह देवता हैं लेकिन जातिसेवकोंमें तुम्हें सैकड़ों आदमी ऐसे मिलेंगे जो स्वार्थके पुतले हैं, और सेवाभेष बनाकर गुलछर्रे उड़ाते हैं। वह निःस्पृह, पवित्र आत्माओंको एक आंख नहीं देख सकते। तुम्हें उनके बीचमें रहना दूभर हो जायगा, उनका अन्याय, कपटव्यापार और संकीर्णता देखकर तुम कुढ़ोगे, पर उनसे कुछ कह न सकोगे। इसलिये जो कुछ करो सोच समझकर करो।

यह वही बातें थीं जो ज्वालासिंहने स्वयं शीलमणिसे कही थीं। कदाचित् यही बातें सुन सुनकर वह इस्तीफेके विपक्षमें हो गयी थीं। पर इस समय वह यह दुराशाजनक बातें न सुन सके, उठकर बाहर चले आये और उसी आवेशमें त्यागपत्र लिखना शुरू किया।

४६

कई महीने बीत चुके लेकिन प्रेमशङ्कर अपील दायर करनेका निश्चय न कर सके। जिस काममें उन्हें किसी दूसरेसे मदद मिलनेकी आशा न होती थी उसे वह बड़ी तत्परतासे करते थे, लेकिन जब कोई उन्हें सहारा देनेके लिये हाथ बढ़ा देता था तब उनपर एक विचित्र शिथिलता-सी छा जाती थी। इसके सिवा, धना-भाव भी अपीलका बाधक था। दिवानोंके खर्चने उन्हें इतना जेर-बार कर दिया था कि हाईकोर्ट जानेकी हिम्मत न पड़ती थी। यद्यपि कितने ही आदमियोंको उनसे श्रद्धा थी और वह इस पुण्य कार्यके लिये पर्याप्त धन एकत्र कर सकते थे, पर उनकी स्वाभाविक सरलता और कातरता इस आधारको उनकी कल्पना-में भी न आने देती थी।

एक दिन संध्या समय प्रेमशङ्कर बैठे हुए समाचारपत्र देख रहे थे। गोरखपुरके सनातनधर्म महोत्सवका समाचार मोटे अक्षरोंमें छपा हुआ दिखायी दिया। गौरसे पढ़ने लगे। ज्ञान-शङ्करको उन्होंने मनमें धूर्त और स्वार्थपरायण समझ रक्खा था। अब उनकी इस सत्यनिष्ठा और धर्मपरायणताका वृत्तान्त पढ़कर उन्हें अपनी संकीर्णतापर अत्यन्त खेद हुआ। हा! मैं कितना निर्बुद्धि हूं! ऐसी दिव्य और निर्मल आत्मापर अनुचित संदेह करने लगा। ज्ञानशङ्करके प्रति उनके हृदयमें भक्तिकी तरंगें-सी उठने लगीं। उनकी सराहना करनेकी ऐसी उत्कट इच्छा हुई कि उन्होंने मस्ता और भोलाको कई बार पुकारा। जब उनमें-

से किसीने जवाब न दिया तो वह मस्ताकी झोपड़ीकी ओर चले कि अकस्मात् दुर्गा, मस्ता और कृषिशालाके कई और नौकर एक मनुष्यको खींच खींचकर लाते हुए दिखायी दिये। सबके सब उसे गालियां दे रहे थे और मस्ता रह रहकर एक धौल जमा देता था। प्रेमशङ्करने आगे बढ़कर तीव्र स्वरमें कहा, क्या है भोला, इसे क्यों मार रहे हो?

मस्ता—भैया, यह न जाने कौन आदमी है। फाटकसे चिमटा खड़ा था। अभी मैं फाटक बन्द करने गया तो इसे देखा। मुझे देखते ही और भी दबक गया। बस, मैंने चुपकेसे आकर सबको साथ लिया और इसको घर लिया। जरूरसे जरूर कोई चोर है।

प्रेम—चोर सही, तुम्हारा कुछ चुराया तो नहीं? फिर क्यों मारते हो?

यह कहते हुए वह अपने बरामदेमें आकर बैठ गये। चोरको भी लोगोंने वहीं लाकर खड़ा किया। ज्योंही लालटेनके प्रकाशमें उसकी सूरत दिखायी दी, प्रेमशंकरके मुंहसे सहसा एक चीख-सी निकल आयी, अरे! यह तो बिशेशर साह हैं!!

बिशेशरने आंसू पोंछते हुए कहा, हां सरकार, मैं बिशेशर ही हूं।

प्रेमशङ्करने अपने नौकरोंसे कठोर स्वरसे कहा, तुम लोग निरे गंवार और मूर्ख हो। न जाने तुम्हें कभी समझ आयेगी भी या नहीं।

मस्ता—भैया, हम तो बार बार पूछते रहे कि तुम कौन हो। यह कुछ बोले ही नहीं, तो मैं क्या करता?

प्रेम—बस, चुप रह, गंवार कहींका।

नौकरोंने देखा कि हमसे भूल हो गयी, चुपकेसे एक एक करके सरक गये। प्रेमशङ्करको क्रोधमें देखकर सबके सब थर थर कांपने लगते थे। यद्यपि प्रेमशङ्कर उन सभोंसे भाईचारेका

बर्ताव करते थे, पर वह सब उनका बडा अदब करते थे। उनके सामने चिलमतक न पीते। उनके चले जानेके बाद प्रेमशङ्करने बिशेशरसाहको खाटपर बैठाया और अत्यन्त लज्जित होकर बोले, साहजी, मुझे बड़ा दुःख है कि मेरे आदमियोंने आपके साथ ऐसा अनुचित व्यवहार किया। सबके सब उजड्ड और मूर्ख हैं।

बिशेशरने एक ठंढी सांस लेकर कहा, नहीं भैया, इन्होंने कोई बुरा सलूक नहीं किया। मैं इसी लायक हूं। आप मुझे खम्भेसे बांधकर कोड़े लगवायें तब भी बुरा न मानूंगा। मैं विश्वासघाती हूं, मुझे जो सजा मिले वह थोड़ी है। मैंने अपनी जानके डरसे सारे गांवको मटियामेट कर दिया। न जाने मेरी बुद्धि कहां चली गयी थी। पुलिसवालोंकी भभकीमें आ गया। वह सब ऐसी ऐसी बातें करते हैं, इतना डराते और धमकाते हैं कि सीधा-सादा आदमी बिलकुल उनकी मुट्ठीमें हो जाता है। उन्हें जरूरसे जरूर किसी देवताका इष्ट है, कि जो कुछ वह कहलाते हैं वही मुंहसे निकलता है। भगवान जानते हैं जो गौसखांके बारेमें मुझे किसीसे कुछ बात हुई हो। मुझे तो उनके कतलका हाल दिन चढ़े मालूम हुआ, जब मैं पूजापाठ करके दूकानपर आया। पर जब दारोगाजी थानेमें ले जाकर मेरी सासत करने लगे तब मुझपर जैसे कोई जादू हो गया। उनकी एक एक बात दोहराने लगा। जब मैं अदालतमें बयान दे रहा था तब सरमके मारे मेरी आंखें ऊपर न उठती थीं। मेरे जैसा कुकर्मी संसारमें न होगा। जिन आदमियोंके साथ रात दिनका रहना सहना, उठना बैठना था, जो दुःख दर्दमें मेरे शरीक होते थे उन्हींकी गर्दनपर मैंने छुरी चलायी। तब कादिरने मेरा बयान सुनकर कहा—बिसेसर, भगवानसे डरो—उस घड़ी मेरा ऐसा जी चाहता था कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊं। मन होता था कि साफ साफ कह दूं यह सब सिखायी पढ़ायी बातें हैं, पर दारोगाजीकी ओर ज्यों ही आंख उठती थी मेरा

हियाव छूट जाता था। जिस दिन मनोहरने अपने गलेमें फांसी लगायी है उस दिनसे मेरी नींद हराम हो गयी। रातको सोते सोते चौंक पड़ता हूं जैसे मनोहर सिरहाने खड़ा हो। सांझ होते ही घरके केवाड़ बन्द कर लेता हूं। बाहर निकलता हूं तो जान पड़ता है मनोहर सामने आ रहा है। घरवाली उसी दिनसे बीमार पड़ी हुई है। घरकी तो यह दुर्दशा है, उधर गांवमें अंधेर मचा हुआ है। सबके बाल बच्चे भूखों मर रहे हैं। फैजू और कर्तार नित नये तूफान रचते रहते हैं। भगवान सुक्खू चौधरीका भला करे, उनके हृदयमें दया आयी, दो सालकी माल-गुजारी अदा कर दी, नहीं तो अबतक सारा गांव बेदखल हो गया होता। इसपर फैजू जल जल रहता है। जब सुक्खू आ जाते हैं तो भीगी बिल्ली बन जाता है, लेकिन ज्योंही वह चले जाते हैं फिर वही उपद्रव करने लगता है। इन गरीबोंका कष्ट अब मुझसे नहीं देखा जाता। जिसे चाहता है मारता है, डांड़ लेता है। एक दिन कादिरमियांके घरमें आग लगवा दी। और तो और, अब गांवकी बहू-बेटियोंकी इज्जत हुरमत नहीं बचती दिखायी देती। मनोहरके घर सास बहूमें राड़ मची हुई है, दोनों अलग अलग रहती हैं। परसों रातको बात है फैजू और कर्तार दोनों बहूके घरमें घुस गये। बस बेचारीने चिल्लाना शुरू किया। सास पहुंच गयी, और लोग भी पहुंच गये। दोनों निकलकर भागे, सवेरा होते ही इसकी कसर निकली। कर्तारने मनोहरकी दुलहिनको इतना मारा कि बेचारी पड़ी हल्दी पी रही है। यह सब पाप मेरे सिवा और किसके सिर पड़ता होगा? मैं ही इस सारी विपदलीलाकी जड़ हूं। भगवान मेरी न जाने क्या दुर्गत करेंगे। काहे भैया, क्या अब कुछ नहीं हो सकता? सुनते हैं तुम अपील करनेवाले हो, तो जल्दी कर क्यों नहीं देते? ऐसा न हो मियाद गुजर जाय। तुम मुझे तलब करा देना। मुझपर दरोग-हलफीका इलजाम आयगा तो क्या? पर मैं अबकी सब कुछ

सच सच कह दूंगा। यही न होगा मेरी सजा हो जायगी, गांवका तो भला हो जायगा! मैं हजार पांच सौसे मदद भी कर सकता हूं।

प्रेमशङ्कर—हाईकोर्टमें तो मिसल देखकर फैसला होता है, किसीके बयान नहीं लिये जाते।

बिसेशर—भैया कुछ देने लेनेसे काम चले तो दे दो, हजार पांच सौका मुंह मत देखो। मुझसे जो कुछ फरमाओ उसके लिये हाजिर हूं। यह बात मेरे मनमें महीनोंसे समायी हुई है, पर आपको मुंह दिखानेकी हिम्मत न पड़ती थी। आज कुछ सौदा लेने चला तो चौपालके सामने फैजू मिल गये। कहने लगे—जाते हो तो यह रुपये लेते जाओ, मालिकोंके घर भेजवा देना। मैंने रुपये ले लिये और डेवढ़ीपर जाकर छोटी बहूके पास रुपये भेज दिये। जब चलने लगा तब बड़ी बहूने दीवानखानेमें मुझे बुलाया। उनको देखकर ऐसा जान पड़ा मानों साक्षात् देवीके दरसन हो गये। उन्होंने मुझे ऐसा ऐसा उपदेश दिया कि आपसे क्या कहूं। मेरी आंखें खुल गयीं। मनमें ठानकर चला कि आपसे अपील दायर करनेको कहूं, जिसमें मेरा भी उद्धार हो जाय। लेकिन दो तीन बार आ आकर लौट गया। आपको मुंह दिखाते लाज आती थी। सूरज डूबनेके वक्त फिर आया, पर वहीं फाटकके पास दुविधामें खड़ा सोच रहा था कि क्या करूं। इतनेमें आपके आदमियोंने देख लिया और आपकी सरनमें ले आये। मुझ जैसे झूठे दगाबाज आदमीका इतबार हो क्या? पर अब मैं सौगंद खाके कहता हूं कि फिर जो मेरा बयान लिया जायगा, तो मैं एक एक बात खोलकर कह दूंगा, चाहे उल्टी पड़े या सीधी। आप जरूरसे जरूर अपील कीजिये।

प्रेमशङ्कर बिसेसर साहको महा नीच, कपटी, अधम मनुष्य समझते थे। उनके विचारमें वह मनुष्य कहलानेके योग्य भी न था। लेकिन उसकी इन ग्लानिसूचक बातोंने उसे पिशाचश्रेणीसे

उठाकर देवासनपर बैठा दिया। भगवन्! जिसे मैं इतना दुरात्मा समझता था, उसके हृदयमें आत्मग्लानिका यह पवित्र भाव! यह आत्मोत्कर्ष, यह ईश्वरभीरुता, यह सदोद्गार! मैं कितने भ्रममें पड़ा हुआ था। दुनियाको लोग अनायास ही बदनाम करते हैं, मैंने तो हरएक बुरेको अच्छा ही पाया। इसे अपने सौभाग्यके सिवा और क्या कहूं! ईश्वर! मुझे इस अविश्वासके लिये क्षमा करना। यह सोचकर उनकी आंखोंमें आसू भर आये। बोले—साहजी, तुम्हारी बातें सुनकर मुझे वही आनन्द हुआ, जो किसी सच्चे साधुके उपदेशसे होता। मैं बहुत जल्द अपील करनेवाला हूं। अड़चन यही है कि गवाहोंके बयान कैसे बदले जायं। संभव है हाईकोर्ट मुकदमेपर नजरसानी करनेकी आज्ञा दे दे और फिर इसी अदालतमें मामला पेश हो, लेकिन बयान बदलनेसे तुम और डाक्टर प्रियनाथ दोनों ही फंस जाओगे। प्रियनाथने तो अपने बचावकी युक्ति सोच ली है, लेकिन तुम्हारा बचाव कठिन है। इसे अच्छी तरह सोच लो।

बिशेशर—खूब सोच लिया है।

प्रेमशङ्कर—तो ईश्वरने चाहा तो तुम बच भी जाओगे। मैं कल वकीलोंसे इस विषयमें सलाह लूंगा।

यह कहकर वह बिशेशरके खानेपीनेका प्रबन्ध करने चले गये।

४७

ज्ञानशङ्कर लखनऊसे सीधे बनारस पहुंचे, किन्तु उदास और खिन्न रहते, न हवा खाने जाते न किसीसे मिलते जुलते। उनकी दशा इस समय उस पक्षी-सी थी जिसके दोनों पंख कट गये हों, या उस स्त्रीकी-सी जो किसी दैवी प्रकोपसे पतिपुत्र-विहीन हो गयी हो। उनके जीवनकी सारी आकांक्षायें मिट्टीमें मिलती हुई जान पड़ती थीं। अभी एक सप्ताह पहले उनकी आशा-लता सुखद समीरणसे लहरा रही थी। उस स्थानपर अब

केवल झुलसी हुई पत्तियोंका एक ढेर था। उन्हें पूरा विश्वास था, कि रायसाहबने सारा वृत्तान्त गायत्रीको लिख दिया होगा। पूरीके लिये लपके थे, आधी भी हाथसे गयी। उन्हें सबसे विषम वेदना यह थी कि मेरे मनोभावोंकी कलई खुल गयी। अगर धैर्य्यका कोई आधार था तो यही दार्शनिक विचार था, जब कि इन अवस्थाओंमें मेरे लिये अपने लक्षपर पहुंचनेके लिये और कोई मार्ग न था। उन्हें अपने कृत्योंपर लेशमात्र भी ग्लानि या लज्जा न थी, बस, यही खेद था कि मेरे सारे षड्यन्त्र निष्फल हो गये।

लखनऊसे उन्होंने गायत्रीको कई पत्र लिखे थे, पर बनारससे उसे पत्र लिखनेकी हिम्मत न पड़ती थी। उसके पाससे आयी हुई चिट्ठियोंको भी वह बहुत डरते डरते खोलते थे। समाचार-पत्रोंको खोलते हुए उनके हाथ कांपने लगते थे। विद्याके पत्र रोज आते थे। उन्हें पढ़ना ज्ञानशंकरके लिये अपनी भाग्य-रेखा पढ़नेसे कम रोमांचकारी न था। वह एक-एक वाक्यको इस तरह डर-डरकर पढ़ते, मानो किसी अंधेरी गुफामें कदम रखते हों, भय लगा रहता था कि कहीं उस दुर्घटनाका जिक्र न आ जाय। बहुधा साधारण वाक्योंपर विचार करने लगते कि कहीं इसमें कोई गूढ़ाशय, कोई रहस्य, कोई उक्ति तो नहीं है। दसवें दिन गायत्रीके यहांसे एक बहुत लम्बा पत्र आया। ज्ञानशंकरने उसे हाथमें लिया तो उनकी छाती बल्लियों उछलने लगी, बड़ी मुश्किलसे पत्र खोला और जैसे हम कड़वी दवाको एक ही घोंटमें पी जाते हैं, उन्होंने एक ही सरसरी निगाहमें सारा पत्र पढ़ लिया, चित्त शान्त हुआ। रायसाहबकी कोई चर्चा न थी। तब उन्होंने निश्चिन्त होकर पत्रको दोबारा पढ़ा। गायत्रीने उनके पत्र न भेजनेपर मर्मस्पर्शी शब्दोंमें अपनी विकलता प्रकट की थी, और उन्हें शीघ्र ही गोरखपूर आनेके लिये बड़े विनीत भावसे आग्रह किया था। ज्ञानशंकरने सावधान होकर सांस ली।

गायत्रीने अपने चित्तकी दशाको छिपानेका बहुत प्रयत्न किया था, पर उसका एक एक शब्द ज्ञानशंकरकी मरणासन्न आशाओं-के लिये सुधाके तुल्य था। आशा बंधी, सन्तोष हुआ कि अभी बात नहीं बिगड़ी, मैं अब भी जरूरत पड़नेपर शायद उसकी दृष्टिमें निर्दोष बन सकूं, शायद रायसाहबके लांछनोंको मिथ्या सिद्ध कर सकूं, शायद सत्यको असत्य कर सकूं। सम्भव है, मेरे सजल नेत्र अब भी मेरी निर्दोषिताका विश्वास दिला सकें। इसी आवेश-में उन्होंने गायत्रीको पत्र लिखा, जिसका अधिकांश विरहव्यथामें भेंट करनेके बाद उन्होंने रायसाहबके मिथ्याक्षेपकी ओर भी संकेत किया। उनके अन्तिम शब्द ये थे—आप मेरे स्वभाव और मेरे मनोविचारोंसे भली भांति परिचित हैं। मुझे अगर जीवनमें कोई अभिलाषा है तो यह है कि मुरलीकी धुनि सुनते हुए इस असार संसारसे प्रस्थान कर जाऊं। मरने लगूं तो उसी मुरलीवालेकी सूरत आंखोंके सामने हो, और यह सिर राधाकी गोदमें हो। इसके अतिरिक्त मुझे और कोई इच्छा, और कोई लालसा नहीं है। राधिकाकी एक तिर्छी चितवन, एक मृदुल मुस्कान, एक मीठी चुटकी, एक अनोखी छटापर मैं समस्त संसारकी सम्पदाको न्यौछावर कर सकता हूं। पर जबतक संसारमें हूं, संसारकी कालिमासे क्योंकर बच सकता हूं ? मैंने रायसाहबसे सङ्गीत-परिषद्के विषयमें कुछ स्पष्ट भाषण किया था, उसका फल यह हुआ कि अब वे मेरी जानके दुश्मन हो गये हैं। आपसे अपनी विपत्ति-कथा क्या कहूं, आपको सुनकर दुःख होगा। उन्होंने मुझे मारनेके लिये पेस्तौल हाथमें ले लिया था। अगर भाग न जाता तो यह पत्र लिखनेके लिये जीवित न रहता। मुझे हुक्म हुआ है कि अब फिर उन्हें मुंह न दिखलाऊं। इतना ही नहीं, मुझे आपसे भी पृथक् रहनेकी आज्ञा मिली है, इस आज्ञाको भङ्ग करनेका ऐसा कठोर दण्ड निर्वाचित किया गया है कि उसका उल्लेख करके मैं आपके कोमल हृदयको दुखाना नहीं

चाहता। मेरे मौन व्रतका यही कारण है। सम्भव है, आपके पास भी इस आशयका कोई पत्र पहुंचा हो और आपको भी मुझे दूधकी मक्खी समझनेका उपदेश किया गया हो। ऐसी दशामें आप जो उचित समझें वह करें। पिताकी आज्ञाके सामने सिर झुकाना आपका कर्त्तव्य है। उसका आप पालन करें। मैं आपसे दूर रहकर भी आपके निकट हूं, संसारकी कोई शक्ति मुझे आपसे अलग नहीं कर सकती। आध्यात्मिक बंधनको कौन तोड़ सकता है? यह कृष्णका प्रेमी निरन्तर राधाकी यादमें मग्न रहेगा। आपसे केवल यही भिक्षा मांगता हूं कि मेरी ओरसे मनमुटाव न करें और अपने उदार हृदयके एक कोनेमें मेरी स्मृति बनाये रक्खें।

ज्ञानशङ्करके चले जानेके बाद गायत्रीको एक एक क्षण काटना दुस्तर हो गया था। उसे अब ज्ञान हुआ कि मैं कितने गहरे पानीमें आ गयी हूं। जबतक ज्ञानशङ्करके हाथोंका सहारा था उस गहराईका अन्दाज न होता था। उस सहारेके छूटते ही उसके पैर फिसलने लगे, वह सम्भालना चाहती थी, पर तरङ्गोंका वेग सम्भलने न देता था। अबकी ज्ञानशङ्कर पूरे सालभरके बाद गोरखपूरसे निकले थे। वह नित्य उन्हें देखती थी, नित्य उनसे बातें करती थी और यद्यपि यह अवसर दिनमें एक या दो बारसे अधिक न मिलता था, पर उन्हें अपने समीप देखकर उसका हृदय सन्तुष्ट रहता था। अब पिंजरेको खाली देखकर उसे पक्षीकी बार बार याद आती थी। वह सरल और गौरवशील थी, लेकिन उसके हृदयस्थलमें प्रेमका एक उबलता हुआ सोता छिपा हुआ था। वह अबतक अभिमानके मोटे कम्बलसे दबा हुआ प्रवाहका कोई मार्ग न पाकर एक सुषुप्तावस्थामें पड़ा हुआ था। यही सुषुप्ति उसका सतीत्व थी। पर अब भक्ति और अनुरागने उस अभिमानके कम्बलको हटा दिया था और उबलता हुआ सोता प्रबल वेगसे द्रवित हो रहा था। वह आत्मविस्मृतिकी दशामें मग्न हो गयी

थी। वह अचेत-सी हो गयी थी। उसे लेशमात्र भी अनुमान न होता था कि यह भक्ति मुझे वासनाकी ओर खींचे लिये जाती है। वह इस प्रेमके नशामें कितनी ही ऐसी बातें करती थी और कितनी ही ऐसी बातें सुनती थी, जिन्हें सुनकर वह पहले कानोंपर हाथ रख लेती, जो पहले मनमें आतीं तो वह आत्मघात कर लेती। परन्तु अब वह गोपिका थी, वह सद्‌नुरागकी साक्षात् प्रतिमा थी। इस आध्यात्मिक उद्‌गारमें वासनाका लगाव कहां ? ऐन्द्रिक तृष्णाओं-का मिश्रण कहां ? कृष्णका नाम, कृष्णकी भक्ति, कृष्णकी रटने उसके हृदय और आत्माको पवित्र प्रेमसे परिपूरित कर दिया था। गायत्री जब ज्ञानशङ्करकी ओर चञ्चल चितवनोंसे ताकती, या उनके सतृष्ण लोचनोंको अपने मृदुल मुसक्यानसुधासे प्लावित करती तो वह अपनेको गोपिका समझती, जो कृष्णसे ठठोली या रहस्य कर रही हो। उसको इस चितवन और इस मुसक्यानमें सच्चा प्रेमानुराग झलकता था। ज्ञानशङ्कर जब उसे प्रेमोन्मत्त नेत्रोंसे देखते या उसकी निष्ठुरता और अकृपाकी गिला करते तो उसे इसमें भी उन्हीं पवित्र भावोंकी झलक दिखायी देती थी। इस प्रेमरहस्य और आमोद-विनोदका चसका दिनोंदिन बढ़ता जाता था। उन प्रेमकल्पनाओंके बिना चित्त उचटा रहता था। गायत्री इसी विकलताकी दशामें कभी ज्ञानशङ्करके दीवानखानेकी ओर जाती, कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी बागमें; पर कहीं जी न लगता। वह गोपिकाओंकी विरहव्यथाकी अपने वियोगदुःखसे तुलना करती, सूरदासके उन पदोंको गाती, जिनमें गोपिकाओंका विरह वर्णन किया गया है। उसके बागमें एक कदमका पेड़ था। उसकी छांहमें हरी घासपर लेटी हुई वह कभी गाती, कभी रोती, कभी कभी उद्विग्न होकर टहलने लगती। कभी सोचती लखनऊ चलूं, कभी ज्ञानशङ्करको तार देकर बुलानेका इरादा करती, कभी निश्चय करती अब उन्हें कभी बाहर न जाने दूंगी, उनकी सूरत उसकी आंखोंमें फिरा करती, उनकी बातें कानोंमें गूंजा करतीं,

कितना मनोहर स्वरूप है, कितनी रसीली बातें, साक्षात् कृष्ण-रूप हैं! उसे आश्चर्य्य होता कि मैंने उन्हें अकेले क्यों जाने दिया, क्या मैं उनके साथ न जा सकती थी। वह ज्ञानशङ्करको पत्र लिखती तो उनकी निर्दयता और हृदयशून्यताका खूब रोना रोती उनके पत्र आते तो बार बार पढ़ती। प्रेमकथनमें अब सङ्कोच या लज्जा उसकी बाधक न होती थी। गोपियोंकी विरहकथामें उसे आजकल एक करुण, वेदनामय आनन्द मिलता था। प्रेमसागर-की दो-चार चौपाइयां भी न पढ़ने पाती कि आंखोंसे आंसूकी झड़ी लग जाती।

लेकिन जब ज्ञानशङ्कर बनारस चले गये और उनकी चिट्ठियों-का आना बिलकुल बन्द हो गया तब गायत्रीको ऐसा अनुभव होने लगा, मानों मैं इस संसारमें हूं ही नहीं, यह कोई दूसरा निर्जन, नीरव अचेतन संसार है। उसे ज्ञानशङ्करके बनारस आनेका समाचार ज्ञात न था। वह लखनऊके पतेसे नित्यप्रति पत्र भेजती रही, लेकिन जब लगातार कई पत्रोंका जवाब न आया तब उसे अपने ऊपर झुंझलाहट होने लगी। वह गोपियोंकी भांति अपना ही तिरस्कार करती कि मैं क्यों ऐसे निर्दयी, निष्ठुर, कठोर, मनुष्यके पीछे अपनी जान खपा रही हूं! क्या उनकी तरह मैं भी निठुर नहीं बन सकती? क्या वह मुझे भूल सकते हैं तो मैं उन्हें नहीं भूल सकती? किन्तु एक ही क्षणमें उसका यह मान लुप्त हो जाता और वह फिर खोयी हुई सी इधर उधर फिरने लगती।

किन्तु जब दसवें दिन ज्ञानशङ्करका विवशतासूचक पत्र पहुंचा तो उसे पढ़ते ही गायत्रीका वत्सल हृदय अधीर हो उठा। वह उग्र विवशकारी आवेशके साथ उनकी ओर लपकी। यह उसकी प्रीतिकी पहली परीक्षा थी। अबतक उसका प्रेममार्ग काटोंसे साफ था। यह पहला कांटा था जो उसके पैरमें चुभा। क्या यह पहली ही बाधा मुझे प्रेममार्गसे विचलित कर देगी? मेरे ही कारण तो ज्ञानशङ्करपर मुसीबतें आयी हैं। मैं ही तो उनकी इन

विडम्बनाओंकी जड़ हूं। पिताजी उनसे नाराज हैं तो हुआ करें मुझे इसकी चिन्ता नहीं, मैं क्यों प्रेमनीतिसे मुंह मोड़ूं? प्रेमका संबंध केवल दो हृदयोंसे है, किसी तीसरे प्राणीको उसमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं! आखिर पिताजीने उन्हें क्यों मुझसे पृथक् रहनेका आदेश किया? वे मुझे क्या समझते हैं? उनका सारा जीवन भोगविलासमें गुजरा है। वह प्रेमके गूढ़ाशय क्या जानें? उन्हें इस पवित्र मनोवृत्तिका क्या ज्ञान? परमात्माने उन्हें ज्ञान-ज्योति प्रदान की होती तो वह ज्ञानशङ्करके आत्मोत्कर्षको जानते, उनकी आत्माका महत्व पहचानते। तब उन्हें विदित होता कि मैंने ऐसी पुनीतात्मापर दोषारोपण करके कितना घोर अन्याय किया है। पिताकी आज्ञा मानना मेरा धर्म अवश्य है, किन्तु प्रेम-के सामने पिताकी आज्ञाकी क्या हस्ती है! यह ताप अनादि ज्योतिकी एक आभा है, यह दाह अनन्त शान्तिका एक मंत्र है। इस तापको कौन मिटा सकता है?

दूसरे दिन गायत्रीने ज्ञानशङ्करको तार दिया, "मैं आ रही हूं" और शामकी गाड़ीसे मायाशङ्करको साथ लेकर बनारस चली।

४८

ज्ञानशङ्करको बनारस आये दो सप्ताहसे अधिक बीत चुके थे। संगीत-परिषद् समाप्त हो चुकी थी और अभी सामयिक पत्रोंमें उसपर वादविवाद हो रहा था। यद्यपि अस्वस्थ होनेके कारण रायसाहब उसमें उत्साहके साथ भाग न ले सके थे, पर उनके प्रबन्ध-कौशलने परिषद्की सफलतामें कोई बाधा न होने दी। सन्ध्या हो गयी थी। विद्यावती अन्दर बैठी हुई एक पुराना शाल रफू कर रही थी। रायसाहबने उसके सैर करनेके लिए एक बहुत अच्छी सेजगाड़ी दे दी थी और कोचवानको ताकीद की थी कि जब विद्याका हुक्म मिले तुरन्त सवारी तैयार करके उसके पास ले जाये, लेकिन इतने दिनोंमें विद्या एक दिन भी कहीं सैर करने न गयी। उसका मन घरके धन्धोंमें अधिक

लगाता था। उसे न थियेटरका शौक था, न सैर करनेका, न गाने बजानेका। इनकी अपेक्षा उसे भोजन बनाने या सीने पिरोनेमें ज्यादा आनन्द मिलता था। इस एकान्त सेवनके कारण उसका मुखकमल मुर्झाया-सा रहता था। बहुधा शिरः पीड़ामें ग्रसित रहती थी। वह परम सुन्दरी, कोमलांगी रमणी थी; पर उसमें अभिमानका लेश भी न था। उसे मांग, चोटी, आईने कंघीसे अरुचि थी। उसे आश्चर्य्य होता था कि गायत्री क्योंकर अपना अधिकांश समय बनाव-संवारमें व्यतीत किया करती हैं। कमरेमें अन्धेरा हो रहा था, पर वह अपने काममें इतनी रत थी कि उसे बिजलीके बटन दबानेका भी ध्यान न था। इतनेमें रायसाहब उसके द्वारपर आकर खड़े हो गये और बोले—ईश्वरसे बड़ी भूल हो गयी कि उसने तुम्हें दर्जिन न बना दिया। अन्धेरा हो गया, आंखोंसे सूझता नहीं, लेकिन तुम्हें अपने सूईतागेसे छुट्टी नहीं।

विद्याने शाल समेट दिया और लज्जित होकर बोली—थोड़ा सा बाक़ी रह गया था, मैंने सोचा, इसे पूरा कर लूं तो उठूं।

रायसाहब पलंगपर बैठ गये और कुछ कहना चाहते थे कि जोरसे खांसी आयी और थोड़ा-सा खून मुंहसे निकल पड़ा, आंखें निस्तेज हो गयीं और हृदयमें विषम पीड़ा होने लगी। मुखाकार विकृत हो गया। विद्याने घबराकर पूछा—पानी लाऊं? यह मरज तो आपको न था। किसी डाक्टरको बुला भेजूं?

रायसाहब—नहीं, कोई जरूरत नहीं, अभी अच्छा हो जाऊंगा। यह सब मेरे सुयोग्य विद्वान और सर्वगुणसम्पन्न पुत्र बाबू ज्ञानशङ्करकी कृपाका फल है।

विद्याने प्रश्नसूचक विस्मयसे रायसाहबकी ओर देखा और कातरभावसे जमीनकी ओर ताकने लगी। रायसाहब संभलकर बैठ गये और एक बार पीड़ासे कराहकर बोले—जी तो नहीं

चाहता कि मुझपर जो कुछ बीती है वह मेरे और ज्ञानशङ्करके सिवाय किसी दूसरे व्यक्तिके कानोंतक पहुंचे किन्तु तुमसे परदा रखना अनुचित ही नहीं, अक्षम्य है। तुम्हें सुनकर दुःख होगा, लेकिन सम्भव है इस समयका शोक और खेद तुम्हें आनेवाली मुसीबतोंसे बचाये, जिनका सामान प्रारब्धके हाथों हो रहा है। शायद तुम अपनी चतुराईसे उन विपत्तियोंका निवारण कर सको।

विद्याके चित्तमें भांति भांतिकी शंकायें आन्दोलित होने लगीं। वह एक पक्षीकी भांति डालियों डालियों उड़ने लगा। मायाशङ्करका ध्यान आया, कहीं वह बीमार तो नहीं हो गया! ज्ञानशङ्कर तो किसी बलामें नहीं फंस गये! उसने सशङ्क और सजल लोचनोंसे रायसाहबकी तरफ देखा।

रायसाहब बोले—मैं आजतक ज्ञानशङ्करको एक धर्मपरायण, सच्चरित्र और सत्यनिष्ठ युवक समझता था। मैं उनकी योग्यतापर गर्व करता था और अपने मित्रोंसे उनकी प्रशंसा करते कभी न थकता था। पर अबकी मुझे ज्ञात हुआ कि देवताके स्वरूपमें भी पिचाशका वास हो सकता है।

विद्याकी तिउरियोंपर बल पड़ गये। उसने कठोर दृष्टिसे रायसाहबको देखा, पर मुंहसे कुछ न बोली। ऐसा जान पड़ता था कि वह इन बातोंको नहीं सुनना चाहती।

रायसाहबने उठकर बिजलीका बटन दबाया, और प्रकाशमें विद्याकी अनिच्छा स्पष्ट दिखायी दी। पर उन्होंने इसकी कुछ परवा न करके कहा—यह मेरा बहत्तरवां साल है, हजारों आदमियोंसे मेरा व्यवहार रहा, किन्तु मेरे चरित्रज्ञानने मुझे कभी धोखा नहीं दिया। इतना बड़ा धोखा खानेका मुझे जीवनमें यह पहला ही अवसर है। मैंने ऐसा स्वार्थी आदमी कभी नहीं देखा।

विद्या अधीर हो गयी, पर मुंहसे कुछ न बोली। उसकी

समझहीमें न आता था कि रायसाहब यह क्या भूमिका बांध रहे हैं, क्यों ऐसे अपशब्दोंका प्रयोग कर रहे हैं।

रायसाहब—मेरा इस मनुष्यके चरित्रपर अटल विश्वास था, मेरी ही प्रेरणासे गायत्रीने इसे अपनी रियासतका मैनेजर बनाया। मैं जरा भी सचेत होता तो गायत्रीपर इसकी छाया भी न पड़ने देता। ज्ञान और व्यवहारमें इतना घोर विरोध हो सकता है, इसका मुझे गुमान भी न था। जिसकी कलममें इतनी प्रतिभा हो, जिसके मुखसे स्वच्छ, निर्मल भावोंकी धार बहती हो, उसका अन्तःकरण ऐसा कलुषित, इतना मलिन होगा; यह मैं बिलकुल न जानता था। विद्यासे अब न रहा गया। यद्यपि वह ज्ञानशङ्करकी स्वार्थभक्तिसे भलीभांति परिचित थी, जिसका प्रमाण उसे कई बार मिल चुका था, पर उसका आत्मसम्मान उनका अपमान न सह सकता था। उनकी निन्दाका एक शब्द भी अपने कानोंसे न सुनना चाहती थी। उसकी धर्मनीतिमें यह घोर पातक था। तीव्र स्वरसे बोली—आप मेरे सामने उनकी बुराई न कीजिये। यह कहते कहते उसका गला बंध गया और वह भाव जो व्यक्त न हो सके थे आंखोंसे बह निकले।

रायसाहबने संकोचपूर्ण शब्दोंमें कहा—बुराई नहीं करता, यथार्थ कहता हूं। मुझे अब मालूम हुआ कि उसने महात्माओंका स्वरूप क्यों बनाया है, और धार्मिक कार्योंमें क्यों इतना प्रवृत्त हो गया है। मैंने उसके मुंहसे सब कुछ निकलवा लिया। यह रंगीन जाल उसने भोली भाली गायत्रीके लिये बिछाया है और वह कदाचित् इसमें फंस भी चुकी है।

विद्याकी भौंहें तन गयीं, मुखराशि रक्तवर्ण हो गयी, गौरवयुक्त भावसे बोली—पिताजी, मैंने सदैव आपका अदब किया है और आपकी अवज्ञा करते हुए मुझे जितना दुःख हो रहा है वह वर्णन नहीं कर सकती, पर यह असंभव है कि मैं उनके विषयमें

यह लांछन अपने कानोंसे सुनूं। मुझे उनकी सेवामें आज १७ वर्ष बीत गये, पर मैंने उन्हें कभी कुवासनाओंकी ओर झुकते नहीं देखा। जो पुरुष अपने यौवन-कालमें भी संयमसे रहा हो उसके प्रति ऐसे अनुचित सन्देह करके आप उसीके साथ नहीं, गायत्री बहिनके साथ भी घोर अत्याचार कर रहे हैं। इससे आप-की आत्माको पाप लगता है।

रायसाहब—तुम मेरी आत्माकी चिन्ता मत करो, उस दुष्ट-को समझाओ, नहीं तो उसकी कुशल नहीं है। मैं गायत्रीको उसकी कामचेष्टाका शिकार न बनने दूंगा। मैं तुमको वैधव्य रूपमें देख सकता हूं, पर अपने कुलगौरवको यों मिट्टीमें मिलते नहीं देख सकता। मैंने चलते चलते उससे ताकीद कर दी थी कि गायत्रीसे कोई सरोकार न रक्खे, लेकिन गायत्रीके पत्र नित्य-प्रति चले आ रहे हैं, जिससे विदित होता है कि वह उसके फंदों-में कैसी जकड़ी हुई है। यदि तुम उसे बचा सकती हो तो बचाओ, अन्यथा यही हाथ जिन्होंने एक दिन उसके पैरोंपर फूल और हार चढ़ाये थे उसे कुलगौरवकी वेदीपर बलिदान कर देंगे।

विद्या रोती हुई बोली—आप मुझे अपने घर बुलाकर इतना अपमान कर रहे हैं, यह आपको शोभा नहीं देता। आपका हृदय इतना कठोर हो गया है! जब आपके मनमें ऐसे ऐसे भाव उठ रहे हैं तब मैं यहां एक क्षण भी नहीं रहना चाहती। मैं जिस पुरुष-की स्त्री हूं उसपर सन्देह करके अपना परलोक नहीं बिगाड़ सकती। वह आपके कथनानुसार कुचरित्र सही, दुरात्मा सही, कुमार्गी सही, परन्तु मेरे लिये पूज्य और देवतुल्य हैं। यदि मैं जानती कि आप मेरा इतना अपमान करेंगे तो भूलकर भी न आती। अगर आपका विचार है कि मैं रियासतके लोभसे यहां आती हूं और आपको फन्देमें फंसाना चाहती हूं तो आप बड़ी भूल करते हैं। मुझे रियासतकी जरा भी परवा नहीं। मैं

ईश्वरको साक्षी देकर कहती हूं कि मैं अपनी स्थितिसे संतुष्ट हूं और मुझे पूरा विश्वास है कि मायाशङ्कर भी संतोषी बालक है। उसे आपके चित्तकी यह वृत्ति मालूम हो गयी तो वह इस रियासतकी ओर आंख उठाकर भी न देखेगा। आपको इस विषयमें आदिसे अन्ततक धोखा हुआ है। इस तिरस्कारसे राय-साहब कुछ धीमे पड़ गये। लज्जित होकर बोले,—हां, सम्भव है, इसलिये कि अब मैं बूढा हुआ, कुछका कुछ देखता हूं, कुछका कुछ सुनता हूं, अधिक लोभी, अधिक शक्की हो गया हूं। मैं नहीं चाहता था कि तुम्हारी आंखोंमें तुम्हारे पतिको उससे ज्यादा गिराऊं जितना कि उसकी प्राणरक्षाके लिये आवश्यक है, पर तुम्हारी मिथ्या पतिभक्ति मुझे मजबूर कर रही है कि उसके कुकृत्योंको सविस्तर बयान करूं। तुमने मुझे पहले भी देखा था, क्या मेरी यही दशा थी? मैं ऐसा ही दुर्बल, क्षीण और जर्जर था? क्या इसी तरह मुझे एक पग चलना भी कठिन था? मैं इसी तरह रुधिर थूकता था? यह सब उसीका किया हुआ है। उसने मुझे भोजनके साथ इतना विष खिला दिया कि यदि उसे २० आदमी खाते तो एककी भी जान न बचती। यह केवल भ्रम नहीं है। मैं उसका सदेह प्रमाण बना बैठा हूं। उसने स्वयं इस पापाचारको स्वीकार किया। पहला ग्रास खाते ही मुझपर सारा रहस्य खुल गया। पर मैंने केवल यह दिखानेके लिये कि मुझे मारना इतना सुलभ नहीं है जितना उसने समझा था, पूरी थाली साफ कर दी। मुझे विश्वास था कि मैं योगक्रियाओं द्वारा विषको शरीरसे निकाल डालूंगा। पर क्षणमात्रमें विष रोम रोममें घुस गया, मैं उसे निकाल न सका। मैंने अपनी स्वास्थ्यरक्षा और दीर्घजीवनके लिये वह सब कुछ किया जो मनुष्य कर सकता है और जिसका यह फल था कि मैं बहत्तर सालका बुड्ढा होकर एक पच्चीस वर्षके युवकसे अधिक बलवान और साहसी था। मैं अपने जीवनको चरम सीमातक

ले जाना चाहता था। इसके लिये मैंने कितना संयम किया, कितनी योगक्रियायें कीं, साधु-सन्तोंकी कितनी सेवा की, जड़ी बूटियोंकी खोजमें कहां कहां मारा-मारा फिरा, तिब्बत और काश्मीरकी खाक छानता फिरा,पर इस नराधमने मेरी सारी आयोजनाओंपर पानी फेर दिया। मैंने अपनी सारी सम्पत्ति कार्यसिद्धिपर अर्पण कर दी थी। योग और तन्त्रका अभ्यास इसी हेतुसे किया था कि अक्षय यौवनतेजका आनन्द उठाता रहूं। विलास-भोग ही मेरे जीवनका एकमात्र उद्देश्य था। चिन्ताको मैं सदैव काला नाग समझता रहा, मेरे नौकर चाकर प्रजापर नाना प्रकारके अत्याचार करते थे, पर मैंने उनकी फरियादको कभी अपने सुखभोगमें बाधक नहीं होने दिया। अगर कभी अपने इलाकेमें जाता भी था तो प्रजाका कष्ट निवारण करनेके लिये नहीं, बल्कि केवल सैर और शिकारके लिये। किन्तु इस निर्दयी पिशाचकी बदौलत सारे गुनाह बेलज्जत हो गये। अब मैं केवल एक अस्थिपंजर हूं, प्राणशून्य, शक्तिहीन।

यह कहते कहते रायसाहब विषम पीड़ासे कराह उठे। जोरसे खांसी आयी और खूनके लोथड़े मुंहसे निकल आये। कई मिनटतक वह मूर्च्छावस्थामें पड़े रहे, सहसा लपककर उठे और बोले तुम कल प्रातःकाल बनारस चली जाओ और हो सके तो अपने पतिको अग्निकुण्डमें गिरनेसे बचाओ। तुम्हारी पतिभक्तिने मुझे शान्त कर दिया। मैं उसे प्राण दान देता हूं। लेकिन सरल-हृदया गायत्रीकी रक्षाका भार तुम्हारे ही ऊपर है। अगर उसके सतीत्वपर जरा भी धब्बा लगा तो तुम्हारे कुलका सर्वनाश हो जायगा। यही मेरी अन्तिम चेतावनी है। इस शापका निवारण गायत्रीकी सतीत्व-रक्षाहीसे होगा। तुम्हारे कल्याणकी और कोई युक्ति नहीं है।

यह कहकर रायसाहब धीरेसे उठे और चले गये। तब विद्या ग्लानि, लज्जा और नैराश्यसे मर्माहत होकर पलंगपर लेट गय

और बिलख बिलख रोने लगी। रायसाहबके पहले आक्षेपका उसने प्रतिवाद किया था, पर इस दूसरे अपराधके विषयमें वह अविश्वासका सहारा न ले सकी। अपने पतिकी स्वार्थनीतिसे वह खूब परिचित थी, पर उनकी वक्रता इतनी घोर और घातक हो सकती है, इसका उसे अनुमान भी न था। अबतक उनकी कुवृत्तियोंका परदा ढका हुआ था। जो कुछ दुःख और संताप होता था वह उसीतक रहता था, पर यहां आकर परदा खुल गया, वह अपने पिताकी निगाहमें गिर गयी, उसके मुंहमें कालिख लग गयी। रायसाहबका यह समझना स्वाभाविक था कि इस दुष्कर्ममें विद्याका भी कुछ न कुछ भाग अवश्य होगा। कदाचित् यही समझकर वह उससे यह वृत्तान्त कहने आये थे। वह सारा दोष पतिके सिर मंढकर अपनेको क्योंकर मुक्त कर सकती? इस उधेड़ बुनमें विद्याका ध्यान जब पापपरिणामकी ओर गया तो वह कांप उठी। भगवन्! मैं दुखिया हूं, अभागिनी हूं, मुझपर दया करो, तुम्हारी शरण हूं। भांति भांतिकी शङ्कायें उसके चित्तको विचलित करने लगीं। मायाशङ्करकी सूरत आंखोंमें फिरने लगी। ऐसा जी चाहता था कि पैरोंमें पर लग जायं और उड़कर उसके पास जा पहुंचूं! रह रहके हृदयमें एक हूक सी उठती थी और अनिष्ट कल्पनासे चित्त विकल हो जाता था।

एक क्षणमें इस ग्लानि और शङ्काओंने उग्र रूप धारण किया। आगकी बिखरी हुई चिन्गारियां एक प्रचण्ड ज्वालाके रूपमें ज्ञानशङ्करकी ओर लपकीं। तुम इतने नीच, इतने क्रूर, इतने दुर्बल हो! तुमने मुझे कहींका न रक्खा! तुम्हारे कारण मेरी यह दुर्दशा हो रही है और अभी न जाने और क्या क्या होगा! तुम धूर्त हो, न जाने पूर्व जन्ममें ऐसा क्या पाप किया था कि तुम्हारे पल्ले पड़ी। उसने ज्ञानशङ्करको उसी दम एक पत्र लिखनेका निश्चय किया और सोचने लगी उसकी शैली क्या हो। इसी सोचमें पड़े पड़े उसे नींद आ गयी। वह बहुत देरतक पड़ी रही। जब सर्दी

लगी तो चौंकी, कमरेमें सन्नाटा था, सारे घरमें निस्तब्धता छायी हुई थी। महरियां भी सो गयी थीं। उसके ब्यालूका थाल सामने छोटी मेजपर रक्खा हुआ था और एक पालतू बिल्ली उसके निकट उन चूहोंकी ताकमें बैठी हुई थी जो भोज्य पदार्थोंका रसास्वादन करनेके लिये, आलमारीके कोनेसे निकलकर आते थे और अज्ञात भयके कारण आधे रास्तेसे लौट जाते थे। विद्या कई मिनटतक इस दृश्यमें मग्न रही। निद्राने उसके चित्तको शान्त कर दिया था। उसे चूहेपर दया आयी जो एक क्षणमें बिल्लीके मुखका ग्रास बन जायगा। इसके साथ ही उसकी कल्पना, चूहेसे ज्ञानशङ्करकी अवस्थाकी तुलना करने लगी। क्या उनकी दशा भी इसी चूहेकी सी नहीं है? उनपर क्रोध क्यों करूं? वह दयाके योग्य हैं। वह इसी चूहेकी भांति स्वादवश होकर कालके मुंहमें दौड़े जा रहे हैं, जो माया-लोभके हाथोंमें काठकी पुतली बने हुए नाच रहे हैं। मैं जाकर उन्हें समझाऊंगी, उनसे विनय करूंगी कि मुझे ऐसी सम्पत्तिकी लालसा नहीं है, जिसपर आत्मा और विवेकका बलिदान किया गया हो। ऐसी जायदादको मेरी तिलांजलि है। मेरा लड़का गरीब रहेगा, अपने पसीनेकी कमाई खायेगा, लेकिन जबतक मेरा बस चलेगा मैं उससे इस जायदाद-की हवा भी न लगने दूंगी!

४९

गायत्री बनारस पहुंचकर ऐसी प्रसन्न हुई जैसे कोई बालूपर तड़पती हुई मछली पानीमें जा पहुंचे। ज्ञानशङ्करपर रायसाहबकी धमकियोंका ऐसा भय छाया हुआ था कि गायत्रीके आनेपर वह और भी अशक्त हो गये। लेकिन गायत्रीकी सान्त्वनाओंने शनैः शनैः उन्हें सावधान कर दिया। उसने स्पष्ट कह दिया कि मेरा प्रेम पिताकी आज्ञाके अधीन नहीं हो सकता। वह ज्ञानशंकरको अन्यायपीड़ित समझती थी और अपनी स्नेहमयी बातोंसे उनका क्लेश दूर करना चाहती थी। ज्ञानशंकर जब गायत्रीकी ओरसे

निश्चिन्त हो गये तो उसे बनारसके घाटों और मंदिरोंकी सैर कराने लगे। प्रातःकाल उसे लेकर गंगा स्नान करने जाते, संध्या समय बजरे या नौकापर बैठकर घाटोंकी बहार दिखाते। उनके द्वारपर पंडोंकी भीड लगी रहती। गायत्रीकी दानशीलताकी सारे नगरमें धूम मच गयी। एक दिन वह हिन्दूविद्यालय देखने गयी और २० हजार दे आयी। दूसरे दिन "इत्तहादी यतीमखाने" का मुआइना किया और २ हजार रुपये बिल्डिंगफंडको प्रदान किये। सनातनधर्मके नेतागण गुरुकुलाश्रमके लिये चन्दा मांगने आये। ४ हजार उनके नजर किये। एक दिन गोपालमन्दिरमें पूजा करने गयी और महन्तजीको २ हजार रुपये भेंट कर आयी। आधी राततक कीर्तनका आनन्द उठाती रही। उसका मन कीर्तनमें सम्मिलित होनेके लिये लालायित हो रहा था, पर ज्ञानशंकरको यह अनुचित जान पडता था। ऐसा कीर्तन उसने कभी न सुना था।

इसी भांति एक सप्ताह बीत गया। संध्या हो गयी थी। गायत्री बैठी हुई बनारसी साड़ियोंका निरीक्षण कर रही थी। वह उनमेंसे एक साडी लेना चाहती थी, पर रंगका निश्चय न कर सकती थी। एक एक साड़ीको सिरपर ओढ़कर आईनेमें देखती और उसे तह करके रख देती। कौन रंग सबसे अधिक खिलता है, इसका फैसला न होता था। इतनेमें श्रद्धा आकर खडी हो गयी, गायत्रीने कहा, बहिन भली आयीं, बताओ, इनमेंसे कौन साडी लूं? मुझे तो सब एक-सी लगती हैं।

श्रद्धाने मुस्कराकर कहा—मैं गंवारिन इन बातोंको क्या समझूं!

गायत्री—चलो, बातें न बनाओ। मैं इसका फैसला तुम्हारे ही ऊपर छोडती हूं। एक अपने लिये चुनो और एक मेरे लिये।

श्रद्धा—आप ले लीजिये, मुझे जरूरत नहीं है। यह फिरोजी साडी आपपर खूब खिलेगी।

गायत्री—मेरी खातिरसे एक साड़ी ले लो।

श्रद्धा—लेकर क्या करूंगी ? धरे धरे कीड़े खा जायेंगे।

श्रद्धाने यह बात कुछ ऐसे करुणभावसे कही कि गायत्रीके हृदयपर चोट-सी लग गयी। बोली—कबतक यह जोग साधोगी, बाबू प्रेमशङ्करको मना क्यों नहीं लेती ?

श्रद्धाने सजल नेत्रसे मुस्कराकर कहा - क्या करूं, मुझे मनाने नहीं आता।

श्रद्धा—इससे बड़ा और कौन उपकार होगा, पर मुझे आपके सफल होनेकी आशा नहीं है। उन्हें अपनी टेक है और मैं धर्म-शास्त्रसे टल नहीं सकती। फिर भला मेल क्योंकर होगा ?

गायत्री—प्रेमसे।

श्रद्धा–मुझे उनसे जितना प्रेम है वह प्रकट नहीं कर सकती। अगर उनका जरा भी इशारा पाऊं तो आगमें कूद पड़ूं। और मुझे विश्वास है कि उन्हें भी मुझसे इतना ही प्रेम है ; लेकिन प्रेम केवल हृदयोंको मिलता है, देहपर उसका बस नहीं है।

इतनेमें ज्ञानशङ्कर आ गये और गायत्रीसे बोले, मैं जरा गोपालमन्दिरकी तरफ चला गया था। वहां कुछ भक्तोंका विचार है कि आपके शुभागमनके उत्सवमें कृष्णलीला करें। मैंने उनसे कह दिया है कि इसी बंगलेके सामनेवाले सहनमें नाट्यशाला बनायी जाय। गायत्रीका मुखकमल खिल उठा। बोली, यह जगह काफी होगी ?

ज्ञान—हां, बहुत जगह है। उन लोगोंकी यह भी इच्छा है कि आप भी कोई पार्ट लें।

गायत्री—(मुस्कराकर) आप लेंगे तो मैं भी ले लूंगी।

ज्ञानशङ्कर दूसरे ही दिनसे रङ्गभूमिके बनवानेमें दत्तचित्त हो गये। एक विशाल मण्डप बनाया गया। कई दिनोंतक उसकी सजावट होती रही। फर्श, कुर्सियां, शीशेके सामान फूलोंके गमले, अच्छी अच्छी तस्वीरें, सभी यथास्थान शोभा देने लगीं। बाहर विज्ञापन बांटे गये। रईसोंके पास छपे हुए निमन्त्रणपत्र

भेजे गये। चार दिनतक ज्ञानशङ्करको बैठनेका भी अवकाश न मिला। एक पैर दीवानखानेमें रहता था, जहां अभिनेतागण अपने अपने पाठका अभ्यास किया करते थे, दूसरा पैर शामियानेमें रहता था, जहां सैकड़ों मजूर, बढ़ई, चित्रकार अपने अपने काम कर रहे थे। स्टेजकी छटा अनुपम थी। जिधर देखिये, हरियालीकी बहार थी। परदा उठतेही बनारस और वृन्दावनका दृश्य आंखोंके सामने आ जाता था। यमुनातटके कुंज, उनकी छायामें विश्राम करती हुई गायें, हिरनोंके झुंड, कदमकी डालियोंपर बैठे हुए मोर और पपीहे—सम्पूर्ण दृश्य काव्यरसमें डूबा हुआ था।

रातके आठ बजे थे, बिजलीकी बत्तियोंसे सारा मण्डप ज्योतिर्मय हो रहा था। सदर फाटकपर बिजलीका एक सूर्य्य बना हुआ था जिसके प्रकाशमें जमीनपर रेंगनेवाली चींटियां भी दिखाई देती थीं। सात ही बजेसे दर्शकोंका समारोह होने लगा। लाला प्रभाशङ्कर अपना काला चोगा पहने एक केसरिया पाग बांधे, मेहमानोंका स्वागत कर रहे थे। महिलाओंके लिये दूसरी ओर परदे डाल दिये गये थे। यद्यपि श्रद्धाको इन लीलाओंसे विशेष प्रेम न था, पर गायत्रीके अनुरोधसे उसने महिलाओंके आदर-सत्कारका भार अपने सिर ले लिया था। ८ बजते बजते पंडाल दर्शकोंसे यों भर गया जैसे मेलोंमें रेलगाड़ियां ठस जाती हैं। मायाशङ्करने सबके आग्रह करने पर भी कोई पार्ट न लिया था। मण्डपके द्वारपर खड़ा लोगोंके जूतोंकी रखवाली कर रहा था। इस वक्ततक शामियानेमें बाजार सा लगा हुआ था, कोई हंसता था, कोई अपने सामनेवालोंको धक्के देता था, कुछ लोग राजनैतिक प्रश्नोंपर वाद-विवाद कर रहे थे, कहीं जगहके लिये लोगोंमें हाथापाई हो रही थी। बाहर सरदीसे हाथ पांव अकड़े जाते थे, पर मण्डपमें खासी गर्मी थी।

ठीक नौ बजे परदा उठा। राधिका हाथमें वीणा लिये कदमके नीचे खडी सूरदासका एक पद गा रही थी। यद्यपि राधिकाका पार्ट उसपर फबता न था; उसकी गौरवशीलता, उसकी प्रौढ़ता, उसकी प्रतिभा एक चञ्चल ग्वालकन्याके स्वभावानुकूल न थी, किन्तु जगमगाहटने सबकी समालोचक शक्तियोंको वशीभूत कर लिया था। सारी सभा विस्मय और अनुरागमें डूबी हुई थी, यह तो कोई स्वर्गकी अप्सरा है! उसकी मृदुल वाणी, उसका कोमल गान, उसके अलंकार और भूषण, उसके हाव-भाव, उसके स्वरलालित्य, किस किसकी प्रशंसा की जाय। वह एक थी, अद्वितीय थी, कोई उसका सानी, उसका जवाब न था।

राधाके पीछे तीन सखियां और आयीं,—ललिता, चन्द्रावली और श्यामा। सब अपनी अपनी विरह-कथा सुनाने लगीं। कृष्णकी निष्ठुरता और कपटकी चर्चा होने लगी। उसपर घरवालोंकी रोक थाम, डांट डपट भी मारे डालती थी। एक बोली, मुझे तो पनघटपर जानेकी रोक हो गयी है, दूसरी बोली—मैं तो द्वारपर खड़ी होकर झांकने भी नहीं पाती, तीसरी बोली, जब दही बेचने जाती हूं तब बुढ़िया साथ हो लेती है। राधिकाने सजल नेत्र होकर कहा, मैं तो बदनाम हो गयी, अब किसीसे उनकी बात नहीं कर सकती। ललिता बोली—वह आप ही निर्दयी हैं, नहीं तो क्या मिलनेका कोई उपाय ही न था।

चन्द्रावली—उन्हें हमको जलाने और तड़पानेमें आनन्द मिलता है।

श्यामा—यह बात नहीं, वह हमारे घरवालोंसे डरते हैं।

राधा—चल, तू उनका यों ही पक्ष लिया करती है। बड़े चतुर तो बनते हैं, क्या इन बुड्ढ़ोंको भी धता नहीं बता सकते? बात यह है कि उन्हें हमारी सुध ही नहीं है।

ललिता—चलो, आज हम सब उनको परखें।

इसपर सब सहमत हो गयीं। इधर उधर चौकन्नी आंखों से ताक ताककर, हाथोंसे बता बताकर, भौंहें नचा नचाकर, आपसमें सलाह होने लगी। परीक्षाका क्या रूप होगा, इसका निश्चय हो गया। चारों प्रसन्न होकर एक गीत गाती हुई स्टेजसे चली गयीं। परदा गिर गया।

फिर परदा उठा। वृक्षोंके समूहमें एक छोटासा गांव दिखायी दिया, फूसके कई झोपड़े थे, बहुत ही साफ सुथरे फूल पत्तियों-से सजे हुए, उनमें कहीं कहीं गायें बंधी हुई थीं, कहीं बछड़े किलोलें करते थे, कहीं दूध बिलोया जाता था। बड़ा सुरम्य दृश्य था! एक मकानमें चन्द्रावली पलंगपर पड़ी कराह रही थी। उसके सिरहाने कई आदमी बैठे पंखा झल रहे थे, कई स्त्रियां पैरकी ओर खड़ी थीं। 'वैद! वैद!' की पुकार हो रही थी। दूसरी झोपड़ीमें ललिता पड़ी थी। उसके पास भी कई स्त्रियां बैठी टोना टोटका कर रही थीं, कोई कहती थी, आसेब है, कोई चुड़ैलका फेर बतलाती थी। ओझाजीको बुलानेकी बातचीत हो रही थी। एक युवक खड़ा कह रहा था—यह सब तुम्हारा ढकोसला है, इसे कोई हृदरोग है, किसी चतुर वैद्यको बुलाना चाहिये। तीसरे झोपड़ेमें श्यामाकी खटोली थी, वहां भी यही वैद वैदकी पुकार थी। चौथा मकान बहुत बड़ा था, द्वारपर बड़ी बड़ी गायें थीं, एक ओर अनाजके ढेर लगे हुए थे, दूसरी ओर मटकोंमें दूध भरा रक्खा था, चारों तरफ सफाई थी, इसमें राधिका रुग्नावस्थामें बेचैन पड़ी थी। उसके समीप एक पण्डितजी आसनपर बैठे हुए पाठ कर रहे थे, द्वारपर भिक्षुकोंको अन्नदान दिया जा रहा था, घरके लोग राधि-काको चिन्तित नेत्रोंसे देखते थे और वैद! वैद! पुकारते थे।

सहसा दूरसे आवाज आयी। वैद! वैद! सब रोगोंका वैद, कामका वैद, क्रोधका वैद, मोहका वैद, लोभका वैद, धर्मका वैद, कर्मका वैद, मोक्षका वैद, मनका मैल निकाले, अज्ञानका मैल

निकाले, ज्ञानकी सींगी लगाये, हृदयकी पीर मिटाये, बैद ! बैद ! लोगोंने बाहर निकलकर वैद्यजीको बुलाया। उनके कांधेपर झोली थी, सिरपर एक लाल गोल पगड़ी, देहपर एक हरी बनातकी गोटेदार चपकन थी, आंखोंमें सुरमा, अधरोंपर पानकी लाली, चेहरेपर मुस्कुराहट थी, चाल ढालसे बांकापन बरसता था। स्टेजपर आते ही उन्होंने झोली उतारकर रख दी और बांसुरी बजा बजाकर गाने लगे।

मैं तो हरत विरहकी पीर
प्रेम-दाहको शीतल करता जैसे अग्निको नीर—
मैं तो हरत.........
निर्मल ज्ञानकी बूटी देकर, देत हृदयको धीर—
मैं तो हरत.........

राधाके घरवाले उन्हें हाथोंहाथ अन्दर ले गये। राधिकाने उन्हें देखते ही मुस्कराकर मुंह छिपा लिया। वैद्यजीने उसकी नाड़ी देखनेके बहानेसे उसकी गोरी गोरी कलाई पकड़कर धीरेसे दबा दी। राधाने झिझककर हाथ छुड़ा लिया, तब प्रेमनीतिकी भाषामें बातें होने लगीं।

राधा—नदीमें अथाह जल है।

वैद्य—जिसके पास नौका है उसे जलका क्या भय !

राधा—आन्धी है, भयानक लहरें हैं, और बड़े बड़े भयंकर जलजन्तु हैं।

वैद्य—मल्लाह चतुर है।

राधा—सूर्य्य भगवान निकल आये, पर तारे क्यों जगमगा रहे हैं ?

वैद्य—प्रकाश फैलेगा तो वह स्वयं लुप्त हो जायंगे।

वैद्यजीने घरवालोंको आंखोंके इशारेसे हटा दिया। जब एकान्त हो गया तब राधाने मुस्कराकर कहा—प्रेमका धागा कितना दृढ़ है !

ज्ञानशङ्करने इसका कुछ उत्तर न दिया।

गायत्री फिर बोली—आग लकड़ीको जलाती है, पर लकड़ी जल जाती है तो आग भी बुझ जाती है।

ज्ञानशंकरने इसका भी कुछ जवाब न दिया।

गायत्रीने उनके मुखकी ओर विस्मयसे देखा, यह मौन क्यों? अपना पार्ट भूल तो नहीं गये। तब तो बड़ी हँसी होगी।

ज्ञानशङ्करके होंठ बन्द थे, सांस बड़े वेगसे चल रही थी। पांव कांप रहे थे, नेत्रोंमें विषम प्रेरणा झलक रही थी, और मुखसे एक भयंकर संकल्प प्रकट होता था, मानों कोई हिंसक पशु अपने शिकारपर टूटनेके लिये अपनी शक्तियोंको एकाग्र कर रहा हो। वास्तवमें ज्ञानशंकरने छलांग मारनेका निश्चय कर लिया था। इसी एक छलांगमें वह सौभाग्य-शिखरपर पहुंचना चाहते थे, इसके लिये महीनोंसे तैयार हो रहे थे, इसीलिये उन्होंने यह ड्रामा खेला था, इसीलिये उन्होंने यह स्वांग भरा था, छलांग मारनेका यही अवसर था, इस वक्त चूकना पाप था। उन्होंने तोतेको दाना दिखाकर परचा लिया था, वह निश्शङ्क होकर उनके आंगनमें दाना चुगता फिरता था। उन्हें विश्वास था कि दानेकी चाट उसे पिंजरेमें खींच ले जायगी। उन्होंने पिंजरेका द्वार खोल दिया था। तोतेने पिंजरेको देखते ही चौंककर पर खोले और उड़कर मुंडेरपर जा बैठा। दानेकी चाट उसकी स्वेच्छावृत्तिका सर्वनाश न कर सकी थी। गायत्रीकी भी यही दशा थी। ज्ञानशङ्करकी यह अव्यक्त प्रेरणा देखकर झिझकी। यह उसका इच्छित कर्म न था, वह प्रेमका रस पान कर चुकी थी, उसकी शीतल दाह और सुखद पीड़ाका स्वाद चख चुकी थी, वशीभूत हो चुकी थी, पर सतीत्वरक्षाकी आन्तरिक प्रेरणा अभी शिथिल न हुई थी। वह झिझकी और उसी भांति उठ खड़ी हुई जैसे किसी आकस्मिक आघातको रोकनेके लिये हमारे हाथ स्वयं अनिच्छित रूपसे उठ जाते हैं। वह घबराकर उठी और वेगमें स्टेजके पीछेको

ओर निकल गयी। वहां एक चारपाई पड़ी हुई थी, वह उसपर जाकर गिर पड़ी। वह संज्ञाशून्य-सी हो रही थी, जैसे रातके सन्नाटेमें कोई बादल गीदड़की आवाज सुने और चिल्लाकर गिर पड़े। उसे कुछ ज्ञान था तो केवल भयका।

लेकिन उसमें तोतेकी-सी स्वाभाविक शंका थी, तो उसी तोतेका-सा अल्प आत्मसम्मान भी था। जैसे तोता एक ही क्षणमें फिर दानेपर गिरता है और अन्तमें पिंजरबद्ध हो जाता है, उसी भांति गायत्री भी एक ही क्षणमें अपनी झिझकपर लज्जित हुई। उसकी मानसिक पवित्रता कभी की विनष्ट हो चुकी थी, अब यह अनिच्छित प्रतिकारकी शक्ति भी विलुप्त हो गयी। उसके मनोभावका क्षेत्र अब बहुत विस्तृत हो गया था। पतिप्रेम उसके एक कोनेमें पैर फैलाकर बैठ सकता था। अब हृदेशपर उसका आधिपत्य था। एक ही क्षणमें वह फिर स्टेजपर आयी। शरमा रही थी कि ज्ञानशङ्कर मनमें क्या कहते होंगे! हा! मैं भक्तिके वेगमें भी अपनेको न भूल सकी। यहां भी अहंकारको न मिटा सकी। दर्शकवृन्द मनमें न जाने क्या विचार कर रहे होंगे! वह स्टेजपर पहुंची तो ज्ञानशङ्कर एक पद गाकर लोगोंका मनोरंजन कर रहे थे। उसके स्टेजपर आते ही परदा गिर गया।

आध घंटेके बाद तीसरी बार परदा उठा। फिर वही कदमका वृक्ष था, वही सघनकुंज चारों सखियां बैठी हुई कृष्णके वैद्यरूप धारणकी चर्चा कर रही थीं। वह कितने प्रेमी, कितने भक्तवत्सल हैं! वह स्वयं भक्तोंके भक्त हैं।

इस वार्तालापके उपरान्त एक पद्यबद्ध सम्भाषण होने लगा, जिसमें ज्ञान और भक्तिकी तुलना की गयी थी और अन्तमें भक्तिपक्षहीको सिद्ध किया गया। चारों सखियोंने आरती गायी और अभिनय समाप्त हुआ। परदा गिर गया। गायत्रीके भावचित्रण, स्वरलालित्य और अभिनय-कौशलकी सभी प्रशंसा कर रहे थे। कितने ही सरल हृदय भक्तजनोंको तो विश्वास हो गया कि गायत्री-

को राधिकाका इष्ट है। सभ्य समाज इतना प्रगल्भ तो न था, फिर भी गायत्रीकी प्रतिभा, उसके तेजमय सौन्दर्य्य, उसके विशाल गाम्भीर्य्य, उसकी अलौकिक मृदुलताका जादू सभीपर छाया हुआ था। ज्ञानशङ्करके अभिनयकौशलकी भी सराहना हो रही थी। यद्यपि उनका गाना किसीको पसन्द न आया, उनकी आवाजमें लोचका नाम भी न था, फिर भी उनकी चंचलीला निर्दोष बतायी जाती थी।

गायत्री अब अपने कमरेमें आकर कोचपर बैठी तो एक बज गया था। वह आनन्दसे फूली न समाती थी, चारों तरफ उसकी वाह-वाह हो रही थी, शहरके कई रसिक सज्जनोंने चलते समय आकर उसके मानव-चरित्र-ज्ञानकी प्रशंसा की थी, यहां-तक कि श्रद्धा भी उसके अभिनयनैपुण्यपर विस्मित हो रही थी। उसका गौरवशील हृदय इस विचारसे उन्मत्त हो रहा था कि आज सारे नगरमें मेरी ही चर्चा, मेरी ही धूम है। और यह सब किसके सत्संगका, किसकी सत्प्रेरणाका फल था? गायत्रीके रोम रोमसे ज्ञानशंकरके प्रति श्रद्धा-ध्वनि निकलने लगी। उसने ज्ञानशंकरपर अनुचित सन्देह करनेके लिये अपनेको तिरस्कृत किया। मुझे उनसे क्षमा मांगनी चाहिये, उनके पैरोंपर गिरकर उनके हृदयसे इस दुःखको मिटाना चाहिये। मैं उनकी पदरज हूं, उन्होंने मुझे धरतीसे उठाकर आकाशपर पहुंचाया है। मैंने उनपर सन्देह किया। मुझसे बड़ा कृतघ्न और कौन होगा! वह इन्हीं विचारोंमें मग्न थी कि ज्ञानशंकर आकर खड़े हो गये और बोले—"आज तो आपने मजलिसपर जादू कर दिया।"

गायत्री बोली—यह जादू आपहीका सिखाया हुआ है।

ज्ञानशंकर—सुना करता था कि मनुष्यका जैसा नाम होता है वैसे ही गुण भी उसमें आ जाते हैं, पर विश्वास न आता था। अब विदित हो रहा है कि यह कथन सर्वथा निस्सार नहीं है। मुझे दो बारसे अनुभव हो रहा है कि जब अपना पार्ट खेलने

लगता हूं तब किसी दूसरे ही जगत्में पहुंच जाता हूं। चित्त-पर एक विचित्र आनन्द छा जाता है, ऐसा भ्रम होने लगता है कि मैं वास्तवमें कृष्ण हूं।

गायत्री—मैं भी यही कहनेवाली थी। मैं तो अपनेको बिलकुल भूल ही जाती हूं।

ज्ञान—संभव है, उस आत्मविस्मृतिकी दशामें मुझसे कोई अपराध हो गया हो, तो उसे क्षमा कीजियेगा।

गायत्री सकुचाती हुई बोली—प्रेमोद्गारमें अन्तःकरण निर्मल हो जाता है, वासनाओंका लेश भी नहीं रहता।

ज्ञानशंकर एक मिनिटतक खड़े इन शब्दोंके आशयपर विचार करते रहे और तब बाहर चले गये।

दूसरे दिन विद्यावती बनारस पहुंची। उसने अपने आनेकी सूचना न दी थी, केवल एक भरोसेके नौकरको साथ लेकर चली आयी थी। ज्योंही द्वारपर पहुंची, उसे बृहत् पंडाल दिखायी दिया। अन्दर गयी तो श्रद्धा दौड़कर उससे गले मिली। महरियां दौड़ी आयीं। वह सबकी सब विद्याको करुणा-सूचक नेत्रोंसे देख रही थीं? गायत्री गङ्गास्नान करने गयी हुई थी। विद्याके कमरेमें गायत्रीका राज्य था। उसके सन्दूक और अन्य सामान चारों ओर भरे हुए थे। विद्याको ऐसा क्रोध आया कि गायत्रीका सब सामान उठाकर बाहर फेंक दे, पर कुछ सोच कर रह गयी। गायत्रीके साथ कई महरियां भी आयी थीं। वह यहांकी महरियोंपर रोब जमाती थीं। विद्याको देखकर सब इधर उधर हट गयीं, कोई कुशल समाचार पूछने भी न आयी। विद्या इन परिस्थितियोंको उसी दृष्टिसे देख रही थी जैसे कोई पुलिसका अफसर किसी घटनाके प्रमाणोंको देखता है। उसके मनमें जो शङ्का आरोपित हुई थी उसकी पग पगपर पुष्टि होती जाती थी। ज्योंही एकान्त हुआ, विद्याने श्रद्धासे पूछा—यह शामियाना कैसा तना हुआ है?

श्रद्धा—रातको वहां कृष्णलीला हुई थी।

विद्या—बहिनने भी कोई पार्ट लिया था?

श्रद्धा—वह राधिका बनी थीं और बाबूजीने कृष्णका पार्ट लिया था।

विद्या—बहिनसे खेलते तो न बना होगा?

श्रद्धा—वाह! वह इस कलामें निपुण हैं। सारी सभा लट्टू हो गयी। आती होंगी, आप ही कहेंगी।

विद्या क्या नित्य गंगास्नान करने जाती हैं?

श्रद्धा—हां, प्रातः गंगास्नान होता है, संध्याको कीर्तन सुनने जाती हैं।

इतनेमें मायाशंकरने आकर माताके चरण स्पर्श किये। विद्याने उसे छातीसे लगा लिया और बोली—बेटा, आरामसे तो रहे?

माया—जी हां, खूब आरामसे था।

विद्या—बहिन, देखो इतने ही दिनोंमें इसकी आवाज कितनी बदल गयी है, बिल्कुल नहीं पहचानी जाती। मौसीजीके क्या रंग ढंग हैं? खूब प्यार करती हैं न?

माया—हां, मुझे बहुत चाहती हैं, बहुत अच्छा मिजाज है।

विद्या—वहां भी कृष्णलीला होती थी कि नहीं?

माया—हां, वहां तो रोज ही होती रहती थी। कीर्तन नित्य होता था। मथुरा वृन्दावनसे रहस्यवाले बुलाये जाते थे। बाबूजी भी कृष्णका पार्ट खेलते हैं। उनके केश खूब बढ़ गये हैं। सूरतसे महन्त मालूम होते हैं। तुमने तो देखा होगा?

विद्या—हां, देखा क्यों नहीं। बहिन अब भी उदास रहती हैं।

माया—मैंने तो उन्हें कभी उदास नहीं देखा। हमारे घरमें तो ऐसा प्रसन्नचित्त कोई है ही नहीं।

विद्या यह प्रश्न यों पूछ रही थी जैसे कोई वकील गवाहसे जिरह कर रहा हो। प्रत्येक उत्तर उसके सन्देहको दृढ़ करता था। दस बजे द्वारपर मोटरकी आवाज सुनायी दी। सारे घरमें हलचल

पड़ गयी। कोई महरी गायत्रीका पलंग बिछाने लगी, कोई उसके स्लीपरोंको पोंछने लगी, किसीने फर्श झाड़ना शुरू किया, कोई उसके जलपानकी सामग्रियां निकालकर तश्तरीमें रखने लगी और एकने लोटा गिलास मांजकर रख दिया। इतनेमें गायत्री ऊपर आ पहुंची। पीछे पीछे ज्ञानशङ्कर भी थे। विद्या अपने कमरेसे न निकली, लेकिन गायत्री लपककर उसके गलेसे चिपट गयी और बोली तुम कब आयी? पहलेसे खत भी न लिखा?

विद्या गला छुड़ाकर अलग खड़ी हो गयी और रुखाईसे बोली, खत लिखकर क्या करती? यहां किसे फुरसत थी कि मुझे लेने जाता, दामोदर महराजके साथ चली आयी।

ज्ञानशङ्करने विद्याके चेहरेकी ओर प्रश्नात्मक दृष्टिसे देखा। उत्तर मोटे अक्षरोंमें स्पष्ट लिखा हुआ था। विद्या भावोंको छिपानेमें कच्ची थी। सारी कथा उसके चेहरेपर अंकित थी। उसने ज्ञानशङ्करको आंख उठाकर भी न देखा, कुशल-समाचार पूछनेकी बात ही क्या. नंगी तलवार बनी हुई थी। उसके तीवर साफ कह रहे थे कि वह भरी बैठी है और अवसर पाते ही उबल पड़ेगी। ज्ञानशंकरका चित्त उद्विग्न हो गया। वह शंकायें, वह परिणामचिन्ता, जो गायत्रीके आनेसे दब गयी थी, फिर जाग उठी और उनके हृदयमें कांटोंके समान चुभने लगी। उन्हें निश्चय हो गया कि विद्या सब कुछ जान गयी, अब वह मौका पाते ही ईर्षावेगमें गायत्रीसे सब कुछ कह सुनायेगी। मैं उसे किसी भांति नहीं रोक सकता। समझाना, डराना, धमकाना, विनती और चिरौरी करना सब निष्फल होगा। बस, अब अगर प्राणरक्षाका कोई उपाय है तो यही कि उसे गायत्रीसे बातचीत करनेका अवसर ही न मिले। या तो आज ही शामकी गाड़ीसे गायत्रीको लेकर गोरखपूर चला जाऊं या दोनों बहिनोंमें ऐसा मनमोटाव करा दूं कि एक दूसरीसे खुलकर मिल ही न सके। स्त्रियोंको लड़ा देना कौनसा कठिन काम है! एक इशारेमें तो उनके तीवर

बदलते हैं। ज्ञानशङ्करको अभीतक यह ध्यान भी न था कि विद्या मेरी भक्ति और प्रेमके मर्मतक पहुंची हुई है। वह अभीतक केवल रायसाहबवाली दुर्घटनाहीको इस मनोमालिन्यका कारण समझ रहे थे।

विद्याने गायत्रीसे अलग हटकर उसके नख शिखको चुभती हुई दृष्टिसे देखा। उसने उसे ६ साल पहले देखा था। तब उसका मुखकमल मुर्झाया हुआ था, वह संध्याकालके सदृश उदास, मलिन, निश्चेष्ट थी। पर इस समय उसके मुखपर खिले हुए कमलकी शोभा थी, वह उषाकी भांति विकसित, तेजोमय, सचेष्ट, स्फूर्तिसे भरी हुई दीख पड़ती थी। विद्या इस विद्युत्प्रकाशके सम्मुख दीपकके समान ज्योतिहीन मालूम होती थी।

गायत्रीने पूछा—संगीतसभाका तो खूब आनन्द उठाया होगा?

ज्ञानशङ्करका हृदय धकधक करने लगा। उन्होंने विद्याकी ओर बड़ी दीन दृष्टिसे देखा, पर उसकी आंखें जमीनकी तरफ थीं। बोली—मैं तो कभी संगीतके जल्सेमें गयी ही नहीं, हां इतना जानती हूं कि जलसा कुछ फीका रहा। लालाजी बहुत बीमार हो गये और एक दिन भी जल्सेमें शरीक न हो सके।

गायत्री—मेरे न आनेसे नाराज तो अवश्य ही हुए होंगे?

विद्या—तुम्हें उनके नाराज होनेकी क्या चिन्ता है? वह नाराज होकर तुम्हारा क्या बिगाड़ सकते हैं?

यद्यपि यह उत्तर काफी तौरपर द्वेषमूलक था, पर गायत्री अपनी कृष्णलीलाकी चर्चा करनेके लिये इतनी उतावली हो रही थी कि उसने इसपर कुछ ध्यान न दिया। बोली, क्या कहूं तुम कल न आ गयीं, नहीं तो यहां कृष्णलीलाका आनन्द उठाती। भगवानकी कुछ ऐसी दया हो गयी कि सारे शहरमें इस लीलाकी वाह वाह मच गयी। किसी प्रकारकी त्रुटि न रही। रंगभूमि तो तुमको अभी दिखाऊंगी, पर उसकी सजावट ऐसी मनोहर थी कि

तुमसे क्या कहूं। केवल पर्दोंके बनवानेमें हजारों रुपये खर्च हो गये। बिजलीके प्रकाशसे सारा मंडप ऐसा जगमगा रहा था कि उसकी शोभा देखते ही बनती थी। मैं इतनी बड़ी सभाके सामने आते डरती थी, पर कृष्ण भगवानने ऐसी कृपा की कि मेरा पार्ट सबसे बढ़कर रहा। पूछो बाबूजीसे, शहरमें उसकी कैसी चर्चा हो रही है। लोगोंने मुझसे एक एक पद कई कई बार गवाया।

विद्याने व्यंग भावसे कहा—मेरा अभाग्य था कि कल न आ गयी।

गायत्री—एक बार फिर वही लीला करनेका विचार है। अबकी तुम्हें भी कोई-न-कोई पार्ट दूंगी।

विद्या—नहीं, मुझे क्षमा करना। नाटक खेलकर स्वर्गमें जानेकी मुझे आशा नहीं है।

गायत्री विस्मित होकर विद्याका मुंह ताकने लगी। लेकिन ज्ञानशङ्कर मनमें मुग्ध हुए जाते थे। दोनों बहिनोंमें वह जो भेद-भाव डालना चाहते थे, वह आप-ही-आप आरोपित हो रहा था। यह शुभ लक्षण थे। गायत्रीसे बोले—मेरे विचारमें यहां अब आपको कष्ट होगा। क्यों न बंगलेमें एक कमरा आपके लिये खाली कर दूं। वहां आप ज्यादा आरामसे रह सकेंगी।

गायत्रीने विद्याकी तरफ देखते हुए कहा—क्यों विद्या, बंगलेमें चली जाऊं? बुरा तो न मानोगी? मेरे यहां रहनेसे आराममें विघ्न पड़ेगा। मैं बहुधा भजन गाया करती हूं।

विद्या—तुम आरामकी चिन्ता मत करो, मैं इतनी नाजुक दिमाग नहीं हूं। हां, अगर तुम्हें यहां कोई असमंजस हो तो शौकसे बंगलेमें चली जाओ।

ज्ञानशङ्करने गायत्रीका असबाब उठाकर बंगलेमें रखवा दिया। गायत्रीने भी विद्यासे और कुछ न कहा। उसे मालूम हो गया कि यह इस समय ईर्षाके मारे जली जाती है। और ऐसा कौन प्राणी होगा जो ईर्षाकी क्रीड़ाका आनन्द न उठाने

चाहे ? उसने एक बार विद्याको सगर्व नेत्रोंसे देखा और जीनेकी तरफ चली गयी।

रातके ६ बजे थे। गायत्री वीणापर गा रही थी कि ज्ञान-शङ्करने कमरेमें प्रवेश किया। उन्होंने आज देवीसे वरदान मांगने-का निश्चय कर लिया था। लोहा लाल हो रहा था, अब आगा पीछा करनेका अवसर न था, ताबड़तोड़ चोटोंकी जरूरत थी, एक दिनकी देर भी बरसोंके अविरल उद्योगपर पानी फेर सकती थी, जीवनकी समस्त आशाओंको मिट्टीमें मिला सकती थी। विद्याकी एक अनुचित बात सारी बाजीको पलट सकती थी, उसका एक द्वेषमूलक संकेत उनके सारे हवाई किलोंको विध्वंस कर सकता था। कदाचित् किसी सेनापतिको रणक्षेत्रमें भी इतना महत्वपूर्ण और निश्चयकारी अवसर न प्रतीत होता होगा, जितना इस समय ज्ञानशङ्करको मालूम हो रहा था। उनकी अवस्था उस सिपाहीकी सी थी जो कुछ दूरपर खड़ा शस्त्रशाला-में आगकी चिनगारी पड़ते देखे और उसको बुझानेके लिये बेतहाशा दौड़े। उसका द्रुतवेग कितना महत्वमय, कितना मूल्यवान है! एक क्षणका विलम्ब सेनाके सर्वनाश दुर्गके दमन, राज्यके विक्षेप और जातिके पददलित होनेका कारण हो सकता है! ज्ञानशङ्कर आज दोपहरसे इसी समस्याके हल करनेमें व्यस्त थे। क्योंकर विषयको छेड़ूं? ऐसा अन्दाज होना चाहिये कि मेरी निष्काम वृत्तिका पर्दा न खुलने पाये। उन्होंने अपने मनमें विषय प्रवेशका ऐसा क्रम बांधा था कि मायाशङ्कर-को गोद लेनेका प्रस्ताव गायत्रीकी ओरसे हो और मैं उसके गुणदोषकी निस्स्वार्थ भावसे व्याख्या करूं। मेरी हैसियत एक तीसरे आदमीकी रहे। एक शब्दसे भी पक्षपात न प्रकट हो। उन्होंने अपनी बुद्धि, विचार, दूरदर्शिता और पूर्वचिन्तासे कभी इतना काम न लिया था। सफलतामें जो बाधायें उपस्थित होनेकी कल्पना हो सकती थी, उन सभोंकी उन्होंने योजना कर

ली थी। अपने मनमें एक-एक शब्द, एक-एक इशारे, एक-एक भावका निश्चय कर लिया था। वह एक केसरिया रंगकी रेशमी चादर ओढ़े हुए थे, लम्बे केश चादरपर बिखरे पड़े थे, आंखोंसे भक्तिका आनन्द टपक रहा था और मुखारविन्द प्रेमकी दिव्य ज्योतिसे आलोकित था।

उन्होंने गायत्रीको अनुरागमय दृष्टिसे देखकर कहा—आपके पदोंमें गजबका जादू है। हृदयमें प्रेमकी तरंगें उठने लगती हैं, चित्त भक्तिसे उन्मत्त हो जाता है। गायत्रीने मुस्कराकर कहा, यह जादू मेरे पदोंमें नहीं है, आपके कोमल हृदयमें है। बाहरकी फीकी, नीरस ध्वनि भी अन्दर जाकर सुरीली और रसमय हो जाती है। साधारण दीपक भी मोटे शीशेके अन्दर बिजलीका लैम्प बन जाता है।

ज्ञानशङ्कर—मेरे चित्तकी आजकल एक विचित्र दशा हो गयी है। मुझे अब विश्वास होता जाता है कि मनुष्यमें एक ही साथ दो भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियोंका समावेश नहीं हो सकता, एक आत्मा दो रूप नहीं धारण कर सकती।

गायत्रीने उनकी ओर जिज्ञासा-भावसे देखा और वीणाको मेजपर रखकर उनका मुंह देखने लगी।

ज्ञानशङ्करने कहा, हम जो रूप धारण करते हैं, उसका हमारी बातचीत और आचार-व्यवहारपर इतना असर पड़ता है किहमारी वास्तविक स्थिति लुप्त सी हो जाती है। अब मुझे अनुभव हो रहा है कि लोग क्यों लड़कोंको नाटकोंमें स्त्रियोंका रूप धरने, नाचने और भाव बतानेपर आपत्ति करते हैं? एक दयालुप्रकृतिका मनुष्य सेनामें रहकर कितना उद्दण्ड और कठोर हो जाता है। परिस्थितियां उसकी दयालुताका नाश कर देती हैं। मेरे कानोंमें अब नित्य वंशीकी मधुर ध्वनि गूंजा करती है और आंखोंके सामने गोकुल और बरसानेका छटा फिरा करती है। मेरी सत्ता कृष्णमें विलीन होती जाती है, राधा अब एक

क्षणके लिये भी मेरे ध्यानसे नहीं उतरती। कुछ समझमें नहीं आता कि मेरा मन मुझे किधर लिये जाता है।

यह कहते-कहते ज्ञानशङ्करकी आंखोंसे ज्योति सी निकलने लगी, मुखमण्डलपर अनुराग छा गया और वाणी माधुर्य रसमें डूब गयी। बोले—गायत्रीदेवी, चाहे यह छोटा मुंह और बड़ी बात हो, पर सच्ची बात यह है कि इस आत्मोत्सर्गकी दशामें तुम्हारा उच्च पद, तुम्हारा धन-वैभव, तुम्हारा नाता, सब मेरी आंखोंसे लुप्त हो जाता है और तुम मुझे वही राधा, वही वृन्दावनकी अलबेली तिरछी चितवनवाली मीठे मुस्कानवाली मृदुल भावोंवाली, चञ्चल-चपल राधा मालूम होती हो। मैं इन भावनाओंको हृदयसे मिटा देना चाहता हूं, लाखों यत्न करता हूं, पर वह मेरी नहीं मानता। मैं चाहता हूं कि तुम्हें रानी गायत्री समझूं, जिसका मैं एक तुच्छ सेवक हूं, पर बार-बार भूल जाता हूं। तुम्हारी एक आवाज, तुम्हारी एक झलक, तुम्हारे पैरोंकी आहट, यहांतक कि केवल तुम्हारी याद मुझे इस वाह्य जगतसे उठाकर किसी दूसरे जगतमें पहुंचा देती है। मैं अपनेको बिलकुल भूल जाता हूं। अबतक इस चित्तवृत्तिको तुमसे गुप्त रक्खा था, लेकिन जैसे मिजराबकी चोटसे सितार ध्वनित हो जाता है, उसी भांति प्रेमकी चोटसे हृदय स्वरयुक्त हो जाता है। मैंने आपसे अपने चित्तकी दशा कह सुनायी, संतोष हो गया। इस प्रीतिका अन्त क्या होगा? इसे उसके सिवाय और कौन जानता है जिसने हृदयमें यह ज्वाला प्रदीप्त की है।

जिस प्रकार प्याससे तड़पता हुआ मनुष्य ठण्ढा पानी पीकर तृप्त हो जाता है, एक-एक घोंट उसकी आंखोंमें प्रकाश और चेहरेपर विकास उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार यह प्रेमवृत्तान्त सुनकर गायत्रीका मुखचन्द्र उज्ज्वल हो गया। उसकी आंखें उन्मत्त हो गयीं, उसे अपने जीवनमें एक नई स्फूर्तिका अनुभव होने लगा। उसके विचारमें यह आध्यात्मिक प्रेम था, इसमें वास-

नाका लेश भी न था। इसके प्रेरक कृष्ण थे, वही ज्ञानशङ्करके दिलमें बैठे हुए उनके कण्ठसे यह प्रेमस्वर अलाप रहे थे। उसके मनमें भी ऐसे भाव पैदा होते थे, लेकिन लज्जावश उन्हें प्रकट न कर सकती थी। राधाका पार्ट खेल चुकनेके बाद वह फिर गायत्री हो जाती थी, किन्तु इस समय यह बातें सुनकर उसपर एक नशा-सा छा गया। उसे ज्ञान हुआ कि राधा मेरे हृदयस्थलमे विराज रही है, उसकी वाणी लज्जाके बन्धनसे मुक्त हो गयी। इस आध्यात्मिक रत्नके सामने समस्त संसार यहां तक कि अपना जीवन भी तुच्छ प्रतीत होने लगा। आत्मगौरवसे आंखें चमकने लगीं। बोली—प्रियतम, मेरी भी यही दशा है, मैं भी इसी तापसे फुंक रही हूं, यह तन और मन अब तुम्हारी भेंट है, तुम्हारे प्रेम-जैसा रत्न पाकर अब मुझे कोई आकांक्षा, कोई लालसा नहीं रही। इस आत्मज्योतिने माया और मोहके अन्धकारको मिटा दिया, सांसारिक पदार्थोंसे जी भर गया। अब यही अभिलाषा है कि यह मस्तक तुम्हारे चरणोंपर हो और तुम्हारे कीर्तिगानमें जीवन समाप्त हो जाय। मैं रानी नहीं हूं, गायत्री नहीं हूं, मैं तुम्हारे प्रेमकी भिखारिनी, तुम्हारे प्रेमकी मतवाली, तुम्हारी चेरी राधा हूं, तुम मेरे स्वामी, मेरे प्राणाधार, मेरे इष्टदेव हो। मैं तुम्हारे साथ बरसानेकी गलियोंमें विचरूंगी, यमुनाके तटपर तुम्हारे प्रेम-राग गाऊंगी। मैं जानती हूं कि मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूं, अभी मेरा चित्त भी भोग-विलासका दास है, अभी मैं धर्म और समाजके बन्धनोंको तोड़ नहीं सकी हूं, पर जैसी कुछ हूं, अब तुम मेरी सेवाओंको स्वीकार करो। तुम्हारे ही सत्सङ्गने मुझे इस स्वर्गीय सुखका रस चखाया है, क्या वह मनके विकारोंको शान्त न कर देगा।

यह कहते-कहते गायत्रीके लोचन सजल हो गये। वह भक्तिके आवेगमें ज्ञानशङ्करके पैरोंपर गिर पड़ी। ज्ञानशङ्करने उसे तुरन्त उठाकर छातीसे लगा लिया। अकस्मात् कमरेका द्वार

धीरेसे खुला और विद्याने अन्दर कदम रक्खा। ज्ञानशङ्कर और गायत्री दोनोंने चौंककर द्वारकी ओर देखा और झिझककर अलग खड़े हो गये। दोनोंकी आंखें जमीनकी तरफ झुक गयीं, चेहरेपर हवाइयां उड़ने लगीं। ज्ञानशङ्कर तो सामनेकी आलमारीमेंसे एक पुस्तक निकालकर पढ़ने लगे, किन्तु गायत्री ज्यों-की-त्यों अवाक् और अचल, पाषाण मूर्तिके सदृश खड़ी थी, माथेपर पसीना आ गया। जी चाहता था, धर्ती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊं। वह कोई बहाना, कोई हीला न कर सकी। आत्मग्लानिने दुस्साहसका स्थान ही न छोड़ा था। उसे फर्शपर मोटे अक्षरोंमें यह शब्द लिखे हुए दीखते थे, "अब तू कहींकी न रही, तेरे मुंहमें कालिख लग गयी"। यही विचार उसके हृदयको आन्दोलित कर रहा था, यही ध्वनि उसके कानोंमें आ रही थी। वह बिलख-बिलखकर रोने लगी। अभी एक क्षण पहले उसकी आंखोंसे आत्माभिमान बरस रहा था, पर इस वक्त उससे दीन, उससे दलित प्राणी संसारमें न था। क्षणमात्रमें उसकी भक्ति और अनुराग उसके प्रेम और ज्ञानका परदा खुल गया। उसे ज्ञात हुआ कि मेरी भक्तिके स्वच्छ जलके नीचे कीचड़ था, मेरे प्रेमके सुरम्य पर्वतशिखरके नीचे निर्मल अन्धकारमय गुफा थी। मैं स्वच्छ जलमें पैर रखते ही कीचड़में आ फंसी, शिखरपर चढ़ते ही अन्धेरी गुफामें आ गिरी। हा! इस उज्ज्वल, काञ्चनमय, लहराते हुए जलने मुझे धोखा दिया, इन मनोरम शुभ्र शिखरोंने मुझे ललचाया और अब मैं कहींकी न रही। अपनी दुर्बलता और क्षुद्रतापर उसे इतना खेद हुआ, लज्जा और तिरस्कारके भावोंने उसे इतना मर्माहत किया कि वह चीख मारकर रोने लगी। हा! विद्या मुझे अपने मनमें कितनी कुटिला समझ रही होगी। वह मेरा कितना आदर करती थी, मेरा कितना लिहाज करती थी, अब मैं उसकी दृष्टिमें छिछोरी हूं, कुलकलंकिनी हूं। मैं उसके सामने सत्य और व्रतकी कैसी डींग मारती थी, सेवा और सत्कर्मकी कितनी सराहना

करती थी। मैं उसके सामने साध्वी, सती बनती थी, अपने पातिव्रत्यपर घमंड करती थी, पर अब उसे मुंह दिखाने योग्य नहीं हूं। हाय! वह मुझे अपनी सौत समझ रही होगी, मुझे आंखोंकी किरकिरी, अपने हृदयका कांटा ख्याल करती होगी। मैं उसका गृह-विनाशिनी अग्नि, उसकी हांड़ीमें मुंह डालनेवाली कुतिया हूं। भगवन्! मैं कैसी अन्धी हो गयी थी। यह मेरी छोटी बहिन है, यह मेरी कन्याके समान है। इस विचारने गायत्रीके हृदयको इतने जोरसे मसोसा कि वह कलेजा थामकर बैठ गयी, सहसा वह रोती हुई उठी और विद्याके पैरोंपर गिर पड़ी।

विद्यावती इस वक्त केवल संयोगसे यहां आ गयी थी। वह ऊपर अपने कमरेमें बैठी सोच रही थी कि गायत्री बहिनको क्या हो गया है? उसे क्योंकर समझाऊं कि यह महापुरुष (ज्ञानशङ्कर) तुझे प्रेम और भक्तिके सब्ज बाग दिखा रहे हैं। यह सारा स्वांग तेरी जायदादके लिये भरा जा रहा है। न जाने क्यों धन-सम्पत्तिके पीछे इतने अन्धे हो रहे हैं कि धर्म और विवेकको पैरोंतले कुचले डालते हैं। हृदयका कितना काला, कितना धूर्त, कितना लोभी, कितना स्वार्थान्ध मनुष्य है कि अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये किसीकी जान, किसीकी आवरूकी भी परवा नहीं करता। बातें तो ऐसी करता है मानों ज्ञानचक्षु खुल गये हों, मानों ऐसा साधुचरित्र, ऐसा विद्वान, ऐसा परमार्थी पुरुष संसारमें न होगा, पर अन्तःकरणमें कूट-कूटकर पशुता, कपट और कुकर्म भरा हुआ है। बस, इसे यही धुन है कि गायत्री किसी तरह मायाको गोद ले ले, उसकी लिखापढ़ी हो जाय और [illegible] मेरा प्रभुत्व जम जाय, उसका सम्पूर्ण अधिकार मेरे हाथ [illegible] आ जाय। इसीलिये इसने ज्ञान और भक्तिका यह जाल फैला रक्खा है, भगत बन गया है, बाल बढ़ा लिये हैं, नाचता है, गाता है, कन्हैया बनता है। कितनी भयङ्कर धूर्तता है, कितना घृणित व्यवहार, कितनी आसुरिक वृत्ति!

वह इन्हीं विचारोंमें मग्न थी कि उसके कानोंमें गायत्रीके गानेकी आवाज आयी। वह वीणापर सूरदासका एक पद गा रही थी, राग इतना सुमधुर और भावमय था, ध्वनिमें इतनी करुणा और आकांक्षा भरी हुई थी, स्वरमें इतना लालित्य और लोच था कि विद्याका मन सुननेके लिये लोलुप हो गया, वह विवश हो गयी, स्वरलालित्यने उसे मुग्ध कर दिया। उसने सोचा - सच्चे अनुराग और हार्दिक वेदनाके बिना गानेमें यह असर, यह विरक्ति असम्भव है। इसकी लगन सच्ची है, इसकी भक्ति सच्ची है। इस-पर मंत्र डाल दिया गया है, मैं इस मंत्रको उतार दूं, हो सके तो उसे गारमें गिरनेसे बचा लूं, उसे जता दूं, जगा दूं। निस्सन्देह यह महोदय मुझसे नाराज होंगे, मुझे अपना वैरी समझेंगे; मेरे खूनके प्यासे हो जायेंगे। कोई चिन्ता नहीं, इस काममें अगर मेरी जान भी जाय, तो मुझे विलम्ब न करना चाहिये। जो पुरुष ऐसा खूनी, ऐसा विघातक, ऐसा रंगा हुआ सियार हो, उससे मेरा कोई नाता नहीं, उसका मुंह देखना, उसके घरमें रहना, उसकी पत्नी कहलाना पाप है।

वह ऊपरसे उतरी और धीरे धीरे गायत्रीके कमरेमें आयी। किन्तु पहला ही पग अन्दर रखा था कि ठिठक गयी। सामने गायत्री और ज्ञानशङ्कर आलिंगन कर रहे थे। वह इस समय यहां शुभ इच्छाओंके साथ आयी थी, लेकिन निर्लज्जताका यह दृश्य देखकर उसका खून खौल उठा, आंखोंमें चिंगारियां-सी उड़ने लगीं, अपमान और तिरस्कारके शब्द मुंहसे निकलनेके लिये [illegible] में फड़कने। उसने आग्नेय नेत्रोंसे पतिको देखा। [illegible] आपमें यदि इतनी शक्ति होती कि वह उन्हें जलाकर भस्म कर देता तो वह अवश्य शाप दे देती। उसके हाथोंमें यदि इतनी [illegible] होती कि वह एक ही वारमें उनका काम तमाम कर दे तो वह अवश्य वार करती। पर उसके वशमें इसके सिवाय और [illegible] न था कि वह यहांसे टल जाय, इस उद्विग्न दशामें वह वहां

ठहर न सकती थी। वह उल्टे पांव लौटना चाहती थी। खलि-यानमें आग लग चुकी थी, चिड़ियाके गलेपर छुरी चल चुकी थी, अब उसे बचानेका उद्योग करना व्यर्थ था। गायत्रीसे उसे एक क्षण पहले जो हमदर्दी हो गयी थी, वह लुप्त हो गयी, अब वह सहानुभूतिकी पात्री थी। हम सुफेद कपड़ेको छींटोंसे बचाते हैं, लेकिन जब छींटे पड़ गये तो उसे दूर फेंक देते हैं, उसे छूनेसे घृणा होती है। उसके विचारमें गायत्री अब इसी योग्य थी कि अपने कियेका फल भोगे। मैं इस भ्रममें थी कि इस दुरात्माने तुझे बहका दिया है, तेरा अन्तःकरण शुद्ध है, पर अब यह विश्वास जाता रहा। कृष्णकी भक्ति और प्रेमका नशा इतना गाढ़ा नहीं हो सकता कि सुकर्म और कुकर्मका विवेक न रहे। आत्मपतनकी दशामें ही इतनी बेहयाई हो सकती है। हा, अभागिनी! आधी अवस्था बीत जानेपर तुझे यह सूझी। जिस पतिको तू देवता समझती थी, जिसकी पवित्र स्मृतिकी तू उपासना करती थी, जिसका नाम लेते ही आत्मगौरवसे तेरे मुखपर लाली छा जाती थी, उसकी आत्माको तूने यों भ्रष्ट किया, उसकी मिट्टी यों खराब की!

किन्तु जब उसने गायत्रीको सिर झुकाकर चीख-चीख रोते देखा तो उसका हृदय नम्र हो गया, और जब गायत्री आकर पैरोंपर गिर पड़ी, तब स्नेह और भक्तिके आवेशसे आतुर होकर वह बैठ गयी और गायत्रीका सिर उठाकर अपने कन्धेपर रख लिया। दोनों बहिनें रोने लगीं, एक ग्लानिसे, दूसरी प्रेमोद्गारसे।

अबतक ज्ञानशङ्कर दुविधामें खड़े थे, विद्यापर कुपित हो रहे थे, पर जबानसे कुछ कहनेका साहस न होता था। उन्हें शङ्का हो रही थी कि कहीं यह शिकार फंदा तोड़कर भाग न जाय। गायत्रीके रोने-धोनेपर उन्हें बड़ा क्रोध आ रहा था। जबतक गायत्री अपनी जगहपर खड़ी रोती रही, तबतक उन्हें आशा थी कि इस चोटकी दवा हो सकती है, लेकिन जब गायत्री जाकर विद्याके

पैरोंपर गिर पड़ी और दोनों बहिनें गले मिलकर रोने लगीं, तब वह अधीर हो गये। अब चुप रहना जीती-जिताई बाजीको हाथसे खोना, जालमें फंसे हुए शिकारको भगाना था। उन्होंने कर्कश स्वरसे विद्यासे कहा—तुमको बिना आज्ञा किसीके कमरेमें आनेका क्या अधिकार है ?

विद्या कुछ न बोली। गायत्रीने उसकी गर्दन और जोरसे पकड़ ली, मानों डूबनेसे बचनेका यही एकमात्र सहारा है।

ज्ञानशङ्करने और सरोष होकर कहा—तुम्हारे यहां आनेकी कोई जरूरत नहीं और तुम्हारा कल्याण इसीमें है कि तुम इसी दम यहांसे चली जाओ, नहीं तो मैं तुम्हारा हाथ पकड़कर बाहर निकाल देनेपर मजबूर हो जाऊंगा। तुम कई बार मेरे मार्गका कांटा बना चुकी हो, लेकिन अबकी बार मैं तुम्हें हमेशाके लिये रास्तेसे हटा देना चाहता हूं।

विद्याने तिउरियां बदलकर कहा—मैं अपनी बहिनके पास आयी हूं, जबतक वह मुझे जानेको न कहेगी, मैं न जाऊंगी।

ज्ञानशङ्करने गरजकर कहा—चली जा, नहीं तो अच्छा न होगा ?

विद्याने निर्भीकतासे उत्तर दिया—कभी नहीं, तुम्हारे कहनेसे नहीं।

ज्ञानशङ्कर क्रोधसे कांपते हुए तड़िद्वेगसे विद्याके पास आये और चाहा कि झपटकर उसका हाथ पकड़ लूं कि गायत्री खड़ी हो गयी और गर्वसे बोली—मेरी समझमें नहीं आता कि आप इतने क्रुद्ध क्यों हो रहे हैं ? यह मुझसे मिलने आयी है और मैं अभी न जाने दूंगी।

गायत्रीकी आंखोंमें अब भी आंसू थे, गला अभीतक थरथरा रहा था, सिसकियां ले रही थी, पर यह विगत जलोद्वेगके लक्षण थे, सूर्य निकल आया था। वह फिर अपने आपेमें आ चुकी थी, उसका स्वाभाविक अभिमान फिर जागृत हो गया था।

ज्ञानशङ्करने कहा—गायत्रीदेवी, तुम अपनेको बिल्कुल भूली जाती हो। मुझे अत्यन्त खेद है कि बरसों भक्ति और प्रेमकी वेदी-पर आत्मसमर्पण करके भी तुम ममत्वके बंधनोंमें जकड़ी हुई हो! याद करो, तुम कौन हो, सोचो मैं कौन हूं, और मेरा और तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? क्या तुम इस पवित्र सम्बन्धको इतना जीर्ण समझ रही हो कि उसे वायु और प्रकाशसे भी बचाया जाय? वह एक आध्यात्मिक सम्बन्ध है, अटल और अचल है, कोई पार्थिव शक्ति उसे तोड़ नहीं सकती। कितने शोककी बात है कि हमारे आत्मिक ऐक्यसे भलीभांति परिचित होकर भी तुम मेरी इतनी अवहेलना कर रही हो! क्या मैं यह समझ लूं कि तुम इतने दिनोंतक केवल गुड़ियोंका खेल खेल रही थी? अगर वास्तव-में यही बात है तो तुमने मुझे कहींका न रखा। मैं अपना तन और मन, धर्म और कर्म, सब प्रेमकी भेंट कर चुका हूं। मेरा विचार था कि तुमने भी खूब सोच समझकर प्रेमपथपर पग रक्खा है और उसकी कठिनाइयोंको जानती हो। प्रेमका मार्ग कठिन है, दुर्गम और अपार। यहां बदनामी है, कलङ्क है। यहां लोक-निन्दा और अपमान है, लाञ्छन है, व्यंग है। यहां वही धामपर पहुंचता है जो दुनियासे मुंह मोड़े, संसारसे नाता तोड़े। इस मार्गमें सांसारिक सम्बन्ध पैरोंकी बेड़ी है, उन्हें तोड़े बिना एक पग रखना भी असम्भव है। यदि तुमने परिणामका विचार नहीं किया और केवल मनोविनोदके लिये चल खड़ी हुई तो तुमने मेरे साथ घोर अन्याय किया। इसका अपराध तुम्हारी गर्दनपर होगा।

यद्यपि ज्ञानशङ्कर मनोभावोंको गुप्त रखनेमें सिद्धहस्त थे, पर इस समय उनका खिसियाया हुआ चेहरा उनके इस सारगर्भित प्रेमव्याख्याका परदा खोले देता था। मुलम्मेकी अंगूठी ताव खा चुकी थी।

इससे पहले ज्ञानशङ्करके मुंहसे यह बातें सुनकर कदाचित्

गायत्री रोने लगती और ज्ञानशङ्करके पैरोंपर गिर क्षमा मांगती, नहीं, बल्कि ज्ञानशङ्करको अभक्तिपर यह शब्द स्वयं उसके मुंहसे निकलते। लेकिन वह नशा हिरन हो चुका था। उसने ज्ञानशङ्करके मुंहकी तरफ उड़ती हुई निगाहोंसे देखा। भक्तिका रोगन न था। नटके लम्बे केश और भड़कीले वस्त्र उतर चुके थे। वह विशाल मुखश्री, जिसपर दर्शकगण लट्टू हो जाते थे, और जिसका रंगमञ्चपर करतल-ध्वनिसे स्वागत किया जाता था, क्षीण हो गयी थी। जिस प्रकार कोई सीधा-सादा देहाती एक बार ताशवालोंके दलमें आकर फिर उनके पास खड़ा भी नहीं होता कि कहीं उनके बहकावेमें न आ जाय, उसी प्रकार गायत्री भी यहांसे दूर भागना चाहती थी, उसने ज्ञानशङ्करको कुछ उत्तर न दिया और विद्याका हाथ पकड़े हुए द्वारकी ओर चली। ज्ञानशङ्करको ज्ञात हो गया कि मेरा मन्त्र न चला। उन्हें क्रोध आया, मगर गायत्रीपर नहीं, अपनी विफलता और दुर्भाग्यपर। शोक! मेरी सात वर्षोंकी अविश्रान्त तपस्यायें निष्फल हुई जाती हैं। जीवनकी आशायें सामने आकर रूठी जाती हैं। क्या करूं? उन्हें क्योंकर मनाऊं? मैंने अपनी आत्मापर कितना अत्याचार किया, कैसे-कैसे षड्यन्त्र रचे, इसी एक अभिलाषापर अपना दीन ईमान न्योछावर कर दिया, वह सब कुछ किया जो न करना चाहिये था, नाचना सीखा, नकलें कीं, स्वांग भरे, पर सारे प्रयत्न निष्फल हो गये। रायसाहबने सच कहा था कि सम्पत्ति तेरे भाग्यमें नहीं है। मेरा मनोरथ कभी न पूरा होगा। यह अभिलाषा चितापर मेरे साथ जलेगी। गायत्रीकी निठुरता भी कुछ कम हृदयविदारक न थी। ज्ञानशङ्करको गायत्रीसे सच्चा प्रेम न सही, पर वह उसके रूपलावण्यपर मुग्ध थे। उसकी प्रतिभा, उदारता, स्नेहशीलता, बुद्धिमत्ता और सरलता उन्हें अपनी ओर खींचती थी। अगर एक ओर गायत्री होती तो दूसरी ओर उसकी जायदाद, और ज्ञानशङ्करसे कहा जाता तुम इन दोनोंमेंसे जो चाहे ले लो, तो अवश्य-

स्भावी था कि वह उसकी जायदादहीपर लपकते, लेकिन उसकी जातसे अलग होकर उसकी जायदाद लवणहीन भोजनके समान थी। यही गायत्री उनसे मुंह फेरकर चली आती थी!

इन क्षोभयुक्त विचारोंने ज्ञानशङ्करके हृदयको इतना मसोसा कि उनकी आंखें भर आयीं। वह कुरसीपर बैठ गये और दीवारकी तरफ मुंह फेरकर रोने लगे। अपनी विवशतापर उन्हें इतना दुःख कभी न हुआ था। वे अपनी यादमें इतने शोकातुर कभी न हुए थे। अपनी स्वार्थपरता, अपनी इच्छालिप्सा, अपनी क्षुद्रतापर इतनी ग्लानि कभी न हुई थी। जिस तरह बीमारीमें मनुष्यको ईश्वर याद आता है, उसी तरह अकृतकार्य्य होनेपर उसे अपने दुस्साध्योंपर पश्चात्ताप होता है। पराजयका आध्यात्मिक महत्व विजयसे कहीं अधिक होता है।

गायत्रीने ज्ञानशङ्करको रोते देखा तो द्वारपर जाकर ठिठक गयी। उसके पग बाहर न पड़ सके। स्त्रियोंके आंसू पानी हैं, वे धैर्य्य और मनोबलके ह्रासके सूचक हैं। गायत्रीको अपनी निठुरता और अश्रद्धापर खेद हुआ। आत्मरक्षाकी अग्नि जो एक क्षण पहले प्रदीप्त हुई थी, इन आंसुओंसे बुझ गयी। वे भावनायें सजीव हो गयीं, जो सात बरसोंसे मनको लालायित कर रही थीं, वे सुखद वार्तायें, वे मनोहर क्रीड़ायें, वे आनन्दमय कीर्तन, वे प्रीतिकी बातें, वे वियोगकल्पनायें, नेत्रोंके सामने फिरने लगीं। लज्जा और ग्लानिके बादल फट गये, प्रेमका चांद चमकने लगा। वह ज्ञानशङ्करके पास आकर खड़ी हो गयी और रूमालसे उनके आंसू पोंछने लगी। प्रेमानुरागसे विह्वल होकर उसने उनका मस्तक अपनी गोदमें रख लिया। उन अश्रुप्लावित नेत्रोंमें उसे प्रेमका अथाह सागर लहरें मारता हुआ नजर आया, वह मुखकमल प्रेमसूर्य्यकी किरणोंसे विकसित हो रहा था। उसने उनकी तरफ सतृष्ण नेत्रोंसे देखा, उनमें क्षमाप्रार्थना भरी हुई थी, मानों वह कह रही थी, हा! मैं कितनी दुर्बल हूं, कितनी श्रद्धाहीन हूं,

कितनी जड़भक्त हूं, रूप और गुणका निरूपण न कर सकी। मेरी अभक्तिने इनके विशुद्ध और कोमल हृदयको कितना व्यथित किया होगा। तुमने मुझे धरतीसे उठाकर आकाशपर पहुंचाया, तुमने मेरे हृदयमें भक्तिका अङ्कुर जमाया, तुम्हारे ही सदुपदेशोंसे मुझे सत्प्रेमका स्वर्गीय आनन्द प्राप्त हुआ। एकाएक मेरी आंखोंपर परदा कैसे पड़ गया, मैं इतनी अंधी कैसे हो गयी? निस्सन्देह कृष्ण भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे थे, और मैं उसमें अनुत्तीर्ण हो गयी। उन्होंने मुझे प्रेम-कसौटीपर कसा और मैं खोटी नीकली। शोक! मेरी सात बरसोंकी तपस्या एक क्षणमें भङ्ग हो गयी। मैंने उस पुरुषपर सन्देह किया, जिसके हृदयमें कृष्णका निवास है, जिसके कण्ठमें मुरलीकी ध्वनि है। राधा! तुमने क्यों मेरे दिलपरसे अपना जादू खींच लिया? मेरे हृदयमें आकर बैठो और मुझे धर्मका अमृत पिलाओ।

यह सोचते-सोचते गायत्रीकी आंखें अनुरक्त हो गयीं। वह कम्पित स्वरसे बोली—भगवन्! तुम्हारी चेरी तुम्हारे सामने हाथ बांधे खड़ी अपने अपराधोंको क्षमा मांगती है।

ज्ञानशङ्करने उसे चुभती हुई दृष्टिसे देखा और समझ गये कि मेरे आंसू काम कर गये। इस तरह चौंक पड़े, मानों नींदसे जगे हों और बोले—राधा?

गायत्री—मुझे क्षमा दान दीजिये।

ज्ञान—तुम मुझसे क्षमा दान मांगती हो? यह तुम्हारा अन्याय है। तुम प्रेमकी देवी हो, वात्सल्यकी मूर्त्ति, निर्दोष, निष्कलङ्क। यह मेरा दुर्भाग्य है कि तुम इतनी अस्थिरचित्त हो। प्रेमियोंके जीवनमें सुख कहां? तुम्हारी अस्थिरताने मुझे संज्ञाहीन कर दिया है। मुझे अब भी भ्रम हो रहा है कि मैं गायत्रीदेवीसे बातें कर रहा हूं या राधा रानीसे। मैं अपने आपको भूल गया हूं। मेरे हृदयको ऐसा आघात पहुंचा है कि कह नहीं सकता, वह घाव कभी भरेगा या नहीं। जिस प्रेम और भक्तिको

मैंने अटल समझा था, वह बालूकी भीतसे भी ज्यादा पोली निकली। उसपर मैंने जो आशा-लता आरोपित की थी; जो बाग लगाया था, वह सब जलमग्न हो गया। अहा! मैं कैसे-कैसे मनोहर स्वप्न देख रहा था। सोचा था, यह प्रेम-वाटिका कभी फूलोंसे लहरायेगी, हम और तुम सांसारिक मायाजालको हटाकर, वृन्दावनके किसी शान्तिकुञ्जमें बैठे हुए, भक्तिका आनन्द उठायेंगे, अपनी प्रेम-ध्वनिसे वृक्ष-कुंजोंको गुंजित कर देंगे, हमारे प्रेमगानसे कालिन्दीकी लहरें प्रतिध्वनित हो जायंगी, मैं कृष्णका चाकर बनूंगा, तुम उनके लिये पकवान बनाओगी, संसारसे अलग, जीवनके अपवादोंसे दूर, हम अपनी प्रेमकुटी, बनायंगे, और राधाकृष्णकी अटल भक्तिमें जीवनके बचे हुए दिन काट देंगे। अथवा अपने ही कृष्णमन्दिरमें राधाकृष्णके चरणोंसे लगे हुए इस असार संसारसे प्रस्थान कर जायंगे। इसी सदुद्देश्यसे मैंने आपकी रियासतकी और यहांकी पूरी व्यवस्था की। पर अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह सब शुभ कामनायें दिलहीमें रहेंगी और शीघ्र ही संसारसे हताश और भग्नहृदय विदा हूंगा।

गायत्री प्रेमोन्मत्त होकर बोली—भगवन्! ऐसी बातें मुंहसे न निकालो। मैं दीन अबला हूं, अज्ञानके अन्धकारमें डूबी हुई मिथ्या भ्रममें पड़ जाती हूं, पर मैंने तुम्हारा दामन पकड़ा है, तुम्हारी शरणागत हूं, तुम्हें मेरी क्षुद्रतायें, मेरी दुर्बलतायें सभी क्षमा करनी पड़ेंगी। मेरी भी यही अभिलाषा है कि तुम्हारे चरणोंसे लगी रहूं। मैं भी संसारसे मुंह मोड़ लूंगी, सबसे नाता तोड़ लूंगी और तुम्हारे साथ बरसाने और वृन्दावनकी गलियोंमें विचरूंगी। मुझे अगर कोई सांसारिक चिन्ता है, तो वह यह है कि मेरे पीछे मेरे इलाकेका प्रबन्ध सुयोग्य हाथोंमें रहे, मेरी प्रजापर अत्याचार न हो, और रियासतकी आमदनी परमार्थमें लगे। मेरा और तुम्हारा निर्वाह दस बारह हजार रुपयों-

में हो जायगा। मुझे और कुछ न चाहिये, हां, यह लालसा अवश्य है कि मेरी स्मृति बनी रहे, मेरा नाम अमर हो जाय, लोग मेरे यश और कीर्तिकी चर्चा करते रहें। यही चिन्ता है जो अबतक मेरे पैरोंकी बेड़ी बनी हुई है, आप इस बेड़ीको काटिये। यह भार मैं आपहीके ऊपर रखती हूं। ज्यों ही आप इन दोनों बातोंकी व्यवस्था कर देंगे, मैं निश्चिन्त हो जाऊंगी और फिर यावज्जीवन हममें वियोग न होगा। मेरी तो यह राय है कि एक "ट्रस्ट" कायम कर दीजिये, मेरे स्वामीजीकी भी यह इच्छा थी।

ज्ञानशंकर—ट्रस्ट कायम करना तो आसान है, पर मुझे आशा नहीं है कि उससे आपका उद्देश्य पूरा हो। मैं पहले भी दो-एक बार ट्रस्टके विषयमें अपने विचार प्रकट कर चुका हूं। आप अपने विचारमें कितने ही निःस्पृह, सत्यवादी ट्रस्टियोंको नियुक्त करें, लेकिन अवसर पाते ही वह अपने घर भरनेपर उद्यत हो जायंगे। मानव स्वभाव बड़ा ही विचित्र है। आप किसीके विषयमें विश्वस्त रीतिसे नहीं कह सकतीं कि उसकी नीयत कभी डांवाडोल न होगी, वह सन्मार्गसे कभी विचलित न होगा। हम तो वृन्दावनमें बैठे होंगे, यहां प्रजापर नाना प्रकारके अत्याचार होंगे। कौन है जो उनकी फरियाद सुनेगा? सदाव्रतकी रकम नाच-मुजरेमें उड़ेगी, रासलीलाकी रकम गार्डेन-पार्टियोंमें खर्च होगी, मन्दिरकी सजावटके सामान ट्रस्टियोंके दीवानखानोंमें नजर आयेंगे, साधु-महात्माओंके सत्कारके बदले यारोंकी दावतें होंगी, आपको यशकी जगह अपयश मिलेगा। यों तो कहिये मैं आपका आज्ञापालन कर दूं, लेकिन ट्रस्टियोंपर मेरा जरा भी विश्वास नहीं है। आपका उद्देश्य उसी दशामें पूरा होगा, जब रियासत किसी ऐसे व्यक्तिके हाथोंमें हो, जो आपको अपना पूज्य समझता हो, जिसे आपसे श्रद्धा हो, जो आपका उपकार माने, जो दिलसे आपकी शुभेच्छाओंका आदर करता

हो, जो स्वयं आप हीके रंगमें रंगा हुआ हो, जिसके हृदयमें दया और प्रेम हो, और यह सब गुण उसी मनुष्यमें हो सकते हैं, जिसे आपसे पुत्रवत् प्रेम हो, जो आपको अपनी माता समझता हो अगर आपको ऐसा कोई लड़का नजर आये तो मैं सलाह दूंगा कि आप उसे गोद ले लीजिये। इससे उत्तम मुझे और कोई व्यवस्था नहीं सूझती। सम्भव है कुछ दिनों हमको उसकी देख-रेख करनी पड़े। किन्तु इसके बाद हम स्वच्छन्द हो जायंगे। तब हमारे आनन्द और विहारके दिन होंगे, मैं अपनी प्यारी राधाके गलेमें प्रेमका हार डालूंगा, उसे प्रेमके राग सुनाऊंगा। दुनिया-की कोई चिन्ता, कोई उलझन, कोई झोंका -हमारी शान्तिमें विघ्न न डाल सकेगा।

गायत्री पुलकित हो गयी। उस आदनन्दमय जीवनका दृश्य उसकी कल्पनामें सचित्र हो गया। उसकी तबीअत लहराने लगी। इस समय उसे अपने पतिकी वह वसीयत याद न रही, जो उन्होंने जायदादके प्रबन्धके विषयमें की थी, और जिसका विरोध करनेके लिये वह ज्ञानशङ्करसे कई बार गर्म हो पड़ी थी। वह ट्रस्टके गुण दोषपर स्वयं कुछ विचार न कर सकी। ज्ञानशङ्करका कथन निश्चयवाचक था। ट्रस्टपरसे उसका विश्वास उठ गया। बोली—आपका कहना यथार्थ है। ट्रस्टियोंका क्या विश्वास? आदमी किसीके मनमें तो पैठ नहीं सकता. अन्दरका हाल कौन जाने?

वह दो-तीन मिनटतक विचारमें मग्न रही। सोच रही थी कि ऐसा कौन लड़का है, जिसे मैं गोद ले सकूं। मन-ही-मन अपने सम्बन्धियों और कुटुम्बियोंका दिग्दर्शन किया, लेकिन यह समस्या हल न हुई। लड़के थे, एक नहीं अनेक, लेकिन किसी-न-किसी कारणसे वह गायत्रीको न जंचते थे। सोचते-सोचते सहसा वह चौंक पड़ी और मायाशङ्करका नाम उसकी जबानपर आते आते रह गया। ज्ञानशङ्करने अबतक अपनी मनोवाञ्छाको ऐसा गुप्त रखा था और अपने आत्मसम्मानकी ऐसी धाक बांध रखी थी

कि पहले तो मायाशङ्करकी ओर गायत्रीका ध्यान ही न गया और जब गया तो उसे अपना विचार प्रगट करते हुए भय होता था कि कहीं ज्ञानशङ्करके मर्य्यादाशील हृदयको चोट न लगे। हालां कि ज्ञानशङ्करका इशारा साफ था, पर गायत्रीपर इस समय वह नशा था जो शराब और पानीमें भेद नहीं कर सकता। उसने कई बार हिम्मत की कि यह जिक्र छेड़ूं, किन्तु ज्ञानशङ्करके चेहरेसे ऐसा निष्काम भाव झलक रहा था कि उसकी जबान न खुल सकी। मायाशङ्करको विचारशीलता, सच्चरित्रता, बुद्धिमत्ता आदि अनेक गुण उसे याद आने लगे। उससे अच्छे उत्तराधिकारीकी वह कल्पना भी न कर सकती थी। ज्ञानशङ्कर उसको असमञ्जसमें देखकर बोले—आया कोई लड़का ध्यानमें? गायत्री सकुचाती हुई बोली—जी हां, आया तो, पर मालूम नहीं आप भी उसे पसन्द करेंगे या नहीं! मैं इससे अच्छा चुनाव नहीं कर सकती।

ज्ञानशङ्कर—सुनूं, कौन है?

गायत्री—वचन दीजिये कि आप उसे स्वीकार करेंगे।

ज्ञानशङ्करके वक्षमें गुदगुदी होने लगी। बोले—बिना जाने-बूझे मैं यह वचन कैसे दे सकता हूं?

गायत्री—मैं जानती हूं कि आपको उसमें आपत्ति होगी और विद्या तो किसी प्रकार राजी ही न होगी, लेकिन इस बालकके सिवाय मेरी नजर और किसीपर पड़ती ही नहीं।

ज्ञानशंकर अपने मनोल्लासको छिपाते हुए बोले—सुनूं तो किसका भाग्यसूर्य उदय हुआ है?

गायत्री—बता दूं? बुरा न मानियेगा न?

ज्ञान—जरा भी नहीं, कहिये।

गायत्री—मायाशंकर।

ज्ञानशंकर इस तरह चौंक पड़े, मानों कानोंके पास कोई बन्दूक छूट गयी हो। विस्मित नेत्रोंसे देखा और इस भावसे बोले, मानों उसने दिल्लगी की है। मायाशंकर!

गायत्री—हां, आप वचन दे चुके हैं, मानना पड़ेगा।

ज्ञानशंकर—मैंने कहा था कि नाम सुनकर राय दूंगा। अब नाम सुन लिया और विवशतासे कहता हूं कि मैं आपसे सहमत नहीं हो सकता।

गायत्री—मैं यह बात पहलेहीसे जानती थी, पर मुझमें और आपमें जो सम्बन्ध है, उसे देखते हुए आपको आपत्ति न होनी चाहिये।

ज्ञानशंकर—मुझे स्वयं कोई आपत्ति नहीं है। मैं अपना सर्वस्व आपपर समर्पण कर चुका हूं, लड़का भी आपकी भेंट है, लेकिन आपको मेरी कुल-मर्य्यादाका हाल मालूम है। काशीमें इतना सम्मानित और कोई घराना नहीं है। सब तरहसे पतन होने-पर उसका गौरव अभीतक बचा हुआ है। मेरे चचा और अन्य सम्बन्धी इसे कभी मंजूर न करेंगे और विद्या तो सुनकर विष खानेपर उतारू हो जायगी। इसके अतिरिक्त मेरी बदनामी भी है। सम्भव है, लोग यह समझें, कि मैंने आपकी सरलता और उदा-रतासे अनुचित लाभ उठाया है और आपके कुटुम्बके लोग तो मेरी जानके गाहक ही हो जायेंगे।

गायत्री—मेरे कुटुम्बियोंकी ओरसे तो आप निश्चिन्त रहिये। मैं उन्हें आपसमें लड़ाकर मारूंगी, बदनामी और लोकनिन्दा आपको मेरी खातिरसे सहनी पड़ेगी। रही विद्या, उसे मैं मना लूंगी।

ज्ञान—नहीं, उससे यह आशा न रखिये। आप उसे मनाना जितना सुगम समझ रही हैं उससे कहीं कठिन है। आपने उसके तीवर नहीं देखे। वह इस समय सौतियाडाहसे जल रही है। उसे अमृत भी दीजिये, तो विष समझेगी। जबतक लिखापढ़ी न हो जाय और प्रथानुसार सब संस्कार पूरे न हो जायं, उसके कानोंमें इसकी भनक भी न पड़नी चाहिये। मगर यह तो सब होगा, उन लोगोंकी हाय किसपर पड़ेगी जो बरसोंसे रियासतपर

दांत लगाये बैठे हैं? उनके घरोंमें तो कुहराम मच जायगा। सब-के सब मेरे खूनके प्यासे हो जायंगे। यद्यपि मुझे उनसे कोई भय नहीं है, लेकिन शत्रुको कभी तुच्छ न समझना चाहिये। हम जिसकी धन और धरती छीन लें, उससे कभी निश्शंक नहीं रह सकते।

गायत्री—आप इन दुष्टोंका ध्यान ही न कीजिये। ये कुत्ते हैं, एक छीछड़ेपर लड़ मरेंगे।

ज्ञानशंकर कुछ देरतक मौनरूपसे जमीनकी ओर ताकते रहे, जैसे कोई महान् त्याग कर रहे हों। तब सजल नेत्रोंसे बोले, जैसी आपकी मरजी, आपकी आज्ञा सिरपर है। परमात्मासे यही प्रार्थना है कि यह लड़का आपको मुबारक हो, और उससे आप-की जो आशायें हैं, वह पूरी हों। ईश्वर उसे सद्बुद्धि प्रदान करे कि वह आपके आदर्शको चरितार्थ करे। वह आजसे मेरा लड़का नहीं, आपका लड़का है। यद्यपि अपने एकमात्र पुत्रको छातीसे अलग करते हुए दिलपर जो कुछ बीत रही है, वह मैं ही जानता हूं, लेकिन वृन्दावनविहारीने आपके अन्तःकरणमें यह बात डाल-कर मानों हमारे लिये भक्तिपथका द्वार खोल दिया है। वह हमें अपने चरणोंकी ओर बुला रहे हैं। यह हमारा परम सौभाग्य है।

गायत्रीने ज्ञानशंकरका हाथ पकड़कर कहा—कल ही किसी पण्डितसे शुभ मुहूर्त्त पूछ लीजिये।

५१

रातके आठ बजे थे। ज्ञानशंकरके दीवानखानेमें शहरके कई प्रतिष्ठित सज्जन जमा थे। बीचमें एक लोहेका हवनकुण्ड रखा हुआ था, उसमें हवन हो रहा था। हवनकुण्डकी एक तरफ गायत्री बैठी थी, दूसरी तरफ ज्ञानशंकर और माया। एक पंडित-जी वेदमंत्रका पाठ कर रहे थे। गायत्रीका चम्पई वर्ण अग्नि-ज्वालासे प्रतिबिम्बित होकर कुन्दन हो रहा था। फीरोजी रंगकी साड़ी उसपर खूब खिल रही थी। सबकी आंखें उसीके मुखदीपक-

की ओर लगी हुई थीं। यह मायाको गोद लेनेका संस्कार था, वह गायत्रीका धर्मपुत्र बन रहा था। कुछ सज्जन आपसमें काना-फूंसी कर रहे थे, कैसा भाग्यवान् लड़का है! लाखोंकी सम्पत्ति-का स्वामी बनाया जाता है, यहां आजतक कभी एक पैसा भी पड़ा हुआ न मिला। कुछ लोग कह रहे थे—ज्ञानशंकर एक ही बना हुआ आदमी है, ऐसा हत्थेपर चढ़ाया कि जायदाद लेहीकर छोड़ी, अब मालूम हुआ कि महाशयने यह स्वांग किस लिये रचा था, यह जटायें इसी दिनके लिये बढ़ायी थीं। कुछ सज्जनोंका मत था कि ज्ञानशंकर इससे भी कहीं मलिन-हृदय है।

लाला प्रभाशङ्करने पहले यह प्रस्ताव सुना तो बहुत बिगड़े, लेकिन जब गायत्रीने बड़ी नम्रतासे सारी परिस्थिति प्रकट की तो वह भी नीमराजीसे हो गये। हवनके पश्चात् दावत शुरू हुई। इसका सारा प्रबन्ध उन्हींके हाथोंमें था। उनकी अर्धस्वीकृतिको पूर्ण बनानेका इससे उत्तम कोई अन्य उपाय न था। उन्हें पूरा अधिकार दे दिया गया था कि वह जितना चाहें खर्च करें, जो पदार्थ चाह पकवायें। अतएव इस अवसरपर उन्होंने अपनी सम्पूर्ण पाककला प्रदर्शित कर दी थी। इस समय खुशीसे उनकी बाछें खुली जाती थीं, लोगोंके मुंहसे भोजनकी सराहना सुन-सुनकर फूले न समाते थे। इनमें कितने ही ऐसे सज्जन थे जिन्हें भोजनसे नितान्त अरुचि रहती थी, कुछ ऐसे थे जो दावतोंमें शरीक होना अपने ऊपर अन्याय समझते थे, ऐसे लोग भी थे जो प्रत्येक वस्तुको गिनकर और तौलकर खाते थे। पर इन स्वादयुक्त पदार्थोंने तीव्र और मन्द अग्निमें कोई भेद न रखा था। रुचिने दुर्बल पाचनशक्तिको भी सबल बना दिया।

दावत समाप्त हो गयी तो गाना शुरू हुआ। अलहदीन एक सात वर्षका बालक था, लेकिन गानशास्त्रका पूरा पण्डित

और संगीत-कलामें अत्यन्त निपुण। यह उसकी ईश्वरदत्त शक्ति थी। जलतरंग, ताऊस, सितार, सरोद, वीणा, पखावज, सारंगी—सभी यंत्रोंपर उसे विलक्षण आधिपत्य था। इतनी अल्पावस्थामें उसकी यह अलौकिक सिद्धि देखकर लोग विस्मित हो जाते थे। जिन गायनाचार्य्योंने एक-एक यन्त्रकी सिद्धिमें अपना जीवन बिता दिया, वह भी उसके हाथोंकी सफाई और कोमलतापर सिर धुनते थे। उसकी बहुज्ञता उनकी विशेषज्ञताको लज्जित कर देती थी। इस समय समस्त भारतमें उसकी ख्याति थी, मानों उसने दिग्विजय कर लिया हो। ज्ञानशङ्करने इस उत्सवपर उसे कलकत्तेसे बुलाया था। वह बहुत दुबल, कुत्सित, कुरूप बालक था, पर उसका गुण उसके रूपको भी चमत्कृत कर देता था। उसके स्वरमें कोयलकी कूककासा माधुर्य्य था। सारी सभा मुग्ध हो गयी।

इधर तो यह राग-रंग था, उधर विद्या अपने कमरेमें बैठी हुई भाग्यको रो रही थी। तबलेकी एक एक थाप उसके हृदयपर हथौड़ेकी चोटके समान लगती थी। वह एक गर्वशीला, धर्मनिष्ठा, सतोष और त्यागके आदर्शका पालन करनेवाली महिला थी। यद्यपि पतिकी स्वार्थभक्तिसे उसे घृणा थी, पर इस भावको वह अपनी पतिसेवामें बाधक न होने देती थी। पर जबसे उसने रायसाहबके मुंहसे ज्ञानशङ्करके नैतिक अधःपतनका वृत्तान्त सुना था तबसे उसकी पतिश्रद्धा क्षीण हो गयी थी। रातका लज्जास्पद दृश्य देखकर बची-खुची श्रद्धा भी जाती रही। जब ज्ञानशङ्करको रोते देखकर गायत्री दीवानखानेके द्वारतक आकर फिर उनके पास चली गयी तो विद्या वहां न ठहर सकी। वह उन्मादकी दशामें तेजीसे ऊपर आयी और अपने कमरेमें फर्शपर गिर पड़ी। यह ईर्षाका भाव न था, जिसमें अहित चिन्ता होती है; यह प्रीतिका भाव न था, जिसमें रक्तकी तृष्णा होती है; यह अपने आपको जलानेवाली आग थी, यह वह विद्या-

तक क्रोध था जो अपना ही ओठ चबाता है, अपना ही चमड़ा नोचता है, अपने ही अंगोंको दांतोंसे काटता है। वह भूमिपर पड़ी सारी रात रोती रही। अब मैं किसकी होकर रहूं ? मेरा पति नहीं, मेरा घर अब मेरा घर नहीं। मैं अब अनाथ हूं, कोई मेरा पूछनेवाला नहीं। ईश्वर! तुमने किस पापका मुझे दण्ड दिया ? मैंने तो अपने जानतेमें किसीका बुरा नहीं चेता, तुमने मेरा सर्वनाश क्यों किया ? मेरा सुहाग क्यों लूट लिया ? यही मेरे पास एक धन था, इसीका मुझे अभिमान था, इसीका मुझे बल था। तुमने मेरा अभिमान तोड़ दिया, मेरा बल हर लिया। जब भाग ही नहीं तो राख किस कामकी ? यह सुहागकी पेटारी है, यह सुहागकी डिबिया है, इन्हें लेकर क्या करूं ? विद्याने सोहागकी पेटारी ताकपरसे उतार ली और उसी आत्मवेदना और नैराश्यकी दशामें उसकी एक एक चीज निकाल कर खिड़कीसे नीचे बागमें फेंक दी। कितना करुणाजनक दृश्य था ? आंखोंसे अश्रु धारा बह रही थी और वह अपनी चूड़ियां तोड़-तोड़ जमीनपर फेंक रही थी। यह उसके निर्बल क्रोधकी चरम सीमा थी। वह एक ऐश्वर्य्यशाली पिताकी पुत्री थी, यहां उसे इतना आराम भी न था, जो उसके मैकेकी महरियोंको था, लेकिन उसके स्वभावमें संतोष और धैर्य्य था। अपनी दशासे संतुष्ट थी। ज्ञानशङ्कर स्वार्थसेवी थे, लोभी थे, निष्ठुर थे, कर्त्तव्यहीन थे, इसका उसे शोक था, मगर अपने थे। उनको समझानेका, उनका तिरस्कार करनेका उसे अधिकार था। उनकी दुष्टता, नीचता और भोगलिप्साका हाल सुनाकर उसके शरीरमें आगसी लग गयी थी। वह लखनऊसे कामिनी बनी हुई आयी। वह ज्ञानशङ्करपर तड़पना और उनकी कुप्रवृत्तियोंको भस्मीभूत कर देना चाहती थी, वह उन्हें व्यंग शरोंसे छेदना और कटु शब्दोंसे उनके हृदयको वेधना चाहती थी। इस वक्ततक उसे अपने सोहाग का अभिमान था। रातके आठ बजेतक वह ज्ञानशङ्करको अपना

समझती थी, अपनेको उन्हें कोसनेकी, उन्हें जलानेकी अधिकारिणी समझती थी, उसे उनको लज्जित, अपमानित करनेका हक था, क्योंकि वह अपने थे। हमसे अपने घरमें आग लगाते नहीं देखा जाता। घर चाहे मिट्टीका ढेर ही क्यों न हो, खंडहर ही क्यों न हो, हम उसे आगमें जलते नहीं देख सकते। लेकिन जब किसी कारणसे वह घर अपना न रहे, तो फिर चाहे अग्नि-शिखा आकाशतक जाय, हमको शोक नहीं होता। रातके निन्द्य, घृणित दृश्यने विद्याके दिलसे इस अपनेपनको, इस ममत्वको मिटा दिया। अब उसे दुःख था तो अपने अभाग्यका, शोक था तो अपनी अवलम्बहीनताका। उसकी दशा उस पतंगकी सी थी, जिसकी डोर टूट गयी हो, अथवा उस वृक्षकी सी, जिसकी जड़ कट गयी हो।

विद्या सारी रात इसी उद्विग्न दशामें पड़ी रही। कभी सोचती, लखनऊ चली जाऊं और वहीं जीवनक्षेप करूं, कभी सोचती, जीकर करना ही क्या है, ऐसे जीनेसे मरना कौन बुरा है? सारी रात आंखोंमें कट गयी। दिन निकल आया, लेकिन उसका उठनेका जी न चाहता था। इतनेमें श्रद्धा आकर खड़ी हो गयी और उसके श्रीहीन मुखकी ओर देखकर बोली—क्या आज सारी रात जागती रही? आंखें लाल हो रही हैं।

विद्याने आंखें नीचे करके कहा,—हां, आज नींद नहीं आयी।

श्रद्धा—गायत्रीदेवीसे कुछ बातचीत नहीं हुई? मुझे तो ढंग ही निराले दीखते हैं। तुम तो इनकी बड़ी प्रशंसा किया करती थीं।

विद्या—क्यों, कोई नयी बात देखी क्या?

श्रद्धा—नित्य ही देखती हूं। लेकिन रात जो दृश्य देखा और जो बातें सुनीं, वह कहते लज्जा आती है। कोई ग्यारह बजे होंगे। मुझे अपने कमरेमें पड़े-पड़े नीचे किसीके बोलचालकी आहट मिली। डरी, कि कहीं चोर न आये हों। धीरेसे उठकर नीचे गयी। दीवानखानेमें लैम्प जल रहा था। मैंने शीशेके अंदर

झांका, तो मनमें कटकर रह गयी। अब तुमसे क्या कहूं, मैं गायत्रीको इतना चंचल न समझती थी, कहां तो कृष्णको उपासना करती है, भक्तिन बनती है, कहां यह छिछोरापन! मैं तो उन्हें देखते ही मनमें खटक गयी थी, पर यह न जानती थी, कि इतने गहरे पानीमें हैं।

शिद्या—मैंने भी कुछ ऐसा ही तमाशा देखा था। तुम मेरे आनेके बहुत देर पीछे गयी थी। मुझे लखनऊहीमें सारी कथा मालूम हो गयी थी। इसी भयंकर परिणामको रोकनेके लिये मैं वहांसे दौड़ी आयी; किन्तु यहांका रंग देखकर हताश हो गयी। यह लोग अब मंझधारमें पहुंच चुके हैं, इन्हें बचाना दुस्तर है। लेकिन मैं फिर कहूंगी, कि इसमें गायत्री बहिनका दोष नहीं, सारी करतूत इन्हीं महाशयकी है, जो जटा बढ़ाये, पीताम्बर पहने भगतजी बने फिरते हैं। गायत्री बेचारी सीधी सादी, सरल स्वभावकी स्त्री है। धर्मकी ओर उसकी विशेष रुचि है; इसीलिये यह महाशय भी भगत बन बैठे और यह भेष धारण करके उसपर अपना मंत्र चलाया। ऐसा पापात्मा संसारमें न होगा! बहिन, तुमसे दिलकी बात कहती हूं, मुझे इनकी सूरतसे घृणा हो गयी। मुझपर ऐसा आघात हुआ है कि मेरा बचना मुश्किल है। इस घोर पापका दण्ड अवश्य मिलेगा। ईश्वर न करे, मुझे इन आंखों से कुलका सर्वनाश देखना पड़े। वह सोनेकी घड़ी होगी, जब संसारसे मेरा नाता टूटेगा।

श्रद्धा - किसीकी बुराई करना अच्छा तो नहीं है और इसीलिये मैं अबतक सब कुछ देखती हुई भी अंधी बनी रही, लेकिन अब बिना बोले नहीं रहा जाता, मेरा वश चले तो ऐसी कुटिलाओंका सिर कटवा लूं। यह भोलापन नहीं है, बेहयाई है। दिखानेके लिये भोली बनी बैठी हुई है। पुरुष हजार रसिया हो, हजार चतुर हो, हजार घातिया हो, हजार डोरे डाले, किन्तु सती स्त्रियोंपर उसका एक मंत्र भी नहीं चल सकता। वह आंख ही

क्या जो एक निगाहमें पुरुषके चाल ढालको ताड़ न ले। जलाना आगका गुण है, पर हरी लकड़ीको भी किसीने जलते देखा है? हया स्त्रियोंकी जान है, इसके बिना वह सूखी लकड़ी है जिन्हें आगकी एक चिनगारी जलाकर राख कर देती है। इसे अपने पतिदेवकी आत्मापर भी दया न आयी। उसे कितना क्लेश हो रहा होगा! इसके आनेसे मेरा घर अपवित्र हो गया। रातको दोनों प्रेमियोंकी वार्ताकी भनक जो मेरे कानमें पड़ी, उससे कुछ ऐसा मालूम होता है कि गायत्री मायाको गोद लेना चाहती है।

विद्याने भयभीत होकर कहा—मायाको?

श्रद्धा—हां, शायद आज उसकी तैयारी है। शहरमें नेवते भेजे जा रहे हैं।

विद्याकी आंखोंमें आंसूकी बड़ी बड़ी बूंदें दिखायी दीं, जैसा मटरकी फलीमें दाने होते हैं। बोली, बहिन, तब तो मेरी नाव डूब गयी। जो कुछ होना था वह हो चुका। अब सारी स्थिति समझमें आ गयी। इस धूर्तने इसीलिये यह जाल फैलाया था, इसीलिये इसने यह भेष रचा है, इसी नीयतसे इसने गायत्रीकी गुलामी की थी। मैं पहले ही डरती थी, कितना समझाया, कितना मना किया, पर इसने मेरी एक न सुनी। अब मालूम हुआ कि उसके मनमें क्या ठनी थी। आज सात सालसे यह इसी धुनमें पड़ा हुआ है। अभीतक मैं यही समझती थी कि इसे गायत्रीके रंग रूप, बनाव चुनाव, बातचीतने मोहित कर लिया है। वह निन्द्य कर्म होनेपर भी घृणाके योग्य नहीं है। जो प्राणी प्रेम कर सकता है, वह धर्म, दया, विनय, आदि सद्गुणोंसे शून्य नहीं हो सकता, प्रेमकी ज्योति उसके हृदयको प्रकाशित करती रहती है। लेकिन जो प्राणी प्रेमका स्वांग भरकर उससे अपना कुटिल अर्थ सिद्ध करता है, जो टट्टीकी आड़से शिकार खेलता है, उससे ज्यादा नीच नराधम कोई हो ही नहीं सकता। वह उस डाकूसे भी गया बीता है जो धनके लिये लोगोंके प्राण हर लेता है। वह



प्रेम जैसे पवित्र वस्तुका अपमान करता है। उसका पाप अक्षम्य है। मैं बेचारी गायत्रीको अब भी निर्दोष समझती हूं। बहिन, अब इस कुलका सर्वनाश होनेमें बिलम्ब नहीं है। जहां इतना अधर्म, इतना पाप, इतना छलकपट हो, वहां कल्याण कैसे हो सकता है? अब मुझे पिताजीकी चेतावनी याद आ रही है। उन्होंने चलते समय मुझसे कहा था—अगर तूने यह आग न बुझायी, तो तेरे वंशका नाम मिट जायगा। हाय! मेरे रोएं खड़े हो रहे हैं। बेचारे मायापर क्या बीतेगी! यह हरामका माल, यह हरामकी जायदाद उसकी जानकी गाहक हो जायगी, सर्प बनकर उसे डँस लेगी। बहिन, मेरा कलेजा फटा जाता है। मैं अपने मायाको इस आगसे क्योंकर बचाऊं? वह मेरी आंखोंकी पुतली है, वही मेरे प्राणोंका आधार है। यह निर्दयी पिशाच, यह वधिक मेरे लालकी गर्दन-पर छुरी चला रहा है। कैसे उसे गोदमें छिपा लूं? कैसे उसे हृदयमें बिठा लूं! बाप होकर उसको विष दे रहा है! पाप-का अग्निकुण्ड जलाकर मेरे लालको उसमें झोंक देता है। अपनी आंखोंसे यह सर्वनाश नहीं देख सकती। बहिन, तुमसे आज कहती हूं, मुन्नाके जन्मके बाद इस पापीने मुझे न जाने क्या खिलाकर मेरी कोख हर ली, न जाने कौनसा अनुष्ठान करा दिया। वही विष इसने पहले ही खिला दिया होता, वही अनु-ष्ठान पहले ही करा दिया होता तो आज यह दिन क्यों आता? बांझ रहना इससे कहीं अच्छा है कि संतान गोदसे छिन जाय। हाय, मेरे लालको कौन बचायेगा? मैं अब उसे नहीं बचा सकती। आगकी लहरें उसकी ओर दौड़ी चली आती हैं। बहिन, तुम आकर इस निर्दयीको समझाओ। अगर अब भी हो सके, तो मेरे मायाको बचा लो। नहीं, अब तुम्हारे बसकी बात नहीं है, यह पिशाच अब किसीके समझानेसे न मानेगा। इसने मनमें ठान लिया है तो आज ही सब कुछ कर डालेगा।

यह कहते कहते वह उठी और खिड़कीसे नीचे झांकी।

दीवानखानेके सामनेवाले सहनकी सफाई हो रही थी, दरियां झाड़ी जा रही थीं। उसकी आंखें मायाको खोज रही थीं, वह मायाको अपने हृदयसे चिमटाना चाहती थी। माया न दिखायी दिया। एक क्षणमें मोटर सहनमें आयी, गायत्री और ज्ञान-शङ्कर उसपर बैठे, माया भी एक मिनटमें दीवानखानेसे निकला और मोटरपर आ बैठा। विद्याने आतुरतासे पुकारा—माया, माया, यहां आओ, लेकिन या तो मायाने सुना ही नहीं, या सुनकर ध्यान ही नहीं दिया। वह खड़ी पुकारती ही रही और मोटर हवा हो गयी। विद्याको ऐसा जान पड़ा, मानों पानीमें पैर फिसल गये। वह तुरन्त पछाड़ खाकर गिर पड़ी। लेकिन श्रद्धाने संभाल लिया, चोट नहीं आयी।

थोड़ी देरतक विद्या मूर्च्छित दशामें पड़ी रही। श्रद्धा उस-का सिर गोदमें लिये बैठे रोती रही। मैं अपनेहीको अभागिनी समझती थी। इस दुखियाकी विपत्ति और भी दुस्सह है। किसी रीतिसे उन्हें (प्रेमशङ्करको) यह खबरें होतीं, तो वह अवश्य गायत्रीको समझाते। गायत्री उनका आदर करती है। शायद मान जाती। लेकिन इन महापुरुषके सामने उनकी भेंट भी तो गायत्रीसे नहीं हो सकती। इसी भयसे तो घरके बाहर निकल गये हैं, कि काममें कोई विघ्नबाधा न पड़े। कुछ नहीं, यह सब इसीकी भूल है। ज्योंही मैंने इससे गोद लेनेकी बात कही, इसे उसी क्षण बाहर जाकर दोनोंको फटकारना और माया-का हाथ पकड़कर खींच लाना चाहिये था। मजाल थी कि मेरे पुत्रको कोई मुझसे छीन ले जाता! सहसा विद्याने आंखें खोल दीं और क्षीण स्वरसे बोली—बहिन, अब क्या होगा?

श्रद्धा—होनेको अब भी कुछ हो सकता है। करनेवाला चाहिये।

विद्या—अब कुछ नहीं हो सकता। सब तैयारियां हो रही हैं। चाचाजी न जाने कैसे राजी हो गये।

श्रद्धा—मैं जरा जाकर कहारोंसे पूछती हूं कि कबतक आने-को कह गये हैं।

विद्या—शाम होनेके पहले यह लोग कभी न लौटेंगे। माया-को हटा देनेके लिये ही यह चाल चली गयी है। इन लोगोंने जो बात मनमें ठान ली है, वह होकर रहेगी। पिताजीका शाप मेरी आंखोंके सामने है। यह अनर्थ होना है और होगा।

श्रद्धा—जब तुम्हारी यही दशा है तो जो कुछ न हो जाय, वह थोड़ा है

विद्याने कुतूहलसे देखकर कहा—भला मेरी बसकी कौन-सी बात है?

श्रद्धा—बसकी बात क्यों नहीं है? अभी शामको जब यह लोग लौटें तो नीचे चली आओ और मायाका हाथ पकड़ कर खींच लाओ। वह न आवे तो सारी बातें खोलकर उससे कह दो। समझदार लड़का है, तुरन्त उधरसे उसका मन फिर जायगा।

विद्या—(सोचकर) और यदि समझानेसे भी न आवे? इन लोगोंने उसे खूब सिखा पढ़ा रखा होगा।

श्रद्धा—तो रातको जब शहरके लोग जमा हों, जाकर भरी सभामें कह दो, यह सब मेरी इच्छाके विरुद्ध है। मैं अपने पुत्रको गोद नहीं देना चाहती। लोगोंकी सब चालें पट पड़ जायें। तुम्हारी जगह मैं होती तो वह महनामथ मचते कि इनके दांत खट्टे हो जाते। क्या करूं मेरा कुछ अधिकार नहीं है, नहीं तो मैं इन्हें तमाशा दिखा देती!

विद्याने नैराश्यभावसे कहा—बहिन, मुझसे यह न होगा। मुझमें न इतना सामर्थ्य है न साहस। अगर और कुछ न हो, माया ही मेरी बातोंको टुलका दे तो उसी क्षण मेरा कलेजा फट जायगा। भरी सभामें जाना तो मेरे लिये असंभव है। उधर पैर ही न उठेंगे या उठ भी तो वहां जाकर जबान बन्द हो जायगी।

श्रद्धा—पता नहीं यह लोग किधर गये हैं। गायत्री एक क्षण-के लिये एकान्तमें मिल जाती तो एक बार मैं भी समझा देखती।

* * * * *

दीवानखानेमें आनन्दोत्सव हो रहा था। मास्टर अलहदीन-का अलौकिक चमत्कार लोगोंको मुग्ध कर रहा था। द्वारोंपर दर्शकोंकी भीड लगी हुई थी। सहनमें ठट-के-ठट कँगले जमा थे। मायाशङ्करको दिनभरके बाद मांकी याद आयी। वह आज आनन्दसे फूला न समाता था। जमीनपर पांव न पड़ते थे। दौड़कर काम कर रहा था। ज्ञानशङ्कर बार-बार कहते, तुम आरामसे बैठो, इतने आदमी तो हैं ही, तुम्हारे हाथ लगानेको क्या जरूरत है? पर उससे निठल्ले नहीं बैठा जाता था। कभी लैम्प साफ करने लगता, कभी खासदान उठा लेता। आज सारे दिन मोटरपर सैर करता रहा, लौटते ही पद्मशंकर और तेजशंकरसे सैरका वृत्तान्त सुनाने लगा, यहां गये, वहां गये, यह देखा, वह देखा। उसे अतिशयोक्तिमें बड़ा मजा आ रहा था। यहांसे छुट्टी मिली तो हवनपर जा बैठा, इसके बाद भोजमें सम्मिलित हो गया। जब गाना आरम्भ हुआ तो उसका चञ्चल चित्त स्थिर हुआ। सब लोग गाना सुननेमें तल्लीन हो रहे थे, उसकी बातें सुनने-वाला कोई न था। अब उसे याद आयी, अम्माको प्रणाम करने तो गया ही नहीं। ओहो! अम्मा मुझे देखते ही दौड़कर छातीसे लगा लेंगी, आशीर्वाद देंगी। मेरे इन रेशमी कपड़ोंकी खूब तारीफ करेंगी। यह ख्याली पोलाव पकाता, मुस्कुराता हुआ विद्याके कमरेमें गया। वहां सन्नाटा छाया हुआ था। एक धुंधली सी दीवालगीर जल रही थी। विद्या पलंगपर पड़ी हुई थी। मह-रियां नीचे गाना सुनने चली गयी थीं। लाला प्रभाशङ्करके घरकी स्त्रियोंको न बुलावा दिया गया था और न वे आयी थीं। श्रद्धा अपने कमरेमें बैठी हुई कुछ पढ़ रही थी। मायाने मांके समीप जाकर देखा—उसके बाल बिखरे हुए थे, आंखोंसे आंसू बह रहा

था, ओठ नीले पड़ गये थे, मुख निस्तेज हो रहा था। उसने घबराकर कहा—अम्मां, अम्मां! विद्याने आंखें खोलीं और एक मिनिटतक उसकी ओर टकटकी बांधकर देखती रही, मानों अपनी आंखोंपर विश्वास नहीं है। तब वह उठ बैठी, मायाको छातीसे लगाकर उसका सिर अञ्चलसे ढक लिया, मानों उसे किसी आघातसे बचा रही है, और उखड़े हुए स्वरमें बोली, आओ मेरे प्यारे लाल, तुम्हें आंखभर देख लूं। तुम्हारे ऊपर बहुत देरसे जी लगा हुआ था। तुम्हें लोग अग्निकुण्डकी ओर ढकेले लिये जाते थे। मेरी छाती धड़ धड़ करती थी। बार-बार पुकारती थी, लेकिन तुम सुनते ही न थे। भगवानने तुम्हें बचा लिया। वही दीनोंके रक्षक हैं। अब मैं तुम्हें न जाने दूंगी। यहीं मेरी आंखोंके सामने बैठो, मैं तुम्हें देखती रहूंगी—देखो, देखो, वह तुम्हें पकड़नेके लिये दौड़ा आता है, मैं किवाड़ बन्द किये देती हूं। तुम्हारा, बाप है, लेकिन उसे तुम्हारे ऊपर जरा भी दया नहीं आती। मैं किवाड़ बन्द कर देती हूं। तुम बैठे रहो।

यह कहते हुए वह द्वारकी ओर चली, मगर पैर लड़खड़ाये और अचेत होकर फर्शपर गिर पड़ी। माया उसकी दशा देखकर और उसकी बहकी बहकी बातें सुनकर थर्रा गया। मारे भयके वहां एक क्षण भी न ठहर सका। तीरके समान कमरेसे निकला और दीवानखानेमें आकर दम लिया। ज्ञानशङ्कर मेहमानोंके आदर सत्कारमें व्यस्त थे, उनसे कुछ कहनेका अवसर न था। गायत्री चिककी आड़में बैठी हुई सोच रही थी, इस अलहदीनको कीर्त्तनके लिये नौकर रख लूं तो अच्छा हो। मेरे मन्दिरकी सारे देशमें धूम मच जाय। मायाने आकर कहा—मौसीजी, आप चलकर जरा अम्मांको देखिये, न जाने कैसी हुई जाती हैं। उन्हें डेलिरियम सा हो गया है।

गायत्रीका कलेजा सन्नसे हो गया। वह विद्याके स्वभावसे परिचित थी। यह खबर सुनकर उससे कहीं ज्यादा शङ्का हुई,

जितनी सामान्य दशामें होनी चाहिये थी। वह कलसे विद्याके बदले हुए तीवर देख रही थी। रातकी घटना भी उसे याद आयी। वह जीनेकी ओर चली। माया भी पीछे पीछे चला। लेकिन इस कमरेमें इस समय कितनी ही चीजें इधर उधर बिखरी पड़ी थीं। गायत्रीने कहा—तुम यहीं बैठो, नहीं तो इनमेंसे एक चीजका भी पता न चलेगा। मैं अभी आती हूं। घबरानेकी कोई बात नहीं है, शायद उसे बुखार आ गया है।

गायत्री विद्याके कमरेमें पहुंची। उसका हृदय बांसों उछल रहा था। उसे वास्तविक अवस्थाका कुछ गुप्तज्ञानसा हो रहा था। उसने बहुत धीरेसे कमरेमें पैर रक्खा। धुन्धली दीवालगीर अब भी जल रही थी और विद्या द्वारके पास फर्शपर बेखबर पड़ी हुई थी। चेहरेपर मुर्दनी छायी हुई थी, आंखें बन्द थीं और जोर जोर-से सांस चल रही थी। यद्यपि खूब सर्दी पड़ रही थी, पर उसकी देह पसीनेसे तर थी। माथेपर स्वेद-बिन्दु झलक रहे थे, जैसे मुर्झाये हुए फूलपर ओसकी बूंद झलकती है। गायत्रीने लैम्प तेज करके विद्याको गौरसे देखा। ओठ नीले पड़ गये थे और हाथ पैर धीरे धीरे कांप रहे थे। उसने उसका सिर अपनी गोदमें रख लिया, अपना सुगन्धमें डूबा हुआ रूमाल निकाल लिया और उसके मुंहपर झलने लगी। प्रेममय शोकवेदनासे उसका हृदय विकल हो उठा। गला भर आया। बोली—विद्या, कैसा जी है?

विद्याने आंखें खोल दीं और गायत्रीको देखकर बोली—बहिन! इसके सिवा वह और कुछ न कह सकी। बोलनेकी बार बार चेष्टा करती थी, पर मुंहसे आवाज न निकलती थी। उसके मुखपर एक अतीव करूणाजनक दीनता छा गयी। उसने विवश दृष्टिसे फिर गायत्रीको देखा। आंखें लाल थीं, लेकिन उनमें उन्मत्तता या उग्रता न थी। उनमें आत्मज्योति झलक रही थी। वह विनय, क्षमा और शान्तिसे परिपूर्ण थीं। हमारी अन्तिम चितवनें

हमारे जीवनका सार होती हैं, निर्मल और स्वच्छ ईर्षा, और द्वेष जैसी मलिनताओंसे रहित। विद्याकी जबान बन्द थी, लेकिन आंखें कह रही थीं—मेरा अपराध क्षमा करना मैं थोड़ी देरकी मेहमान हूं, मेरी ओरसे तुम्हारे मनमें जो मलाल हो वह निकाल डालना। मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है। मेरे भाग्यमें जो कुछ बदा था वह हुआ, तुम्हारे भाग्यमें जो कुछ बदा है, वह होगा। मैं तुम्हें अपना सर्वस्व सौंप जाती हूं, उसकी रक्षा करना।

गायत्रीने रोते हुए कहा--विद्या, तुम कुछ बोलती क्यों नहीं? कैसा जी है, डाक्टर बुलाऊं?

विद्याने नैराश्यदृष्टिसे देखा और दोनों हाथ जोड़ लिये। आंखें फिर बन्द हो गयीं। गायत्री व्याकुल होकर नीचे दीवानखानेमें गयी और मायासे बोली—बाबूजीको ऊपर ले आओ। मैं जाती हूं, विद्याकी दशा अच्छी नहीं है।

एक क्षणमें ज्ञानशङ्कर और माया दोनों ऊपर आये। श्रद्धा भी हलचल सुनकर दौड़ी हुई आयी। ज्ञानशङ्करने विद्याको दो तीन बार पुकारा, पर उसने आंखें न खोलीं। तब उन्होंने अलमारीसे गुलाबका बोतल निकाला और उसके मुंहपर कई छींटे दिये। विद्याकी आंखें खुल गयीं, किन्तु पतिको देखते ही उसने ज़ोरसे चीख मारी। यद्यपि हाथ पांव अकड़े हुए थे, पर ऐसा ज्ञान पड़ा कि उनमें कोई विद्युतशक्ति दौड़ गयी। वह तुरन्त उठकर खड़ी हो गयी और दोनों हाथोंसे आंखें बन्द किये द्वारकी ओर चली। गायत्रीने उसे सम्भाला और पूछा—विद्या, पहचानती नहीं, बाबू ज्ञानशङ्कर हैं।

विद्याने सशङ्क और भयभीत नेत्रोंसे ज्ञानशङ्करको देखा और पीछे हटती हुई बोली—अरे! यह फिर आ गया! ईश्वरके लिये मुझे इससे बचाओ।

गायत्री—विद्या, तबीयतको जरा सम्भालो, तुमने कुछ खा तो नहीं लिया है? डाक्टरको बुलाऊं?

विद्या—मुझे इससे बचाओ, ईश्वरके लिये मुझे इससे बचाओ !

गायत्री—पहचानती नहीं हो, बाबूजी हैं।

विद्या—नहीं, नहीं, यह पिशाच है, इसके लम्बे लम्बे बाल हैं। वह देखो, दांत निकाले मेरी ओर दौड़ा आता है। हाय, हाय, इसे भगाओ, मुझे खा जायगा। देखो देखो, मुझे पकड़े लेता है, इसके सींग हैं, बड़े बड़े दांत हैं, बड़े बड़े नख हैं। नहीं, मैं न जाऊंगी। छोड़ दे दुष्ट, मेरा हाथ छोड़ दे। हाय! मुझे अग्निकुण्डमें झोंके देता है। अरे देखो, इसने मायाको पकड़ लिया। कहता है बलिदान दूंगा। दुष्ट, तेरे हृदयमें जरा भी दया नहीं है। उसे छोड़ दे, मैं चलती हूं, मुझे कुण्डमें झोंक दे, पर ईश्वरके लिये उसे छोड दे। यह कहते कहते विद्या फिर मूच्छित होकर गिर पड़ी। ज्ञानशङ्करने लज्जायुक्त चिन्तासे कहा—जहर खा लिया! मैं अभी डाक्टर प्रियनाथके यहां जाता हूं, शायद उनके यत्नसे अब भी इसके प्राण बच जायं। मुझे क्या मालूम था कि मायाको तुम्हारी गोदमें देनेका इसे इतना दुःख होगा। मैंने इसे आजतक न समझा। यह पवित्र आत्मा थी, देवी थी, मुझ जैसे लोभी, स्वार्थी मनुष्यके योग्य न थी।

यह कहकर वह आंखोंमें आंसू भरे चले गये। श्रद्धाने विद्याको उठाकर गोदमें ले लिया। गायत्री पंखा झलने लगी। माया खड़ा रो रहा था। कमरेमें सन्नाटा छाया हुआ था, वह सन्नाटा जो मृत्युस्थानके सिवाय और कहीं नहीं होता। सबकी सब विद्याको होशमें लानेका प्रयास कर रही थीं, पर मुंहसे कोई कुछ न कहता था। सबके दिलोंपर मृत्यु-भय छाया हुआ था।

आध घण्टेके बाद विद्याकी आंखें खुलीं। उसने चारों ओर सहमे हुए नेत्रोंसे देखकर इशारेसे पानी मांगा।

श्रद्धाने गुलाबजल और पानी मिलाकर कटोरा उसके मुंहसे लगाया। उसने पानी पीनेको मुंह खोला, लेकिन ओठ खुले रह

गये, अङ्गोंपर इच्छाका अधिकार न रहा था। एक क्षणमें आंखोंकी पुतलियां फिर गयीं।

श्रद्धा समझ गयी कि यह अन्तिम क्षण है। बोली—बहिन, किसीसे कुछ कहना चाहती हो, माया तुम्हारे सामने खड़ा है।

विद्याकी झुकी हुई आंखें श्रद्धाकी ओर फिरीं, आंसूकी चन्द बूंदें गिरी, शरीरमें कम्पन हुआ और दीपक बुझ गया।

एक सप्ताह पीछे मुन्नी भी हुडक हुड़ककर बीमार पड़ गयी। रात दिन अम्मां अम्मांकी रट लगाया करती। न कुछ खाती न पीती, यहांतक कि दवायें पिलानेके समय मुंह ऐसा बन्द कर लेती कि किसी तरह न खोलती। श्रद्धा गोदमें लिये पुचकारती, फुसलाती, पर सफल न होती। बेचारा माया गोदमें लिये उसके मुरझाये हुए मुंहकी ओर देखता और रोता। ज्ञानशङ्करको तो अवकाश न मिलता था, पर लाला प्रभाशंकर दिनमें कई कई बार डाक्टरके पास जाते, दवायें लाते, लड़कीका मन बहलानेके लिये तरह तरहके खिलौने लाते, पर मुन्नी उनकी ओर आंख उठाकर भी न देखती। गायत्रीसे उसे न जाने क्या चिढ़ थी! उसकी सूरत देखते ही रोने लगती। एक बार गायत्रीने गोदमें उठा लिया तो उसे दांतोंसे काट लिया। चौथे दिन उसे ज्वर हो आया और तीन दिन बीमार रहकर मातृप्रेमकी भूखी बालिका चल बसी।

विद्याके मरनेके पीछे विदित हुआ कि वह कितनी बहुप्रिय और सुशीला थी। मुहल्लेकी स्त्रियां श्रद्धाके पास आ आकर चार आंसू बहा जातीं। दिनभर उनका तांता लगा रहता। बड़ी बहू और उनकी बहू भी सच्चे दिलसे उसका मातम कर रही थी। उस देवीने अपने जीवनमें किसीको "रे" या "तू" नहीं कहा, महरियोंसे भी हँस हँस बातें करती, नसीबा चाहे खोटा था, पर हृदयमें दया थी, किसीका दुःख न देख सकती थी, दानशीला ऐसी थी कि किसी भूखे, भिखारी दुखियारेको द्वारसे फिरने न देती, धेलेकी

जगह पैसा और आधपावकी जगह पाव देनेकी नीयत रखती थी। गायत्री इन स्त्रियोंसे आंखें चुराया करती। अगर वह कभी आ पड़ती तो सबकी सब चुप हो जातीं और उसकी अवहेलना करतीं। गायत्री उनकी श्रद्धापात्री बननेके लिये उनके बालकोंको मिठाइयां और खिलौने देती, विद्याकी रो-रोकर चर्चा करती, पर उसका मनोरथ न पूरा होता था। यद्यपि कोई स्त्री मुंहसे कुछ न कहती थी, लेकिन उनके कटाक्ष व्यंगसे भी अधिक मर्मभेदी होते थे। एक दिन बड़ी बहूने गायत्रीके मुंहपर कहा—न जाने ऐसा कौन-सा कांटा था, जिसने उसके हृदयमें चुभकर जान ली, दूध-पूत सब कुछ भगवानने दिया था, पर इस कांटेकी पीड़ा न सही गयी। यह कांटा कौन था? इस विषयमें महिलाओंकी आंखें उनकी वाणीसे कहीं सशब्द थीं। गायत्री मनमें कटकर रह गयी।

वास्तवमें कुटुम्ब या मुहल्लेकी स्त्रियोंको विद्याके मरनेका जितना शोक था उससे कहीं ज्यादा गायत्रीको था। डाक्टर प्रियनाथने स्पष्ट कह दिया था कि इसने विष खाया है। लक्षणों से भी यही बात सिद्ध होती थी। गायत्री इस खूनसे अपना हाथ रंगा हुआ पाती थी। उसकी सगर्व आत्मा इस कल्पनाहीसे कांप उठती थी। वह अपनी निजकी महरियोंसे भी विद्याकी चर्चा करते झिझकती थी। मौतकी रातका दृश्य उसे कभी न भूलता था। विद्याकी वह क्षमाप्रार्थी चितवनें सदैव उसकी आंखोंमें फिरा करतीं। हां, यदि मुझे पहले मालूम होता कि उसके मनमें मेरी ओरसे इतना मिथ्या भ्रम हो गया है तो यह नौबत न आती। लेकिन फिर जब वह उसके पहलेवाली रातको घटनाओंपर विचार करती तो उसका मन स्वयं कहता था कि विद्याका सन्देह करना स्वाभाविक था। नहीं, अब उसे कितनी ही छोटी-छोटी बातें ऐसी भी याद आती थीं जो उसने विद्याका मनोमालिन्य देखकर केवल उसे जलाने और सुलगानेके लिये की

थीं। यद्यपि उस समय उसने वे बातें अपने पवित्र प्रेमकी तरङ्गमें की थीं, और विद्याहीके सामने नहीं, सारी दुनियाके सामने करनेपर तैयार थी, पर इन खूनके छीटोंसे वह नशा उतर गया था। उसका मन स्वयं स्वीकार करता था कि वह विशुद्ध प्रेम न था, अज्ञात रीतिसे उसमें वासनाका लेश आ गया था। विद्या मुझे देखकर सदय हो गयी थी, लेकिन ज्ञानशङ्करकी सूरत देखते ही उसका झिझकना, चीखना, चिल्लाना साफ कह रहा था कि उसने हमारे ही ऊपर जान दी। यह उसकी परम उदारता थी कि उसने मुझे निर्दोष समझा। इतने भयंकर उत्तरदायित्वका भार उसकी आत्माको कुचले देता था। शनैः शनैः इस भावका उसपर इतना प्राबल्य हुआ कि भक्ति और प्रेमसे उसे अरुचि होने लगी। उसके विचारमें यह दुर्घटना इस बातका प्रमाण थी कि हम भक्तिके ऊंचे आदर्शसे गिर गये, प्रेमके निर्मल जलमें तैरते हुए हम भोगके सेवारोंमें उलझ गये, मानों यह हमारी आत्माको सजग करनेके लिये देवप्रणीत चेतावनी थी। अब ज्ञानशङ्कर उसके पास आते तो उनसे खुलकर न मिलती। ज्ञानशङ्करने विद्याकी दाहक्रिया आप न की थी, यहांतक कि चितामें आग भी न दी थी। एक ब्राह्मणसे सब संस्कार कराये थे। गायत्रीको यह असज्जनता और हृदयशून्यता नागवार मालूम होती थी। उसकी इच्छा थी कि विद्याकी अन्त्येष्टि प्रथानुसार और यथोचित सम्मानके साथ की जाय. उसकी आत्माकी शांतिका अब यही एक उपाय था। उसने ज्ञानशङ्करसे इसका इशारा भी किया, पर यह टाल गये। अतएव वह उन्हें देखते ही मुंह फेर लेती थी, उन्हें अपनी वाणीका मन्त्र मारनेका अवसर न देती थी। उसे भय होता था कि उनकी यह उच्छृङ्खलता मुझे और भी बदनाम कर देगी। वह कमसे कम संसारकी दृष्टिमें इस हत्याके अपराध मुक्त रहना चाहती थी।

गायत्रीपर अब ज्ञानशङ्करके चरित्रके जौहर भी खुलने लगे।

उन्होंने उससे अपने सहकुटुम्बियोंकी इतनी बुराइयां की थीं कि वह उन्हें धैर्य और सहनशीलताकी मूर्ति समझती थी। पर यहां कुछ और ही बात दिखायी देती थी। उन्होंने प्रेमशङ्करको शोक सूचनातक न दी। लेकिन उन्होंने ज्योंही खबर पायी, तुरन्त दौड़े हुए आये और सोलह दिनोंतक नित्य प्रति आकर यथायोग्य संस्कारमें भाग लेते रहे। लाला प्रभाशङ्कर संस्कारोंकी व्यवस्था-में, ब्रह्मभोजमें, बिरादरीकी दावतमें ऐसे व्यस्त थे, मानों आपसमें कोई द्वेष ही नहीं। बड़ी बहूके व्यवहारसे भी सच्चो समवेदना प्रकट होती थी। लेकिन ज्ञानशङ्करके रंग ढंगसे साफ जाहिर होता था कि इन लोगोंका शरीक होना उन्हें नागवार है। वह उनसे दूर दूर रहते थे, उनसे बात करते तो रुखाईसे, मानों सभी उनके शत्रु हैं और इसी बहाने उनका अहित करना चाहते हैं। उस भोजके दिन उनकी लाला प्रभाशङ्करसे खासी झपट हो गयी। प्रभाशङ्कर आग्रह कर रहे थे कि मिठाइयां घर ही बनवायी जायं। ज्ञानशङ्कर कहते थे कि यह अनुपयुक्त है। संभव है, घरकी मिठाइयां अच्छी बनें, पर खर्च बहुत पड़ेगा। बाजारसे मामूली मिठाइयां मंगवायी जायं। प्रभाशङ्करने कहा, खिलाते हो तो ऐसे पदार्थ खिलाओ कि खानेवाले भी समझें कि कहीं दावत खायी थी। ज्ञानशङ्करने बिगड़कर कहा—मैं ऐसा अहमक नहीं हूं कि इस वाह-वाहके लिये अपना घर लुटा दूं। नतीजा यह हुआ कि बाजारसे सस्ते मेलकी मिठाइयां आयीं। ब्राह्मणोंने डरकर खाया तो, लेकिन सारे शहरमें निन्दा की।

गायत्रीको जो बात सबसे अप्रिय लगती थी, वह अपनी नज-रबन्दी थी। ज्ञानशङ्कर उसकी चिट्ठियां खोलकर पढ़ लेते, इस भयसे कि कहीं रायसाहबका कोई पत्र न हो। अगर वह प्रेमशङ्कर या लाला प्रभाशङ्करसे कुछ बातें करने लगती तो वह तुरन्त आकर बैठ जाते और ऐसी असंगत बातें करने लगते कि साधारण बात-चीत भी विवादका रूप धारण कर लेती थी। उनके व्यवहारसे

स्पष्ट विदित होता था कि गायत्रीके पास किसी अन्य मनुष्यका उठना बैठना उन्हें असह्य है। इतना ही नहीं, वह यथासाध्य गायत्रीको स्त्रियोंसे मिलने जुलनेका भी अवसर न देते। आत्माभिमान धार्मिक विषयोंमें लोकमतको जितना तुच्छ समझता है, लौकिक विषयोंमें लोकमतका उतना ही आदर करता है। गायत्रीको विद्याके हत्यापराधसे मुक्त होनेके लिये घर और मुहल्लेकी स्त्रियोंकी सहानुभूति आवश्यक जान पड़ती थी। वह अपने बर्तावसे, विद्याकी सुकीर्तिके बखानसे, यहांतक कि ज्ञानशङ्करकी निन्दासे भी यह उद्देश्य पूरा करना चाहती थी। षोड़शी और ब्रह्मभोजके बाद एक दिन उसने नगरकी कई कन्यापाठशालाओंका निरीक्षण किया और प्रत्येकको विद्याके नामपर पारितोषिक देनेके लिये रुपये दे आयी और यह केवल दिखावा ही नहीं था, विद्यासे उसे बहुत मुहब्बत थी, उसकी मृत्युका उसे सच्चा शोक था। विद्याको याद करके वह बहुधा एकान्तमें रो पड़ती, उसकी सूरत उसकी आंखोंसे कभी न उतरती थी। जब श्रद्धा और बड़ी बहू आदि विद्याकी चर्चा करने लगतीं तो वह अदबदाकर उनकी बात सुननेके लिये जा बैठती। उनके कटाक्ष और संकेतोंकी ओर उसका ध्यान नहीं जाता। ऐसे अवसरोंपर जब ज्ञानशङ्कर उसे रियासतके किसी कामके बहानेसे बुलाते तो उसे बहुत नागवार मालूम होता। वह कभी कभी झुंझलाकर कहती, जाकर कह दो, मुझे फुरसत नहीं है। जरा जरा सी बातोंमें मुझसे सलाह लेनेकी क्या जरूरत है? क्या इतनी बुद्धि भी ईश्वरने नहीं दी? रियासत! रियासत! उन्हें किसीके मरने जीनेकी परवा न हो, लेकिन सबके हृदय तो एकसे नहीं हो सकते। कभी कभी वह केवल ज्ञानशङ्करको चिढ़ानेके लिये श्रद्धाके पास घण्टों बैठी रहती। वह अब उनकी कठपुतली बनकर न रहना चाहती थी। उसकी गौरवशील प्रकृति स्वच्छन्द होनेके लिये तड़पती थी। वह इस बन्धनसे निकल भागना चाहती थी। एक दिन वह ज्ञानशङ्करसे कुछ कहे

बिना ही प्रेमशङ्करकी कृषिशालामें आ पहुंची और सारे दिन वहीं रही। एक दिन उसने लाला प्रभाशङ्कर और प्रेमशंकरकी दावत की और सारा जेवनार अपने हाथोंसे पकाया। लालाजीको भी उसके पाकनैपुण्यको स्वीकार करना पड़ा।

दो महीने गुजर गये। धीरे धीरे महिलाओंको गायत्रीपर विश्वास होने लगा। द्वेष और मालिन्यके परदे हटने लगे, उसके सम्मुख ऐसी ऐसी बातें होने लगीं, जिनकी भनक भी पहले उनके कानमें न पड़ने पाती थी। यहांतक कि वह इस समाजका एक प्रधान अंग बन गयी। यहां प्रायः नित्य ही ज्ञानशंकरकी चरित्र-चर्चा होती और फलतः उनका आदर गायत्रीके हृदयसे उठता जाता था। बड़ी बहू और उनकी बहू दोनों ज्ञानशंकरकी द्वेष-कथा कहने लगतीं तो उसका अन्त ही न होता था। श्रद्धा यद्यपि इतनी प्रगल्भा न थी, पर यह अनुमान करनेके लिये बहुत सूक्ष्मदर्शिताकी जरूरत न थी कि उसे भी ज्ञानशंकरसे विशेष स्नेह न था। ज्ञानशंकरकी संकीर्णता और स्वार्थपरता दिनों-दिन गायत्रीको विदित होने लगी। अब उसे ज्ञात होने लगा कि पिताजीने मुझे ज्ञानशंकरसे बचते रहनेकी जो ताकीद की थी उसमें भी कुछ न कुछ रहस्य अवश्य था। ज्ञानशंकरके प्रेम और भक्तिपरसे भी उसका विश्वास उठने लगा, उसे सन्देह होने लगा कि उन्होंने केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये तो यह स्वांग नहीं रचा! अब उसे कितनी ही ऐसी बातें याद आने लगीं जो इस सन्देहको पुष्ट करती थीं। ज्यों ज्यों यह सन्देह बढ़ता था, ज्ञानशंकरकी ओरसे उसका चित्त फिरता जाता था। ज्ञानशङ्कर गायत्रीके चित्तकी यह वृत्ति देखकर बड़े असमंजसमें रहते थे। उनके विचारमें इस मनोमालिन्यके शान्त करनेका सर्वोत्तम उपाय यही था कि गायत्रीको किसी प्रकार गोरखपुर खींच ले चलूं। लेकिन उससे यह प्रस्ताव करते हुए वह डरते थे, अपनी गोटी लाल करनेके लिये वह गायत्रीका एकान्त सेवन परमावश्यक

समझते थे। मायाशङ्करको गोद लेनेहीसे कोई विशेष लाभ न था। गायत्रीकी आयु ३५ वर्षसे अधिक न थी, और कोई कारण न था कि वह अभी ४५ वर्ष और जीवित रहे। यह लम्बा इन्तजार ज्ञानशङ्कर जैसे अधीर पुरुषके लिये असह्य था। इसलिये वे श्रद्धा और भक्तिका वही वशीकरण मन्त्र मारकर गायत्रीको अपनी मुट्ठीमें करना चाहते थे।

एक दिन वे एक पत्र लिये हुए गायत्रीके पास आकर बोले, गोरखपुरसे यह बहुत ज़रूरी ख़त आया है। मुख़तार साहबने लिखा है कि यह फ़सलके दिन हैं। आप लोगोंका आना ज़रूरी है, नहीं तो सीरकी उपज हाथ न लगेगी, नौकर चाकर सब खा जायेंगे।

गायत्रीने रुष्ट होकर कहा—इसका उत्तर तो मैं पीछे दूंगी, पहले यह बताइये, कि आप मेरी चिट्ठियां क्यों खोल लिया करते हैं?

ज्ञानशङ्कर सन्नाटेमें आ गये; समझ गये कि मैं इसकी आंखोंमें उससे कहीं ज्यादा गिर गया हूं, जितना मैं समझता हूं। बगलें झांकते हुए बोले—मेरा अनुमान था कि इतनी आत्मिक घनिष्ठताके बाद इस शिष्टाचारकी ज़रूरत नहीं रही। लेकिन आपको नागवार लगता है तो आगे ऐसी भूल न होगी।

गायत्रीने लज्जित होकर कहा—मेरा आशय यह नहीं था। मैं केवल यह चाहती हूं कि मेरी निजकी चिट्ठियां न खोली जाया करें।

ज्ञानशङ्कर—इस धृष्ठताका कारण यह था कि मैं अपनी आत्माको आपकी आत्मामें संयुक्त समझता था, लेकिन ऐसा ज्ञान पड़ता है कि इस घरके द्वेषपोषक जलवायुने हमारे बीचमें भी अन्तर डाल दिया। भविष्यमें ऐसा दुस्साहस न होगा। मालूम होता है कि मेरे कुदिन आये हैं, देखें क्या-क्या झेलना पड़ता है।

गायत्रीने बातका पहलू बदलकर कहा—मुखतार साहबको लिख दीजिये कि अभी हम लोग न आ सकेंगे, तहसील वसूल शुरू कर दें।

ज्ञान—मेरे विचारमें हम लोगोंका वहां रहना ज़रूरी है।

गायत्री—तो आप चले जायं। मेरे जानेकी क्या ज़रूरत है? मैं अभी यहां कुछ दिन और रहना चाहती हूं।

ज्ञानशङ्करने हताश होकर कहा—जैसी आपकी इच्छा। लेकिन आपके बिना वहां एक एक क्षण मुझे एक एक साल मालूम होगा। कृष्णमन्दिर तैयार ही है, वहां भजनकीर्तनमें जो आनन्द आयेगा वह यहां दुर्लभ है। मेरी इच्छा थी कि अबकी बरसात वृन्दावनमें कटती। इस आशापर पानी फिर गया। आप मेरे जीवन-पथके दीपक हैं, आप ही मेरे प्रेम और भक्तिके केन्द्र-स्थल हैं। आपके बिना मुझे अपने चारों ओर अन्धेरा दिखायी देगा। सम्भव है, कि पागल हो जाऊं।

दो महीने पहले ऐसी प्रेमरसपूर्ण बातें सुनकर गायत्रीका हृदय गद्गद् हो जाता, लेकिन इतने दिनों यहां रहकर उसे उनके चरित्रका पूरा परिचय मिल चुका था। वह साज जो बेसुरे अलापको भी रसमय बना देता था अब बन्द था। वह मन्त्रका प्रतिहार करना सीख गयी थी। बोली—यहां मेरी दशा उससे भी दुस्सह होगी, खोई खोई सी फिरूंगी, लेकिन करूं क्या? यहां लोगोंके हृदयको अपनी ओरसे साफ करना आवश्यक है। यह वियोगदुःख इसलिये उठा रही हूं, नहीं तो आप जानते हैं, यहां मनबहलावको क्या सामग्री है। देहपर अपना वश है, उसे यहां रक्खूगी, रहा मन, वह एक क्षणके लिये भी अपने कृष्णका दामन न छोड़ेगा। प्रेमस्थलमें हजारों कोसकी दूरी भी कोई चीज़ नहीं है, वियोगमें भी मिलापका आनन्द मिलता रहता है। हां, पत्र नित्यप्रति लिखते रहियेगा, नहीं तो मेरी जानपर बन आयेगी।

ज्ञानशङ्करने गायत्रीको भेदकी दृष्टिसे देखा। यह वह भोली भाली, सरला गायत्री न थी। वह अब त्रियाचरित्रमें निपुण हो गयी थी, दग़ाका जवाब दग़ासे देना सीख गयी थी। समझ गये कि अब यहां मेरी दाल न गलेगी। इस बाज़ारमें अब खोटे सिक्के न चलेंगे। यह बाज़ी जीतनेके लिये कोई नयी चाल चलनी पड़ेगी, नये क़िले बांधने पड़ेंगे। गायत्रीको यहां छोड़कर जाना शिकारको हाथसे खोना था। किसी दूसरे अवसरपर यह ज़िक्र छेड़नेका निश्चय करके वह उठे। सहसा गायत्रीने पूछा, तो कब-तक जानेका विचार है? मेरे विचारमें आपका प्रातःकालकी गाड़ीसे चला जाना अच्छा होगा।

ज्ञानशङ्करने दीनभावसे भूमिकी ओर ताकते हुए कहा—अच्छी बात है।

गायत्री—हां, जब जाना ही है तब देर क्यों कीजिये? जब-तक इस मायाजालमें फँसे हुए हैं तबतक तो यहांके राग अलापने ही पड़ेंगे।

ज्ञानशङ्कर—जैसी आज्ञा।

यह कहकर वह मर्माहत भावसे उठकर चले गये। उनके जानेके बाद गायत्रीको वही खेद हुआ जो किसी मित्रको व्यर्थ कष्ट देनेपर हमको होता है, पर उसने उन्हें रोका नहीं।

५३

श्रद्धा और गायत्रीमें दिन दिन मेलजोल बढ़ने लगा। गायत्रीको अब ज्ञात हुआ कि श्रद्धामें कितना त्याग, विनय, दया और सतीत्व है। मेलजोलसे उनमें आत्मीयताका विकास हुआ, एक दूसरीसे अपने हृदयकी बातें कहने लगी, आपसमें कोई परदा न रहा। दोनों आधी आधी राततक बैठी अपनी बीती सुनाया करतीं। श्रद्धाकी बीती प्रेम और वियोगकी करुण कथा थी, जिसमें आदिसे अन्ततक कुछ छिपानेकी जरूरत न थी। वह रो रोकर अपनी विरहव्यथाका वर्णन करती,

प्रेमशङ्करको निर्दयता और सिद्धान्तप्रेमका रोना रोती, अपनी टेकपर भी पछताती, कभी प्रेमशङ्करके सद्गुणोंको अभिमानके साथ चर्चा करती, अपनी कथा कहनेमें, अपने हृदयके भावोंको प्रकट करनेमें, उसे शान्तिमय आनन्द मिलता था। इसके विपरीत गायत्रीकी कथा प्रेमसे शुरू होकर आत्मग्लानिपर समाप्त होती थी। विश्वासके उद्गारमें भी उसे सावधान रहना पड़ता था, वह कुछ न कुछ छिपाने और दबानेपर मजबूर हो जाती थी। उसके हृदयमें कुछ ऐसे काले धब्बे थे जिन्हें दिखानेका उसे साहस न होता था, विशेषतः श्रद्धाको, जिसका मन और वचन एक था। वह उसके सामने प्रेम और भक्तिका जिक्र करते हुए शरमाती थी। वह जब ज्ञानशङ्करके उस दुस्साहसको याद करती जो उन्होंने रातको थियेटरसे लौटते समय किया था तब उसे मालूम होता था कि उस समय तक मेरा मन शुद्ध और उज्ज्वल था, यद्यपि वासनायें अङ्कुरित हो चली थीं। उसके बाद जो कुछ हुआ वह सब ज्ञानशङ्करको कामतृष्णा और मेरी आत्म-दुर्बलताका नतीजा था; जिसे मैं भक्ति कहती थी। ज्ञानशङ्करने केवल अपनी दुष्कामना पूरी करनेके लिये मेरे सामने भक्तिका यह रंगीन जाल फैलाया। मेरे विषयमें उनका वह लेख लिखना, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रमें मुझे आगे बढ़ाना, उनकी वह अविरल स्वामिभक्ति, वह तत्परता, वह आत्मसमर्पण, यह सब उनकी अभीष्टसिद्धिके यंत्र थे। मुझे मेरे अहंकारने डुबाया, मैं अपने ख्यातिप्रेमके हाथों मारी गयी। मेरा वह धर्मानुराग, मेरी वह विवेकहीन मिथ्या भक्ति, मेरे वह आमोद-प्रमोद, मेरी वह आवेशमयी कृतज्ञता, जिसपर मुझे अपने संयम और व्रतको बलिदान करनेमें लेशमात्र भी संकोच न होता था, केवल मेरे अहंकारकी क्रीड़ायें थीं। इस व्याधने मेरी प्रकृतिके सबसे मेद्य स्थानपर निशाना मारा। उसने मेरे व्रत और नियमको धूलमें मिला दिया, केवल अपने ऐश्वर्य्यप्रेमके हेतु मेरा

सर्वनाश कर दिया। स्त्री अपनी कुवृत्तिका दोष सदैव पुरुषके सिरपर रखती है, अपनेको वह दलित और आहत समझती है। गायत्रीके हृदयमें इस समय ज्ञानशङ्करका प्रेमालाप, वह मृदुल व्यवहार, वह सतृष्ण चितवनें तीरकी तरह लग रही थीं। वह कभी कभी शोक और क्रोधसे इतनी उत्तेजित हो जाती कि उसका जी चाहता कि उसने जैसे मेरे जीवनको भ्रष्ट किया है वैसे ही मैं भी उसका सर्वनाश कर दूं।

एक दिन वह इन्हीं उद्दण्ड विचारोंमें डूबी बैठी हुई थी कि श्रद्धा आकर बैठ गयी और उसके मुखकी ओर देखकर बोली—मुंह क्यों लाल हो रहा है? आंखोंमें आंसू क्यों भरे हैं?

गायत्री—कुछ नहीं, मन ही तो है।

श्रद्धा—मुझसे कहने योग्य नहीं है?

गायत्री—तुमसे छिपा ही क्या है, जो तुम पूछती हो। मैंने अपनी तरफसे छिपाया है, लेकिन तुम सब कुछ जानती हो। यहां कौन नहीं जानता है। उन बातोंको जब याद करती हूं तो ऐसी इच्छा होती है कि एक ही कटारसे अपनी और उसकी गर्दन काट डालूं। खून खौलने लगता है। मुझे जरा भी भ्रम न था कि इतना बड़ा धूर्त और पाजी है। बहिन, अब चाहे जो कुछ हो, मैं उससे अपनी आत्महत्याका बदला अवश्य लूंगी। मर्यादा तो यही कहती है कि विद्याकी भांति विष खाकर मर जाऊं, लेकिन यह तो उसकी मनकी बात होगी, वह अपने भाग्यको सराहेगा और दिल खोलकर विभवका भोग करेगा। नहीं, मैं यह मूर्खता न करूंगी! मैं उसे घुला घुलाकर और रटा रटाकर मारूंगी। मैं उसका सिर उस तरह कुचलूंगी, जैसे सांपका सिर कुचला जाता है। हा! मुझ जैसी अभागिनी संसारमें न होगी!

यह कहते-कहते गायत्री फूट-फूटकर रोने लगी। जरा दम लेकर फिर उसी प्रवाहमें बोली—श्रद्धा, तुम्हें विश्वास न आयगा, यह

मनुष्य पक्का जादूगर है। इसने मुझपर ऐसा मंत्र मारा कि मैं अपने को बिलकुल भूल गयी। मैं तुमसे अपनी सफाई नहीं कर रही हूं। वायुमण्डलमें नाना प्रकारके रोगाणु उड़ा करते हैं। उनका विष उन्हीं प्राणियोंपर असर करता है जिनमें उसके ग्रहण करनेका विकार पहलेहीसे मौजूद रहता है। मच्छरके डङ्कसे सबको ताप और जूड़ी नहीं आती। यह बाह्य उत्तेजना केवल भीतरके विकार को उभाड़ देती है। ऐसा न होता तो आज समस्त संसारमें एक भी स्वस्थ प्राणी न दिखायी देता। मुझमें यह विकृत पदार्थ था। मुझे अपने आत्मबलपर घमंड था, मैं ऐन्द्रिक भोगको तुच्छ समझती थी। इस दुरात्माने उसी दीपकसे, जिससे मेरे अन्धेरे घरमें उजाला था, घरमें आग लगा दी, जो तलवार मेरी रक्षा करती थी वही तलवार मेरी गर्दनपर चला दी। अब मैं वही तलवार उसकी गर्दनपर चलाऊंगी। वह समझता होगा कि मैं अबला हूं, निर्बल हूं, उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। लेकिन मैं दिखा दूंगी कि अबला पानीकी भांति द्रव होकर भी पहाड़ोंको छिन्न भिन्न कर सकती है। मेरे पूज्य पिता आत्मदर्शी हैं। उन्हें उसकी बुरी नीयत मालूम हो गयी थी, इसी कारण उन्होंने मुझे उससे दूर रहनेकी ताकीद की थी। उन्होंने अवश्य विद्यासे यह बात कही होगी। इसीलिये विद्या यहां मुझे सचेत करने आयी थी। लेकिन शोक! मैं नशेमें ऐसी चूर थी कि पिताजीकी चेतावनीकी भी कुछ परवा न की। इस धूर्तने मुझे उनकी नजरोंमें भी गिरा दिया। अब वह मेरा मुंह देखना भी न चाहेंगे।

गायत्री यह कहकर फिर शोकमग्न हो गयी। श्रद्धाकी समझमें न आता था कि इसे कैसे सान्त्वना दूं। अकस्मात् गायत्री उठ खड़ी हुई, सन्दूकचेसे कलम, दावात, कागज निकाल लायी और बोली, बहिन अब जो कुछ होना था हो चुका; इसके लिये जीवनपर्य्यन्त रोना है। विद्या देवी थी, उसने अपमानसे मर जाना अच्छा समझा। मैं पिशाचिनी हूं, मौतसे डरती हूं। लेकिन

अबसे यह जीवन त्याग और पश्चात्तापपर समर्पण होगा। मैं अपनी रियासतसे इस्तीफा दे देती हूं, मेरा उसपर कोई अधिकार नहीं है। तीन सालसे उसपर मेरा कोई हक नहीं है। मैं इतने दिनोंतक बिना अधिकार ही उसका उपभोग करती रही। यह रियासत मेरे पातिव्रत्य-पालनका उपहार थी। यह ऐश्वर्य और सम्पत्ति मुझे इसलिये मिली थी कि कुल-मर्य्यादाकी रक्षा करती रहूं, मेरी पतिभक्ति अचल रहे। वह मर्य्यादा कितने महत्त्वकी वस्तु होगी, जिसकी रक्षाके लिये मुझे करोड़ोंकी सम्पत्ति प्रदान की गयी। लेकिन मैंने उस मर्य्यादाको भङ्ग कर दिया, उस अमूल्य रत्नको अपनी विलासिताकी भेंट कर दिया। अब मेरा उस रियासतपर कोई हक नहीं है, उस घरमें पांव रखनेका भी मुझे स्वत्त्व नहीं, वहांका एक एक दाना मेरे लिये त्याज्य है, मैं इतने दिनों हरामके मालपर ऐश करती रही।

यह कहकर गायत्री कुछ लिखने लगी, लेकिन श्रद्धाने कागज उठा लिया और बोली—खूब सोच समझ लो, इतना उतावलापन अच्छा नहीं।

गायत्री—खूब सोच लिया है। मैं इसी क्षण यह मंगनीके वस्त्र उतार फेंकूंगी और किसी ऐसे स्थानपर जा बैठूंगी जहां कोई मेरी सूरत न देखे।

श्रद्धा—भला सोचो तो दुनिया क्या कहेगी, लोग भांति-भांतिकी मनमानी कल्पनायें करेंगे। मान लिया, तुमने इस्तीफा ही दे दिया, तो यह क्या मालूम है कि जिनके हाथोंमें रियासत जायगी वह उसका सदुपयोग करेंगे। अब तो तुम्हारे लोक और परलोककी भलाई इसीमें है कि शेष जीवन भगवतभजनमें काटो, तीर्थयात्रा करो, साधु-संतोंकी सेवा करो। सम्भव है कोई ऐसे महात्मा मिल जायें, जिनके उपदेशसे तुम्हारे चित्तको शान्ति हो। भगवानने तुम्हें धन दिया है। उससे अच्छे अच्छे काम करो, अनाथों और विधवाओंको पालो, धर्मशालाएं बनवाओ, तालाब

और कुएं खुदवाओ, भक्तिको छोड़कर ज्ञानपर चलो। भक्तिका मार्ग सीधा है, लेकिन कांटोंसे भरा हुआ है। ज्ञानका मार्ग टेढ़ा है, लेकिन साफ है।

श्रद्धाका ज्ञानोपदेश अभी समाप्त न होने पाया था कि एक महरीने आकर कहा—बहूजी, वह डिपटियाइन आई हैं जो पहले आया करती थीं। यहीं लिवा लाऊं?

श्रद्धा—शीलमणि तो नहीं हैं?

महरी—हां हां, वही हैं, सांवली। पहले तो गहनोंसे लदी रहती थीं, आज तो एक मुन्दरी भी नहीं है। बड़े आदमियोंका मन गहनेसे भी फिर जाता है।

श्रद्धा—हां, यहीं लिवा लाओ।

एक क्षणमें शीलमणि आकर खड़ी हो गयीं। केवल एक उजली साड़ी पहने हुई थीं। गहनोंका तो कहना ही क्या, अधरों-पर पानकी लाली भी न थी। श्रद्धा उठकर उनसे गले मिली और पूछा—सीतापुरसे कब आयीं?

शीलमणि—आज ही आयी हूं, और इसीलिये आयी हूं कि लाला ज्ञानशङ्करसे दो दो बातें करूं। जबसे बेचारी विद्याके विष खाकर जान देनेका हाल सुना है, कलेजेमें एक आग-सी सुलग रही है। यह सब उसकी उसी बहिनकी करामात है जो रानी बनी फिरती हैं। उसीने विष दिया होगा।

शीलमणिने गायत्रीकी ओर देखा न था और देखा भी हो तो पहचानती न थी। श्रद्धाने दांतों तले जीभ दबायी और छातीपर हाथ रखकर आंखोंसे गायत्रीको इशारा किया। शीलमणिने चौंककर बायीं तरफ देखा तो एक स्त्री सिर झुकाये बैठी हुई थी। उसकी प्रतिभा, सौन्दर्य्य और वस्त्राभूषण देखकर समझ गयी कि गायत्री यही है। उसकी छाती धकसे हो गयी। लेकिन उसके मुखसे ऐसी बातें निकल गयी थीं, जिनको फेरना या सम्भालना मुश्किल था। वह जलता हुआ ग्रास मुंहमें रख चुकी

थी और उसे निगलनेके सिवाय दूसरा उपाय न था। यद्यपि उसका क्रोध न्यायसंगत था, पर शायद गायत्रीके मुंहपर वह ऐसे कटु शब्द मुंहसे न निकाल सकती। लेकिन अब तीर कमानसे निकल चुका था, उसके क्रोधने हेकड़ीका रूप धारण किया, लज्जित होनेके बदले और उद्दण्ड हो गयी। गायत्रीकी ओर मुंह करके बोली—अच्छा, रानी साहेबा तो यहीं विराजमान हैं। मैंने आपके विषयमें जो कुछ कहा है वह आपको अवश्य अप्रिय लगा होगा, लेकिन उसके लिये मैं आपसे क्षमा नहीं मांग सकती। यही बातें मैं आपके मुंहपर कह सकती थी, और एक मैं क्या, संसार यही कह रहा है। मुंहसे चाहे कोई न कहे, किन्तु सबके मनमें यही बात है। लाला ज्ञानशङ्करसे जिसे एक बार भी पाला पड़ चुका है, वह इसे अग्राह्य नहीं समझ सकता। मेरे बाबूजी इनके साथके पढ़े हुए हैं, और इन्हें खूब समझते हैं। जब वह यहां मैजिस्ट्रेट थे तो इन्होंने अपने असामियोंपर इजाफा लगानेका दावा दायर किया था। महीनों मेरी खुशामद करते रहे कि मैं बाबूजीसे इनकी डिगरी करवा दूं। मैं क्या जानूं, इनके चकमेमें आ गयी। बाबूजी पहले तो बहुत आनाकानी करते रहे, लेकिन जब मैंने ज़िद की तो राजी हो गये। कुशल यह हुई कि इसी बीचमें मुझे इनके अत्याचारका हाल मालूम हो गया और डिगरी न होने पायी, नहीं तो कितने दीन असामियोंकी जानपर बन आती। दावा डिसमिस हो गया। इसपर यह इतने रुष्ट हुए कि समाचारपत्रोंमें लिख-लिखकर बाबूजीको बदनाम किया। हम जब पत्रोंमें इनके धर्मोत्साहकी खबरें पढ़ते थे तो कहते थे, यह महाशय जरूर कोई-न-कोई स्वांग रच रहे हैं। गोरखपुरमें सनातनधर्मके उत्सवपर जो धूमधाम हुई और बनारसमें कृष्णलीलाका जो नाटक खेला गया उनका वृत्तान्त पढ़कर बाबूजीने खेद करके कहा था, यह महाशय रानी साहेबको सब्ज बाग दिखा रहे हैं; इसमें

अवश्य कोई न कोई रहस्य है। लालाजी मुझे यहां मिल जाते तो ऐसा आड़े हाथों लेती कि वह भी याद करते।

गायत्री खिड़कीकी ओर ताक रही थी, यहांतक कि उसकी दृष्टिसे खिड़की भी लुप्त हो गयी। उसके अन्तःकरणसे पश्चात्ताप और ग्लानिकी लहरें उठ-उठकर कंठतक आती थीं और उसके नेत्ररूपी नौकाको झकोरे देकर लौट जाती थीं। वह संज्ञाहीन हो गई थी। सारी चैतन्य शक्तियां शिथिल हो गई थीं। श्रद्धाने उसके मुखकी ओर देखा, तो आंसू न रोक सकी। इस अभागिनी दुखियापर उसे कभी इतनी दया न आयी थी। वहां बैठनातक अन्याय था। वह और कुछ न कर सकी, शीलमणिको अपने साथ लेकर दूसरे कमरेमें चली गयी। वहां दोनोंमें देरतक बातचीत होती रही। श्रद्धा इस हत्याका सारा भार ज्ञानशङ्करके सिर रखती थी। शीलमणि गायत्रीको भी दोषका भागी समझती थी। दोनोंने अपने-अपने पक्षको स्थिर किया। अन्तमें श्रद्धाका पल्ला भारी रहा। इसके बाद शीलमणिने अपना वृत्तान्त सुनाया। संतानोत्पत्तिके निमित्त कौन कौनसे यत्न किये, किन-किन दाइयोंको दिखाया, किन-किन डाक्टरोंसे दवा करायी। यहांतक कि वह श्रद्धाको अपने गर्भवती हो जानेका विश्वास दिलानेमें सफल हो गयी। किन्तु महाशोक! सातवें महीने गर्भपात हो गया, सारी आशायें धूलमें मिल गयीं। श्रद्धाने सच्चे हृदयसे समवेदना प्रगट की। फिर कुछ देरतक इधर-उधरकी बातें होती रहीं। श्रद्धाने पूछा—अब डिप्टी साहबका क्या इरादा है?

शीलमणि—अब तो इस्तीफा देकर आये हैं और बाबू प्रेमशङ्करके साथ रहना चाहते हैं। उन्हें इनपर असीम भक्ति है। पहले जब इस्तीफा देनेकी चर्चा करते तो मैं समझती थी कामसे जी चुराते हैं। राजी न होती थी। लेकिन इन तीन वर्षोंमें मुझे अनुभव हो गया कि इस नौकरीके साथ आत्मरक्षा नहीं हो सकती। जातिके नेतागण प्रजाके उपकारके लिये जो उपाय करते

हैं, सरकार उसीमें विघ्न डालती है। उसे दवाना चाहती है, उसे भय होता है कि कहीं यहांके लोग इतने उन्नत न हो जायें कि उसका रोब न मानें। इसीलिये वह प्रजाके भावोंको दबानेके लिये, उनका मुंह बन्द करनेको नये-नये कानून बनाती रहती है। नेताओंने देशको दरिद्रताके चंगुलसे छुड़ानेके लिये चरखों और करघोंकी व्यवस्था की। सरकार उसमें बाधा डाल रही है। स्वदेशी कपड़ेका प्रचार करनेके लिये दूकानदारों और ग्राहकोंको समझाना अपराध ठहरा दिया गया है। नशेकी चीजोंका प्रचार कम करनेके लिये नशेवाज़ों और ठेकेदारोंसे कुछ कहना-सुनना भी अपराध है। अभी पिछले सालों जब यूरपमें लड़ाई हुई थी तो सरकारने प्रजासे कर्ज़ लिया। कहनेको तो कर्ज़ था, पर असलमें जबरी टैक्स था। अधिकारियोंने दीन दरिद्र प्रजापर नाना प्रकारके अत्याचार किये, तरह-तरहके दबाव डाले, यहांतक कि उन्हें अपने हल बैल बेचकर सरकारको क़र्ज़ देनेपर मजबूर किया। जिसने इन्कार किया, उसे या तो पिटवाया या कोई झूठा इलजाम लगाकर फंसा दिया। बाबूजीने अपने इलाकेमें किसीके साथ सख्ती नहीं की। कह दिया जिसका जी चाहे क़र्ज़ दे, जिसका न जी चाहे न दे। नतीजा यह हुआ कि और इलाकोंसे तो लाखों रुपये वसूल हुए, इनके इलाकेसे बहुत कम मिला। इसपर जिलेके हाकिमने नाराज होकर इनकी शिकायत कर दी। इनसे यह ओहदा छीन लिया गया। दर्जा घटा दिया गया। जब मैंने यह हाल देखा तो आपही जिद करके इस्तीफा दिलवा दिया। जब प्रजाकी कमाई खाते हैं तो प्रजाके फायदेहीका काम भी करना चाहिये। यह क्या कि जिसकी कमाई खायें उसीका गला दबायें। यह तो नमकहरामी है, घोर नीचता। यह तो वह करे जिसकी आत्मा मर गयी हो, जिसे पेट पालनेके सिवाय लोक-परलोककी कुछ भी चिन्ता न हो। जिसके हृदयमें जातिप्रेमका लेशमात्र है, वह ऐसे अन्याय नहीं कर सकता। भला तो होता

है सरकारका, रोब और बल तो उसका बढ़ता है, जेब तो अंग्रेज व्यापारियोंके भरते हैं और पापके भागी होते हैं यह पेटके बन्दे नौकर, यह स्वार्थके दास अधिकारी। और फिर हमें नौक-रीकी परवा ही क्या है? घरमें खानेको बहुत है दो-चारको खिलाकर खा सकते हैं। अब तो पक्का इरादा करके आये हैं कि यहीं बाबू प्रेमशङ्करके साथ रहें और अपनेसे जहांतक हो सके प्रजाकी भलाई करें। अब यह बताओ, तुम कबतक रूठी रहोगी? क्या इसी तरह रो-रोकर उम्र काटनेकी ठान ली है?

श्रद्धा—प्रारब्धमें जो कुछ है उसे कौन मिटा सकता है?

शील—कुछ नहीं, यह तुम्हारी व्यर्थकी टेक है, मैं अबकी तुम्हें घसीट ले चलूंगी, उस उजाड़में मुझसे अकेले क्योंकर रहा जायगा। हम और तुम दोनों रहेंगी तो सुखसे दिन कटेंगे। अव-सर पाते ही मैं उन महाशयकी भी ख़बर लूंगी। संसारके लिये तो जान देते फिरते हैं और घरवालोंकी खबर ही नहीं। ज़रासा प्रायश्चित्त करनेमें क्या शान घटी जाती है।

श्रद्धा—तुम अभी उन्हें जानती नहीं हो। वह सब कुछ करेंगे, पर प्रायश्चित्त न करेंगे। वह अपने सिद्धान्तको न तोड़ेंगे। तिस-पर भी वह मेरी ओरसे निश्चिन्त नहीं हैं। ज्ञानशङ्कर जबसे गोरखपुर रहने लगे, तबसे वह प्रायः रोज यहां एक बार आ जाते हैं। अगर काम पड़े तो उन्हें यहां रहनेमें भी आपत्ति न होगी। लेकिन अपने नियम उन्हें प्राणोंसे भी प्रिय हैं।

शीलमणिने आकाशकी तरफ देखा तो बादल घिर आये थे। घबराकर बोली—कहीं पानी न बरसने लगे। अब चलूंगी। श्रद्धाने उसे रोकनेकी बहुत चेष्टा की, लेकिन शीलमणिने न माना। आख़िर उसने कहा—ज़रा गायत्रीके पास चलकर उनके आंसू तो पोंछ दो। बेचारी तभीसे बैठी रो रही होगी।

शीलमणि—रोना तो उनके नसीबमें लिखा है। अभी क्या

रोयी है। ऐसे आदमीकी यही सज़ा है। नाराज़ होकर मेरा क्या बना लगी, रानी होंगी तो अपने घरकी होंगी।

शीलमणिको विदा करके श्रद्धा काँपती हुई गायत्रीके पास आयी। वह डर रही थी कि कहीं गायत्री मुझपर न सन्देह करने लगी हो कि सारी करतूत इसीकी है। उसने डरते-डरते अपराधीकी भांति कमरेमें कदम रक्खा। गायत्रीने प्रार्थी दृष्टिसे उसे देखा, पर कुछ बोली नहीं। बैठी हुई कुछ लिख रही थी। मुखपर शोकके साथ दृढ़ संकल्पकी झलक थी। कई मिनिटतक वह लिखनेमें ऐसी मग्न थी, मानो श्रद्धाके आनेका उसे ज्ञान ही न था। सहसा बोली—बहिन, अगर तुम्हें कष्ट न हो तो ज़रा मायाको बुला दो, मेरी महरियोंको भी पुकार लेना।

श्रद्धा समझ गयी कि इसके मनमें कुछ और ठन गयी। कुछ पूछनेका साहस न हुआ। जाकर माया और महरियोंको बुलाया। एक क्षणमें माया आकर गायत्रीके सामने खड़ा हो गया। महरियां बागमें झूला झूल रही थीं। भादोंका महीना था, घटा छायी थी। कजली बहुत सुहावनी लगती थी।

गायत्रीने मायाको सिरसे पांवतक देखकर कहा—तुम जानते हो कि किसके लड़के हो?

मायाने कुतूहलसे देखकर कहा—क्या इतना भी नहीं जानता?

गायत्री—मैं तुम्हारे मुंहसे सुना चाहती हूं, जिसमें मुझे मालूम हो जाय कि तुम मुझे क्या समझते हो?

माया पहले इस प्रश्नका आशय न समझता था। इतना इशारा पाकर सचेत हो गया। बोला—पहले लाला ज्ञानशङ्करका लड़का था, अब आपका लड़का हूं।

गायत्री—इसलिये तुम्हें प्रत्येक विषयमें ईश्वरके पीछे मेरी ही इच्छाको मान्य समझना चाहिये।

माया—निस्सन्देह।

गायत्री—बाबू ज्ञानशङ्करको तुम्हारे पालन-पोषण, शिक्षा दीक्षासे कोई सम्बन्ध नहीं है, यह मेरा अधिकार है।

माया—आपके ताकीदकी जरूरत नहीं, मैं स्वयं उनसे दूर रहना चाहता हूं। जबसे मैंने अम्मांको अन्तिम समय उनकी सूरत देखते ही चीखकर भागते देखा, तभीसे उनका सम्मान मेरे हृदयसे उठ गया।

गायत्री—तो तुम उससे कहीं ज्यादा चतुर हो, जितना मैं समझती थी। मैं आज बद्रीनाथकी यात्रा करने जा रही हूं। कुछ पता नहीं, कबतक लौटूं। मैं चाहती हूं कि तुम्हें बाबू प्रेमशङ्करकी निगरानीमें रखूं। यह मेरी आज्ञा है कि तुम उन्हें अपना पिता समझो और उनके अनुगामी बनो। मैंने उनके नाम यह पत्र लिख दिया है। इसे लेकर तुम उनके पास जाओ। वह तुम्हारी शिक्षाकी उचित व्यवस्था कर देंगे। तुम्हारी स्थितिके अनुसार तुम्हारे आराम और जरूरतकी आयोजना भी करेंगे। तुमको थोड़े ही दिनोंमें ज्ञात हो जायगा कि तुम अपने पितासे कहीं ज्यादा सुयोग्य हाथोंमें हो। संभव है कि लाला प्रेमशङ्करको तुमसे उतना प्रेम न हो जितना तुम्हारे पिताको है, लेकिन इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि तुम्हें अपने आनेवाले कर्त्तव्योंका पालन करनेके लिये जितनी क्षमता उनके द्वारा प्राप्त हो सकती है, तुम्हारे आचार विचार और चरित्रका जैसा उत्तम संगठन वह कर सकते हैं, कोई और नहीं कर सकता। मुझे आशा है कि वह इस भावको स्वीकार करेंगे। इसके लिये तुम और मैं दोनों ही उनके बाध्य होंगे। यह दूसरा पत्र मैंने बाबू ज्ञानशङ्करको लिखा है। मेरे लौटनेतक वह रियासतके मैनेजर रहेंगे। मैंने उन्हें ताकीद कर दी है कि बाबु प्रेमशङ्करके पास प्रति मास दो हजार रुपये भेज दिया करें। यह पत्र डाकखाने भिजवा दो।

इतनेमें चारों महरियां आयीं। गायत्रीने उनसे कहा—मैं

आज बद्रीनाथकी यात्रा करने जा रही हूं। तुममेंसे कौन मेरे साथ चलती है?

महरियोंने एक स्वरसे कहा—हम सबकी सब चलेंगी।

नहीं, मुझे केवल एककी जरूरत है। गुलाबी, तुम मेरे साथ चलोगी?

सरकार जैसा हुकुम दें। बालबच्चोंको महीनोंसे नहीं देखा है।

तो तुम घर जाओ, तुम चलोगी केसर?

कबतक लौटना होगा?

यह नहीं कह सकती।

मुझे चलनेमें कोई उजुर नहीं है, पर सुनती हूं वहांका पहाड़ी पानी बहुत लगता है।

तो तुम भी घर जाओ। तू चलेगी अनसूया?

सरकार, मेरे घर कोई मर्द मानुस नहीं है। घर चौपट हो रहा है। वहां चलूंगी तो छटांकभर दाना भी न मिलेगा।

तो तुम भी घर जाओ। अब तो तुम्हीं रह गयी राधा, तुमसे भी पूछ लूं, चलोगी मेरे साथ?

हां, सरकार चलूंगी।

आज ही चलना होगा।

जब सरकारका जी चाहे, चलें।

तुम्हें २० बीघे मुआफी मिलेगी।

तीनों महरियोंने लज्जित होकर कहा—सरकार, चलनेको हम सभी तैयार हैं। आपका दिया खाती हैं, तो साथ किसके रहेंगी।

नहीं, मुझे तुमलोगोंकी जरूरत नहीं। मेरे साथ अकेली राधा रहेगी। तुम कृतघ्न हो, तुमसे अब मेरा कोई नाता नहीं है।

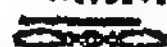
यह कहकर गायत्री यात्राकी तैयारी करने लगी। राधा

खड़ी देख रही थी, पर कुछ बोलनेका साहस न होता था। ऐसी दशामें आदमी अव्यवस्थित-सा हो जाता है। जरासी बातपर झुंझला पड़ता है, और जरासी बातपर प्रसन्न हो जाता है।

५४

बाबू ज्ञानशङ्कर गोरखपूर आये, लेकिन इस तरह जैसे लड़की ससुराल आती है। वह प्रायः शोक और चिन्तामें पड़े रहते। उन्हें गायत्रीसे सच्चा प्रेम न सही, लेकिन वह प्रेम अवश्य था जो शराबियोंको शराबसे होता है। उसके बिना उनका यहां जरा भी जी न लगता। सारे दिन अपने कमरेमें पड़े कुछ-न कुछ सोचते या पढ़ते रहते थे। न कहीं सैर करने जाते, न किसीसे मिलते जुलते। कृष्णमन्दिरको ओर भूलकर भी न जाते। उन्हें बार-बार यही पछतावा होता कि मैंने गायत्रीको बनारस जानेसे क्यों रोका? यह सब उसी भूलका फल है। श्रद्धा, प्रेमशङ्कर और बड़ी बहूने यह सारा विष बोया है, उन्होंने गायत्री-के कान भरे, मेरी ओरसे मन मैला किया। कभी कभी उन्हें उद्भ्रान्त वासनाओंपर भी क्रोध आता और वह इस नैराश्यमें प्रारब्धके कायल हो जाते थे। ईशेच्छा भी अवश्य कोई न कोई वस्तु है। नहीं तो क्या मेरे सारे खेल यों बिगड़ जाते? कोई चाल सीधी ही न पड़ती! धन-लालसाने मुझसे क्या क्या नहीं कराया! मैंने अपनी आत्माकी, कर्मकी नियमोंकी हत्या की, और एक सती साध्वी स्त्रीके खूनसे अपने हाथोंको रंगा, पर प्रारब्धपर विजय न पा सका। अभीष्टका मार्ग अवश्य दिखायी दे रहा है, पर मालूम नहीं, वहांतक पहुंचना नसीब होगा या नहीं। इस क्षोभ नैराश्यकी दशामें उन्हें बार बार गायत्रीकी याद आती, उसकी प्रतिमा-मूर्ति आंखोंमें फिरा करती, उसकी अनुरागमें डूबी हुई बातें कानोंमें गूंजने लगतीं, हृदयसे एक ठंढी आह निकल जाती।

ज्ञानशङ्करको अब नित्य यह धड़का लगा रहता था कि कहीं



गायत्री मुझे अलग न कर दे। वह चिट्ठियां खोलते रहते थे कि कहीं गायत्रीका कोई पत्र न निकल आये। उन्होंने उसको कई पत्र लिखे थे, पर एकका भी उत्तर न आया था। इससे उन्हें और भी उलझन होती थी। मायाशङ्करके पत्र अवश्य आते थे, पर इससे उन्हें शान्ति न मिलती थी। बनारसमें क्या हो रहा है, यह जाननेके लिये वह व्यग्र रहते थे, पर ऐसा कोई न था जो वहांके समाचार विस्तारपूर्वक उनको लिखता। कभी कभी वह स्वयं बनारस जानेका विचार करते, लेकिन डरते कि न जाने इसका क्या नतीजा हो। यहां तो उसकी आंखोंसे दूर पड़ा हूं। संभव है, कुछ दिनोंमें उसका क्रोध शान्त हो जाय। मुझे देखकर वह कहीं और भी अप्रसन्न हो जाय तो रही सही आशा भी जाती रहे।

इस भांति तीन-चार महीने बीत गये। भादोंका महीना था। जन्माष्टमी आ रही थी। शहरमें उत्सव मनानेकी तैयारियां हो रही थीं। कई वर्षोंसे गायत्रीके यहां यह उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाता था, दूर दूरसे गवैये आते थे, रासलीलाकी मण्डलियां बुलायी जाती थीं, रईसों और हाकिमोंको दावत दी जाती थी। ज्ञानशङ्करने समझा, गायत्रीको यहां बुलानेका यह बहुत ही अच्छा बहाना है। एक लम्बा पत्र लिखा और बड़े आग्रहके साथ उसे बुलाया। कृष्णमन्दिरकी सजावट होने लगी। लेकिन तीसरे ही दिन जवाब आया, मेरे यहां जन्माष्टमी न होगी, कोई तैयारी न की जाय, यह शोकका साल है, मैं किसी प्रकारका आनन्दोत्सव नहीं कर सकती, चाहे वह धार्मिक ही क्यों न हो! ज्ञानशङ्करके हृदयपर बिजली-सी गिर गयी! समझ गये कि यहांसे विदा होनेके दिन निकट आ गये। नैराश्यका रंग और भी गहरा हो गया। शङ्काने ऐसा उग्र रूप धारण किया कि डाकियेकी सूरत देखते ही उनकी छाती धड़-धड़ करने लगती थी, किसी बग्घी या मोटरकी आवाज सुनकर सिरमें चक्कर आ जाता था, कहीं गायत्री

न हो। रात और दिनमें बनारससे चार गाड़ियां आती थीं। यह ज्ञानशङ्करके लिये कठिन परीक्षाकी घड़ियां थीं। गाड़ियोंके आनेके समय उनकी नींद आप-ही आप खुल जाती थी। चार दिनतक उनकी यही हालत रही। पांचवें दिनकी डाकसे गायत्रीकी रजिस्टरी चिट्ठी आयी। सिरनामा देखते ही ज्ञानशङ्करके पांव तलेसे जमीन सरक गयी। निश्चय हो गया कि यह मुझे हटानेका परवाना है, नहीं तो रजिस्टरी चिट्ठी भेजनेकी क्या जरूरत थी? कांपते हुए हाथोंसे पत्र खोला। लिखा था—मैं आज बद्रीनाथ जा रही हूं, आप सावधानीसे रियासतका प्रबन्ध करते रहियेगा। मुझे आपके ऊपर पूरा भरोसा है, इसी भरोसेने मुझे यह यात्रा करनेपर उत्साहित किया है। इसके बाद वह आदेश था जिसका ऊपर जिक्र किया जा चुका है। ज्ञानशङ्करका चित्त कुछ शान्त हुआ। लिफाफा रख दिया और सोचने लगे। बात वही हुई जो वह चाहते थे। गायत्री सब कुछ उनके सिर छोड़कर चली गयी। यात्रा कठिन है, रास्ता दुर्गम है, पानी खराब है, इन विचारोंने उन्हें जरा देरके लिये चिन्तामें डाल दिया। कौन जानता है, क्या हो। वह इतने व्याकुल हुए कि एक बार जीमें आया, क्यों न मैं भी बद्रीनाथ चलूं? रास्तेमें भेंट हो ही जायगी। वहां तो कोई उसका कान भरनेवाला न होगा। सम्भव है मैं अपना खोया हुआ विश्वास फिर जमा लूं, प्रेमके बुझे हुए दीपकको फिर जला दूं, इस सन्दिग्ध दशाका अन्त हो जाय। गायत्रीके बिना अब उन्हें सब कुछ सूना मालूम होता था। यदि विपुल सम्पत्ति अगर सुख-सरिता थी तो गायत्री उसकी नौका थी। नौकाके बिना जलविहारका आनन्द कहां? पर थोड़ी ही देरमें उनका यह आवेग शांत हो गया। सोचा, अभी वह मुझसे भरी बैठी है, मुझे देखते ही जल जायगी। मेरी ओरसे उसका चित्त कितना कठोर हो गया है! मायाको मुझसे छीने लेती है। अपने विचारमें उसने मुझे कड़ेसे कड़ा दण्ड दिया है। ऐसी दशामें मेरे लिये सबसे सुलभ

यही है कि अपनी स्वामिभक्तिसे, सुप्रबन्धसे, प्रजाहितसे उसे प्रसन्न करूं। प्रेमशङ्करने अच्छा निशाना मारा। बगुलाभगत है, बैठे बैठे दो हजार रुपये मासिककी जागीर बना ली। बेचारा मायाशङ्कर कहींका न रहा। प्रेमशङ्कर उसे कुशल कृषक बना देंगे, लेकिन चतुर इलाकेदार नहीं बना सकते! उन्हें खबर ही नहीं कि रईसोंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये। खैर, जो कुछ हो, मेरी स्थिति इतनी शोचनीय नहीं है जितनी मैं समझता था।

ज्ञानशङ्करने अभीतक दूसरी चिट्ठियां न खोली थीं। अपने चित्तको यों समझाकर उन्होंने दूसरा लिफाफा उठाया, तो राय-साहबका पत्र था। उनके विषयमें ज्ञानशङ्करको केवल इतना मालूम था कि विद्याके देहान्तके बाद वह अपनी दवा करानेके लिये मंसूरी चले गये हैं। पत्र खोलकर पढ़ने लगे—

बाबू ज्ञानशङ्कर, आशीर्वाद। दो एक महीने पहले मेरे मुंहसे तुम्हारे प्रति आशीर्वादका शब्द न निकलता, किन्तु अब मेरे मनकी वह दशा नहीं है। ऋषियोंका वचन है कि बुराईसे भलाई पैदा होती है। मेरे हकमें यह वचन अक्षरशः चरितार्थ हुआ, तुम मेरे शत्रु होकर मेरे परम मित्र निकले। तुम्हारी बदौलत मुझे आज यह शुभ अवसर मिला। मैं अपनी दवा करानेके लिये मंसूरी आया। लेकिन यहां मुझे वह वस्तु मिल गयी, जिसपर मैं ऐसे सैकड़ों जीवन न्योछावर कर सकता हूं। मैं भोग-विलासका भक्त था, मेरी समस्त प्रवृत्तियां जीवनका सुख भोगनेमें लिप्त थीं। लोकपरलोककी चिन्ताओंको मैं अपने पास न आने देता था। यहां मुझे एक दिव्य आत्माके सत्सङ्गका सौभाग्य प्राप्त हो गया और अब मुझे ज्ञात हो रहा है कि मेरा सारा जीवन नष्ट हो गया। मैंने योगका अभ्यास किया, शिव और शक्तिकी आराधना की, अपनी आकर्षणशक्तिको बढ़ाया, यहांतक कि मेरी आत्मा विद्युत-का भाण्डार हो गयी। पर इन सारी क्रियाओंका उद्देश्य केवल वासनाओंकी तृप्ति थी। कभी कभी भोगके आनन्दमें मग्न होकर

मैं समझता था, यही आत्मिक शान्ति है। पर अब ज्ञात हो रहा है कि मैं भ्रमजालमें फंसा हुआ था। उसी अज्ञानकी दशामें अपनेको आत्मज्ञानी समझता हुआ मैं संसारसे प्रस्थान कर जाता, लेकिन तुमने वैद्यकी तलाशमें घरसे बाहर निकाला और दैवयोगसे शारीरिक रोगोंके वैद्यकी जगह मुझे आत्मिक रोगोंका वैद्य मिल गया। मेरे हृदयसे तुम्हारे कल्याणकी प्रार्थना निकलती है। लेकिन याद रखो, मेरी शुभकामनाओंसे तुम्हारा जितना हित होगा उससे कहीं ज्यादा अहित गायत्रीकी ठण्डी सांसोंसे होगा। विद्याके आत्मघातने उसे सचेत कर दिया है। ऐसी दशामें अन्य स्त्रियां प्रसन्न होतीं, लेकिन गायत्रीकी आत्मा सम्पूर्णतः निर्जीव नहीं हुई थी, उसने तुम्हारे मन्त्रको विफल कर दिया। तुम्हारा अन्तःकरण अब गायत्रीके लिये खुला हुआ पृष्ठ है। तुम उसकी शापाग्निसे किसी तरह नहीं बच सकते। तुम्हें जल्द ही अपनी तृष्णाओंको लिये ही संसारसे जाना पड़ेगा। अतएव मुनासिब है कि तुम अपने जीवनके गिने गिनाये दिन आत्मशुद्धिमें व्यतीत करो। तुम्हारे कल्याणका यही मार्ग है। मैं अपनी कुल जायदाद मायाशङ्करको देता हूं। वह होनहार बालक है और कुलको उज्ज्वल करेगा। उसके वयस्कत्वतक तुम रियासतका प्रबन्ध करते रहो। मुझे अब उससे कोई प्रयोजन नहीं है।

यह पत्र पढ़कर ज्ञानशंकरके मनमें हर्षकी जगह एक अव्यक्त शङ्का उत्पन्न हुई। वह भविष्यवाणीके कायल न थे, लेकिन ऐसे पुरुषके मुंहसे अनिष्टकी बात सुनकर, जिसके त्यागने उसके आत्मज्ञानी होनेमें कोई सन्देह न रखा हो, उनका हृदय कातर हो गया। इस समय उनके जीवनकी चिर-सिंचित अभिलाषा पूरी हुई थी। उन्हें स्वप्नमें भी यह आशा न थी कि मैं इतनी जल्द रायसाहबकी विपुल सम्पत्तिका स्वामी हो जाऊंगा। नहीं, वह उसकी ओरसे निराश हो चुके थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि रायसाहब उसे किसी ट्रस्टके हवाले कर जायंगे। यह सब

शङ्कायें मिथ्या निकलीं। लेकिन तिसपर भी इस पत्रसे उन्हें वही दुश्शंका हुई, जो किसी स्त्रीको अपनी बाईं आंख फड़कनेसे होती है। उनकी दशा इस समय उस मनुष्यकी-सी थी, जिसे डाकुओंकी कैदमें मिठाइयां खानेको मिलें, सूखे ठूंठका कुसुमित होना किसे आशंकित न कर देगा। वह एक घंटेतक चिन्तामें डूबे बैठे रहे। इसके बाद वह कृष्णमन्दिरमें गये और बड़े उत्साहसे जन्माष्टमीके उत्सवकी तैयारियां करने लगे।

ज्ञानशंकरके जीवनाभिनयमें अबसे एक नये दृश्यका सूत्रपात हुआ, पहलेसे कहीं ज्यादा शुभ्र, मंजु और सुखद। अभी दस मिनट पहले उनकी आशानौका मंझधारमें पड़ी चक्कर खा रही थी, पर देखते देखते लहरें शान्त हो गयीं। वायु अनुकूल हो गयी और नौका तटपर आ पहुंची, जहां दृष्टिकी परम सीमातक निधियोंका भव्य विस्तृत उपवन लहरा रहा था।

५५

बाबू ज्वालासिंहको बनारस आये आज दूसरा दिन था। कल तो वह थकनेके मारे दिनभर पड़े रहे, पर प्रातःकाल ही उन्होंने लखनपुरवालोंकी अपीलका प्रश्न छेड़ दिया। प्रेमशङ्करने कहा—मैं तो आपहीकी बाट जोह रहा था। पहले मुझे प्रत्येक काममें अपने ऊपर विश्वास होता था, पर आपका सहायक पाकर मुझे पग-पगपर आपके सहारेकी इच्छा होती है। अपने ऊपरसे विश्वास ही उठ गया। आपके विचारमें अपील करनेके लिये कितने रुपये चाहिये?

ज्वालासिंह—ज्यादा नहीं तो चार-पांच हजार तो अवश्य ही लग जायेंगे।

प्रेम—और मेरे पास चार-पांच सौ भी नहीं।

ज्वाला—इसकी कोई चिन्ता नहीं। आपके नामपर दस-बीस हजार मिल सकते हैं।

प्रेम—मैं ऐसा कौनसा जातिका नेता हूं, जिसपर लोगोंको इतनी श्रद्धा होगी?

ज्वाला—जनता आपको आपसे अधिक समझती है। मैं आज ही चन्दा वसूल करना शुरू कर दूंगा।

प्रेम—मुझे आशा नहीं कि आपको इसमें सफलता होगी। संभव है, दो-चार सौ रुपये मिल जायें, लेकिन लोग यही समझेंगे कि इन्होंने भी कमानेका यह ढग निकाला। चन्देके साथ ही लोगोंको संदेह होने लगता है। आप तो देखते ही हैं, चन्दोंने हमारे कितने ही श्रद्धेय नेताओंको बदनाम कर दिया। ऐसा विरला ही कोई मनुष्य होगा, जो चन्दोंके भवरमें पड़कर बेदाग निकल गया हो। मेरे पास श्रद्धाके कुछ गहने अभी बचे हुए हैं। अगर वह सब बेच दिये जायं तो शायद हजार रुपये मिल जायं।

इतनेमें शीलमणि इन लोगोंके लिये नाश्ता लायी। यह बात उसके कानोंमें पड़ी। बोली—कभी उनकी सुधि भी लेते हैं या गहनोंपर हाथ साफ करना ही जानते हैं? अगर ऐसी ही जरूरत हो तो मेरे गहने ले जाइये।

ज्वाला—क्यों न हो, आप ऐसी ही दानी तो हैं। एक एक गहनेके लिये तो आप महीनों रूठती हैं, उन्हें लेकर कौन अपनी जान गाढ़ेमें डाले?

शील—जिस आगसे आदमी हाथ सेंकता है, क्या काम पड़नेपर उससे अपने चने नहीं भुन लेता। स्त्रियां गहनोंपर प्राण देती हैं, लेकिन अवसर पड़नेपर उतार भी फेंकती हैं।

मायाशङ्कर एक तरफ अपनी किताब खोले बैठा हुआ था, पर उसका ध्यान इन्हीं बातोंकी ओर था। एक कल्पना बार-बार उसके मनमें उठ रही थी, पर संकोचवश उसे प्रगट न कर सकता था। कई बार इरादा किया कि कहूं, पर प्रेमशङ्करकी ओर देखते ही जैसे कोई मुंह बन्द कर देता था। आंखें नीची हो जाती थीं। शीलमणिकी बातें सुनकर वह अधीर हो गया। ज्वाला

सिंहकी तरफ कातर नेत्रोंसे देखता हुआ बोला—आज्ञा हो तो मैं भी कुछ कहूं।

ज्वाला—हां हां, शौकसे कहो!

माया—इस महीनेकी मेरी पूरी वृत्ति अपीलमें खर्च कर दीजिये। मुझे रुपयोंकी कोई विशेष जरूरत नहीं है।

शीलमणि और ज्वालासिंह दोनोंने इस प्रस्तावको बालोचित आवेश समझकर प्रेमशङ्करकी तरफ मुस्कुराते हुए देखा। मायाने उनका यह भाव देखकर समझा, मुझसे धृष्टता हो गयी! ऐसे महत्वके विषयमें मुझे बोलनेका कोई अधिकार न था। चचाजी मेरे दुस्साहसपर अवश्य नाराज होंगे। लज्जासे आंखें भर आयीं और मुहसे एक सिसकी निकल गयी। प्रेमशङ्करने चौंककर उसकी तरफ देखा, उसके हृद्गत भावोंको समझ गये। उसे प्रेमपूर्वक छातीसे लगाकर आश्वासन देते हुए बोले—तुम रोते क्यों हो बेटा? तुम्हारी यह उदारता देखकर मेरा चित्त जितना प्रसन्न हुआ है, वह प्रकट नहीं कर सकता। तुम मेरे पुत्रतुल्य हो, लेकिन मेरा जी चाहता है कि तुम्हारे पैरोंपर सिर रख दूं। तुम्हारे हृदयमें दया और विवेक है और मुझे विश्वास है कि तुम्हारा जीवन परोपकारी होगा। लेकिन मैंने तुम्हारी शिक्षाके लिये जो व्यवस्थायें की है उनका व्यय तुम्हारी वृत्तिसे कुछ अधिक ही है।

मायाको अब कुछ साहस हुआ। बोला, मेरी शिक्षापर इतने रुपये खर्च करनेकी क्या जरूरत है?

प्रेम—क्यों, आखिर तुम्हें घरपर पढ़ानेके लिये अध्यापक रहेंगे या नहीं? एक अंग्रेजी और हिसाब पढ़ायेगा, एक हिन्दी और संस्कृत, एक उर्दू और फारसी, एक फ्रेंच और जरमन, पांचवां तुम्हें व्यायाम, घोड़ेकी सवारी, नाव चलाना, शिकार खेलना सिखायेगा। इतिहास और भूगोल मैं पढ़ाया करूंगा।

माया—मेरी कक्षामें जो लड़के सबसे अच्छे हैं वह घरपर

किसी मास्टरसे नहीं पढ़ते। मैं उनको अपनेसे कम नहीं समझता।

प्रेम—तुम्हें हवा खानेके लिये एक फिटनकी जरूरत है। सवारीके अभ्यासके लिये दो घोड़े चाहिये।

माया—अपराध क्षमा कीजियेगा। मेरे लिये इतने मास्टरोंकी जरूरत नहीं है, फिटन, मोटर, शिकार, पोलोको भी मैं व्यर्थ समझता हूं। हां, एक घोड़ा गोरखपूरसे मंगवा दीजिये तो सवारी किया करूं। नाव चलानेके लिये मैं मल्लाहोंकी नावपर जा बैठूगा। उनके साथ पतवार घुमाने और डांड़ चलानेमें जो आनन्द मिलेगा वह अकेले अध्यापकके साथ बैठनेमें नहीं आ सकता। अभीसे लोग कहने लगे हैं कि इसका मिजाज नहीं मिलता। पद्मू कई बार ताने दे चुके हैं। मुझे नौबढ़े रईसोंकी भांति अपनी हंसी करानेकी इच्छा नहीं है। लोग यही कहेंगे कि अभी कलतक तो एक मास्टर भी न था, आज दूसरोंकी सम्पत्ति पाकर इतना घमंड हो गया है।

प्रेम—प्रतिष्ठाका ध्यान रखना आवश्यक है।

माया—मैं तो देखता हूं, आप इन चीजोंके बिना ही सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। सभी आपकी इज्जत करते हैं। मेरे स्कूलके लड़के भी आपका नाम आदरसे लेते हैं, हालांकि शहरके और बड़े रईसोंकी हंसी उड़ाते हैं। मेरे लिये किसी विशेष चीजकी जरूरत क्यों हो?

मायाके प्रत्येक उत्तरपर प्रेमशङ्करका हृदय अभिमानसे फूला पड़ता था। उन्हें आश्चर्य्य होता था कि इस लड़केमें संतोष और त्यागका भाव क्योंकर उदित हुआ? इस उम्रमें तो प्रायः लड़के टीमटामपर जान देते हैं, सुन्दर वस्त्रोंसे उनका जी ही नहीं भरता; चमक दमककी वस्तुओंपर लट्टू हो जाते हैं। यह पूर्व संस्कार है और कुछ नहीं। निरुत्तर होकर बोले—रानी गायत्रीकी यही इच्छा थी, नहीं तो इतने रुपये क्यों खर्च करती।

माया—यदि उनकी यह इच्छा होती तो क्या वह मुझे ताल्लुकदारोंके स्कूलमें नहीं भेज देतीं? मुझे आपकी सेवामें रखनेसे उनका उद्देश्य यही होगा कि मैं आपहीके पदचिह्नपर चलूं।

प्रेम—तो यह रुपये खर्च क्योंकर होंगे?

माया—इसका फैसला रानी अम्माने आपहीपर छोड़ दिया है। मुझे आप उसी तरह रखिये, जैसे आप अपने लड़कोंको रखते हैं। मुझे ऐसी शिक्षा न दीजिये और ऐसे व्यसनोंमें न डालिये कि मैं अपनी दीन प्रजाके दुःख-दर्दमें शरीक न हो सकूं। आपके विचारमें मेरी शिक्षाकी यही सबसे उत्तम विधि है?

प्रेम—नहीं, मेरा विचार तो ऐसा नहीं, लेकिन दुनियाको दिखानेके लिये ऐसा ही करना पड़ेगा, नहीं तो लोग यही कहेंगे कि मैं तुम्हारी वृत्तिका दुरुपयोग कर रहा हूं।

माया—तो आप मुझे उस ढंगपर शिक्षा देना चाहते हैं जिसे आप स्वयं उपयोगी नहीं समझते। लोगोंके कुराक्षेपोंसे बचनेहीके लिये आपने यह व्यवस्थायें की हैं?

प्रेमशङ्कर शरमाते हुए बोले—हां, बात तो कुछ ऐसी है।

माया—मैंने अपने वजीफेके खर्च करनेकी और ही विधि सोची है। आप बुरा न मानें, तो कहूं।

प्रेम—हां हां, शौकसे कहो। तुम्हारी बातोंसे मेरी आत्मा प्रसन्न होती है। तुम्हें इतना विचारशील न समझता था।

ज्वालासिंहने कहा—इस उम्रमें मैंने किसीको इतना चैतन्य नहीं देखा।

शीलमणि प्रेमशङ्करकी ओर मुंह करके मुस्कुरायी और बोली—इसपर आपहीकी परछायीं पड़ी है।

माया—मैं चाहता हूं कि मेरा वजीफा गरीब लड़कोंकी सहायतामें खर्च किया जाय। दस दस रुपयेकी १९९ वृत्तियां दी जायें तो मेरे लिये दस रुपये बच रहेंगे। इतनेमें मेरा काम अच्छी तरह चल सकता है।

प्रेमशङ्कर पुलकित होकर बोले—बेटा, तुम्हारी उदारता धन्य है, तुम देवात्मा हो। कितना देवदुर्लभ त्याग है, कितना संतोष! ईश्वर तुम्हारे इन पवित्र भावोंको सुदृढ़ करें। पर मैं तुम्हारे साथ इतना अन्याय नहीं कर सकता।

माया—तो दो चार वृत्तियां कम कर दीजिये, लेकिन यह सहायता उन्हीं लड़कोंको दी जाय, जो यहां आकर खेती या बुनाईका काम सीखें।

ज्वाला—मैं इस प्रस्तावका अनुमोदन करता हूं। मेरी रायमें तुम्हें अपने लिये कमसे कम ५००) रखने चाहिये। बाकी रुपये तुम्हारी इच्छाके अनुसार खर्च किये जायं। ७५ वृत्तियां बुनाई और ७५ खेतीके काम सीखनेके लिये दी जायं। भाई साहब कृषिशास्त्र और विधानमें निपुण हैं। बुनाईका काम मैं सिखाया करूंगा। मैंने इसका अच्छी तरह अभ्यास कर लिया है।

प्रेमशंकरने ज्वालासिंहका खण्डन करते हुए कहा—मैं इस विषयमें रानी गायत्रीकी आज्ञा और इच्छाके बिना कुछ नहीं करना चाहता।

मायाशंकरने नैराश्य भावसे ज्वालासिंहको देखा और फिर अपनी किताब देखने लगा।

इसी समय डाक्टर इर्फान अलीके दीवानखानेमें भी इसी विषयपर वार्तालाप हो रहा था। डाक्टर साहब सदैव अपने पेशेकी दिल खोलकर निन्दा किया करते थे। कभी कभी न्याय या दर्शनके अध्यापक बन जानेका इरादा करते। लेकिन उनके विचारोंमें स्थिरता न थी, न विचारोंको व्यवहारमें लानेके लिये आत्मबल था। नहीं, अनर्थ यह था कि वह जिन दोषोंकी निन्दा करते थे उन्हें व्यवहारमें लाते हुए जरा भी संकोच न करते थे, जैसे कोई जीर्ण रोगी पथ्योंसे ऊबकर सभी प्रकारके कुपथ्य करने लगे। उन्हें इस पेशेकी धनलोलुपतासे घृणा थी, पर आप मुवक्किलोंको बड़ी निर्दयतासे निचोड़ते थे। वकीलोंकी अनीतिका

नित्य रोना रोते थे, पर आप दुर्नीतिके परम भक्त थे। अपने हल्वे मांडेसे काम था, मुवक्किल चाहे मरे या जिये। उनकी स्वार्थपरायणता और दुर्नीतिहीके कारण लखनपुरका सर्वनाश हुआ था।

लेकिन जबसे प्रेमशंकरने उपद्रवकारियोंके हाथोंसे उनकी रक्षा की थी तभीसे उनकी रीति-नीति और आचार-विचारमें एक विशेष जागृतिसी दिखायी देती थी। उनकी धनलिप्सा अब उतनी निर्दय न थी, मुवक्किलोंसे बड़ी नम्रताका व्यवहार करते, उनके वृत्तान्तको विचारपूर्वक सुनते, मुकदमोंको दिल लगाकर तैयार करते, इतना ही नहीं, बहुधा गरीब मुवक्किलोंसे केवल शुकराना लेकर ही संतुष्ट हो जाते थे। इस सद्व्यवहारका कारण केवल यही नहीं था कि वह अपने खोये हुए सम्मानको फिर प्राप्त करना चाहते थे, बल्कि प्रेमशंकरका संतोषमय, निष्काम और निःस्पृह जीवन उनके चित्तकी शान्ति और सहृदयताका मुख्य प्रेरक था। उन्हें जब अवसर मिलता, प्रेमशंकरसे अवश्य मिलने आते और हर बार उनके सरल और पवित्र जीवनसे मुग्ध होकर लौटते थे। अबतक शहरमें कोई ऐसा साधु, सात्विक पुरुष न था जो उनपर अपनी छाप डाल सके। अपने सहवर्गियोंमें वह किसीको अपनेसे अधिक विवेकशील, नीतिपरायण और सहृदय न पाते थे। इस दशामें वह अपनेहीको सर्वश्रेष्ठ समझते थे और वकालतकी निन्दा करके अपनेको धन्य मानते थे। उनकी स्वार्थवृत्तिको उन्मत्त करनेके लिये इतना ही काफी था, पर अब उनकी आंखोंके सामने एक ऐसा पुरुष उपस्थित था जो उन्हींकासा विद्वान, लेख और वाणीमें उन्हींकासा कुशल था, पर कितना विनयी, कितना उदार, कितना दयालु, कितना शान्तचित्त, जो उनकी असाधुतासे दुःखी होकर भी उनकी उपेक्षा न करता था। अतएव अब डाक्टर साहबको अपने पिछले अपकारोंपर पश्चात्ताप होता था। वह प्रायश्चित्त करके अपयश और कलङ्कके दागको मिटाना चाहते थे। उन्हें लज्जावश प्रेमशंकरसे

अपीलके लिये अनुरोध करनेका साहस न होता था, पर उन्होंने संकल्प कर लिया था कि अपीलमें अभियुक्तोंको छुड़ानेके लिये दिल तोड़कर प्रयत्न करूंगा। वह अपीलके खर्चका बोझ भी अपने ही सिर लेना चाहते थे। महीनोंसे अपीलकी तैयारी कर रहे थे, मुकदमेकी मिस्लें विचारपूर्वक देख डाली थीं, जिरहके प्रश्न निश्चित कर लिये थे और अपना कथन भी लिख डाला था। उन्हें इतना मालूम हो गया था कि ज्वालासिंहके आनेपर अपील होगी। उनके आनेकी बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे।

प्रातःकालका समय था। डाक्टरसाहबको ज्वालासिंहके आनेकी खबर मिल गयी थी। उनसे मिलनेके लिये आ ही रहे थे कि सैयद ईजाद हुसेनका आगमन हुआ। उनकी सौम्य मूर्तिपर काला चुगा बहुत खुलता था। सलाम बन्दगीके बाद सैयद साहबने इर्फान अलीकी ओर सन्देहकी दृष्टिसे देखकर कहा—आपने देखा, इन दोनों भाइयोंने रानी गायत्रीको कैसा शीशेमें उतार लिया। एक साहबने रियासत हाथमें कर ली, और दूसरे साहब दो हजार रुपयेके मौरूसी वसीकेदार बन गये। लौंडेकी तालीममें ज्यादासे ज्यादा चार पांच सौ खर्च हो जायेंगे, और क्या ? दुनियामें कैसे कैसे बगुलाभगत छिपे हुए हैं।

ईजाद हुसेनको बदगुमानीका मर्ज था। जबसे उन्हें यह बात मालूम हुई थी उनकी छातीपर सांप लोट रहा था, मानों उन्हींकी जेबसे रुपये निकाले जाते हैं। यह कितना अनर्थ था कि प्रेम-शंकरको तो दो हजार रुपये महीने बिना हाथ-पैर हिलाये घर बैठे मिल जायँ और उस गरीबको इतना छल-प्रपंच करनेपर भी रोटियोंकी चिन्ता लगी रहे !

डाक्टर महाशयने व्यंग भावसे कहा—इस मौकेपर आप चूक गये। अगर आप रानी साहिबाकी खिदमतमें डेपुटेशन लेकर जाते तो इत्तहादी यतीमखानेके लिये एक हजारका वसीका जरूर बंध जाता।

ईजाद हुसेन—आप तो जनाब मजाक करते हैं। मैं ऐसा खुशनसीब नहीं हूं। मगर दुनियामें कैसे कैसे लोग पड़े हुए हैं जो तर्क १ का नूरानी जाल फैलाकर सोनेकी चिड़िया फंसा लेते हैं।

डाक्टर साहबने तिरस्कारकी दृष्टिसे देखकर कहा—लाला ज्ञानशङ्करकी निस्बत आप जो चाहें ख्याल करें, लेकिन बाबू प्रेमशङ्कर जैसे नेकनीयत आदमीपर आपका शुबहा करना बिलकुल बेजा है। और जब वह आपके मददगारोंमें हैं तो आपका उनसे बदगुमान होना सरासर बेइन्साफी है। मैं उन्हें अर्सेसे जानता हूं और दावेके साथ कह सकता हूं कि ऐसा बेलौस आदमी इस शहरमें क्या मुल्कमें मुश्किलसे मिलेगा। वह अपनेको मशहूर नहीं करते, लेकिन कौमकी जो खिदमत वह कर रहे हैं काश और लोग भी करते तो यह मुल्क रश्के फिर्दौस २ हो जाता। जो आदमी दस रुपये महवारपर जिन्दगी बसर करे, अपने मजदूरोंसे मसावातका ३ का वर्ताव करे, मजलूमों ४ की हिमायत करनेमें दिलोजानसे तैयार रहे, अपने उसूलों ५ पर अपनी जयदादतक कुर्बान कर दे, उसकी निस्बत ऐसा शक करना शराफतके खिलाफ है। आप उनके मुलाजिमोंको सौ रुपये माहवारपर भी रखना चाहें तो न आयेंगे। वह उनके नौकर नहीं हैं, बल्कि पैदावारमें बराबरके हिस्सेदार हैं। गायत्री गजबकी मर्दुमशनास ६ औरत मालूम होती है।

ईजाद हुसेनने चकित होकर कहा—क्या वाकई वह दस रुपये माहवारपर बसर करते हैं? यह क्योंकर?

इर्फान—अपनी जरूरतोंको घटाकर। हम और आप तकल्लुफ ७ की चीजोंको जरूरियातमें दाखिल किये हुए हैं और रातदिन उसी फिक्रमें परेशान रहते हैं। यह नफस ८ की गुलामी

१—तर्क=त्याग। २—स्वर्ग-तुल्य। ३-बराबरी। ४-अन्याय पीड़ित। ५-सिद्धान्तों। ६—आदमियोंको पहचाननेवाली। ७—विलास। ८—इन्द्रिय।

है। उन्होंने इसे अपने काबूमें कर लिया है। हमलोग अपनी फुरसतका वक्त जमाने और तकदीरको शिकायत करनेमें सर्फ करते हैं। रात दिन इसी उधेड़ बुनमें रहते हैं कि क्योंकर और मिले। औरकी हवसमें हलाल और हरामका भी लिहाज नहीं करते। उन्हें मैंने कभी अपनी तकदीरके दुखड़े रोते हुए नहीं पाया। वह हमेशा खुश नजर आते हैं, गोया कोई गम ही नहीं……

इतनेमें बाबू ज्वालासिंह आ पहुंचे। डाक्टर साहबने उठकर हाथ मिलाया। शिष्टाचारके बाद पूछा—अब तो आपका इरादा यहां मुस्तकिल तौरपर रहनेका है न?

ज्वाला—जी हां,आया तो इसी इरादेसे हूं।

इर्फान—फरमाइये, अपील कब होगी?

ज्वाला—इसका जिक्र पीछे करूंगा। इस वक्त तो मुझे सैयदसे कुछ अर्ज करना है। हुजूरके दौलतखानेपर हाजिर हुआ था। मालूम हुआ आप यहां तशरीफ रखते हैं। मुझे बाबू प्रेमशङ्करने आपसे यह पूछनेके लिये भेजा है कि आप मायाशङ्करको उर्दू फारसी-पढ़ाना मंजूर करेंगे।

इर्फान—मंजूर क्यों न करेंगे, घर बैठे-बैठे क्या करते हैं? जलसे तो सालमें दस पांच ही होते हैं और रोटियोंकी फिक्र चौबीसों घण्टे सिरपर सवार रहता है। तनख्वाह क्या तजवीज की है?

ज्वाला—अभी १००) माहवार मिलेंगे।

इर्फान—बहुत माकूल है। क्यों मिर्जासाहब, मंजूर है न? ऐसा मौका आपको फिर न मिलेगा।

ईजाद हुसेनने कृतज्ञभावसे कहा—दिलोजानसे हाजिर हूं। मेरी जबानमें ताकत नहीं है कि इस एहसानका शुक्रिया अदा कर सकूं। हैरत तो यह है कि मुझे उनसे एक ही बार नियाज हासिल हुआ और उन्हें मेरी परवरिशका इतना खयाल है।

ज्वाला—यह आदमी नहीं, फरिश्ते हैं। आपके यतीमखानेका कई बार जिक्र कर चुके हैं। शायद यतीमोंके लिये कुछ वजीफे मुकर्रर करना चाहते हैं। इस वक्त सब कितने यतीम हैं?

उपकारने ईजाद हुसेनके हृदयको पवित्र भावोंसे परिपूरित कर दिया था। अतिशयोक्तिसे काम न ले सके। एक क्षणतक वह असमंजसमें पड़े रहे, पर अन्तमें सद्भावोंने विजय पायी। बोले—जनाब, अगर आपने किसी दूसरे मौकेपर यह सवाल किया होता तो मैं उसका कुछ और ही जवाब देता, पर आप लोगोंकी शराफत और हमदर्दीका मुझ जैसे दगाबाज आदमीपर भी असर पड़ ही गया। मेरे यहां दो किस्मोंके यतीम हैं। एक मुस्तकिल और दूसरे फसली। जरूरतके वक्त इन दोनोंकी तायदाद पचाससे भी बढ़ जाती है, लेकिन फसली यतीमोंको निकाल दीजिये तो सिर्फ दस यतीम रह जाते हैं। मुमकिन है, आप इनको यतीम न ख्याल करें, लेकिन मैं समझता हूं, गरीब आदमीके अजीजोंके लड़के सच्चे यतीम हैं।

इर्फान अलीने मुस्कराकर कहा—तो हजरत आपने क्या यतीमखानेका स्वांग ही खड़ा कर रखा है क्या? कमसे कम मुझसे तो परदा न रखना चाहिये था। अभी आपने अपनी सारी जायदाद यतीमखानेके नाम लिख दी थी।

ईजाद हुसेनने शर्मसे सिर झुकाकर कहा—किवलः, जरूरत इन्सानसे सब कुछ करा लेती है, मैं वकील नहीं, बैरिस्टर नहीं, ताजिर नहीं, जागीरदार नहीं, एक मामूली लियाकतका आदमी हूं। मुझ बदनसीबके वालिद टोंककी रियासतमें ऊंचे मंसबदार थे। हजारोंकी आमदनी थी, हजारोंका खर्च। जबतक वह जिन्दा रहे, मैं आजाद घूमता रहा। कनकौये और बटेरोंसे दिल बहलाता रहा। उनकी आंखें बन्द होते ही खान्दानकी परवरिशका भार मुझपर पड़ा और खान्दान भी वह जो पेशका आदी था। मेरी गैरतने गवारा न किया कि जिन लोगोंपर वालिद मरहूमने अपना

साया कर रखा था उनसे मुंह मोड़ लूँ। मुझमें लियाकत न हो, पर खान्दानी गैरत मौजूद थी। बुरी सोहबतोंने दगा और मक्रके फनमें पुख्ता कर दिया। टोंकमें गुजरानकी कोई सूरत न देखी तो सरकारी मुलाजमत कर ली और कई जिलोंकी खाक छानता हुआ यहां आया। आमदनी कम थी, खर्च ज्यादा। थोड़े दिनोंमें घरकी लेई पूंजी गायब हो गयी। अब सिवाय इसके और कोई सूरत न थी कि या तो फाके करूं या गुजरानकी कोई नयी राह निकालूं। सोचते सोचते यही सूझी जो अब कर रहा हूं।

इर्फान अली—अन्दाजन आपको सालाना कितने रुपये मिल जाते होंगे?

ईजाद—अब क्या कुछ भी परदा न रहने दीजियेगा?

इर्फान—अधूरी कहानी नहीं छोड़ी जाती।

ईजाद—तो जनाब कोई बंधी हुई रकम है नहीं, और न मैं हिसाब लिखनेका आदी हूं। जो कुछ मुकद्दरमें है मिल जाता है। कभी कभी एक एक महीनेमें हजारोंकी यापत हो जाती है, कभी महीनों रुपयेकी सूरत देखनी नसीब नहीं होती। मगर कम हो या ज्यादा, इस कमाईमें बरकत नहीं है। हमेशा शैतानकी फटकार रहती है। कितनी ही अच्छी गिजा खाइये, कितने ही कीमती कपड़े पहनिये, कितने ही शानसे रहिये, पर वह दिली इतमीनान नहीं हासिल होता जो हलालकी रूखी रोटियां और गजी गाढ़ोंमें है। कभी कभी तो इतना अफसोस होता है कि जी चाहता है जिन्दगीका खातमा हो जाय तो बेहतर। मेरे लिये यह सौ रुपये लाखोंके बराबर हैं। इन्शा अल्लाह, इर्शाद भी जल्द ही किसी-न-किसी काममें लग जायगा तो रोजीकी फिक्रसे निजात हो जायगी। बाकी जिन्दगी तोबा और इबादतमें गुजरेगी। 'इत्तहाद" की खिदमत अब भी करता रहूंगा, लेकिन अबसे यह सच्ची खिदमत होगी, खुदगर्जीसे पाक। इसका सवाब खुदा बाबू प्रेमशङ्करको अता करेगा।

थोड़ी देर अपीलके विषयमें परामर्श करनेके बाद ज्वालासिंह मिर्जासाहबको साथ लेकर हाजीपुर चले। डाक्टर साहब भी साथ हो लिये।

५६

हाईकोर्ट ज्योंही दशहरेकी छुट्टियोंके बाद खुला, अपील दायर हो गयी और समाचारपत्रोंके कालम उसकी कार्य्यवाहीसे भरे जाने लगे। समस्या बड़ी जटिल थी। दण्डपात्रोंने उन साक्षियोंको फिर पेश किये जानेकी प्रार्थना की थी, जिनके आधारपर उन्हें दंड दिये गये थे। वकील सरकारने इस प्रार्थनाका घोर विरोध किया, किन्तु इर्फान अलीने अपने दावेको ऐसी सबल युक्तियोंसे पुष्ट किया और दण्डभोगियोंपर हुई निर्दयताको ऐसे करुण भावसे व्यक्त किया कि जजोंने मुकदमेकी दोबारा जांच किये जानेकी अनुमति दे दी।

मातहत अदालतने विवश होकर फिर शहादतोंको तलब किया। विशेशरसाह, डाक्टर प्रियनाथ, दारोगा खुर्शेदआलम, कर्तारसिंह, फैजू और तहसीलदार साहब कचहरीमें हाजिर हुए।

विशेशरसाहका बयान तीन दिनतक होता रहा। बयान क्या था, पुलिसके हथकण्डों और कूटनीतिका विशद और शिक्षाप्रद निरूपण था। अब वह दुर्बल, इन्कमटैक्ससे डरनेवाला, पुलिसके इशारोंपर नाचनेवाला विशेशर साह न था। इन दो वर्षोंकी ग्लानि, पश्चात्ताप और दैविक व्याधियोंने सम्पूर्णतः उसकी काया पलट दी थी। एक तो उसका बयान योंही भण्डाफोड़ था, दूसरे इर्फानअलीकी जिरहोंने रहा सहा पर्दा भी खोल दिया। वकील सरकारने पहले तो विशेशरको अपने पिछले बयानसे फिर जानेपर धमकाया, जजने भी डांट बतलायी, पर विशेशर जरा भी न डगमगाया। इर्फानअलीने बड़ी नम्रतासे कहा, गवाहका यों फिर जाना बेशक सजाके काबिल है, पर इस मुकदमेकी हालत निराली है। यह सारा तूफान पुलिसका खड़ा किया हुआ है। इतने

बेगुनाहोंकी जिन्दगीका खयाल करके अदालतको शहादतके कानूनकी इतनी सख्तीसे पाबन्दी न करनी चाहिये। इन विनीत शब्दोंने जजसाहबको शान्त कर दिया। पुराना जज तबदील हो गया था, उसकी जगह यह नये साहब आये थे।

वकील सरकारने भी अपने पक्षके अनुकूल खूब जिरह की, सिद्ध करना चाहा कि गांववालोंकी धमकी, प्रेमशंकरके आग्रह या इसी प्रकारके अन्य सम्भावित कारणोंने गवाहको विचलित कर दिया है, पर बिसेशर किसी तरह फन्देमें न आया। अंग्रेजी और जातीय पत्रोंने इस घटनाकी आलोचना करनी शुरू की। अंग्रेजी पत्रोंका अनुमान था कि गवाहका यह रूपान्तर, राष्ट्र-वादियोंके दुराग्रहका फल है। उन्होंने पुलिसको नीचा दिखानेके लिये यह चाल खेली है। अदालतने इस बयानको स्वीकार करनेमें बड़ी भूल की है। मुखबिरको यथोचित दण्ड मिलना चाहिये। हिन्दुस्तानी पत्रोंको पुलिसपर छींटे उड़ानेका अवसर मिला। अदालतमें मुकदमा पेश ही था, मगर पत्रोंने आग्रह करना शुरू किया कि पुलिसके कर्मचारियोंसे जवाब तलब करना चाहिये। एक मनचले पत्रने लिखा, यह घटना इस बातका उज्ज्वल प्रमाण है कि हिन्दुस्तानकी पुलिस प्रजारक्षणके लिये नहीं वरन् भक्षणके लिये स्थापित की गयी है। अगर खोज की जाय तो पूर्णतः सिद्ध हो जायगा कि यहाकी ८७ सैकड़े दुर्घटना-ओंका उत्तरदायित्व पुलिसके सिर है। बाजे पत्रोंको पुलिसकी आड़में जमींदारोंके अत्याचारका भयंकर रूप दिखाई देता था। उन्हें जमींदारोंके न्यायपर जहर उगलनेका अवसर मिला। कति-पय पत्रोंने जमींदारोंकी दुरवस्थापर आंसू बहाने शुरू किये। यह आन्दोलन होने लगा कि सरकारकी ओरसे जमींदारोंको ऐसे अधिकार मिलने चाहिये कि वह अपने असामियोंको काबूमें रख सकें, नहीं तो बहुत सम्भव है कि उच्छृङ्खलताका यह प्रचंड झोंका सामाजिक सगठनको जड़से हिला दे।

विशम्भरसाहके बाद डाक्टर प्रियनाथकी शहादत हुई। पुलिस अधिकारियोंको उनपर पूरा विश्वास था, पर जब उनका बयान सुना तो हाथोंके तोते उड़ गये। उनके कुतूहलका वारापार न था, मानों किसी नये जगतकी सृष्टि हो गयी। वह पुरुष जो पुलिसका दाहिना हाथ बना हुआ था, जो पुलिसके हाथोंकी कठपुतली था, जिसने पुलिसकी बदौलत हजारों कमाये, वह आज यों दगा दे जाय, नीतिको इतनी निर्दयतासे पैरोंतले कुचले!

डाक्टर साहबने स्पष्ट कह दिया कि पिछला बयान शास्त्रोक्त न था, लाशके हृदय और यकृतकी दशा देखकर मैंने जो धारणा की थी वह शास्त्रानुकूल नहीं थी। बयान देनेके पहले मुझे पुस्तकोंको देखनेका अवसर न मिला था। इन स्थलोंमें खूनका जमना सिद्ध करता है कि उनकी क्रिया आकस्मिक रीतिपर बन्द हो गई। यन्त्राघातके पहले गला घोंटनेसे यह क्रिया क्रमसे बन्द होती और इतनी मात्रामें रक्तका जमना सम्भव न था। अपनी युक्तिके समर्थनमें उन्होंने कई प्रसिद्ध डाक्टरोंकी सम्मतिका भी उल्लेख किया। डाक्टर इर्फान अलीने भी इस विषयपर कई प्रामाणिक ग्रन्थोंका अवलोकन किया था। उनकी जिरहोंने प्रियनाथकी धारणाको और भी पुष्ट कर दिया। तीसरे दिन वकील सरकारकी जिरह शुरू हुई। उन्होंने जब वैद्यक प्रश्नोंसे प्रियनाथको काबूमें आते न देखा तब उनकी नीयतपर आक्षेप करने लगे।

वकील—क्या यह सत्य है कि पहले जिस दिन इस अभियोगका फैसला सुनाया गया था, उस दिन उपद्रवकारियोंने आपके बंगलेपर जाकर आपको घेर लिया था?

प्रिय—जी हां।

वकील—उस समय बाबू प्रेमशङ्करने आपको मारपीटसे बचाया था?

प्रिय—जी हां, वह न आ जाते तो शायद मेरी जान न बचती।

वकील—यह भी सत्य है कि आपको बचानेमें वह स्वयं ज़ख्मी हो गये थे ?

प्रिय—जी हां उन्हें बहुत चोट आयी थी। कंधेकी हड्डी टूट गयी थी।

वकील—आप यह भी स्वीकार करेंगे कि वह दयालु प्रकृति के मनुष्य हैं और अभियुक्तोंसे उन्हें सहानुभूति है।

प्रिय—जी हां, ऐसा ही है।

वकील—ऐसी दशामें यह स्वाभाविक है कि उन्होंने आपको अभियुक्तोंकी रक्षा करनेपर प्रेरित किया हो ?

प्रिह—मेरे और उनके बीचमें इस विषयपर कभी बातचीत भी नहीं हुई।

वकील—क्या यह सम्भव नहीं है कि उनके एहसानने आपको अज्ञातरूपसे बाधित किया हो ?

प्रिय—मैं अपने व्यक्तिगत भावोंको अपने कर्त्तव्यसे अलग रखता हूं। यदि ऐसा होता तो सबसे पहले बाबू प्रेमशङ्कर ही मेरी अवहेलना करते।

वकील साहब एक पहलूसे दूसरे पहलूपर आते थे, पर प्रियनाथ चालाक मछलीकी तरह चारा कुतरकर निकल जाते थे। दो दिनतक जिरह करनेके बाद अंतमें हारकर बैठ रहे।

दारोगा खुर्शेदआलमका बयान शुरू हुआ। यह उनके पहले बयानकी पुनरावृत्ति थी, पर दूसरे दिन इर्फान अलीकी जिरहोंने उन्हें बिलकुल उखाड़ दिया। बेचारे बहुत तड़फड़ाये, पर जिरहके जालसे न निकल सके।

इर्फानअलीको अब अपनी सफलताका विश्वास हो गया। वह आज अदालतसे निकले तो बाछें खुली जाती थीं। इसके पहले भी बड़े-बड़े मुकदमोंकी पैरवी कर चुके थे और दोनों जेब नोटोंसे भरे हुए घर चले थे, पर चित्त कभी इतना प्रफुल्लित न हुआ था। प्रेमशङ्कर तो ऐसे खुश थे, मानों लड़केका विवाह हो रहा हो।

इसके बाद तहसीलदार साहबका बयान हुआ। वह घंटोंतक लखनपूरवालोंकी उद्दण्डता और दुर्जनताका आल्हा गाते रहे, लेकिन इर्फान अलीने दस ही मिनटमें उनका सारा ताना-बाना उधेड़कर रख दिया।

इर्फान—आप यह तसलीम करते हैं कि यह सब मुलजिम लखनपूरके खास आदमियोंमें हैं?

तहसीलदार—हो सकते हैं लेकिन जातके अहीर, जुलाहे और कुर्मी हैं।

इर्फान—अगर कोई चमार लखपती हो जाय तो आप उससे अपनी जूती गंठवानेका काम लेते हुए हिचकेंगे या नहीं?

तहसीलदार—उन आदमियोंमें कोई लखपती नहीं है।

इर्फान—मगर सब काश्तकार हैं, मजदूर नहीं। उनसे आपको घास छिलवानेका क्या मजाज था।

तहसीलदार—सरकारी जरूरत।

इर्फान—क्या यह सरकारी जरूरत मजदूरोंको मजदूरी देकर काम करानेसे पूरी न हो सकती थी?

तहसीलदार—मजदूरोंकी तायदाद उस गांवमें ज्यादा नहीं है।

इर्फान—आपके चपरासियोंमें अहीर, कुर्मी या जुलाहे न थे? आपने उनसे यह काम क्यों न लिया?

तहसीलदार—उनका यह काम नहीं है।

इर्फान—और काश्तकारोंका यह काम है?

तहसीलदार—जब जरूरत पड़ती है तो उनसे भी यह काम लिये जाते हैं।

इर्फान—आप जानते हैं जमीन लीपना किसका काम है?

तहसीलदार—यह किसी खास जातका काम नहीं है।

इर्फान—मगर आपको इससे तो इन्कार नहीं हो सकता कि आम तौरपर अहीर और ठाकुर यह काम नहीं करते?

तहसीलदार—जरूरत पड़नेपर कर सकते हैं।

इर्फान—जरूरत पड़नेपर क्या आप अपने घोड़ेके आगे घास नहीं डाल देते? क्या इस लिहाजसे आप अपनेको साईस कहलाना पसन्द करेंगे?

तहसीलदार—मेरी हालतका उन काश्तकारोंसे मुकाबला नहीं हो सकता।

इर्फान—बहरहाल यह आपको मानना पड़ेगा कि जो लोग जिस कामके आदी नहीं हैं और उसे करना अपनी जिल्लत समझते हैं उनसे वह काम लेना बेइन्साफी है। कोई बरहमन खुशीसे आपके बर्तन न धोयेगा। अगर आप उससे जबरन यह काम लें तो वह चाहे खौफसे करे, पर उसका दिल जख्मी हो जायगा। वह मौका पायेगा तो आपकी शिकायत करेगा।

तहसीलदार—हां, आपका यह फरमाना बजा है, लेकिन कभी-कभी अफसरोंको मजबूर होकर सभी कुछ करना पड़ता है।

इर्फान—तो आपको ऐसी हालतोंमें नामुलायम बातें सुननेके लिये भी तैयार रहना चाहिये। लखनपूरवालोंपर क्यों इलजाम रखिये, यह इन्सानी फितरत*का कसूर है। अब तो आप तसलीम करेंगे कि इन काश्तकारोंसे जो बेअदबी हुई वह आपकी ज्यादातीका नतीजा था।

तहसीलदार—अफसरोंकी आसाइशके लिये......

तहसीलदार साहबका आशय समझकर जजने उन्हें रोक दिया।

इर्फानअली जब सन्ध्या समय घर पहुंचे तब उन्हें बाबू ज्ञान शङ्करका अरजंट तार मिला। उन्होंने एक जरूरी मुकद्दमेकी पैरवी करनेके लिये बुलाया था। एक हजार रुपये रोजाना मेहनतानाका वादा था। डाक्टरसाहबने तार फाड़कर फेंक दिया और

* फितरत—स्वभाव

तत्क्षण तारसे जवाब दिया—खेद है मुझे फुरसत नहीं है। मैं लखनपुरके मामलेकी पैरवी कर रहा हूं।

५७

गायत्रीकी दशा इस समय उस पथिककी सी थी जो साधुभेषधारी डाकुओंके कौशल-जालमें पड़कर लुट गया हो। वह उस पथिककी भांति पछताती थी कि मैं कुसमय चली क्यों? मैंने चलती हुई सड़क क्यों छोड़ दी? मैंने भेष बदले हुए साधुओंपर विश्वास क्यों किया और उनको अपने रुपयोंकी थैली क्यों दिखायी? उसी पथिककी भांति अब वह प्रत्येक बटोहीको आशङ्कित नेत्रोंसे देखती थी। यह विडम्बना उसके लिये सहस्रों उपदेशोंसे अधिक शिक्षाप्रद और सफलकारी थी। अब उसे याद आता था कि एक साधुने मुझे प्रसाद खिलाया था। जरा दूर चलकर मुझे प्यास लगी तो उसने मुझे शर्बत पिलाया जो तृषित होनेके कारण मैंने पेट भरकर पीया। अब उसे यह भी ज्ञात हो रहा था कि वह प्यास उसी प्रसादका फल थी। ज्यों ज्यों वह उस घटनापर विचार करती थी, उसके सभी रहस्य कारण और कार्य्यके सूत्रमें बंधे हुए मालूम होते थे। गायत्रीने अपने आभूषण तो बनारसहीमें उतारकर श्रद्धाको सौंप दिये थे, अब उसने रंगीन कपड़े भी त्याग दिये। पान खानेका उसे शौक था। उसे भी छोड़ा, आईने और कंघीको त्रिवेणीमें डाल दिया। रुचिकर भोजनको तिलांजलि दी। उसे अनुभव हो रहा था कि इन्हीं व्यसनोंने मेरे मनको चञ्चल बना दिया। मैं अपने सतीत्वके गर्वमें विलासप्रेमको निर्विकार समझती थी। मुझे यह न सूझता था कि वासना केवल इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करके संतुष्ट नहीं होती, वह शनैः शनैः मनको भी अपना आज्ञाकारी बना लेती है। अब वह केवल एक उजली साड़ी पहनती थी, नंगे पांव चलती थी और रूखा-सूखा भोजन करती थी। इच्छाओंको दमन कर रही थी, उन्हें कुचल डालना चाहती थी। शीशा ज्यों ज्यों साफ होता

है, उसके चाल स्पष्ट होते जाते हैं। गायत्रीको अब अपने मनकी कुप्रवृत्तियां साफ दिखायी दे रही थीं। कभी कभी क्षोभ और ग्लानिके उद्वेगमें उसका जी चाहता कि प्राणघात कर लूं। उसे अब स्वप्नमें अक्सर अपने पतिसे साक्षात् होता। उनकी मर्मभेदी बातें कलेजेके पार हो जातीं, उनकी तीव्र दृष्टि हृदयको छेद डालती।

बनारससे वह प्रयाग आयी और कई दिनोंतक झूसीकी एक धर्मशालामें ठहरी रही। यहां उसे कई महात्माओंके दर्शन हुए, लेकिन उसे उनके उपदेशोंसे शान्ति न मिली। वह सब दुनियाके बन्दे थे, पहले तो उससे बाततक न की, पर ज्योंही मालूम हुआ कि यह रानी गायत्री है त्योंही सब ज्ञान और वैराग्यके पुतले बन गये। गायत्रीको विदित हो गया कि उनका त्याग केवल उद्योग-हीनता है, और उनका भेष केवल सरल-हृदय भक्तोंके लिये माया-जाल। वह निराश होकर चौथे दिन हरिद्वार जा पहुंची, पर यहां धर्मका आडम्बर तो बहुत देखा, भाव कम। यात्रिगण दूर-दूरसे आये हुए थे, पर तीर्थ करनेके लिये नहीं, केवल विहार करनेके लिये। आठों पहर गंगातटपर विलास और आभूषणकी बहार रहती थी। गायत्री खिन्न होकर तीसरे ही दिन यहांसे हृषीकेश चली गयी। वहां उसने किसीको अपना परिचय न दिया। नित्य पहर रात रहे उठती और गङ्गास्नान करके दो तीन घण्टे गीताका पाठ किया करती। शेष समय धर्मग्रन्थोंके पढ़नेमें काटती। सन्ध्याको साधु-महात्माओंके ज्ञानोपदेश सुना करती। यद्यपि वहां दो एक त्यागी आत्माओंके दर्शन हुए, पर कोई ऐसा तत्त्व-ज्ञानी न मिला जो उसके चित्तको संसारसे विरक्त कर दे, इतना संयम और इन्द्रिय-निग्रह करनेपर भी सांसारिक चिन्तायें उसे सताया करती थीं। मालूम नहीं घरपर क्या हो रहा है। न जाने सदाव्रत चलता है या ज्ञानशङ्करने बन्द कर दिया। फर्श आदिकी न जाने क्या दशा होगी। नौकर चाकर चारों ओर लूट मचा रहे होंगे। मेरे दीवानखानेमें मनों गर्द जम गयी होगी। अबकी अच्छी

तरह मरम्मत न हुई होगी, तो छतें कई जगह फट गयी होंगी। मोटरें और बग्घियां रोज मांगी जाती होंगी, जो ही आकर दो चार लल्लो-चप्पोकी बातें करता होगा, लालाजी उसीको दे देते होंगे। समझते होंगे अब तो मैं मालिक हूं। बगीचा बिलकुल जंगल हो गया होगा। ईश्वर जाने कोई चिड़ियों और जानवरोंकी सुधि लेता है या नहीं। बेचारे भूखों मर गये होंगे। दोनों पहाड़ी मैंने कितनी दौड़धूप करनेपर मिले थे। अब या तो मर गये होंगे या कोई मांग ले गया होगा। सन्दूकोंकी कुञ्जियां तो श्रद्धाको दे आयी हूं, पर ज्ञानशङ्कर जैसे दुष्टचरित्र आदमीसे कोई बात बाहर नहीं। बहुधा धर्मग्रन्थोंके पढ़ते या मन्त्र जाप करते समय यह दुश्चिन्तायें उसे आ घेरती थीं। जैसे टूटे हुए बर्तनमें एक ओरसे पानी भरो और दूसरी ओरसे टपक जाता है, उसी तरह गायत्री एक ओर तो आत्मशुद्धिकी क्रियाओंमें तत्पर हो रही थी, पर दूसरी ओर चिन्ता-व्याधि उसे घेरे रहती थी। वह शान्ति, वह एकाग्रता न प्राप्त होती थी जो आत्मोत्कर्षका मूल मन्त्र है। आश्चर्य्य तो यह है कि वह इन विघ्न-बाधाओंका स्वागत करती थी, और उन्हें प्यारसे हृदयागारमें बैठाती थी। वह बनारससे यह ठानकर चली थी कि अब संसारसे कोई नाता न रखूंगी, लेकिन अब उसे ज्ञात होता था कि आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये वैराग्य-की जरूरत नहीं है। मैं अपने घर रहकर, रियासतकी देखरेख करते हुए क्या निर्लिप्त नहीं रह सकती। पर इस विचारसे उस-का जी झुंझला पड़ता था। वह अपनेको समझाती, अब मुझे रियासतसे क्या प्रयोजन है, बहुत भोग कर चुकी, अब मुझे मोक्षमार्गपर ही चलना चाहिये, यह जन्म तो बिगड़ ही गया, दूसरा जन्म क्यों बिगाड़ूं?

इसी तर्क-वितर्कमें गायत्री बद्रीनाथकी यात्रापर आरूढ़ न हो सकी, हृषिकेशमें पड़े-पड़े तीन महीने गुजर गये और हेमन्त सिरपर आ पहुंचा, यात्रा दुस्साध्य हो गयी।

पौष मास था, पहाड़ोंपर बर्फ गिरने लगी थी। प्रातःकालकी सुनहरी किरणोंमें तुषारमंडित पर्वतश्रेणियोंकी शोभा अकथनीय थी। एक दिन गायत्रीने सुना कि चित्रकूटमें कहींसे ऐसे महात्मा आये हैं, जिनके दर्शनमात्रहीसे आत्मा तृप्त हो जाती है। वह उपदेश बहुत कम करते हैं, लेकिन उनका दृष्टिपात उपदेशोंसे भी ज्यादा सुधावर्षी होता है। उनके मुखमण्डलपर ऐसी कान्ति है मानो तपाया हुआ कुन्दन हो, दूध ही उनका आहार है और वह भी एक छटांकसे अधिक नहीं। पर डीलडौल और तेजबल ऐसा है कि ऊंची-से-ऊंची पहाड़ियोंपर खटाखट चढ़ते चले जाते हैं, न दम फूलता है, न पैर कांपते हैं, न पसीना आता है। उनका पराक्रम देखकर अच्छे अच्छे योगी भी दंग रह जाते हैं, पसुनीके गलते हुए पानीमें पहर रातहीसे खड़े होकर दो तीन घण्टे तप किया करते हैं। उनकी आंखोंमें कुछ ऐसा आकर्षण है कि वनके जीवधारी भी उनके इशारोंपर चलने लगते हैं। गायत्री-ने उनकी सिद्धिका यह वृत्तान्त सुना तो उसे उनका दर्शन करनेकी प्रबल उत्कण्ठा हुई। उसने दूसरे ही दिन चित्रकूटकी राह ली और चौथे दिन पसुनीके तटपर एक धर्मशालामें बैठी हुई थी।

यहां जिसे देखिये, वही स्वामीजीका कीर्तिगान कर रहा था। भक्तजन दूर दूरसे आये हुए थे। कोई कहता था यह त्रिकालदर्शी हैं, कोई उन्हें आत्मज्ञानी बतलाता था। गायत्री उनकी सिद्धिकी कथाएं सुनकर इतनी विह्वल हुई कि इसी दम जाकर उनके चरणोंपर सिर रख दूं। लेकिन रातसे मजबूर थी। वह सारी रात करवटें बदलती और सोचती रही कि मैं मुंह अंधेरे जाकर महात्माजीके पैरोंपर गिर पड़ंगी और कहूंगी कि महाराज, मैं अभागिनी हूं, आप आत्मज्ञानी हैं, आप सर्वज्ञ हैं, मेरा हाल आपसे छिपा हुआ नहीं है, मैं अथाह जलमें डूबी जाती हूं, अब आप ही मुझे उबार सकते हैं, मुझे ऐसा उपदेश दीजिये और मेरी निर्बल

आत्माको इतनी शक्ति प्रदान कीजिये कि वह माया-मोहके बन्धनों-से मुक्त हो जाय। मेरे हृदयस्थलमें अन्धकार छाया हुआ है, उसे आप अपनी व्यापक ज्योतिसे आलोकित कर दीजिये। इस दीनकल्पनासे गद्गद् होकर वह घण्टों रोती रही। उसकी कल्पना इतनी सजग हो गयी कि स्वामीजीके आश्वासन-शब्द भी उसके कानोंमें गूंजने लगे। ज्योंही मैं उनके चरणोंपर गिरूंगी, वह प्रेमसे मेरे सिरपर हाथ रखकर कहेंगे—बेटी, तुझपर बड़ी विपत्ति पड़ी है, ईश्वर तेरा कल्याण करेंगे। जाड़ेकी लम्बी रात किसी भांति कटती ही न थी। वह बार-बार उठकर देखती, तड़का तो नहीं हो गया है, लेकिन आकाशमें जगमगाते हुए तारोंको देखकर निराश हो जाती थी। पांचवीं बार जब वह उठी तो पौ फट रही थी। तारागण किसी मधुर गानके अन्तिम स्वरोंकी भांति लुप्त होते जाते थे। आकाश एक पीतवस्त्रधारी योगीकी भांति था, जिसका मुखकमल आत्मोल्लाससे खिला हुआ हो और पृथ्वी एक माया-रहस्य थी, ओसके नीले परदेमें छिपी हुई। गायत्रीने तुरंत पसूनीमें स्नान किया और स्वामीजीका दर्शन करने चली।

स्वामीजीकी कुटी एक ऊंची पहाड़ीपर थी। वहां वह एक वृक्षके नीचे बैठे हुए थे। वहीं चट्टानोंके फर्शपर भक्तजन आ-आकर बैठते जाते थे। चढ़ाई कठिन थी, पर श्रद्धा लोगोंको ऊपर खींचे लिये जाती थी। अशक्तता और निर्बलताने भी सदानुरागके सामने सिर झुका दिया था। नीचेसे ऊपरतक आदमियोंका तांता लगा हुआ था। गायत्रीने पहाड़ीपर चढ़ना शुरू किया। थोड़ी दूर चढ़कर उसका दम फूल गया। पैर मन मन भरके हो गये, उठाये न उठते थे, लेकिन वह दम ले लेकर हाथों और घुटनोंके बल चट्टानोंपर चढ़ती हुई ऊपर जा पहुंची। उसकी सारी देह पसीनेसे तर थी और आंखोंके सामने अंधेरा छा रहा था, लेकिन ऊपर पहुंचते ही उसका चित्त ऐसा प्रफुल्लित हुआ जैसे किसी प्यासेको पानी मिल जाय। गायत्रीकी छातीमें धड़कन-सी होने लगी।

ग्लानिकी ऐसी विषम, ऐसी भीषण पीड़ा उसे कभी न हुई थी। इस ज्ञानज्योतिकको कौनसा मुंह दिखाऊं! उसे स्वामीजीकी ओर ताकनेका साहस न हुआ, जैसे कोई आदमी सर्राफके हाथमें खोटा सिक्का देता हुआ डरे। वह इसी हैसवैसमें थी कि सहसा उसके कानमें आवाज आयी—गायत्री, मैं बहुत देरसे तेरी बाट जोह रहा हूं। यह राय कमलानन्दकी आवाज थी, करुणा और स्नेहमें डूबी हुई। गायत्रीने चौंककर सामने देखा, स्वामीजी उसकी ओर चले आ रहे थे। उनके तेजोमय मुखारविन्दपर करुणा झलक रही थी और आंखें प्रेमाश्रुसे भरी हुई थीं। गायत्री-की आंखें झुक गयीं। ऐसा जान पड़ा मानों मैं तेज तरंगोंमें बही जाती हूं। हा! मैं इस विशाल आत्माकी पुत्री! ग्लानिने कहा, हा पतिता! लज्जाने कहा, हा कुलकलंकिनी! निराशा बोली, हा अभागिनी! शोकने कहा, तुझपर धिक्कार! तू इस योग्य नहीं कि संसारको अपना मुंह दिखाये। अधःपतनमें अब क्या शेष है जिसके लिये जीवनकी अभिलाषा! विधाताने तेरे भाग्यमें ज्ञान और वैराग्य नहीं लिखा। इन दुष्कल्पनाओंने गायत्रीको इतना मर्माहत किया कि पश्चात्ताप, आत्मोद्धार और परमार्थकी सारी सदिच्छायें लुप्त हो गयीं। उसने उन्मत्त नेत्रोंसे नीचेकी ओर देखा और तब जैसे कोई चोट खाया हुआ पक्षी दोनों डैने फैलाये वृक्षसे गिरता है वह दोनों हाथ फैलाये शिखरपरसे गिर पड़ी। नीचे एक गहरा कुण्ड था। उसने उसकी अस्थियोंको संसारके निर्दय कटाक्षोंसे बचानेके लिये अपने अंतस्थलके अपार अंधकारमें छिपा लिया।

५८

लाला प्रभाशङ्करने भविष्यचिन्ताका पाठ न पढ़ा था। 'कल' की चिन्ता उन्हें कभी न सताती थी। उनका समस्त जीवन विलास और कुलमर्य्यादाकी रक्षामें व्यतीत हुआ था। खिलाना, पाना और नामके लिये मर जाना यही उनके जीवनके ध्येय थे,

उन्होंने सदैव इसी त्रिमूर्त्तिकी आराधना की थी, और अपनी वंशगत सम्पत्तिका अधिकांश बर्बादकर चुकनेपर भी, वह अपने व्यावहारिक नियमोंमें संशोधन करनेकी जरूरत न समझते थे, या समझते थे तो अब किसी नये मार्गपर चलना उनके लिये असाध्य था। वह एक उदार, गौरवशील पुरुष थे। सम्पत्ति उनकी दृष्टिमें मर्य्यादापालनका एक साधनमात्र थी। इससे श्रीवृद्धि भी हो सकती, धनसे धनकी उन्नति भी हो सकती है, यह उनके ध्यानमें भी न आया था। चिन्ताओंको वह तुच्छ समझते थे, शायद इस लिये कि उनका निवारण करनेके लिये ज्यादासे ज्यादा अपने महाजनके द्वारतक जाना पड़ता था। उनका जो समय और धन मेहमानोंके आदर-सत्कारमें लगता था उसीको वह श्रेयस्कर समझते थे। दान-दक्षिणाके शुभ-अवसर आते तो उनकी हिम्मत आसमानपर जा पहुंचती थी। उस नशेमें उन्हें इसकी सुध न रहती थी कि फिर क्या होगा और काम कैसे चलेंगे? यह बड़ी बहूहीका काम था कि इस चढ़ी हुई नदीको थामें। वह रुपयेको उनकी आंखोंसे इस तरह बचाती थीं जैसे दीपकको हवासे बचाते हैं। वह बेधड़क कह देती थीं, अब यहां कुछ नहीं है। लालाजी उन्हें धिक्कारने लगते, दुष्टा, अभागिनी, तुच्छहृदया जो कुछ मुंहमें आता कहते, पर वह इससे मस न होती थी। अगर वह सदैव इसी नीतिपर चल सकती तो अबतक जयदाद बची रहती, पर लालासाहब ऐसे अवसरोंपर कौशलसे काम लेते, वह विनयके महत्त्वसे अनभिज्ञ थे। बड़ी बहू उनके कोपका सामना कर सकती थीं, पर उनके मृदु वचनोंसे हार जातीं।

प्रेमशङ्करकी जमानतके अवसरपर लाला प्रभाशङ्करने जो रुपये कर्ज लिये थे, उसका अधिकांश उनके पास बच रहा था। यह रुपये उन्होंने महाजनको लौटाकर न दिये। शायद ऋण धन-को वह अपनी कमाई समझते थे। धनप्राप्तिका कोई अन्य

उपाय उन्हें ज्ञात ही न था। बहुत दिनोंके बाद इतने रुपये एक मुश्त उन्हें मिले थे—मानों भाग्यसूर्य्य उदय हो गया। आत्मीय जनों और मित्रोंके यहां तोहफे और सौगात जाने लगे, मित्रोंकी दावतें होने लगीं। लालाजी पाककलामें सिद्धहस्त थे। उनका निजरचित एक ग्रन्थ था, जिसमें नाना प्रकारके व्यंजनोंके बनानेकी विधि लिखी हुई थी। यह विद्या उन्होंने बहुत कुछ खर्च करके हलवाइयों और बावर्चियोंसे प्राप्त की थी। वह निम-कौड़ियोंकी ऐसी स्वादिष्ट खीर पका सकते थे कि बादामका धोखा हो। लाल, चिषाक्त मिर्चोंका ऐसा हलवा बना सकते थे कि मोहनभोगका भ्रम हो। आमकी गुठलियोंका कबाब बनाकर उन्होंने अपने कितने ही रसज्ञ मित्रोंको धोका दे दिया था। इनका लिसोड़ेका मुरब्बा अंगूरके मुरब्बेसे भी बाजी मार ले जाता था। यद्यपि इन पदार्थोंके तैयार करनेमें धनका अपव्यय होता था, सिरमगजन भी बहुत करना पड़ता था, और नक्कू नक्कू ही रहती थी, लेकिन लालाजी इस विषयमें पूरे कवि थे, जिनके लिये सुहृद्जनोंकी प्रशंसा ही सबसे बड़ा पुरस्कार है। अबकी कई सालके बाद उन्होंने अपने बड़े भाईकी जयन्ती हौसलेके साथ की। भोज और दावतकी हफ्तोंतक धूम रही। शहरमें एकसे एक गण्यमान्य सज्जन पड़े हुए थे, पर कोई उनसे टक्कर लेनेका साहस न कर सकता था।

बड़ी बहू जानती थीं कि जबतक घरमें रुपये रहेंगे इनका हाथ न रुकेगा, साल आध सालमें सारी रकम खा पीकर बराबर कर देंगे, इस लिये जब घरमें आग ही लगायी है तो क्यों न हाथ सेंक लूं। अवसर पाते ही उन्होंने दोनों कन्याओंके विवाहकी बातचीत छेड़ दी। यद्यपि लड़कियां अभी विवाहके योग्य न थीं, पर मसलहत यही थी कि चलते हाथ इस भारसे उऋण हो जायं। जिस दिन ज्वालासिंह अपील दायर करने चले, उसी दिन लाला प्रभाशङ्करने फलदान चढ़ाये। दूसरे ही दिनसे

वह बरातियोंके आदर-सत्कारकी तैयारियोंमें व्यस्त हो गये। ऐसे शुभ कार्य्योंमें वह किफायतको दूषित ही नहीं, अक्षम्य समझते थे। उनके इरादे तो बहुत बड़े थे, लेकिन कुशल यह थी कि आजकल प्रेमशङ्कर प्रायः नित्य उनकी मदद करनेके लिये आ जाते। प्रभाशंकर दिलसे उनका आदर करते थे, इसलिये उनकी सलाहें सर्वथा निरर्थक न होती। विवाहकी तिथि अगहनमें पड़ती थी। यह डेढ़ दो महीने तैयारियोंहीमें कटे। प्रेमशंकर अक्सर संध्याको यहीं भोजन भी करते और कुछ देर गपशप करके हाजीपुर चले जाते। आश्चर्य यह था कि अब महाशय ज्ञानशंकर भी चचासे प्रसन्न मालूम होते थे। उन्होंने गोरखपूर से कई बोरे चावल, शक्कर और कई कुप्पे घी भेजे। विवाहके एक दिन पहले वह स्वयं आये और बड़े ठाटबाटसे आये। कई सशस्त्र सिपाही साथ थे; फर्श, कालीनें, दरियां तो इतनी लाये थे कि उनसे कई बरातें सज जाती। दोनों वरोंको सोनेकी एक-एक घड़ी और एक-एक मोहनमाला दी। बरातियोंको भोजन करते समय एक-एक अशर्फी भेंट की। दोनों भतीजियोंके लिये सोनेके हार बनवा लाये थे, और दोनों समधियोंको एक-एक सजी हुई पालकी भेंट की। बरातके नौकरों, कहारों और नाइयोंको पांच-पांच रुपये विदाई दी। उनकी इस असाधारण उदारतापर सारा घर चकित हो रहा था, और प्रभाशंकर तो उनके ऐसे भक्त हो गये मानो वह कोई देवता थे। सारे शहरमें वाहवाह होने लगी। लोग कहते थे—मरा हाथी तोभी नौ लाखका, बिगड़ गये, लेकिन फिर भी हौसला और शान वही है, यह पुराने रईसोंहीका गुर्दा है, दूसरे क्या खाकर इनकी बराबरी करेंगे। घरमें लाखों भरे हों, कौन देखता है? यही हौसला अमीरीकी पहचान है। लेकिन यह किसे मालूम था कि लाला साहबने किन दामों यह नामवरी खरीदी है।

विवाहके बाद कुछ दिन तो बचीखुची सामग्रियोंसे लाला

प्रभाशंकरकी रसना तृप्त होती रही, लेकिन शनैः शनैः यह द्वार भी बन्द हुआ और रूखे फीके भोजनपर कटने लगी। उस वर्षके बाद यह सूखा बहुत अखरता था। स्वादिष्ट पदार्थोंके बिना उन्हें तृप्ति न होती थी। रूखा भोजन कंठसे नीचे उतरता ही न था। बहुधा चौकेपरसे मुंह जूठा करके उठ आते, पर सारे दिन जी ललचाया करता, अपनी किताब खोलकर उसके पन्ने उलटते कि कौनसी चीज आसानीसे बन सकती है, पर वहां ऐसी कोई चीज न मिलती। बेचारे निराश होकर किताब बन्द कर देते और मनको बहलानेके लिये बरामदेमें टहलने लगते। बार-बार घरमें जाते, अलमारियों और ताखोंकी ओर उत्कण्ठित नेत्रोंसे देखते कि शायद कोई चीज निकल आये। अभीतक थोड़ी-सी नवरत्न चटनी बची हुई थी। कुछ और न मिलता तो सबकी नजर बचा उसमेंसे एक चम्मच निकालकर चाट जाते। विडम्बना यह थी कि इस दुःखमें कोई उनका साथी, कोई हमदर्द न था। बड़ी बहूसे अगर कभी डरते-डरते कोई अच्छी चीज बनानेको कहते तो वह या तो टाल जातीं या झुंझलाकर कह बैठतीं—तुम्हारी जीभ भी लड़कोंकी तरह चटोरी है, जब देखो खानेहीकी फिक्र, सारी जायदाद हलुवे और पुलावके भेंट कर दी और अभीतक तस्कीन नहीं हुई। अब क्या रखा है! बेचारे लाला साहब यह झिड़कियां सुनकर लज्जित हो जाते। प्रमियों-को प्रमिकाकी चर्चासे शान्ति प्राप्त होती है, किन्तु खेद यह था कि यहां कोई यह चर्चा सुननेवाला भी न था।

अन्तको यहांतक नौबत पहुंची कि वह खोंचेवालोंको बुलाते और उनसे चाटके दोने लेकर घरके किसी कोनेमें जा बैठते और चुपचाप मजे ले लेकर खाते। पहले चाटकी ओर वह आंख उठाकर ताकते भी न थे, पर अब वह शान न थी। डेढ़ दो महीने-तक उनका यही ढंग रहा, पर टुटपुंजिये खोंचेवाले बादोंपर कब-तक रहते! उनके तकाजे होने लगे। लालाजी जो उनकी विचित्र

पुकारपर कान लगाये रहते थे, अब उनकी आवाज सुनते ही छिपनेके लिये बिल ढूंढने लगते। उनके वादे अब सुनिश्चित न होते थे, उनमें विनय और अविश्वासको मात्रा अधिक होती थी। मालूम नहीं, इन तकाजोंसे उन्हें कबतक मुंह छिपाना पड़ता, लेकिन संयोगसे उनके पूरे करनेकी एक विधि उपस्थित हो गयी। श्रद्धाने एक दिन उन्हें बाजारसे दो जोड़े साड़ियाँ लानेके लिये दाम दिया। वह साड़ियाँ उधार लाये और रुपये खोंचे-वालोंको देकर गला छुड़ाया। बज़ाज़की ओरसे ऐसे दुराग्रहपूर्ण और निन्दास्पद तकाजोंकी आशङ्का न थी। उसे बरसों वादों पर टाला जा सकता था, मगर उस दिनसे चाटवालोंने उनके द्वारपर आना ही छोड़ दिया।

लेकिन चाट बुरी लत है। अच्छे दिनोंमें वह गलेकी जंजीर है, किन्तु बुरे दिनोंमें तो वह पैनी छुरी हो जाती है, जो आत्म-सम्मान और लज्जाका तसमा भी नहीं छोड़ती। माघका महीना, सर्दीका यह हाल था कि नाड़ियोंमें रक्ततक जमा जाता था। लाला प्रभाशङ्कर नित्य वायुसेवनके बहाने प्रेमशङ्करके पास जा पहुंचते और देश कालके समाचार सुनते। मौका पाते ही किसी न किसी स्वादिष्ट पदार्थकी चर्चा छेड़ देते, उस समयकी कथा कहने लगते, जब वह चीज खायी थी, मित्रोंने उसपर क्या क्या टिप्पणियां की थीं। प्रेमशङ्कर उनका इशारा समझ जाते और शीलमणिसे वह पदार्थ बनवाकर लाते। लेकिन प्रभाशङ्करकी स्वादलिप्सा कितनी दारुण थी, इसका उन्हें ज्ञान न था। अतएव कभी-कभी लालाजीका मनोरथ वहां भी पूरा न होता। तब घर आते समय वह सीधी राहसे न आते, स्वादतृष्णा उन्हें नानबा-इयोंके मुहल्लेमें ले जाती। प्याज और मसालोंकी सुगन्धसे उनकी लोलुप आत्मा तृप्त होती थी। कितना करुणाजनक दृश्य था! सत्तर सालका बूढ़ा, उच्च कुल-मर्य्यादापर जान देने-वाला पुरुष, गन्धसे रसका आनन्द उठानेके लिये घण्टों नान-

वाइयोंकी गलीमें चक्कर लगाया करता, लज्जासे मुंह छिपाये हुए कि कोई देख न ले। ताजे कबाबकी सुगन्धसे उनके मुंहमें पानी भर आता, यहांतक कि खाद्याखाद्यका विचार भी न रहता। उस समय केवल एक अव्यक्त शङ्का, एक मिथ्या संकोच उनके फिसलते हुए पैरोंको संभाल लिया करता था।

एक दिन लालाजी प्रेमशङ्करके पास गये तो उन्होंने अपीलका फैसला सुनाया। प्रभाशंकर प्रसन्न होकर बोले—यह बहुत अच्छा हुआ। ईश्वरने तुम्हारा उद्योग सफल किया। बेचारे निरपराध किसान जेलमें पड़े सड़ रहे थे। ईश्वर बड़ा दयालु है। इस आनन्दोत्सवमें एक दावत होनी चाहिये।

माया बोली—जी हां, यही तो अभी मैं भी कह रहा था। मैं तो अपने स्कूलके सब लड़कोंको नेवता दूंगा।

प्रेमशङ्कर—पहले बेचारे आ तो जायं। अभी तो उनके आनेमें महीनोंकी देर है, कोई किसी जेलमें है, कोई किसीमें। जज्जने तो पुलिसका पक्ष करना चाहा था, पर डाक्टर इर्फान अलीने उसकी एक न चलने दी।

प्रभा—इन जजोंका यही हाल है, उनका अभीष्ट सरकारका रोब जमाना होता है, न्याय करना नहीं। इसी मुकदमेमें तुमने इतनी दौड़धूप न की होती तो उन बेचारोंकी कौन सुनता? ऐसे कितने निरपराधी केवल पुलिसके कौशल और वकीलोंकी दुर्जनताके कारण दण्ड भोगा करते हैं। मैं तो जब वकीलोंको बहस करते हुए देखता हूं तो ऐसा मालूम होता है मानो भाट कवित्त पढ़ रहे हों। न्यायपर किसी पक्षकी दृष्टि नहीं होती। दोनों मौखिक बलसे एक-दूसरेको परास्त करना चाहते हैं। जो वाक्यचतुर है उसीको जीत होती है। आदमियोंके जीवन-मरणका निर्णय सत्य और न्यायके बलपर नहीं, न्यायको धोखा देनेके बलपर होता है।

प्रेम—जबतक मुद्दई और मुद्दालेह अपने-अपने वकील अदा-

लतमें लायेंगे तबतक इस दशामें सुधार नहीं हो सकता, क्योंकि वकील तो अपने मुवक्किलका मुखपात्र होता है। उसे सत्यासत्य निर्णयसे कोई प्रयोजन नहीं, उसका कर्त्तव्य केवल अपने मुवक्किलके दावेको सिद्ध करना है। सच्चे न्यायकी आशा तो तभी हो सकती है, जब वकीलोंको अदालत स्वयं नियुक्त करे और अदालत भी राजनैतिक भावों और अन्य दुस्संस्कारोंसे मुक्त हो। मेरे विचारमें गवर्नमेण्टको पुलिसमें सुयोग्य और सच्चरित्र आदमी छांट-छांटकर रखने चाहिये। अभीतक इस विभागमें सच्चरित्रतापर जरा भी ध्यान नहीं दिया गया। वही लोग भरती किये जाते हैं जो जनताको दबा सकें, उनपर रोब जमा सकें, न्यायका विचार नहीं किया जाता।

प्रभा—जरा फैसला तो सुनाओ, देखूं क्या लिखा है।

प्रेम—हां सुनिये, मैं अनुवाद करता जाता हूं। देखिये, पुलिसकी कैसी तीव्र आलोचना की है। यह अभियोग पुलिसके कार्य्यक्रमका एक उज्ज्वल उदाहरण है। किसी विषयका सत्यासत्य निर्णय करनेके लिये आवश्यक है कि साक्षियोंपर निष्पक्ष भावसे विचार किया जाय और उनके आधारपर कोई धारणा स्थिर की जाय, लेकिन पुलिसके अधिकारिवर्ग ठीक उल्टे चलते हैं। वह पहले एक धारणा स्थिर कर लेते हैं और तब उसको सिद्ध करनेके लिये साक्षियों और प्रमाणोंकी तलाश करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी दशामें वह कार्य्यसे कारणकी ओर चलते हैं और अपनी मनोनीत धारणामें कोई संशोधन करनेके बदले, प्रमाणोंहीको तोड़-मरोड़कर अपनी कल्पनाओंके सांचेमें ढाल देते हैं। यह उल्टी चाल क्यों चली जाती है, इसका अनुमान करना कठिन हो, पर प्रस्तुत अभियोगमें कठिन नहीं। एक समूह जितना भार संभाल सकता है उतना एक व्यक्तिके लिये असाध्य है।

प्रभाशङ्करने चिन्ताभावसे कहा—यह तो खुला हुआ आक्षेप है। पुलिससे जवाब तो न तलब होगा?

प्रेम—इन आक्षेपोंको कौन पूछता है? इनपर कुछ ध्यान दिया जाता तो पुलिस कबकी सुधर गयी होती।

इतनेमें ज्वालासिंह आते हुए दिखायी दिये। प्रेमशङ्करने कहा—चचा साहब कहते हैं कि इस विजयका उत्सव करना चाहिये।

ज्वाला—मेरी भी यही इच्छा है।

५९

बाल्यावस्थाके पश्चात् ऐसा समय आता है, जब उद्दण्डता-की धुन सिरपर सवार हो जाती है। इसमें युवाकालकी सुनिश्चित इच्छा नहीं होती, उसकी जगह एक विशाल आशावादिता है, जो दुर्लभको सरल और असाध्यको मुंहका कौर समझती है। भांति-भांतिकी मृदु कल्पनायें चित्तको आन्दोलित करती रहती हैं। सैलानीपनका भूतसा चढ़ा रहता है। कभी जीमें आता है कि रेलगाड़ीपर बैठकर देखें कि कहांतक जाती है। अर्थीको देखकर उसके साथ श्मशानतक जाते हैं कि वहां क्या होता है। मदारीका खेल देखकर जीमें उत्कण्ठा होती है कि हम भी गलेमें झोली लटकाये, देश-विदेश घूमते और ऐसे ही तमाशे दिखाते। अपनी क्षमतापर ऐसा विश्वास होता है कि बाधायें ध्यानमें भी नहीं आतीं, ऐसी सरलता जो अलाउद्दीनके चिरागको ढूंढ़ निकालना चाहती है। इस कालमें अपनी योग्यताकी सीमायें अपरिमित होती हैं। विद्याक्षेत्रमें हम तिलकको पीछे हटा देते हैं, रणक्षेत्रमें नेपोलियनसे आगे बढ़ जाते हैं। कभी जटाधारी योगी बनते हैं, कभी तातासे भी धनवान् हो जाते हैं। हमें इस अवस्थामें फकीरों और साधुओंपर ऐसी श्रद्धा होती है जो उनकी विभूतिको कामधेनु समझती है। तेजशंकर और पद्मशंकर दोनों ही सैलानी थे। घरपर कोई उनको देख-भाल करनेवाला न था, जो उन्हें उत्तेजनाओंसे दूर रखता, उनकी सजीविताको, उनकी अबाध्य कल्पनाओंको,

सुविचारकी ओर कर सकता। लाला प्रभाशंकर उन्हें पाठशाला-में भरती कराके ज्यादा देखभाल अनावश्यक समझते थे। दोनों लड़के घरसे स्कूलको चलते, लेकिन रास्तेमें नदीके तटपर घूमने, बैंड सुनने या सेनाकी कवायद देखनेकी इच्छा उन्हें रोक लिया करती। किताबोंसे दोनोंको अरुचि थी और दोनों एक ही श्रेणी-में कई कई साल फेल हो जानेके कारण हताश हो गये थे। उन्हें ऐसा मालूम होता था कि हमें विद्या आ ही नहीं सकती। एक बार लालाजीकी अलमारीमें इन्द्रजालकी एक पुस्तक मिल गयी थी। दोनोंने उसे बड़े चावसे पढ़ा और उसके मंत्रोंको जगाने-की चेष्टा करने लगे। दोनों अक्सर नदीकी ओर चले जाते और साधुसन्तोंकी बातें सुनते। सिद्धियोंकी नयी-नयी कथायें सुनकर उनके मनमें भी कोई सिद्धि प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा होती। इस कल्पनासे उन्हें एक गर्वयुक्त आनन्द मिलता था कि इन सिद्धियोंके बलसे हम सब कुछ कर सकते हैं, गड़ा हुआ धन निकाल सकते हैं शत्रुओंपर विजय पा सकते हैं, पिशाचोंको वशमें कर सकते हैं। उन्होंने दो एक लटकोंका अभ्यास भी किया था, और यद्यपि अभीतक उनकी परीक्षा करनेका अवसर न मिला था, पर अपनी कृतकार्य्यतापर उन्हें अटल विश्वास था।

लेकिन जबसे गायत्रीने मायाशंकरको गोद लिया था, ईर्षा और स्वार्थसे दोनों जल रहे थे। यह दाह एक क्षणके लिये भी न शान्त होती। जो लड़का अभी कलतक उनके साथका खिलाड़ी था, वह सहसा इतने ऊंचे पदपर पहुंच जाय! दोनों यही सोचा करते कि कोई ऐसी सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये जिसके सामने धन और वैभवकी कोई हस्ती न रहे, जिसके प्रभावसे वह मायाशंकर को नीचा दिखा सकें। अंतमें बहुत सोच विचारके पश्चात् उन्होंने भैरवमंत्र जगानेका निश्चय किया। एक तंत्र ग्रंथ ढूंढ़ निकाला, जिसमें इस क्रियाकी विधियां विस्तारसे लिखी हुई थीं। दोनोंने कई दिनतक मंत्रको कंठ किया। उसके मुखाग्र हो जानेपर वह

सलाह होने लगी कि इसे जगानेका आरम्भ कबसे किया जाय? तेजशङ्करने कहा—चलो, आजहीसे श्रीगणेश कर दें।

पद्म—अब कहो तब। बस, असली बातकी ओर चलें।

तेज—चालीसा किसी तरह पूरा हो जाय, फिर तो हम अमर हो जायंगे। बन्दूक, तलवार, तोपका हमपर कुछ असर ही न होगा।

पद्म—यार, बड़ा मजा आयेगा। सैकड़ों बरसतक जीते रहेंगे।

तेज—सैकड़ों! अजी, हजारों क्यों नहीं कहते? हिमालयकी गुफाओंमें ऐसे ऐसे साधु पड़े हुए हैं जिनकी अवस्थाएं चार चार सौ सालसे अधिक है। उन्होंने भी यही मंत्र जगाया होगा। मौतका उनपर कोई वश नहीं चलता।

पद्म—बाबा बड़ी शेखी मारा करते हैं, बच्चा एक दिन मर जायेंगे, सब कुछ रखा रह जायगा। यहां कौन चिन्ता है? तोपसे भी न डरेंगे।

तेज—लेकिन मंत्र जगाना सहज नहीं है, डरे और काम तमाम हुआ, जरा चौंके और वहीं ढेर हो गये। तुमने तो किताबमें पढ़ा ही है, कैसी कैसी भयंकर सूरतें दिखायी देती हैं। कैसी कैसी डरावनी आवाजें सुनाई देती हैं। भूत, प्रेत, पिशाच नंगी तलवारें लिये मारने दौड़ते हैं। उस वक्त जरा भी शंका न करनी चाहिये।

पद्म—मैं जरा भी न डरूंगा, वह कोई सचमुचके भूत-प्रेत थोड़े ही होंगे। देवता लोग परीक्षा लेनेके लिये डराते होंगे।

तेज—हां और क्या? सब भ्रम है। अपना कलेजा मजबूत किये रहना।

पद्म—और जो कहीं तुम डर जाओ?

तेजशङ्करने गर्वसे हंसकर कहा—मैंने डरको भून कर खा लिया है। वह मेरे पास नहीं फटक सकता। मैं तो सचमुचके प्रेतोंसे न डरूं, शंकाओंकी कौन चलाये।

पद्म—तो हमलोग अमर हो जायेंगे?

तेज—अवश्य। इसमें भी कुछ सन्देह है?

दोनोंने इस भांति निश्चय करके मंत्र जगाना शुरू किया। जब घरके सब लोग सो जाते तो दोनों चुपकेसे निकल जाते और मस्सीघाटपर गंगाके किनारे बैठकर मंत्रका जाप करते। इस प्रकार उन्तालीस दिनोंतक दोनोंने अभ्यास किया। इस विकट परीक्षामें वह कैसे पूरे उतरे, इसकी व्याख्या करनेके लिये एक पोथी अलग चाहिये। उन्हें वह सभी विकराल सूरतें दिखाई दीं, वह सभी रोमांचकारी शब्द सुनाई दिये, जिनका उस पुस्तकमें जिक्र था। कभी मालूम होता कि आकाश फटा पड़ता है, कभी आगकी एक लहर सामने आती हुई नजर आती, कहीं कोई भयंकर राक्षस मुंहसे अग्निकी ज्वाला निकालता हुआ उन्हें निगलने को लपकता, लेकिन भयकी पराकाष्ठाका नाम साहस है। दोनों लड़के आंखें बन्द किये, नीरव, निश्चल निस्तब्ध, मूर्त्तिके समान बैठे रहते। आपका तो केवल नाम था, सारी मानसिक शक्तियां इन शंकाओंको दूर रखनेहीमें केन्द्रीभूत हो जाती थीं। यह भय कि जरा भी चौंके, झिझके या विचलित हुए तो तत्क्षण प्राणान्त हो जायगा, उन्हें अपनी जगहपर बांधे रहता था। मेरा भाई समीप ही बैठा हुआ है, यह विश्वास उनकी दृढ़ताका एक मुख्य कारण था, हालांकि इस विश्वाससे तेजशङ्करको उतना ढाढ़स न होता था जितना पद्मशङ्करको। उसे पद्मपर वह भरोसा न था जो पद्मको उसपर था। अतएव तेजशङ्करके लिये यह परीक्षा ज्यादा दुस्साध्य थी, पर यह भय कि मैं जरा भी हिला तो पद्मकी जान पर बन जायगी उस अविश्वासकी थोड़ीसी कसर पूरी कर देता था। इन दिनों दोनों बहुत दुर्बल हो गये थे; मुख पीले, आंखें चञ्चल, होंठ सूखे हुए। दोनों सारे दिन संज्ञाहीनसे पड़े रहते, खेल कूद, सैर सपाटे, आमोद विनोदसे उन्हें जरा भी रुचि न थी, आठों पहर मन उचटा रहता था, यहांतक कि भोजन भी अच्छा न लगता। इस तरह उन्तालीस दिन बीत गये और चालीसवां दिन आ पहुंचा। आज भोरहीसे उनके चित्त उद्विग्न होने लगे,

शङ्काओंने उग्र रूप धारण किया। आशायें भी प्रबल हुईं। दोनों आशा और भयकी दशामें बैठे हुए कभी अमरत्वकी कल्पनासे प्रफुल्लित हो जाते, कभी आजकी कठिनतम परीक्षाओंके भयसे कांपते। पर आशायें भयके ऊपर थीं। सारे शहरमें हलचल मच जायगी, हमलोग जलती हुई आगमें कूद पड़ेंगे और बेदाग निकल जायेंगे, आंच तक न आयेगी। उस मुंडेरपरसे निश्शङ्क नीचे कूद पड़ेंगे, जरा भी चोट न लगेगी। लोग देखकर दङ्ग हो जायंगे। दिनभर दोनोंने कुछ नहीं खाया, कभी नीचे जाते, कभी ऊपर आते, कभी हंसते, कभी रोते, कभी नाचते, कोई दूसरा आदमी उनकी यह दशा देखकर समझता कि पागल हो गये हैं।

जब अन्धेरा हुआ तो तेजशङ्कर घरमेंसे एक तलवार निकाल लाया, जिसे लालाजीने हालहीमें जयपुरसे मंगवाया था। दोनोंने कमरेका द्वार बन्द करके उसे मिट्टीके तेलसे खूब साफ किया, तब उसे पत्थरपर रगड़ा, यहांतक कि उसमेंसे चिनगारियां निकलने लगीं। तब उसे बिछावनके नीचे छिपाकर दोनों बाजारकी सैर करने निकल गये, लौटे तो ९ बज गये थे। बड़ी बहूके बहुत अनुरोध करनेपर दोनोंने कुछ सूक्ष्म भोजन किया और तब अपने कमरेमें लोगोंके निद्रामग्न हो जानेका इन्तजार करने लगे। ज्यों-ज्यों समय निकट आता था उनका आशादीपक भय-तिमिरमें विलुप्त होता जाता था। इस समय उनकी दशा कुछ उस अपराधीकी सी थी, जिसकी फांसीका समय प्रतिक्षण निकट आता जाता हो। भांति-भांतिकी शंकाएं और दुष्कल्पनायें उठ रही थीं, किन्तु इस आंधी और तूफानमें भी एक नौकाका स्पष्ट चिह्न दूरसे दिखायी देता था, जिससे उनकी हिम्मत बंध जाती थी। तेजशङ्कर चिन्तित और गम्भीर था, और पद्मशङ्करकी सरल, आशामय बातोंका जवाबतक न देता था।

निश्चित समय आ पहुंचा, तो दोनों घरसे निकले। माघका महीना, तुषारवेष्ठित वायु हड्डियोंमें चुभती थी। हाथ पांव अकड़े

जाते थे। तेजशङ्करने तलवारको अपनी चादरके नीचे छिपा लिया और दोनों चले, जैसे कोई मन्दबुद्धि बालक परीक्षा-भवनकी ओर चले! पग पगपर वह शङ्का-विह्वल होकर ठिठक जाते, फिर कलेजा मजबूत करके आगे बढ़ते। यहांतक कि कई बार उन्होंने लौटने-का इरादा किया, लेकिन ३९ दिनकी तपस्याके बाद वरदान मिल-नेके दिन हिम्मत हार जाना अक्षम्य दुर्बलता और भीरुता थी। अब तो चाहे जो हो, यह अन्तिम परीक्षा अनिवार्य्य थी। इस तरह डरते, हिचकते, दोनों घाटपर पहुंच गये। रास्तेमें किसीके मुंहसे एक शब्द भी न निकला।

अमावसकी रात थी। आंखोंका होना न होना बराबर था। तारागण भी बादलोंमें मुंह छिपाये हुए थे, अन्धकारने जल और बालू, पृथ्वी और अकाशको समान कर दिया था। केवल जल-की मधुर ध्वनि गङ्गाका पता देती थी। ऐसा सन्नाटा छाया हुआ था कि जलनाद भी उसमें निमग्न हो जाता था। ऐसा ज्ञान पड़ता था कि पृथ्वी अभी शून्यके गर्भमें पड़ी हुई है। अनन्त जीवनके दोनों आराधक, पग-पगपर ठोकरें खाते, शङ्कारचित बाधाओंसे पग-पगपर चौंकते, नदीके किनारे पहुंचे और नग्न होकर जलमें उतरे। पानी बर्फ हो रहा था। उनके सारे अङ्ग शिथिल हो गये! स्नान करके दोनों रेतपर बैठ गये और मन्त्रका जाप करने लगे। लेकिन आश्चर्य्य यह था कि आज उन्हें कोई ऐसा दृश्य न दिखायी दिया जिसे वह देख न चुके हों, न कोई ऐसी आवाजें सुनायी दीं, जो वह सुन न चुके हों। कोई असाधा-रण घटना न हुई। सरदीने शंकाओंको भी शान्त कर दिया था। विषम कल्पनायें भी निर्जीव हो गयी थीं। दोनों डर रहे थे कि आज न जाने कैसी कैसी विकराल मूर्त्तियां दिखायी देंगी, प्रेतगण न जाने किन मन्त्रोंसे आघात करेंगे। न जाने प्राण बचेंगे या जायंगे। लेकिन आज और दिनोंसे भी सस्ते छूट गये।

जब रात समाप्त हो गयी और दोनों साधकोंने आंखें खोलीं

तब आकाशपर उषालालिमा दिखायी दी। पृथ्वी शनैः शनैः तिमिर पटसे निकलने लगी, उसपारके वृक्ष और रेत व्यक्त हो गये जैसे किसी मूर्छित रोगीके मुखपर चैतन्यका विकाश हो रहा हो। श्यामल जल वेगसे बह रहा था, मानों अन्धकारको अपने साथ बहाये लिये जाता हो। उस पारके वृक्ष इस तरह सिर झुकाये खड़े थे मानों शोकसमाज किसीकी दाह क्रिया करके शोकसे सिर झुकाये चला आता हो।

सहसा तेजशंकर उठ खड़ा हुआ और बोला—जय भैरवकी!

पद्मशंकरने भी कड़ककर कहा—जय भैरवकी!

दोनोंके नेत्रोंमें एक अलौकिक प्रकाश था, दोनोंके मुखोंपर एक अद्भुत प्रतिभा झलक रही थी।

तेजशंकर—तलवार हाथमें लो, मैं सिर झुकाये हुए हूं।

पद्म—नहीं, पहले तुम चलाओ, मैं सिर झुकाता हूं।

तेज—क्या अब भी डरते हो? हमने मौतको कुचल दिया, कालको जीत लिया, अब हम अमर हैं।

पद्म—नहीं, पहले तुम्हीं श्रीगणेश करो, ऐसा हाथ-चलाना कि एक ही वारमें गर्दन अलग जा गिरे। मगर यह तो बताओ दर्द तो न होगा?

तेज—कैसा दर्द! ऐसा जान पड़ेगा जैसे किसीने फूलसे मारा हो। इसीसे तो कहता हूं कि पहले तुम शुरू करो।

पद्म—नहीं, पहले मैं सिर झुकाता हूं।

तेजशंकरने तलवार हाथमें ली, उसे तौला, दो तीन बार पैंतरे बदले और तब "जय भैरवकी" कहकर पद्मशंकरकी गर्दनपर तलवार चलायी। हाथ भरपूर पड़ा, तलवार तेज थी, सिर धड़से अलग जा गिरा, रक्तका फौवारा छूटने लगा। तेजशंकर खड़ा मुस्करा रहा था, मानों कोई फूलझड़ी छूट रही हो। उसके चेहरे-पर तेजोमय शांति छायी हुई थी। कोई शिकारी भी पक्षीको भूमिपर तड़पते देखकर इतना अविचलित न रहता होगा। कोई

अभ्यस्त बधिक भी पशुकी गर्दनपर तलवार चलाकर इतना स्थिरचित्त न रह सकता होगा। वह ऐसे सुदृढ़ विश्वासके भावसे खड़ा था जैसे कोई कबूतरबाज अपने कबूतरको उड़ाकर उसके लौट आनेकी राह देख रहा हो।

लाश कुछ देरतक तड़पती रही। इसके बाद शिथिल हो गयी। खूनके छींटे बन्द हो गये, केवल एक एक बूंद टपक रही थी, जैसे पानी बरसनेके बाद ओरी टपकती है। किन्तु पुनरुज्जीवनके संचारका कोई लक्षण न दिखाई दिया। एक मिनिट और गुजरा। तेजशङ्करको कुछ भ्रम हुआ, पर विश्वासने उसे शान्त कर दिया। उसने गङ्गाजल चुल्लूमें लेकर भैरवमंत्र पढ़ा और उसपर एक फूंक मारकर उसे लाशपर छिड़क दिया, किन्तु यह क्रिया भी असफल हुई, उस कटे हुए सिरमें कोई गति न हुई, उस मृतदेहमें स्फूर्तिका कोई चिह्न न दिखायी दिया। मंत्रकी जीवन-संचारिणी शक्तिका कुछ असर न हुआ।

अब तेजशङ्करको शंका होने लगी, विश्वासकी नींव हिलने लगी। उस पुस्तकमें स्पष्ट लिखा था कि सिर गर्दनसे अलग होते ही तुरत उसमें चिमट जाता है, और यदि इस क्रियामें कुछ विलम्ब हो तो भैरवमंत्रसे फूंके हुए पानीका एक चुल्लू काफी है। यहां इतनी देर हो गयी और अभीतक कुछ भी असर न हुआ। यह बात क्या है? मगर यह असंभव है कि मन्त्र निष्फल हो। कितने लोगोंने इस मंत्रको सिद्ध किया है। नहीं, घबरानेकी कोई बात नहीं, अभी जान आयी आती है।

उसने ३-४ मिनिट तक और इन्तजार किया, पर लाश ज्योंकी त्यों शांत शिथिल पड़ी हुई थी। तब उसने फिर गंगाजल छिड़का। फिर मंत्र पढ़ा, किन्तु लाश न उठी। उसने चिल्लाकर कहा—हा ईश्वर! अब क्या करूं! विश्वासका दीपक बुझ गया। उसने नैराश्यभावसे नदीकी ओर देखा। लहरें दाढ़ें मार मारकर रोती हुई जान पड़ीं। वृक्ष शोकसे सिर धुनते हुए मालूम

हुए। उसके कंठसे बलात् क्रन्दनध्वनि निकल आयी, वह चीख मारकर रोने लगा। अब उसे ज्ञान हुआ कि मैंने कैसा घोर अनर्थ किया, अनन्त जीवनकी सिद्धि कितनी उद्भ्रान्त, कितनी मिथ्या थी। हा! मैं कितना अन्धा, कितना हतबुद्धि, कितना उद्दण्ड हूं। हा! प्राणोंसे प्यारे पद्म, मैंने मिथ्या भक्तिकी धुनमें अपने ही हाथोंसे, इन्हीं निर्दय हाथोंसे, तुम्हारी गर्दनपर तलवार चलायी। हा! मैंने तुम्हारे प्राण लिये! मुझ-सा पापी और अभागा कौन होगा? अब कौनसा मुंह लेकर घर जाऊं? कौनसा मुंह दुनियाको दिखाऊं? अब जीवन वृथा है। तुम मुझे प्राणोंसे भी प्यारे थे। अब तुम्हें कैसे देखूंगा, तुम्हें कैसे पाऊंगा!

तेजशङ्कर कई मिनिटतक इन्हीं शोकमय विचारोंसे विह्वल होकर खड़ा रोता रहा। अभी एक क्षण पहले उसके दिलमें क्या-क्या इरादे थे? कैसी कैसी अभिलाषायें थीं? वह सब इरादे मिट्टीमें मिल गये? आह! जिस धूर्त पापीने यह किताब लिखी है? उसे पाता तो इसी तलवारसे उसकी गर्दन काट लेता। उसके भ्रम-जालमें पड़कर मैंने अपना सर्वनाश किया।

हाय! अभीतक लाशमें जान नहीं आयी। उसे उसकी ओर ताकते हुए अब भय होता था।

नैराश्यव्यथा, शोकाघात, परिणाममय, प्रेमोद्गार, ग्लानि—इन सभी भावोंने उसके हृदयको कुचल दिया।

तिसपर भी अभीतक उसकी आशाओंका प्राणान्त न हुआ था। उसने एक बार डरते डरते कनखियोंसे लाशको देखा, पर अब भी उसमें प्राणप्रवेशका चिह्न न दिखायी दिया तो आशाओं-का अन्तिम सूत्र भी टूट गया, धैर्यने साथ छोड़ दिया।

उसने एक बार निराश होकर आकाशकी ओर देखा। भाईकी लाशपर अन्तिम दृष्टि डाली, तब संभलकर बैठ गया और वही तलवार अपने गलेपर फेर दी। रक्तकी फुवारें उठीं, शरीर तड़पने लगा, पुतलियां फैल गयीं। बलिदान पूरा हो गया। मिथ्या

विश्वासने दो लहलहाते हुए जीव-पुष्पोंको पैरोंसे मसल डाला।

सूर्यदेव अपने आरक्त नेत्रोंसे यह विषम मायालीला देख रहे थे। उनकी नीरव, पात किरणें उन दोनों मंत्राहत बालकोंपर इस भाँति पड़ रही थीं, मानों कोई शोकविह्वल प्राणी उनके गलेसे लिपटकर रो रहा हो!

६०

इस शोकाघातने लाला प्रभाशङ्करको संज्ञाहीनसा कर दिया। दो सप्ताह बीत चुके थे, पर अभीतक वह घरसे बाहर न निकले थे। दिनके दिन चारपाईपर पड़े छतकी ओर देखा करते, रातें करवटें बदलनेमें कट जातीं। उन्हें अपना जीवन अब शून्यसा ज्ञान पड़ता था। आदमियोंकी सूरतसे अरुचि थी, अगर कोई सांत्वना देनेके लिये भी आता तो मुंह फेर लेते। केवल प्रेमशंकर ही एक ऐसे प्राणी थे जिसका आना उन्हें नागवार न मालूम होता था, इसलिये कि वह समवेदनाका एक शब्द भी मुंहसे न निकालते। सच्ची समवेदना मौन हुआ करती है।

एक दिन प्रेमशंकर आकर बैठे तो लालाजीको कपड़े पहनते देखा, द्वारपर एका भी खड़ा था, जैसे कहीं जानेकी तैयारी हो, पूछा, कहीं जानेका इरादा है क्या?

प्रभाशंकरने दीवारकी ओर मुंह फेरकर कहा—हां, जाता हूं, उसी निर्दयी दयाशंकरके पास, उसीको चिरौरी विनती करके घर लाऊंगा। कोई यहां रहनेवाला भी तो चाहिये। मुझसे गृहस्थीका बोझ नहीं संभाला जाता। कमर टूट गयी, बलहीन हो गया। प्रतिज्ञा तो की थी कि जीते जी उसका मुंह न देखूंगा, लेकिन परमात्माको मेरी प्रतिज्ञा निबाहनी मंजूर न थी, उनके पैरोंपर गिरना पड़ा। वंशका अन्त हुआ जाता है, कोई नामलेवा तो रहे, मरनेके बाद चुल्लूभर पानीको तो न रोना पड़े, मेरे बाद दीपक तो न बुझ जाय। अब दयाशंकरके सिवाय और दूसरा

कौन है, उसीसे अनुनय विनय करूंगा, मनाऊंगा, आकर घर आबाद करे, लड़कोंके बिना घर भूतोंका डेरा हो रहा है। दोनों लड़कियां ससुराल ही चली गयीं, दोनों लड़के भैरवकी भेंट हुए, अब किसका मुंह देखकर जीको समझाऊं। और मैं तो चाहे कलेजेपर पत्थरकी सिल रखकर बैठ भी रहता, पर तुम्हारी चाची-को कैसे समझाऊं। आज दो हफ्तेसे ऊपर हुए, उन्होंने दानेकी ओर ताका तक नहीं। रात दिन रोया करती हैं। बेटा, सच पूछो तो मैं ही दोनों लड़कोंका घातक हूं। वे जैसे चाहते थे रहते थे, जहां चाहते थे जाते थे, मैंने कभी उन्हें अच्छे रास्तेपर लगानेकी चेष्टा न की। सन्तानका पालन कैसे करना चाहिये, इसकी मैंने कभी चिन्ता न की।

प्रेमशंकरने करुणार्द्र होकर कहा, एकेका सफर है, आपको कष्ट होगा, कहिये तो मैं चला जाऊं, कल तक आ जाऊंगा।

प्रभा—वह यों न आयेगा, उसे खींचकर लाना होगा। वह कठोर नहीं, केवल लज्जाके मारे नहीं आता। वहां पड़ा रोता होगा, भाइयोंको बहुत प्यार करता था।

प्रेम—मैं उन्हें जबरदस्ती खींच लाऊंगा।

प्रभाशङ्कर राजी हो गये। प्रेमशंकर उसी दम चल खड़े हुए। थाना यहांसे १२ मीलपर था। ६ बजते बजते पहुंच गये। थाने-में सन्नाटा था। केवल एक मुंशीजी फर्शपर बैठे कुछ लिख रहे थे। प्रेमशङ्करने उनसे कहा—आपको तकलीफ तो होगी, पर जरा दारोगाजीको इत्तला कर दीजिये कि एक आदमी उनसे मिलने आया है। मुंशीजीने प्रेमशङ्करको सिरसे पांवतक देखा, तब लपककर उठे, उनके लिये एक कुरसी निकालकर रख दी और पूछा, जनाबका नाम बाबू प्रेमशंकर तो नहीं है ?

प्रेमशंकर—जी हां, मेरा नाम है।

मुंशी—आप खूब आये। दारोगाजी अभी आपहीका जिक्र कर रहे थे। आपका अक्सर जिक्र किया करते हैं। चलिये, मैं

आपके साथ चलता हूं। कानिस्टेबल सब उन्हींको हाजिर हैं। कई दिनसे बहुत बीमार हैं।

प्रेम—बीमार हैं ? क्या शिकायत है ?

मुंशी—जाहिरमें तो बुखार है, पर अन्दरका हाल कौन जाने ? हालत बहुत बदतर हो रही है। जिस दिनसे दोनों छोटे भाइयों-की नाबक्त मौतकी खबर सुनी, उसी दिन बुखार आया। उस दिनसे फिर थानेमें नहीं आये। घरसे बाहर निकलनेकी नौबत न आयी। पहले भी थानेमें बहुत कम आते थे, नशेमें डूबे पड़े रहते थे, ज्यादा नहीं तो तीन चार बोतल रोजाना जरूर पी जाते होंगे। लेकिन इन पन्द्रह दिनोंमें एक घूंट भी नहीं पी। खानेकी तरफ ताकते ही नहीं। या तो बुखारमें बेहोश पड़े रहते हैं, या तबीयत जरा हल्की हुई तो रोया करते हैं। ऐसा मालूम होता है कि फालिज गिर गयी है। करवटतक नहीं बदल सकते। डाक्टरोंका तांता लगा हुआ है, मगर कोई फायदा नहीं होता। सुना आप भी कुछ हिकमत करते हैं, देखिये, शायद आपहीकी दवा कार-गर हो जाय। बड़ा अनमोल आदमी था। हमलोगोंको तो ऐसा सदमा हो रहा है जैसा कोई अपना अजीज उठा जाता हो। पैसे-की मुहब्बत छू नहीं गयी थी। हजारों रुपये माहवार लाते थे और सबका सब असलोंके हाथोंमें रख देते थे। रोजाना शराब मिलती जाय, बस, और कोई हवस न थी। किसी मातहतसे गलती हो जाय, पर कभी शिकायत न करते थे, बल्कि सारा इलजाम अपने सिर ले लेते थे। क्या मजाल कि कोई हाकिम उनके मातहतोंको तिर्छी निगाहसे भी देख सके, सीनासिपर हो जाते थे। मातहतों-की शादी और गममें इस तरह शरीक होते थे जैसे कोई अपना अजीज हो। कई कानिस्टेबलोंकी लड़कियोंको शादियां अपने खर्चेसे करा दीं, उनके लड़कोंकी तालीमकी फीस अपने पास-से देते थे। अपनी सख्तीके लिये सारे इलाकेमें बदनाम थे। सारा इलाका उनका दुश्मन था, मगर थानेवाले चैन करते थे।

हम गरीबोंको ऐसा गरीबपरवर और हमदर्द अफसर न मिलेगा।

मुंशीजीने ऐसे अनुरक्त भावसे यह यश गान किया कि प्रेमशंकर गद्गद् हो गये। वह दयाशंकरको लोभी, कुटिल, स्वार्थी समझते थे, जिसके अत्याचारोंसे इलाकेमें हाहाकार मचा हुआ था। जो कुलका द्रोही, कुपुत्र और व्यभिचारी था। जिसने अपनी विलासिता और विषयवासनाकी धुनमें माता-पिता, भाई बहिन, यहांतक कि अपनी पत्नीतकसे मुंह फेर लिया था। उनकी दृष्टिमें वह एक बेशर्म, पतित, हृदयशून्य आदमी था। यह गुणानुवाद सुनकर उन्हें अपनी संकीर्णतापर बहुत खेद हुआ। वह मनमें अपना तिरस्कार करने लगे। उन्हें फिर आत्मिक मंत्रणा मिली— हा! मुझमें कितना अहंकार है! मैं कितनी जल्द भूल जाता हूं कि यह विराट् जगत अनन्त ज्योतिसे प्रकाशमय हो रहा है, इसका एक एक परमाणु, उसी ज्योतिसे आलोकित है। यहां किसी मनुष्यको नीच या पतित समझना ऐसा पाप है जिसका प्रायश्चित्त नहीं। मुंशीसे पूछा—डाक्टरोंने कुछ तशखीस नहीं की?

मुंशीजीने उपेक्षाभावसे कहा—डाक्टरोंकी कुछ न पूछिये, कोई कुछ बताता है कोई कुछ, या तो उन्हें खुद ही इल्म नहीं, या गौरसे देखते ही नहीं। उन्हें तो अपनी फीससे काम है। आइये, अन्दर चले आइये, यही मकान है।

प्रेमशंकर अन्दर गये तो कानिस्टेबलोंकी भीड़ लगी हुई थी। कोई रो रहा था, कोई उदास, कोई मलिनमुख खड़ा था, कोई पङ्खा झलता था। कमरेमें सन्नाटा था। प्रेमशंकरको देखते ही सभाने उन्हें सलाम किया और कातर नेत्रोंसे उनकी ओर देखने लगे। दयाशंकर चारपाईपर पड़े हुए थे। चेहरा पीला हो गया था और शरीर सूखकर कांटा हो गया था, मानों किसी हरे भरे खेतको टिड्डियोंने चर लिया हो। आंखें बन्द थीं, माथेपर पसीनेकी

बूदें पड़ी हुई थीं और श्वासक्रियामें एक चिन्ताजनक शिथिलता थी। प्रेमशंकर यह शोकमय दृश्य देखकर तड़प उठे, चारपाईके निकट जाकर दयाशंकरके माथेपर हाथ रखा और बोले—भैया ?

दयाशंकरने आखें खोलीं और प्रेमशंकरको गौरसे देखा, मानों किसी भूली हुई सूरतको याद करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। तब बड़े शान्तभावसे बोले— तुम हो प्रेमशंकर ? खूब आये, तुम्हें देखनेकी बड़ी इच्छा थी। कई बार तुमसे मिलनेका इरादा किया, पर शर्मके मारे हिम्मत न पड़ी। लालाजी तो नहीं आये ? उनसे भी एक बार भेंट हो जाती तो अच्छा होता, न जाने फिर दर्शन हो या न हो।

प्रेम—वह आनेको तैयार थे, पर मैंने ही उन्हें रोक दिया। मुझे तुम्हारी हालत मालूम थी।

दया—अच्छा किया, इतनी दूर पक्के पर आनेमें उन्हें कष्ट होता। वह मेरा मुंह न देखें, यही अच्छा है। मुझे देखकर कौन उनकी छाती हुलसेगी ?

यह कहकर वह चुप हो गये, ज्यादा बोलनेकी शक्ति न थी, दम लेकर बोले - क्यों प्रेम ? संसारमें मुझसा अभागा और भी कोई होगा, यह सब मेरे ही कर्मोंका फल है। मैं ही वशका द्रोही हूं। मैं क्या जानता था कि पापीके पापोंका दण्ड इतना कड़ा होता है। मुझे अगर किसीकी कुछ मुहब्बत थी तो दोनों लड़कोंकी। मेरे पापोंने भैरव बनकर उन.........

उनकी आंखोंसे आंसू बहने लगे। मूर्च्छा-सी आ गयी। आध घण्टेतक इसी अचेत दशामें पड़े रहे। सांस प्रति क्षण धीमी होती जाती थी। प्रेमशङ्कर पछता रहे थे, यह हाल मुझे पहले न मालूम हुआ, नहीं तो डाक्टर प्रियनाथको साथ लेता आता। यहां तारघर तो है, क्यों जी, उन्हें तार दे दूं ? वह इसे मेरा काम समझकर फीस न लेंगे, यही अड़चन है। यही सही, पर उनको बुलाना जरूर चाहिये।

यह सोचकर उन्होंने तार लिखना शुरू किया कि सहसा डाक्टर प्रियनाथने कमरेमें कदम रखा। प्रेमशंकरने चकित होकर एक बार उनकी ओर देखा और तब उनके गलेसे लिपट गये और कुण्ठित स्वरसे बोले—आइये भाई साहब, अब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि ईश्वर दीनोंकी विनय सुनता है। आपके पास यह तार भेज रहा था। इनकी जान बचाइये।

प्रियनाथने आश्वासन देते हुए कहा—आप घबरायें नहीं, मैं अभी देखता हूं। क्या करूं, मुझे पहले किसीने खबर नहीं दी। इस इलाकेमें बुखारका जोर है, मैं कई गावोंका चक्कर लगाता हुआ थानेके सामनेसे गुजरा तो मुंशीजीने मुझे यह हाल बतलाया।

यह कहकर डाक्टर साहबने अपने हैंडबेगसे एक यंत्र निकाल-कर दयाशंकरकी छातीमें लगाया और खूब ध्यानसे निरीक्षण करके बोले—फेफड़ोंपर बलगम आ गया है, लेकिन चिन्ताकी कोई बात नहीं, मैं दवा देता हूं, ईश्वरने चाहा तो शामतक जरूर असर होगा।

डाक्टर साहबने दवा पिलायी और वहीं कुरसीपर बैठ गये। प्रेमशंकरने कहा, मैं शामतक आपको न छोड़ूंगा।

प्रियनाथने मुस्कराकर कहा—आप मुझे भगायें भी तो न जाऊंगा। यह मेरे पुराने दोस्त हैं, इनकी बदौलत मैंने हजारों रुपये उड़ाये हैं।

एक वृद्ध चौकीदारने कहा—हजूर, इनका अच्छा कर देव तो और तो नहीं, मुदा हम सब जने आपन एक एक तलब आपके नजर कर दे हैं।

प्रियनाथ हंसकर बोले—मैं तुम लोगोंको इतने सस्ते न छोड़ूंगा। तुम्हें वचन देना पड़ेगा कि अब किसी गरीबको न सतायेंगे, किसी जबरदस्ती बेगार न लेंगे और जिसका सौदा लेंगे उसको उचित दाम देंगे।

चौकीदार—भला सरकार, हमारा गुजर बसर कैसे होगा ? हमारे भी तो बाल बच्चे हैं, दस पन्द्रह रुपयोंमें क्या होता है ?

प्रिय—तो अपने हाकिमोंसे तरक्की करनेके लिये क्यों नहीं कहते ? सब लोग मिलकर जाओ और अरज-मारूज करो। तुम लोग प्रजाकी रक्षाके लिये नौकर हो, उन्हें सतानेके लिये नहीं। अवकाशके समय कोई दूसरा काम किया करो जिससे आमदनी बढ़े। रोज २-३ घण्टे कोई काम कर लिया करो तो १०, १२ रुपयेकी मजदूरी हो सकती है।

चौकीदार—भला ऐसा कौन काम है हजूर ?

प्रिय—काम बहुत हैं, हां शर्म छोड़नी पड़ेगी। इस भावको दिलसे निकाल देना पड़ेगा कि हम कानिस्टेबल हैं तो अपने हाथोंसे मिहनत कैसे करें। सच्ची मिहनतकी कमाईमें अन्याय और जुल्मकी कमाईसे कहीं ज्यादा बरकत होती है।

मुंशीजी बोले—हजूर, इस बारेमें सरकारी कायदे बड़े सख्त हैं। पुलिसके मुलाजिमका कोई दूसरा काम करनेका मजाज नहीं है। अगर हमलोग कोई दूसरा काम करने लगें तो निकाल दिये जायें।

प्रिय—यह आपकी गलती है, आपको फुर्सतके वक्त कपड़े बुनने, या सूत कातने या कपड़े सीनेसे कोई नहीं रोक सकता। हां, सरकारी काममें हर्ज न होना चाहिये। आप लोगोंको अपनी हालत हाकिमोंसे कहनी चाहिये।

मुंशी हजूर, कोई सुननेवाला भी तो हो ! हमारा रिआयाको लूटना हुक्कामकी निगाहमें इतना बड़ा जुर्म नहीं है, जितना कुछ अर्ज मारूज करना। फौरन साजिश और गरोहबन्दीका इल्जाम लग जाय।

प्रिय—इससे तो यह कहीं अच्छा होता कि आप लोग कोई हुनर सीखकर आजादीसे रोजी कमाते। मामूली कारीगर भी आप लोगोंसे ज्यादा कमा लेते हैं।

मुंशी—हजूर, यह तकदीरका मुआमला है। जिसके मुकद्दरमें गुलामी लिखी हो वह आजाद कैसे हो सकता है?

दोपहर हो गया था, प्रियनाथने दूसरी खुराक दवा दी। इतनेमें महराजने आकर कहा—सरकार, रसोई तैयार है, भोजन कर लीजिये। प्रेमशंकर वहांसे उठना न चाहते थे, लेकिन प्रियनाथने उन्हें इत्मीनान दिलाकर कहा—चाहे अभी जाहिर न हो, पर पहली खुराकका कुछ न कुछ असर हुआ है, आप देख लीजियेगा, शामतक यह होश-हवासकी बातें करने लगेंगे।

दोनों आदमी भोजन करने गये। महराजने खूब मसालेदार भोजन बनाया था। दयाशंकर चटपटे भोजनके आदी थे। सभी चीजें इतनी कड़वी थीं कि प्रेमशंकर दो चार कौरसे अधिक न खा सके। आंख और नाकसे पानी बहने लगा। प्रियनाथने हंसकर कहा—आपकी तो खूब दावत हो गयी। महराजने तो मद्रासियोंको भी मात कर दिया। यह उत्तेजक मसाले पाचनशक्तिको निर्बल कर देते हैं, देखो महराज, जबतक दारोगाजी अच्छे न हो जायँ ऐसी चीजें उन्हें न खिलाना, मसाले बिल्कुल न डालना।

महराज—हजूर, मैंने तो आज बहुत कम मसाले दिये हैं। दारोगाजीके सामने यह भोजन जाता तो कहते यह क्या फीकी पीच पकायी है।

प्रेमशंकरने रूखे चावल खाये, मगर प्रियनाथने मिरचोंकी परवा नहीं की, दोनों आदमी भोजन करके फिर दयाशंकरके पास आ बैठे। तीन बजे प्रियनाथने अपने हाथोंसे उनकी छातीमें एक अर्ककी मालिश की और शामतक दो चार और दवा दी। दयाशंकर अभीतक चुपचाप पड़े हुए थे, पर यह मूर्च्छा नहीं, नींद थी। उनकी श्वास-क्रिया स्वाभाविक होती जाती थी और मुखकी विवर्णता मिटती जाती थी। जब अन्धेरा हुआ तो प्रियनाथने कहा, अब मुझे आज्ञा दीजिये, ईश्वरने चाहा तो रातभरमें इनकी

दशा बहुत अच्छी हो जायगी। अब भयकी कोई बात नहीं है। मैं कल ८ बजेतक फिर आऊंगा। सहसा दयाशंकर जागे, उनकी आंखोंमें अब वह चञ्चलता न थी। प्रियनाथने पूछा, अब कैसी तबीयत है।

दया—ऐसा जान पड़ता है, कि किसीने जलती हुई रेतसे उठा कर वृक्षकी छांहमें लिटा दिया हो।

प्रिय—कुछ भूख मालूम होती है?

दया—जी नहीं, प्यास लगी है।

प्रिय—तो आप थोड़ासा गर्म दूध पी लें। मैं इस वक्त जाता हूं। कल ८ बजेतक आ जाऊंगा।

दयाशंकरने मुंशीजीकी तरफ देखकर कहा—मेरा सन्दूक खोलिये और उसमें जो कुछ हो लाकर डाक्टर साहबके पैरोंपर रख दीजिये। बाबूजी, यह रकम कुछ नहीं है, पर आप इसे कबूल करें।

प्रिय—अभी आप चंगे तो हो जायँ, मेरा हिसाब फिर हो जायगा।

दया—मैं चङ्गा हो गया, मौतके मुंहसे निकल आया, कलतक मरनेहीका जी चाहता था, लेकिन अब जीनेकी इच्छा है। यह फीस नहीं है। मैं आपको फीस देने लायक नहीं हूं। दैहिक रोगनिवृत्तिकी फीस हो सकती है, लेकिन मुझे ज्ञात हो रहा है कि आपने आत्मिक उद्धार कर दिया है। इसकी फीस वह एह-सान है जो जीवनपर्यन्त मेरे सिरपर रहेगा और ईश्वरने चाहा तो आपको इस पापी जीवनको मौतके पंजेसे बचा लेनेका दुःख न होगा।

प्रियनाथने फीस न ली, चले गये। प्रेमशंकर थोड़ी देर बैठे रहे। जब दयाशंकर दूध पीकर फिर सो गये तब वह बाहर निकल कर टहलने लगे। अकस्मात् उन्हें लाला प्रभाशंकर एक्केपर आते हुए दिखायी दिये। निकट आते ही वह एक्केसे उतरे और

कम्पित स्वरसे बोले—बेटा, बताओ दयाशंकरकी क्या हालत है ? तुम्हारे चले आनेके बाद वहांसे एक चौकीदार मेरे पास पहुंचा। उसने कुछ ऐसी बुरी खबर सुनायी कि होश उड़ गये, उसी वक्त चल खड़ा हुआ। घरमें हाहाकार मचा हुआ है। सच सच बताओ बेटा, क्या हाल है।

प्रेम—अब तो तबीयत बहुत कुछ संभल गयी है, कोई चिन्ताकी बात नहीं है, पर जब मैं आया हूं तो वास्तवमें हालत खराब थी। खैरियत यह हो गयी कि डाक्टर प्रियनाथ आ गये। उनकी दवाने जादूकासा असर किया। अब सो रहे हैं।

प्रभा—बेटा, चलो, जरा देख लूं, चित्त बहुत व्याकुल है।

प्रेम—आपको देखकर शायद वह रोने लगें।

प्रभाशंकरने बड़ी नम्रतासे कहा—बेटा, मैं जरा भी न बोलूंगा, बस एक आंख देखकर चला आऊंगा। जी बहुत घबराया हुआ है।

प्रेम—आइये, मगर चित्तको शान्त रखियेगा। अगर उन्हें जरा भी आहट मिल गयी तो दिनभरकी मेहनत निष्फल हो जायगी।

प्रभा—भैया, कसम खाता हूं, जरा भी न बोलूंगा। बस, दूरसे एक आंख देखकर चला आऊंगा।

प्रेमशङ्कर मजबूर हो गये। लालाजीको लिये हुए दयाशङ्करके कमरेमें गये। प्रभाशङ्करने चौखटसे ही इस तरह डरते डरते भीतर झांका जैसे कोई बालक घटाकी ओर देखता है कि कहीं बिजली न चमक जाय। पर दयाशङ्करकी दशा देखते ही प्रेमोद्गारसे विवश होकर वह जोरसे चिल्ला उठे और हाय बेटा! कहकर उनकी छातीसे चिमट गये।

प्रेमशंकरने तुरन्त उपेक्षाभावसे उनका हाथ पकड़ा और खींचकर कमरेके बाहर लाये।

दयाशंकरने चौंककर पूछा, कौन था। दादाजी आये हैं क्या

प्रेमशङ्कर—आप आरामसे लेटें, इस वक्त बातचीत करनेसे बेचैनी बढ़ जायगी।

दया—नहीं, मुझे एक क्षणके लिये उठाकर बिठा दो। मैं उनके चरणोंपर सिर रखना चाहता हूं।

प्रेम—इस वक्त नहीं। कल इत्मीनानसे मिलियेगा।

यह कहकर प्रेमशंकर बाहर चले आये। प्रभाशंकर बरामदेमें खड़े रो रहे थे। बोले—बेटा नाराज न हो, मैंने बहुत रोका, पर दिल काबूमें न रहा। इस समय मेरी दशा उस टूटी नावपर बैठे हुए मुसाफिरकी सी है जिसके लिये हवाका एक झोंका भी मौतके थप्पड़के समान है। सच सच बताओ, डाक्टर साहब क्या कहते थे।

प्रेम—उनके विचारमें अब कोई चिन्ताकी बात नहीं है। लक्षणोंसे भी यही प्रकट होता है।

प्रभा—ईश्वर इनका कल्याण करें, पर मुझे तो तब ही इत्मीनान होगा जब यह उठ बैठेंगे। यह इनके ग्रहका साल है।

दोनों आदमी बाहर आकर सायबानमें बैठे। दोनों अपने विचारोंमें मग्न थे। थोड़ी देरके बाद प्रभाशंकर बोले, हमारा यह कितना बड़ा अन्याय है कि अपनी सन्तानमें उन्हीं कुसंस्कारोंको देखकर जो हममें स्वयं मौजूद हैं उनके दुश्मन हो जाते हैं। दयाशंकरसे मेरा केवल इसी बातपर मनमुटाव था कि वह घरकी खबर क्यों नहीं लेता? दुर्व्यसनोंमें क्यों अपनी कमाई उड़ा देता है? मेरी मदद क्यों नहीं करता? किन्तु मुझसे पूछो कि तुमने अपनी जिन्दगीमें क्या किया। मेरी इतनी उम्र भोगविलासहीमें गुजरी है। इसने अगर लुटायी तो अपनी कमाई लुटायी, बरबाद की तो अपनी कमाई बरबाद की। मैंने तो पुरुषाओंकी जायदादका सफाया कर दिया। मुझे इससे बिगड़नेका कोई अधिकार न था।

थानेके कई अमले और चौकीदार आकर बैठ गये और दया-

शंकरकी सहृदयता और सज्जनताकी सराहना करने लगे। प्रभा-शंकर उनकी बातें सुनकर गर्वसे फूले जाते थे।

८ बजे प्रेमशंकरने जाकर फिर दवा पिलायी और वहीं रातभर एक आराम-कुर्सीपर लेटे रहे। पलकको झपकने भी न दिया।

सवेरे प्रियनाथ आये और दयाशंकरको देखा तो प्रसन्न होकर बोले—अब जरा भी चिन्ता नहीं है। इनकी हालत बहुत अच्छी है। एक सप्ताहमें यह अपना काम करने लगेंगे। दवा-से ज्यादा बाबू प्रेमशंकरकी शुश्रूषाका असर है। शायद आप रातको बिल्कुल नहीं सोये ?

प्रेमशंकर—सोया क्यों नहीं ? हां, घोड़े बेचकर नहीं सोया।

प्रभाशंकर—डाक्टर साहब, मैं गवाही देता हूं कि रातभर इनकी आंखें नहीं झपकीं। मैं कई बार झांकने आया तो या तो इन्हें बैठे या कुछ पढ़ते पाया।

दयाशंकरने श्रद्धामय भावसे कहा—जीता बचा तो बाकी उम्र इनकी खिदमतमें काटूंगा। इनके साथ रहकर मेरा जीवन सुधर जायगा।

इस भांति एक हफ्ता गुजर गया। डाक्टर प्रियनाथ रोज आते और घण्टेभर ठहरकर देहातोंकी ओर चले जाते। प्रभा-शंकर तो दूसरे ही दिन घर चले गये, लेकिन प्रेमशंकर एक दिन-के लिये भी न हिले। आठवें दिन दयाशंकर पालकीमें बैठकर घर जानेके योग्य हो गये। उनकी छुट्टी मंजूर हो गयी थी।

प्रातःकाल था। दयाशंकर थानेसे चले। यद्यपि वह केवल तीन महीनेकी छुट्टीपर जा रहे थे, पर थानेके कर्मचारियोंको ऐसा मालूम होता था कि अब इनसे सदाके लिये साथ छूट रहा है। सारा थाना मीलभरतक पालकीके साथ दौड़ता हुआ उनके साथ आया। लोग किसी तरह लौटते ही न थे। अन्तमें प्रेम-

शंकरके बहुत दिलासा देनेपर लोग विदा हुए। सबके सब फूट-फूटकर रो रहे थे।

प्रेमशंकर मनमें पछता रहे थे कि ऐसे सर्वप्रिय श्रद्धेय मनुष्यसे मैं इतने दिनोंतक घृणा करता रहा। दुनियांमें ऐसे कितने सज्जन, ऐसे दयालु, ऐसे विनयशील पुरुष हैं, जिनकी मुट्ठीमें इतने आदमियोंके हृदय हों, जिनके वियोगसे लोगोंको इतना दुःख हो।

८१

होलीका दिन था। शहरमें चारो तरफ अबीर और गुलाल उड़ रही थी, फाग और चौतालकी धूम थी। लेकिन लाला प्रभाशंकरके घरपर मातम छाया हुआ था। श्रद्धा अपने कमरेमें बैठी हुई गायत्री देवीके गहने और कपड़े सहेज रही थी कि अब-की ज्ञानशंकर आयें तो यह अमानत उन्हें सौंप दूं। विद्याके देहान्त और गायत्रीके चले जानेके बादसे उसकी तबीयत अकेले बहुत घबराया करती थी। अक्सर दिनके दिन बड़ी बहूके पास बैठी रहती, पर जबसे दोनों लड़कोंकी मृत्यु हुई उसका जी और भी उचटा रहता था। हां, कभी कभी शीलमणिके आ जानेसे जरा देरके लिये जी बहल जाता था। गायत्रीके मरनेकी खबर यहां कल ही आयी थी। श्रद्धा उसे याद करके सारी रात रोती रही। इस वक्त भी गायत्री उसकी आंखोंमें फिर रही थी, उसकी मृदु, सरल, निष्कपट बातें याद आ रही थीं, कितनी उदार, कितनी नम्र, कितनी प्रेममयी रमणी थी, जरा भी अभिमान नहीं, पर हा शोक! कितना भीषण अन्त हुआ। इसी शोकावस्थामें दोनों लड़कोंकी ओर ध्यान जा पहुंचा। हा! दोनों कैसे हंसमुख, कैसे होनहार, कैसे सुन्दर बालक थे। जिन्दगीका कोई भरोसा नहीं, आदमी कैसे कैसे इरादे करता है, कैसे कैसे मंसूबे बांधता है, किन्तु यमराजके आगे किसीकी नहीं चलती। वह आनकी आनमें सारे मंसूबोंको

धूलमें मिला देता है। तीन महीनोंके अन्दर पांच प्राणी चल दिये, इसी तरह एक दिन मैं भी चल बसूंगी और मनकी मनहीमें रह जायगी। आठ सालसे हम दोनों अपनी अपनी टेकपर अड़े हैं, न वह झुकते हैं, न मैं दबती हूं। जब इतने दिनोंतक उन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किया तब अब कदापि न करेंगे। उनकी आत्मा अपने पुण्य कार्योंसे संतुष्ट है, न इसकी जरूरत समझती है, न महत्व। अब मुझीको दबना पड़ेगा, अब मैं ही किसी विद्वान पण्डितसे पूछूं कि मेरे किसी अनुष्ठानसे उनका प्रायश्चित्त हो सकता है या नहीं ? क्या मेरी इतने दिनकी तपस्या, गङ्गास्नान, पूजापाठ, व्रत और नियम सब अकारथ हो जायंगे ? माना, उन्होंने विदेशमें कितने ही काम अपने धर्मके विरुद्ध किये, लेकिन जबसे यहां आये हैं तबसे तो बराबर सत्कार्य ही कर रहे हैं, दीनोंकी सेवा और पतितोंके उद्धारमें दत्तचित्त रहते हैं, अपनी जानकी भी परवा नहीं करते। कोई बड़ेसे बड़ा धर्मात्मा भी परोपकारमें इतना रत न रहता होगा, उन्होंने अपनेको बिल्कुल मिटा दिया है। धर्मके जितने लक्षण ग्रन्थोंमें लिखे हुए हैं, वह सभी उनमें मौजूद हैं। जिस पुरुषने अपने मनको, अपनी इन्द्रियोंको, अपनी वासनाओंको ज्ञानबलसे जीत लिया हो, क्या उसके लिये भी प्रायश्चित्तकी जरूरत है ? क्या कर्मयोगका मूल्य प्रायश्चित्तके बराबर भी नहीं ? कोई ऐसी पुस्तक नहीं मिलती, जिसमें इस समस्याकी साफ साफ व्यवस्था की गयी हो, कोई ऐसा विद्वान् नहीं दिखायी देता जो मेरी शंकाओंका समाधान करे। भगवन्, मैं क्या करूं ? इन्हीं दुविधाओंमें पड़ी एक दिन मर जाऊंगी और उनकी सेवा करनेकी अभिलाषा मनमें ही रह जायगी। उनके साथ रहकर मेरा जीवन भी सार्थक हो जाता, नहीं तो इस चहारदीवारीमें पड़े जीवन वृथा गंवा रही हूं।

श्रद्धा इन्हीं विचारोंमें मग्न थी कि अचानक उसे द्वारपर हल-

चल सी सुनायी दी। खिड़कीसे झांका तो नीचे सैकड़ों आद-मियोंकी भीड़ दिखायी दी। इतनेमें महरीने आकर कहा—बहूजी, लखनपूरके जितने आदमी कैद हुए थे वह सब छूट आये हैं और द्वारपर खड़े बाबूजीको आशीर्वाद दे रहे हैं। जरा सुनो, वह बुड्ढा दाढ़ीवाला कह रहा है, या अल्लाह! बाबू प्रेमशङ्करको कयामततक सलामत रख। इनके साथ एक बूढ़ा साधू भी है। सुखदास नाम है, वह बाजारसे यहांतक रुपये पैसे लुटाता आया है। जान पड़ता है कोई बड़ा धनी आदमी है।

इतनेमें मायाशंकर लपका हुआ आया और बोला—बड़ी अम्मां, लखनपूरके सब आदमी छूट आये हैं। बाजारमें उनका जलूस निकला था। डाक्टर इर्फान अली, बाबू ज्वालासिंह, डाक्टर प्रियनाथ, चाचा साहब, चाचा दयाशङ्कर और शहरके और सैकड़ों छोटे बड़े आदमी जलूसके साथ थे। लाओ, दीवान-खानेकी कुंजी दे दो, कमरा खोलकर सबको बैठाऊं।

श्रद्धाने कुंजी निकालकर दे दी और सोचने लगी, इन लोगों-का क्या सत्कार करूं, कि इतनेमें जय जयकारका गगनव्यापी नाद सुनायी दिया—बाबू प्रेमशङ्करकी जय! लाला दयाशङ्करकी जय! लाला प्रभाशङ्करकी जय!

मायाशंकर फिर दौड़ा हुआ आया और बोला—बड़ी अम्मां, जरा ढोल मजीरा निकलवा दो, बाबा सुखदास भजन गायेंगे। वह देखो, वह दाढ़ीवाला बुड्ढा, वही कादिर खां है, वह जो लम्बा तगड़ा आदमी है, वही बलराज है, इसीके बापने गौसखां-को मारा था।

श्रद्धाका चेहरा आत्मोल्लाससे चमक रहा था। हृदय ऐसा पुलकित हो रहा था, मानों द्वारपर बरात आयी हो। मनमें भांति भांतिकी उमंगें उठ रही थीं। इन लोगोंको आज यहीं ठहरा लूं, सबकी दावत करूं, खूब धूमधामसे सत्यनारायणकी कथा हो। प्रेमशङ्करके प्रति श्रद्धाका ऐसा प्रबल आवेग हो रहा

था कि इसी दम जाकर उनके चरणोंसे लिपट जाऊं। तुरंत ढोल और मजीरे निकालकर मायाशङ्करको दिये।

सुखदासने ढोल गलेमें डाला, औरोंने मजीरे लिये, मंडल बांधकर खड़े हो गये और यह भजन गाने लगे।

"सद्‌गुरुने मोरी गह लई बाह, नहीं रे मैं तो जात बही।"

माया खुशीके मारे फूला न समाता था। आकर बोला—कादिरमियां खूब गाते हैं।

श्रद्धा—इन लोगोंकी कुछ आव-भगत करनी चाहिये।

माया—मेरा तो जी चाहता है सबकी दावत हो। तुम अपनी तरफसे कहला दो। जो सामान चाहिये वह मुझे लिखवा दो। जाकर आदमियोंको लानेके लिये भेज दूं। यह सब बेचारे इतने सीधे, गरीब हैं कि मुझे तो विश्वास नहीं आता कि इन्होंने गौस खांको मारा होगा। बलराज है तो पूरा पहलवान, लेकिन वह भी बहुत ही सीधा मालूम होता है।

श्रद्धा—दावतमें बड़ी देर लगेगी। बाजारसे चीजें आयेंगी, बनाते बनाते तीसरा पहर हो जायगा। इस वक्त एक २०) की मिठाई मंगवाकर जलपान करा दो। रुपये हैं या दूं?

माया—रुपये बहुत हैं। क्या कहूं, मुझे पहले यह बात न सूझी।

दोपहरतक भजन होते रहे। शहरके हजारों आदमी इस आनन्दोत्सवमें शरीक थे। प्रेमशंकरने सबको आदरसे बिठाया, इतनेमें बाजारसे मिठाइयां आ गयीं, लोगोंने नाश्ता किया और प्रेमशंकरका यश गान करते हुए विदा हुए, लेकिन लखनपूरवालों-को छुट्टी न मिली। श्रद्धाने कहला भेजा कि खा पीकर शामको जाना। यद्यपि सबके सब घर पहुंचनेके लिये उत्सुक हो रहे थे, पर यह निमन्त्रण कैसे अस्वीकार करते! लाला प्रभाशंकर भोजन बनवाने लगे। अबतक उन्होंने केवल बड़े आदमियोंहीको अपनी व्यंजनकलासे मुग्ध किया था। आज देहातियोंको भी यह

सौभाग्य प्राप्त हुआ। लालाजी ऐसा स्वादयुक्त भोजन देना चाहते थे, जो उन्हें तृप्त कर दे, जिसको वह सदैव याद करते रहें। भांति भांतिके पकवान बनाने लगे। बहुत जल्दी की गयी, फिर भी खाते पीते ८ बज गये। प्रियनाथ और इर्फान अलीने अपनी सवारियां भेज दी थीं। उसपर बैठकर लोग लखनपूर चले। सभोंने मुक्तकण्ठसे आशीर्वाद दिये। अभी घरवाले बाकी थे, उनके खानेमें १० बज गये। प्रेमशङ्कर हाजीपुर जानेको प्रस्तुत हुए तो महरीने आकर धीरेसे कहा, बहूजी कहती हैं कि आज यहीं सो रहिये। रात बहुत हो गयी है। इस असाधारण कृपा-दृष्टिने प्रेमशङ्करको चकित कर दिया। वह इसका मर्म न समझ सके।

ज्वालासिंहने महरीसे हंसी की—हम लोग भी रहें या चले जायं?

महरी सतर्क थी। बोली—नहीं सरकार, आप भी रहें, माया भैया भी रहें, यहां किस चीजकी कमी है?

ज्वाला—चल, बातें बनाती है!

महरी चली गयी तो वह प्रेमशङ्करसे बोले—आज मालूम होता है आपके नक्षत्र बलवान हैं। अभी और विजय प्राप्त होनेवाली है।

प्रेमशङ्करने विरक्त भावसे कहा—कोई नया उपदेश सुनना पड़ेगा, और क्या?

ज्वाला—जी नहीं, मेरा मन कहता है कि आज देवी आपको वरदान देगी। आपकी तपस्या पूरी हो गयी।

प्रेम—मेरी देवी इतनी भक्तवत्सल नहीं है।

ज्वाला—अच्छा, कल आप ही ज्ञात हो जायगा। हमें आज्ञा दीजिये।

प्रेम—क्यों, यहीं क्यों न सो रहिये?

ज्वाला—मेरी देवी और भी जल्द रूठती है।

यह कहकर वह मायाशंकरके साथ चले गये।

महरीने प्रेमशंकरके लिये पलंग बिछा दिया था। वह लेटे तो अनिवार्यतः मनमें जिज्ञासा होने लगी कि श्रद्धा आज क्यों मुझपर इतनी सदय हुई है। कहीं यह महरीका कौशल तो नहीं है? नहीं, महरी ऐसी हंसोड़ तो नहीं जान पड़ती। कहीं वास्तवमें उसने दिल्लगी की हो तो व्यर्थ लज्जित होना पड़े। श्रद्धा न जाने अपने मनमें क्या सोचे? अन्तमें इन शंकाओंको शान्त करनेके लिये उन्होंने ज्ञानशंकरकी आलमारीमेंसे एक पुस्तक निकाल ली और उसे पढ़ने लगे।

ज्वालासिंहकी भविष्यवाणी सत्य निकली। आज वास्तवमें उनकी तपस्या पूरी हो गयी थी, उनकी सुकीर्त्तिने श्रद्धाको वशीभूत कर लिया था। आज जबसे उसने सैकड़ों ही आदमियोंको द्वारपर खड़े प्रेमशंकरको जय जयकार करते देखा था तभीसे उसके मनमें यह समस्या उठ रही थी, क्या इतने अन्तःकरणोंसे निकली हुई शुभेच्छाओंका महत्व प्रायश्चित्तसे कम है? कदापि नहीं। परोपकारकी महिमा प्रायश्चित्तसे किसी तरह कम नहीं हो सकती। बल्कि सच्चा प्रायश्चित्त तो परोपकार ही है। इतनी आशीषें किसी महान् पापीका भी उद्धार कर सकती हैं। कोरे प्रायश्चित्तका इनके सामने क्या महत्त्व हो सकता है? और इन आशीषोंका आज ही थोड़े ही अन्त हो गया? जब यह सब घर पहुंचेंगे तो इनके घरवाले और भी आशीष देंगे। जबतक दममें दम रहेगा उनके हृदयसे नित्य यह सदिच्छायें निकलती रहेंगी। ऐसे यशस्वी, ऐसे श्रद्धेय पुरुषको प्रायश्चित्तकी कोई जरूरत नहीं। इस सुधावृष्टिने उसे पवित्र कर दिया है।

ग्यारह बजे थे। श्रद्धा ऊपरसे उतरी और सकुचाती हुई आकर दीवानखानेके द्वारपर खड़ी हो गयी। लैम्प जल रहा था, प्रेमशंकर किताब देख रहे थे। श्रद्धाको उनके मुखमण्डलपर आत्मगौरवकी एक दिव्य ज्योति झलकती हुई दिखायी दी। उनका हृदय बांसों

छल रहा था और आंखें आनन्दके अश्रुविन्दुओंसे भरी हुई थीं। आज चौदह वर्षके बाद उसे अपने प्राणपतिकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अब वह विरागिणी श्रद्धा न थी, जिसकी सारी आकांक्षायें मिट चुकी हों। इस समय उसका हृदय अभिलाषाओं-से आन्दोलित हो रहा था। किन्तु उसके नेत्रोंमें तृष्णा न थी, उसके अधरोंपर मृदु मुसुकान न थी। वह इस तरह नहीं आयी थी जैसे कोई नववधू अपने पतिके पास आती है। वह इस तरह आयी थी जैसे कोई उपासिका अपने इष्टदेवके सामने आती है, श्रद्धा और अनुरागमें डूबी हुई।

वह क्षणभर द्वारपर खड़ी रही। तब जाकर प्रेमशंकरके चरणों-पर गिर पड़ी।

६२

मानवचरित्र न बिलकुल श्यामल होता है, न बिलकुल श्वेत। उसमें दोनों ही रंगोंका विचित्र सम्मिश्रण होता है; किन्तु स्थिति अनुकूल हुई तो वह ऋषितुल्य हो जाता है, प्रतिकूल हुई तो नराधम। वह अपनी परिस्थितियोंका खिलौनामात्र है। बाबू ज्ञानशङ्कर अगर अबतक स्वार्थी, लोभी और संकीर्ण हृदय थे तो यह परिस्थितियोंका फल था। भूखा आदमी उस समयतक कुत्तेको कौर नहीं देता जबतक वह स्वयं संतुष्ट न हो जाय। असम्पन्नताने उनकी श्यामलताको और भी उज्ज्वल कर दिया था। उन्होंने ऐसे घरमें जन्म लिया था जिसने कुलमर्यादाकी रक्षामें अपनी श्रीका अन्त कर दिया था। ऐसी अवस्थामें उन्हें संतोष-हीसे शान्ति मिल सकती थी, पर उनकी उच्च शिक्षाने उन्हें जीवन-को एक वृहत् संग्राम-क्षेत्र समझना सिखाया था। उनके सामने जिन महान् पुरुषोंके आदर्श रखे गये थे, उन्होंने भी संघर्षनीतिका आश्रय लेकर सफलता प्राप्त की थी। इसमें सन्देह नहीं कि इस शिक्षाने उन्हें लेख और वाणीमें प्रवीण, तर्कमें कुशल, व्यवहारोंमें चतुर बना दिया था, पर इसके साथ ही उन्हें स्वार्थ और स्वहित-

का दास बना दिया था। यह वह शिक्षा न थी जो अपने झोंपड़े का द्वारा खुला रखनेका अनुरोध करती है, जो दूसरोंको खिला-कर आप खानेकी नीति सिखाती है। ज्ञानशंकर किसीको आश्रय देनेकी कल्पना भी न कर सकते थे, जबतक अपना प्रासाद न बना लें। वह किसीको मुट्ठीभर अन्न भी न दे सकते थे, जबतक अपनी धान्यशालाको भर न लें।

सौभाग्यसे उनका प्रासाद निर्मित हो चुका था। अब वह दूस-रोंको आश्रय देनेपर तैयार थे, उनकी धान्यशाला परिपूर्ण हो चुकी थी, अब उन्हें भिक्षुकोंसे घृणा न थी। सम्पत्तिशाली होकर वह उदार, दयालु, दीनवत्सल और कर्त्तव्यपरायण हो गये थे। लाला प्रभाशङ्करकी पुत्रियोंके विवाहमें उन्होंने खासी मदद की थी और पुत्रोंके मातममें शरीक होनेके लिये भी गोरख-पूरसे आये थे। प्रेमशङ्करके प्रति भी उनका भ्रातृप्रेम जागृत हो गया था, यहांतक कि लखनपूरवालोंके मुक्त हो जानेपर उन्हें बधाई दी थी। गायत्रीकी मृत्युका शोक समाचार मिला तो उन्हों-ने उसका संस्कार बड़ी धूमसे किया, और कई हज़ार रुपये खर्च किये। उसकी यादगारमें एक पक्का तालाब खुदवा दिया। जबतक वह फूसके झोपड़ोंमें रहते थे, आगकी चिनगारियोंसे डरते थे। अब उनका पक्का महल था, फुलझड़ियोंका तमाशा सावधानीसे देख सकते थे।

ज्ञानशङ्कर अब ख्याति और सुकीर्त्तिके लिये लालायित रहते थे। लखनऊके मान्यगण उन्हें अनधिकारी समझकर उनसे कुछ खिंचे रहते थे और यद्यपि गोरखपूरमें पहले ही उन्होंने सम्मानपद प्राप्त कर लिया था, पर इस नयी हैसियतमें देखकर अक्सर लोग उनसे जलते थे। ज्ञानशङ्करने दोनों शहरोंके रईसोंसे मेलजोल बढ़ाना शुरू किया। पहले वह राय साहबके अव्यवस्थित व्ययको घटाना परमावश्यक समझते थे, कई घोड़े, एक मोटर, कई सवारी गाड़ियां निकाल देना चाहते थे। लेकिन अब उन्हें अपनी

सम्मानरक्षाके लिये उस ठाट-बाटको निबाहना ही नहीं, उसे और बढ़ाना जरूरी मालूम होता था, जिसमें लोग उनकी हंसी न उड़ायें। वह उन लोगोंकी बार बार दावतें करते, छोटे बड़े सभीसे नम्रता और विनयका व्यवहार करते और सत्कार्य्योंके लिये दिल खोलकर चन्दे देते। पत्र-सम्पादकोंसे उनका परिचय पहलेहीसे था। अब और भी घनिष्ठ हो गया। अखबारोंमें उनकी उदारता और सज्जनताकी प्रशंसा होने लगी। यहांतक कि साल भी न बीतने पाया था कि वह लखनऊके ताल्लुकेदार-सभाके मन्त्री चुन लिये गये। राज्याधिकारियोंमें भी उनका सम्मान होने लगा। वह वाणीमें कुशल थे ही, प्रायः जातीय सम्मेलनोंमें ओजस्विनी वक्तृता देते। पत्रोंमें वाह वाह होने लगती। अतएव वह इधर तो जातिके नेताओंमें गिने जाने लगे, उधर अधिकारियों-में भी मान-प्रतिष्ठा होने लगी।

किन्तु अपनी मूक, दीन प्रजाके साथ उनका बर्ताव इतना सदय न था। उन वृक्षोंमें कांटे न थे, इसलिये उनके फल तोड़ने-में कोई बाधा न थी। असामियोंपर अखराज बकाया और इजाफे की नालिशें धूमसे हो रही थी, उनके पट्टे बदले जा रहे थे और नजराने बड़ी कठोरतासे वसूल किये जा रहे थे। राय-साहबने रियासतपर पांच लाखका ऋण छोड़ा था। उसपर लगभग २५ हजार वार्षिक ब्याज होता था। ज्ञानशङ्करने इन प्रयत्नोंसे सूदकी पूर्त्ति कर ली। इतने अत्याचारपर भी प्रजा उन-से असन्तुष्ट न थी। वह कड़वी दवायें मीठी करके पिलाते थे। गायत्रीकी बरसीमें उन्होंने असामियोंको एक हजार कम्बल बांटे और ब्राह्मणोंको भोज दिया। इसी तरह रायसाहबके इलाकेमें भी होलीके दिन जलसे कराये, और भोले भाले असा-मियोंको भरपेट भंग पिलाकर मुग्ध कर दिया। कई जगह मंडियां लगवा दीं, जिससे कृषकोंको अपनी जिन्सें बेचनेमें बड़ी सुविधा हो गयी और रियासतको भी अच्छा लाभ होने लगा।

इस तरह दो साल गुजर गये। ज्ञानशङ्करका सौभाग्य-सूर्य्य अब मध्याह्नपर था। रायसाहबके ऋणसे वह बहुत कुछ मुक्त हो चुके थे, हाकिमोंमें मान था, रईसोंमें प्रतिष्ठा थी, विद्वज्जनोंमें आदर था, मर्मज्ञ लेखक थे, कुशल वक्ता थे। सुख-भोगकी सभी सामग्रियां प्राप्त थीं। जीवनकी महत्वाकांक्षायें पूरी हो गयी थीं। वह जब कभी अवकाशके समय अपनी गत अवस्थापर विचार करते तब उन्हें अपनी सफलतापर आश्चर्य्य होता था। मैं क्या-से क्या हो गया! अभी तीन ही साल पहले मैं एक हजार सालाना नफेके लिये सारे गांवको फांसीपर चढ़वा देना चाहता था। तब मेरी दृष्टि कितनी संकीर्ण थी। एक तुच्छ बातके लिये चचासे अलग हो गया, यहांतक कि अपने सगे भाईका भी अहित सोचता था, उन्हें फंसानेमें कोई बात उठा नहीं रखी, पर अब ऐसी ऐसी कितनी रकमें दान कर देता हूं। कहां एक तांगा रखनेका सामर्थ्य न था, कहां अब मोटरें मंगनी दिया करता हूं। निस्सन्देह इस सफलताके लिये मुझे स्वांग भरने पड़े, हाथ रंगने पड़े; पाप, छल, कपट, सभी कुछ करने पड़े। किन्तु अंधेरे खोहमें उतरे बिना अनमोल रत्न कहां मिलते हैं! लेकिन इसे अपने ही कृत्योंका फल समझना मेरी नितान्त भूल है। ईश्वरीय व्यवस्था न होती तो मेरी चाल कभी सीधी न पड़ती। उस समय तो ऐसा जान पड़ता था कि पांसा पट पड़ा, वार खाली गया, लेकिन सौभाग्यसे उन्हीं खाली वारोंने, उन्हीं उल्टी चालोंने बाजी जिता दी।

ज्ञानशङ्कर दूसरे तीसरे महीने बनारस अवश्य जाते, और प्रेमशङ्करके साथ रहकर सरल जीवनका आनन्द उठाते। उन्होंने प्रेमशङ्करसे कितनी ही बार साग्रह कहा कि अब आपको इस उजाड़में झोपड़ा बनाकर रहनेकी क्या जरूरत है, चलकर घरपर रहिये और ईश्वरकी दी हुई सम्पत्ति भोगिये। यह मंजूर न हो तो मेरे साथ चलिये। हजार दो हजार बीघेके चक दे दूं, वहां दिल

खोलकर कृषक जीवनका आनन्द उठाइये। लेकिन प्रेमशङ्कर कहते, मेरे लिये इतना ही काफी है, ज्यादाकी जरूरत नहीं। हां, इस अनुरोधका इतना फल अवश्य हुआ कि वह अपनी जोतको बढ़ाने पर राजी हो गये। उनके झांड़से मिली हुई ५० बीघे जमीन एक दूस रे जमींदारकी थी। उन्होंने उसका पट्टा लिखा लिया और फूसके झोपड़ोंकी जगह खपरैलके मकान बनवा लिये। ज्ञानशङ्कर उनसे यह सब प्रस्ताव तो करते थे, पर उनके सन्तोषमय, सरल, निर्विरोध जीवनके महत्वसे अनभिज्ञ न थे। नाना प्रकारकी चिन्ताओं और बाधाओंमें ग्रस्त रहनेके बाद यहांके शान्तिमय, निर्विघ्न विश्रामसे उनका चित्त प्रफुल्लित हो जाता था, यहांसे जानेको जी न चाहता था। यह स्थान अब पहलेकी तरह न था, जहां केवल एक आदमी साधुओंकी भांति अपनी कुटीमें पड़ा रहता हो। अब यह एक छोटीसी गुलजार बस्ती थी, जहां नित्य राजनीतिक और सामाजिक विषयोंपर संवाद होते थे, और जीवन मरणके गूढ़, जटिल प्रश्नोंकी मीमांसा की जाती थी। यह विद्वज्जनोंकी एक छोटी सी संगत थी, विद्वानोंके पक्षपात और अहंकारसे मुक्त। वास्तवमें यह सारल्य, सन्तोष और सुविचारकी तपोभूमि थी। यहां न ईर्षाका सन्ताप था, न लोभका उन्माद, न तृष्णाका प्रकोप। यहां धनकी पूजा न होती थी, और न दीनता पैरों तले कुचली जाती थी। यहां एक गद्दी लगाकर न बैठता था और दूसरा अपराधियोंकी भांति उसके सामने हाथ बांधकर न खड़ा होता था। यहां न स्वामीकी घुड़कियां थीं, न सेवककी दीन ठकुरसोहातियां। यहां सब एक दूसरेके सेवक, एक दूसरेके मित्र और हितैषी थे। एक तरफ डाक्टर इर्फान अलीका सुन्दर बंगला था, फूलों और लताओंसे सजा हुआ। डाक्टर साहब अब केवल वही मुकदमे लेते थे जिनके सच्चे होनेका उन्हें विश्वास होता था और केवल उतना ही पारिश्रमिक लेते थे जितना रोजाना खर्चके लिये आवश्यक हो। संचय और संग्रहकी चिन्ताओंसे

निवृत्त हो गये थे। शाम सवेरे वह प्रेमशङ्करके साथ बागवानी करते थे, जिसका उन्हें पहलेहीसे शौक था। पहले गमलोंमें लगे हुए पौधोंको देखकर खुश होते थे, काम माली करता था। अब सारा काम अपनेही हाथों करते थे। उनके बंगलेसे मिला हुआ डाक्टर प्रियनाथका मकान था। मकानके सामने एक औषधालय था। अब वह प्रायः देहातोंमें घूम घूमकर रोगियोंका कष्ट निवारण करते थे, नौकरी छोड़ दी थी। जीविकाके लिये एक गौशाला खोल ली थी, जिसमें कई पछाईं गायें भैंसें थीं। दूध, मक्खन बिकनेके लिये शहर चला जाता था। रोगियोंसे कुछ फीस न लेते थे। बाबू ज्वालासिंह और प्रेमशङ्कर एक ही मकानमें रहते थे। श्रद्धा और शीलमणिमें खूब बनती थी। घरके कामोंसे फुरसत पाते ही दोनों चरखेपर बैठ जाती थीं या मोजे बुनने लगती थीं। प्रेमशङ्कर नियमानुसार खेतमें काम करते थे और ज्वालासिंह नये प्रकारके करघोंपर आप भी कपड़े बुनते थे और हाजीपुरके कई युवकोंको भी बुनना सिखाते थे। इस कलामें वह बहुत निपुण हो गये थे। सैयद ईजादहुसेनने भी यहीं अड्डा जमाया था। उनका परिवार अब भी शहरहीमें रहता था, पर यतीमखाना यहीं उठ आया था। उसमें अब नकली नहीं, सच्चे यतीमोंका पालन-पोषण होता था। सैयद साहब अपना "इत्तहाद" अब भी निकालते थे, और 'इत्तहाद' पर व्याख्यान देते थे, लेकिन चन्दे न वसूल करते थे और न स्वांग भरते थे। वह अब हिन्दु-मुस्लिम-एकताके सच्चे प्रचारक थे। यतीमखानेके समीप ही मायाशंकरका मित्रभवन था। यह एक छोटासा छात्रालय था। इसमें इर्फानअलीके दो लड़के, प्रियनाथके तीनों लड़के, दुर्गा मालीका एक लड़का और मस्ताका एक छोटा भाई साथ साथ रहते थे। सब साथ साथ पाठशालाको जाते और साथ ही भोजन करते। उनका सब खर्च मायाशंकर अपने वजीफेसे देता था। भोजन श्रद्धा पकाती थी। ज्ञानशंकर-

ने कई बार चाहा कि मायाको ले जाकर लखनऊके ताल्लुकेदार स्कूलमें दाखिल करा दें, लेकिन वह राजी न होता था।

एक बार ज्ञानशंकर लखनऊसे आये तो मायाके वास्ते एक बहुत सुन्दर रेशमी सूट सिला लाये, लेकिन मायाने उसे उस वक्ततक न पहना, जबतक मित्रभवनके और छात्रोंके लिये वैसे ही सूट न तैयार हो गये। ज्ञानशङ्कर मनमें बहुत लज्जित हुए और बहुत जब्त करनेपर भी उनके मुंहसे इतना निकल ही गया, भाई साहब, मैं इस साम्य सिद्धान्तपर आपसे सहमत नहीं हूं। यह एक अस्वाभाविक सिद्धान्त है। सिद्धान्तरूपसे हम चाहे इसकी कितनी ही प्रशंसा करें, पर इसका व्यवहारमें लाना असंभव है। मैं युरोपके कितने ही साम्यवादियोंको जानता हूं, जो अमीरोंकी भांति रहते हैं, मोटरोंपर सैर करते हैं और सालमें ६ महीने इटली या फ्रांसमें विहार किया करते हैं। जब वह अपनेको साम्यवादी कह सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि हम इस अस्वाभाविक नीतिपर जान दें।

प्रेमशंकरने विनीत भावसे कहा—यहां साम्यवादकी तो कभी चर्चा नहीं हुई।

ज्ञान—तो फिर यहांके जलवायुमें यह असर होगा। यद्यपि मुझे इस विषयमें आपसे कुछ कहनेका अधिकार नहीं है, पर पिताके नाते मैं इतना कहनेको क्षमा चाहता हूं कि ऐसी शिक्षाका फल मायाके लिये हितकर न होगा।

प्रेम—अगर तुम चाहो और मायाकी इच्छा हो तो उसे लखनऊ ले जाओ, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यहांके जलवायुको बदलना मेरे बसकी बात नहीं।

ज्ञान—यह तो आप जानते ही हैं कि माया और उसके साथियोंकी स्थितियोंमें कितना अन्तर है।

प्रेमशंकरने गम्भीरतासे कहा—हां, खूब जानता हूं, पर यह नहीं जानता कि इस अन्तरको प्रदर्शित क्यों किया जाय। माया-

शङ्कर थोड़े दिनोंमें एक बड़ा इलाकेदार होगा, यह सब लड़कोंको मालूम है। क्यों यह बात उन्हें अपने दुर्भाग्यपर रुलानेके लिये काफी नहीं है कि इस विभिन्नताका स्वांग दिखाकर उन्हें और भी चोट पहुंचायी जाय। तुम्हें मालूम न होगा, पर मैं यह विश्वस्त रूपसे कहता हूं कि तेजू और पद्मू का बलिदान मायाके गोद लिये जानेहीके कारण हुआ। मायाको अचानक इस रूपमें देखकर उनको वृद्धि प्राप्त करनेकी प्रेरणा हुई। माया डींगें मार मारकर उनकी लालसाको और भी उत्तेजित करता रहा, और उसका यह भयंकर परिणाम हुआ......

इतनेमें माया आ गया और प्रेमशङ्करको अपनी बात अधूरी ही छोड़नी पड़ी। ज्ञानशंकर भी अन्यमनस्क होकर वहांसे उठ गये।

६३

गायत्रीके आदेशानुसार ज्ञानशंकर २००) महीना मायाशंकरके खर्चके लिये देते जाते थे। प्रेमशंकरकी इच्छा थी कि कई अध्यापक रखे जायं, कई घोड़े लिये जायं, सैर करनेके लिये गाड़ियां रखी जायं, कई नौकर सेवा टहलके लिये लगाये जायं, पर मायाशङ्कर अपने ऊपर इतना खर्च करनेको राजी न हुआ। प्रेमशंकरको मजबूर होकर उसकी बात माननी पड़ी। केवल दो अध्यापक उसे पढ़ाने आते थे। फारसी पढ़ानेके लिये ईजादहुसेन और संस्कृत पढ़ानेके लिये एक पण्डित, सवारीके लिये एक घोड़ा भी था। अंग्रेजी प्रेमशंकर स्वयं पढ़ाते थे, गणित ज्वालासिंहके जिम्मे था, डाक्टर प्रियनाथ सप्ताहमें दो दिन गानेकी शिक्षा देते थे, जिसमें वह निपुण थे, और दो दिन आरोग्यशास्त्र पढ़ाते थे। डाक्टर इर्फान अली अर्थशास्त्रके ज्ञाता थे, सप्ताहमें दो दिन कानून सिखाते और दो दिन अर्थशास्त्रकी व्याख्या करते। कालेजके कई विद्यार्थी शहरसे इन व्याख्यानोंको सुननेके लिये आ जाते थे और प्रियनाथका संगीत-समाज तो सारे शहरमें प्रसिद्ध था।

इधरकी बचत मित्रभवन, इत्तहादी अनाथालय और प्रियनाथके चिकित्सालयके संचालनमें खर्च होती थी। विद्यावतीके नामसे बीस बीस रुपयेकी दस छात्रवृत्तियां भी दी जाती थीं। इतना सब खर्च करनेपर भी महीनेमें खासी बचत हो जाती थी। इन तीन वर्षोंमें कोई २५ हजार रुपये जमा हो गये थे। प्रेमशंकर चाहते थे कि ज्ञानशंकरकी सम्मति लेकर मायाको कुछ दिनोंके लिये युरोप, अमेरिका आदि देशोंमें भ्रमण करनेके लिये भेज दिया जाय। इस धनका इससे अच्छा उपयोग न हो सकता था। पर माया-शंकरकी कुछ और ही इच्छा थी। वह यात्रा करनेके लिये तो उत्सुक था, पर एक हजार रुपये महीनेसे ज्यादा खर्च न करना चाहता था। इस धनके सदुपयोगकी उसने दूसरी ही विधि सोची थी। पर प्रेमशङ्करसे यह प्रकट करते हुए सकुचाता था। संयोग-से इसी बीचमें उसे इसका अच्छा अवसर मिल गया।

लाला प्रभाशङ्करने प्रेमशङ्करको लखनपूरके मुकदमेसे बचानेके लिये जो रुपये उधार लिये थे, उनकी अवधि तीन साल थी। वह मियाद पूरी हो गयी थी, पर रुपयेका सूदतक न अदा हुआ था। पहले प्रेमशङ्करको इस मामलेकी जरा भी खबर न थी, पर जब महाजनने अदालतमें नालिश की तो उन्हें खबर हुई। रुपये क्यों उधार लिये गये थे, यह बात शीघ्र ही मालूम हो गयी। तबसे वह घोर चिन्तामें पड़े हुए थे कि यह रुपये कैसे दिये जायँ। यद्यपि मुकदमेमें रुपयेका एक ही भाग खर्च हुआ था, अधिकांश खाने खिलाने शादी ब्याहमें उड़ा था, पर यह हिसाब किताब करनेका समय न था। प्रेमशङ्कर ऋणका पूरा भार लेना चाहते थे। लेकिन रुपये कहांसे आयें? वे कई दिन इसी चिन्तामें विकल रहे, कभी सोचते ज्ञानशंकरसे मांगूं, कभी प्रियनाथसे मांगनेका विचार करते, पर संकोचवश किसीसे कहते न बनता था।

एक दिन वह इसी उधेड़-बुनमें पड़े हुए थे कि भोला आकर खड़ा हो गया और उन्हें चिन्तित देखकर बोला, बाबूजी, आज-

कल आप बहुत उदास रहते हैं, क्या बात है ? हमारे लायक कोई काम हो तो बताइये, भरसक उसे पूरा करेंगे ।

प्रेमशंकरको भोलासे बहुत स्नेह था । इनके सत्संगसे उसकी शराब और जुएकी आदत छूट गयी थी। वह इनको अपना मुक्तिदाता समझता था और इनपर असीम श्रद्धा रखता था। प्रेमशंकर भी उसपर विश्वास करते थे। बोले—कुछ ऐसी ही चिन्ता है, मगर तुम सुनकर क्या करोगे ?

भोला—और तो क्या करूंगा ? हां, जान लड़ा दूंगा।

प्रेम—जान लड़ानेसे मेरी चिन्ता दूर न होगी, उसका कोई और ही उपाय करना पड़ेगा ।

भोला—जो कहिये वह करनेको तैयार हैं, जबतक आप न बतायेंगे पिण्ड न छोड़ूंगा ।

अन्तमें विवश होकर प्रेमशङ्करने कहा—मुझे कुछ रुपयों-की जरूरत है और समझमें नहीं आता कि कौनसा उपाय करूं ।

भोला—हजार दो हजारसे काम चले तो मेरे पास हैं, ले लीजिये। ज्यादाकी जरूरत हो तो कोई और उपाय करूं ।

प्रेम—हजार दो हजारका तुम क्या प्रबन्ध करोगे ? तुम्हारे पास तो है नहीं, किसीसे लेने ही पड़ेंगे ।

भोला—नहीं बाबूजी, आपकी दुआसे अब इतने फटेहाल नहीं हैं। हजारसे कुछ ऊपर तो अपने ही हैं। एक हजार मस्ताने रखनेको दिये हैं। दुर्गा और दमड़ी भी कुछ रुपये रखनेको देते थे पर मैंने नहीं लिये। पराये रुपये घरमें रखकर कौन जंजाल पाले। कहीं कुछ हो जाय तो लोग समझें इसने खा लिये होंगे ।

प्रेम—तुम लोगोंके पास इतने रुपये कहांसे आ गये ?

भोला—आपहीने दिये हैं, और कहांसे आये। जवानीकी कसम खाकर कहता हूं कि इधर तीन सालसे एक दिन भी कौड़ी

हाथसे छूई हो, या वाक मुंहसे लगायी हो। आप लोगों जैसे भले आदमियोंके साथ रहकर ऐसे कुकर्म करता तो कौन मुंह दिखाता? मस्ताके बारेमें भी कह सकता हूं कि इधर दो ढाई सालसे किसीके मालकी तरफ आंख उठाकर नहीं देखा। अभी थोड़े ही दिनोंकी बात है कि भवानीसिंहकी अण्टीसे ५ गिन्नियां गिर गयी थीं। मस्ताने खेतमें पड़ी पायीं और उसी दम जाकर उन्हें दे आया। पहले इसी बगीचेसे फल-फलारी तोड़कर बेच लिया करता था, पर अब यह सारी आदतें छूट गयीं। दुर्गा और दमड़ी गांजा चरस तो पीते हैं, लेकिन बहुत कम। और मैंने उन्हें कोई कुचाल चलते नहीं देखा। हम सभी रोटी, दाल, तरकारी खाकर दो तीन सौ रुपये साल बचा लेते हैं। तो कहिये, जितने रुपये मेरे पास हैं, वह लाऊं?

प्रेम—यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि तुम लोग भी चार पैसेके आदमी हो गये, यह सब तुम्हारे सुविचारका फल है। लेकिन मेरा काम इतने रुपयोंमें न चलेगा। मुझे २५ हजार-की जरूरत है।

सहसा मायाशङ्कर आकर खड़ा हो गया। उसकी आंखें डब-डबायी हुई थीं, और मुंहपर करुण उत्सुकता झलक रही थी। प्रेमशंकरने भोलाको आंखोंके इशारेसे हटा दिया, तब मायासे बोले—आंखें क्यों भरी हुई हैं? बैठो।

माया—जी कुछ नहीं, अभी तेजू और पद्मूकी याद आ गयी थी। दोनों अबतक होते तो उन्हें भी यहीं बुलाकर रखता। उस समय मैं बड़ा निर्दयी था। बेचारोंको अपना ठाट बाट दिखाकर जलाना चाहता था। मेरी शेखीकी बातें सुन सुन वह भी कहा करते थे, हम वह मंत्र जगायेंगे कि कोई मार ही न सके। ऐसे ऐसे मन्त्रोंको अपने वशमें कर लेंगे कि घर बैठे संसारकी जो वस्तु चाहें मंगा लेंगे। उस वक्त मेरी समझमें यह बातें न आती थीं, दिल्लगी समझता था, पर अब जो उन बातोंको याद करता

हूं तो ऐसा मालूम होता है कि मैं ही उनका घातक हूं। चित्त व्याकुल हो जाता है और अपने ऊपर ऐसा क्रोध आता है कि क्या कहूं। अभी बाबासे मिलने गया था। बहुत दुःखी थे। किसी महाजनने उनपर नालिश भी कर दी है, इससे और भी चिन्तित थे। अगर यह मुसीबत न आती तो शायद वह इतने दुःखी न होते। विपत्तिमें शोक और भी दुस्सह हो जाता है। शोकका घाव भरना तो असम्भव है, पर इस नयी विपत्तिका निवारण हो सकता है। आपसे कहते हुए संकोच होता है, पर इस समय मुझे क्षमा कीजिये। मैं चाहता हूं कि आपसे जो कुछ बन पड़े, उनकी सहायता कीजिये। लाला दयाशङ्कर तो बाबासे कह रहे थे, हमें जमीनकी परवा नहीं है, निकल जाने दीजिये। आपको अब क्या करना है? मेरे सिरपर जो पड़ेगी देख लूंगा, लेकिन बाबाकी इच्छा यह थी कि महाजनसे कुछ दिनोंकी मुहलत ली जाय। अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं जाकर महाजनसे बातचीत करूं। मुझसे वह कुछ दबेगा भी।

प्रेमशङ्कर - रुपयोंकी फिक्र तो मैं कर रहा हूं, पर मालूम नहीं उन्हें कितने रुपयोंकी जरूरत है। उन्होंने मुझसे कभी यह जिक्र नहीं किया।

माया—बातचीतसे तो मालूम होता था कि १५-२० हजारका मुआमला है।

प्रेम—यही मेरा भी अनुमान है। दो चार दिनमें कुछ-न कुछ उपाय निकल ही आवेगा। या तो महाजनको समझा बुझा दूंगा या दो चार हजार देकर कुछ दिनोंकी मुहलत ले लूंगा।

माया—मैं चाहता हूं कि बाबाको मालूम भी न होने पाये और महाजनके सब रुपये पहुंच जायं, जिसमें यह झंझट न रहे। जब हमारे पास रुपये हैं तो फिर महाजनकी खुशामद क्यों की जाय?

प्रेम—वह रुपये अमानतके हैं। उन्हें छूनेका अधिकार नहीं है। उन्हें मैंने तुम्हारी युरोपयात्राके लिये अलग कर दिये हैं।

माया—मेरी युरोपयात्रा इतनी आवश्यक नहीं है कि घर-वालोंको संकटमें छोड़कर चला जाऊं।

प्रेम—जिस कामके लिये यह रुपये दिये गये हैं उसी काममें खर्च होने चाहिये।

माया मनमें खिन्न होकर चला गया, पर श्रद्धासे वह ढीठ हो गया था। उसके पास जाकर बोला—अगर चाचासाहब बाबाको रुपये न देंगे तो मैं युरोप कदापि न जाऊंगा। तीस हजार लेकर मैं वहां क्या करूंगा? मेरे लिये चलते समय पांच हजार काफी हैं। चाचासाहबसे पचीस हजार दिला दो।

प्रेमशङ्करने श्रद्धासे भी वही बातें कहीं। श्रद्धाने मायाका पक्ष लिया। बहस होने लगी। कुछ निश्चय न हो सका। दूसरे दिन श्रद्धाने फिर वही प्रश्न उठाया। आखिर जब उसने देखा कि वह दलीलोंसे हार जानेपर भी रुपये नहीं देना चाहते तो जरा गर्म होकर बोली—अगर तुमने दादाजीको रुपये न दिये, तो माया कभी युरोप न जायेगा।

प्रेम—वह मेरी बातको कभी नहीं टाल सकता।

श्रद्धा—और बातोंको नहीं टाल सकता, पर इस बातको हर्गिज न मानेगा।

प्रेम—तुमने यह शिक्षा दी होगी!

श्रद्धाने कुछ जवाब न दिया। यह बात उसे लग गयी। एक क्षणतक चुपचाप बैठी रही। तब जानेके लिये उठी। प्रेम-शङ्करके मुंहसे बात तो निकल गयी थी, पर अपनी कठोरतापर लज्जित थे। बोले, अगर ज्ञानशंकर कुछ आपत्ति करें तो?

श्रद्धाने तिनककर कहा—तो साफ साफ क्यों नहीं कहते कि ज्ञानशङ्करके डरसे रुपये नहीं देता। अधिकार, कर्तव्य और अमानतका आश्रय क्यों लेते हो?

प्रेमशङ्करने असमंजसमें पड़कर कहा, डरकी बात नहीं है, रुपयोंके विषयमें मुझे पूरा अधिकार है, लेकिन ज्ञानशङ्करकी अनुमतिके बिना मैं उसे इस तरह खर्च नहीं करना चाहता।

श्रद्धा—तो एक चिट्ठी लिखकर पूछ लो। मुझे तो पूरा विश्वास है कि उन्हें कोई आपत्ति न होगी। अब वह ज्ञानशङ्कर नहीं है जो पैसे पैसेपर जान देते थे।

प्रेमशङ्कर बाहर आकर ज्ञानशङ्करको पत्र लिखने बैठे। लेकिन फिर ख्याल आया कि उन्होंने अनुमति दे दी तो! अनुमति देनेमें उनकी क्या हानि है? तब मुझे विवश होकर रुपये देने पड़ेंगे, यह रुपये न मेरे हैं, न मायाके हैं, न ज्ञानशङ्करके हैं, यह मायाकी शिक्षावृत्ति है। पत्र न लिखा। ज्वालासिंहके सामने यह समस्या पेश की। उन्होंने भी कुछ निश्चय न किया। डाक्टर इर्फान अलीसे परामर्श लेनेकी ठहरी, डाक्टर साहबने फैसला किया कि यह रकम मायाकी शिक्षाके सिवाय और किसी काममें नहीं खर्च की जा सकती।

मायाशङ्करने यह फैसला सुना तो झुंझला उठा। जीमें आया कि चलकर डाक्टर साहबसे खूब बहस करूं, पर डरा कि कहीं वह इसे बेअदबी न समझें। क्यों न महाजनके पास जाकर यह सब रुपये मांग लूं? अभी नाबालिग हूं, शायद उसे कुछ आपत्ति हो, लेकिन एकके दो देनेपर तैयार हो जाऊंगा तो मान जायगा; लेकिन फिर शंका हुई कि चाचा साहबको मालूम हो गया तो मुंहसे तो चाहे कुछ न कहें, पर मनमें बहुत नाराज होंगे। बेचारा इन्हीं दुश्चिन्ताओंमें डूबा हुआ मलिन उदास जाकर लेट रहा। सन्ध्या हो गयी, पर कमरेसे न निकला। डाक्टर इर्फानअलीने पढ़नेके लिये बुलाया। कहला भेजा, मेरे सिरमें दर्द है। भोजनका समय आया। मित्रभवनके और सब छात्र भोजन करने गये। मायाने कहला भेजा, मेरे सिरमें दर्द है। श्रद्धा बुलाने आयी। उसे देखते ही माया रो पड़ा।

श्रद्धाने प्रेमसे आंसू पोंछते हुए कहा, बेटा, चलकर थोड़ा-सा खाना खा लो, सवेरे मैं फिर उनसे कहूंगी। डाक्टर इर्फान अलीने बात बिगाड़ दी, नहीं मैंने तो राजी कर लिया था।

माया—चाची, मेरी खानेकी बिलकुल इच्छा नहीं है। (रोकर) तेज और पद्मूके प्राण मैंने लिये और अब मैं बाबाकी कुछ भी मदद नहीं कर सकता। ऐसे जीनेपर धिक्कार है!

श्रद्धा भी करुणावेगसे विवश हो गयी। अञ्चलसे मायाके आंसू पोंछती थी और स्वयं रोती थी।

मायाने कहा,—चाची, तुम नाहक हलकान होती हो, मैं अभागा हूं, मुझे रोने दो।

श्रद्धा—तुम चलकर कुछ खा लो। मैं आज ही रातको यह बात छेड़ूंगी।

मायाका चित्त बहुत खिन्न था, पर श्रद्धाकी बात न टाल सका। दो चार कौर खाये, पर ऐसा मालूम होता था कि 'कौर मुंहसे निकला पड़ता है। हाथ मुंह धोकर फिर अपने कमरेमें लेट रहा।

सारी रात श्रद्धा यही सोचती रही कि इन्हें कैसे समझाऊं। शीलमणिसे भी सलाह ली, पर कोई युक्ति न सूझी।

प्रातःकाल बुधिया किसी कामसे आयी। बातों बातोंमें कहने लगी—बहूजी, पैसा सब कोई देखता है, मेहनत कोई नहीं देखता। मर्द दिनभरमें एक दो रुपये कमा लाता है तो मिजाज ही नहीं मिलता, औरत बेचारी रात-दिन चूल्हे चक्कीमें जुती रहे, फिर भी वह निकम्मी ही समझी जाती है।

श्रद्धा सहसा उछल पड़ी। जैसे सुलगती हुई आग हवा पाकर भभक उठती है, उसी भांति इन बातोंने उसे एक युक्ति सुझा दी। भटकते हुए पथिकको रास्ता मिल गया। कोई चीज जिसे घण्टोंसे तलाश करते करते थक गयी थी, अचानक मिल गयी। ज्योंही बुधिया गयी, वह प्रेमशङ्करके पास आकर बोली—चाचाजीको रुपये देनेके बारेमें क्या निश्चय किया?

प्रेम—फिक्रमें हूं। दो-चार दिनमें कोई सूरत निकल ही आयेगी।

श्रद्धा—रुपये तो रखे ही हैं।

प्रेम—मुझे खर्च करनेका अधिकार नहीं है।

श्रद्धा—वह किसके रुपये हैं?

प्रेम—(विस्मित होकर) मायाके शिक्षार्थ दिये गये हैं।

श्रद्धा—तो क्या २०००) महीने खर्च नहीं होते?

प्रेम—क्या तुम जानती नहीं? लगभग ८००) खर्च होते हैं, बाकी १२००) बच रहते हैं।

श्रद्धा—यह क्यों बच रहते हैं, क्या यह तुम्हारी समझमें नहीं आता? डाक्टर इर्फान अलीको पढ़ानेके लिये कितना वेतन मिलना चाहिये? डाक्टर प्रियनाथ और बाबू ज्वालासिंहको भी नौकर रखते तो कुछ न कुछ देना पड़ता। तुम्हारी मजूरी भी कुछ-न-कुछ होनी ही चाहिये। तुम्हारे विचारमें इर्फान अलीका वेतन कुछ होता ही नहीं। उनका एक दिनका मेहनताना ५००) न दोगे? प्रियनाथकी आमदनी १००) प्रति दिनसे कम नहीं थी। पहले तो वह किसीके घर पढ़ाने जायें ही नहीं, जायें तो ५००) महीनेसे कम न लें। बाबू ज्वालासिंह भी १००) पर मंहगे नहीं हैं। रहे तुम, तुम्हारा भतीजा है, उसे शौकसे, प्रेमसे पढ़ाते हो। पर दूसरोंको क्या पड़ी है कि वह सेंतमें अपनी सिरपच्ची करें? इन रुपयोंको तुम बचत समझते हो, यह सर्वथा अन्याय है। इसे चाहे अपनी सज्जनताका पुरस्कार समझो या उनके एहसानका मूल्य, इस धनके खर्च करनेका उन्हें अधिकार है।

प्रेमशंकरने सन्दिग्ध भावसे कहा—माया और तुम बिना रुपये दिलाये न मानोगी। जैसी तुम्हारी इच्छा। तुम्हारी युक्तिमें न्याय है, इसे मैं मानता हूं, पर आत्मा संतुष्ट नहीं होती। मैं इस वक्त रुपये दिये देता हूं, पर इसे ऋण समझकर सदैव अदा करनेकी चेष्टा करता रहूंगा।

६४

लाला प्रभाशंकरको रुपये मिले तो वह रोये। गांव तो बच गया, पर उसे कौन भिलसेगा? दयाशंकरका चित्त फिर घरसे उचाट हो चला था। साधुसंतोंके सत्संगके प्रेमी हो गये थे। दिन-दिन वैराग्यमें रत होते जाते थे।

इधर मायाशंकरको युरोप-यात्रापर ज्ञानशङ्कर राजी न हुए। उनके विचारमें अभी यात्रासे मायाको यथेष्ट लाभ न पहुंच सकता था। उससे यह कहीं उत्तम था कि वह अपने इलाकोंका दौरा करे। उसके बाद हिन्दुस्तानके मुख्य मुख्य स्थानोंको देखे। अतएव चैतके महीनेमें मायाशङ्कर गोरखपुर चला गया, और दो महीनेतक अपने इलाकेकी सैर करनेके बाद लखनऊ जा पहुंचा। दो महीनेतक वहां भी अपने गांवोंका दौरा करता रहा। प्रति दिन जो कुछ देखता अपनी डायरीमें लिख लेता। कृषकोंकी दशाका खूब अध्ययन किया। दोनों इलाकोंके किसान उनके प्रजा-प्रेम, विनय और शिष्टतापर मुग्ध हो गये। उसने उनके दिलोंमें घर कर लिया। भयकी जगह प्रेमका विकास हो गया। लोग उसे अपना सच्चा हितैषी समझने लगे। उसके पास आकर अपनी विपत्ति कथा सुनाते। उसे उनकी वास्तविक दशाका ऐसा परिचय किसी अन्य रीतिसे न मिल सकता था। चारों तरफ तबाही छायी हुई थी ऐसा विरला ही कोई घर था, जिसमें धातुके बर्तन दिखायी देते हों। कितने घरोंमें लोहेके तवेतक न थे। मिट्टीके बर्तनोंको छोड़कर झोपड़ेमें और कुछ दिखायी ही न देता था। न ओढ़ना, न बिछौना, यहांतक कि बहुतसे घरोंमें खाटें तक न थी और वह घर ही क्या थे? एक-एक, दो दो छोटी, तंग कोठरियां थी। एक मनुष्योंके लिये, एक पशुओं-के लिये। उसी एक कोठरीमें खाना, सोना, उठना, बैठना—सब कुछ होता था। बस्तियां इतनी घनी थीं कि गांवमें खुली हुई जगह दिखायी ही नहीं देती थी, किसीके द्वारपर सहन नहीं।

हवा और प्रकाशका शहरोंकी घनी बस्तियोंमें भी इतना अभाव न होगा। जो किसान बहुत सम्पन्न समझे जाते थे, उनके बदन-पर साबित कपड़े न थे, उन्हें भी एक जून चबेनापर ही काटना पड़ता था। वह भी ऋणके बोझसे दबे हुए थे। अच्छे जानवरों-के देखनेको आंखें तरस जाती थीं। जहां देखो छोटे छोटे मरि-यल, दुर्बल बैल दिखायी देते थे और खेतोंमें रेंगते और चर-नियोंपर औंघते थे। कितने ही ऐसे गांव थे, जहां दूधतक न मयस्सर होता था। इस व्यापक दरिद्रता और दीनताको देखकर मायाका कोमल हृदय तड़प जाता था। वह स्वभावहीसे भावुक था—बहुत नम्र, उदार और सहृदय। शिक्षा और संगतिने इन भावोंको और भी चमका दिया था। प्रेमाश्रममें नित्य सेवा और प्रजाहितकी चर्चा रहती थी। मायाका सरल हृदय उसी रंगमें रंग गया था। वह इन दृश्योंसे दुःखित होकर प्रेमशङ्करको बार बार पत्र लिखता, अपनी अनुभूत घटनाओंका उल्लेख करता और इस कष्टको निवारण करनेका उपाय पूछता, किन्तु प्रेम-शङ्कर या तो उनका कुछ उत्तर ही न देते या किसानोंकी मूर्खता, आलस्य आदि दुस्स्वभावोंकी गाथा ले बैठते।

माया तो अपने इलाकोंकी सैर कर रहा था, इधर स्थानीय राजसभाके सदस्योंका चुनाव होने लगा। ज्ञानशङ्कर इस सम्मान्यपदके पुराने अभिलाषी थे। बड़े उत्साहसे मैदानमें उतरे। यद्यपि वह ताल्लुकेदार सभाके मंत्री थे, पर ताल्लुकेदारोंकी सहायतापर उन्हें भरोसा न था। कई बड़े बड़े ताल्लुकेदार अपने वर्गके प्रतिनिधि बननेके लिये तत्पर थे। उनके सामने ज्ञानशङ्करको अपनी सफलताकी कोई आशा न थी। इसलिये उन्होंने गोरखपुरके किसानोंकी ओरसे खड़े होनेका निश्चय किया। वहां संग्राम इतना भीषण न था। उनके गोइन्दे देहातोंमें घूम घूमकर उनका गुणगान करने लगे। बाबूसाहब कितने दयालु, कितने ईश्वरभक्त हैं; उन्हें चुनकर तुम कृतार्थ हो जाओगे। वह

राजसभामें तुम्हारी उन्नति और उपकारके लिये जान लड़ा देंगे, लगान घटवायेंगे, प्रत्येक गांवमें गोचरभूमिकी व्यवस्था करेंगे, नजराने उठवा देंगे, इजाफा लगानका विरोध करेंगे और इखराज-को समूल उखाड़ देंगे। सारे प्रान्तमें धूम मची हुई थी। जैसे सहा-लगके दिनोंमें ढोल और नगाड़ोंका नाद गूंजने लगता है, उसी भांति इस समय जिधर देखिये जातिप्रेमहीकी चर्चा सुनायी देती थी। डाक्टर इर्फान अली बनारस महाविद्यालयकी तरफसे खड़े हुए, बाबू प्रियनाथने बनारस म्युनिसिपैल्टीका दामन पकड़ा। ज्वाला-सिंह इटावेके रईस थे। उन्होंने इटावेके कृषकोंका आश्रय लिया। सैयद ईजाद हुसेनको भी जोश आया। वह मुसलिम स्वत्वोंकी रक्षाके लिये उठ खड़े हुए। प्रेमशंकर इस क्षेत्रमें न आना चाहते थे, पर भवानीसिंह, बलराज और कादिरखांने बनारसके कृषकों-पर उनका मन्त्र चलाना शुरू किया। तीन चार महीनोंतक बाजार खूब गर्म रहा, छापेखानेको ट्रैक्टोंके छापनेसे सिर उठाने-का अवकाश न मिलता था। कहीं दावतें होती थीं, कहीं नाटक दिखाये जाते थे। प्रत्येक उम्मेदवार अपनी अपनी ढोल पीट रहा था, मानों संसारके कल्याणका उसीने बीड़ा उठाया है।

अन्तमें चुनावका दिन आ पहुंचा। उस दिन नेताओंका सदुत्साह, उनकी तत्परता, उनकी शीलता और विनय दर्शनीय थी और राय देनेवालोंका तो मानों सौभाग्यसूर्य्य उदय हो गया था। मोहनभोग और मेवे खाते थे और मोटरोंपर सैर करते थे। सुबहसे पहर राततक रायोंको चिट्ठियां पढ़ी जाती रहीं।

इसके बादके सात दिन बड़ी बेचैनीके दिन थे। ज्यों त्यों करके कटे। आठवें दिन राजपत्रमें नतीजे निकल गये। आज कितने ही घरोंमें घीके चिराग जले, कितनोंने मातम मनाया। ज्ञानशंकरने मैदान मार लिया, लेकिन प्रेमाश्रम निवासियोंको जो सफलता प्राप्त हुई वह आश्चर्यजनक थी, इस अखाड़ेके सभी योद्धा विजयपताका फहराते हुए निकले। सबसे बड़ी फतह प्रेम-

शंकरकी थी। वह बिना उद्योग और इच्छाके इस उच्चासनपर पहुंच गये थे। ज्ञानशंकरने यह खबर सुनी तो उनका उत्साह भङ्ग हो गया। राजसभामें बैठनेका उतना शौक न रहा। बहुधा वृक्षपुञ्जोंमें सन्ध्या समय पक्षियोंके कलरवसे कान पड़ी आवाज नहीं सुनायी देती, लेकिन ज्योंही अन्धेरा हो जाता है और चिड़ियां अपने अपने घोसलोंमें जा बैठती हैं, वहां नीरवता छा जाती है, उसी भांति जातिके प्रतिनिधिगण राजसभाके सुसज्जित सुविशाल भवनमें पहुंचकर शांतिमें मग्न हो गये। वह लम्बे चौड़े वादे, वह बड़ी बड़ी बातें सब भूल गयीं। कोई मुवक्किलोंके सेवा-सत्कारमें लिप्त हुआ, कोई अपने बहीखातेकी देखभालमें, कोई अपने सैर और शिकारमें। जातिहितका वह उमंग शांत हो गया। लोग मनोविनोदकी रीतिसे राज-सभामें आते और कुछ निरर्थक प्रश्न पूछकर, या अपने वाक्यनैपुण्यका परिचय देकर विदा हो जाते। वह कौनसी प्रेरक शक्तियां थीं, जिन्होंने लोगोंको इस अधिकारपर आसक्त कर रखा था, इसका निर्णय करना कठिन है, पर उनमें सेवाभावका जरा भी लगाव न था—यह निर्भ्रान्त है। कारण और कार्य्य, साधन और फल, दोनों उसी अधिकारमें विलीन हो गये।

किन्तु प्रेमाश्रममें यह शिथिलता न थी। यहां लोग पहलेहीसे सेवाधर्मके अनुगामी थे, अब उन्हें अपने कार्य्यक्षेत्रको और विस्तृत करनेका सुअवसर मिला। यह लोग नये नये सुधारके प्रस्ताव सोचते, राजकीय प्रस्तावोंके गुण दोषकी मीमांसा करते, सरकारी रिपोर्टोंका निरीक्षण करते। प्रश्नोंद्वारा अधिकारियोंके अत्याचारोंका पता देते, जहां कहीं न्यायका खून होते देखते, तुरत सभाका ध्यान उसकी ओर आकर्षित करते और यह लोग केवल प्रश्नोंहीसे संतुष्ट न हो जाते थे वरन् प्रस्तुत विषयोंके मर्मतक पहुंचनेकी चेष्टा करते। विरोधके लिये विरोध न करते, बल्कि शोधके लिये। इस सदुद्योग और कर्त्तव्यपरायणताने शीघ्र ही राज-

सभामें इस मित्रमंडलका सिक्का जमा दिया। उनकी शंकायें, उनके प्रस्ताव, उनके प्रतिवाद, आदरकी दृष्टिसे देखे जाते थे। अधिकारिवर्ग उनकी बातोंको चुटकियोंमें न उड़ा सकते थे। यद्यपि डाक्टर इर्फान अली इस मंडलके मुखपात्र थे, पर यह खुला हुआ भेद था कि प्रेमशङ्कर ही उसके कर्णधार हैं।

इस तरह दो साल बीत गये और यद्यपि मित्रमडलने सभाको मुग्ध कर लिया था, पर अभीतक प्रेमशङ्करको अपना वह प्रस्ताव सभामें पेश करनेका साहस न हुआ जो बहुत दिनोंसे उनके मनमें समाया हुआ था और जिसका उद्देश्य यह था कि जमींदारोंसे असामियोंको बेदखल करनेका अधिकार ले लिया जाय। वह स्वयं जमींदार घरानेके थे, माया जिसे वह पुत्रवत् प्यार करते थे एक बड़ा ताल्लुकेदार हो गया था, ज्वालासिंह भी जमींदार थे, लाला प्रभाशङ्कर जिनको वह पितातुल्य समझते थे, अपने अधिकारोंमें जौभरकी कमी भी न सह सकते थे, इन कारणोंसे वह इस प्रस्तावको सभाके सम्मुख लाते हुए सकुचाते थे। यद्यपि सभामें भूपतियोंकी संख्या काफी थी और संख्याके देखते दबाव और भी ज्यादा था, पर प्रेमशङ्करको सभाका इतना भय न था, जितना अपने सम्बन्धियोंका। इसके साथ ही अपने कर्त्तव्य-मार्गसे विचलित होते हुए उनकी आत्माको दुःख होता था।

एक दिन वह इसी दुविधामें उदास बैठे हुए थे कि मायाशङ्कर एक पत्र लिये हुए आया और बोला—देखिये, बाबू दीपकसिंह सभामें कितना घोर अनर्थ करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। वह सभामें इस आशयका प्रस्ताव लानेवाले हैं कि जमींदारोंको असामियोंसे लगान वसूल करनेके लिये ऐसे अधिकार मिलने चाहिये कि वह अपनी इच्छासे जिस असामीको चाहें बेदखल कर दें। उनके विचारमें जमींदारोंको यह अधिकार मिलनेसे रुपये वसूल करनेमें बड़ी सुविधा हो जायगी। प्रेमशङ्करने उदासीन भावसे कहा—मैं यह पत्र देख चुका हूं।

माया—पर आपने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया ?

प्रेमशंकरने आकाशकी ओर ताकते हुए कहा—अभी तो नहीं दिया।

माया—आप समझते हैं कि सभामें यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जायगा ?

प्रेम—हां, संभव है।

माया—तब तो जमींदार लोग असामियोंको कुचल ही डालेंगे।

प्रेम—हां, और क्या ?

माया—अभीसे इस आन्दोलनकी जड़ काट देनी चाहिये। आप इस पत्रका जवाब दे दें तो बाबू दीपकसिंहको अपना प्रस्ताव सभामें पेश करनेका साहस न हो।

प्रेम—ज्ञानशंकर क्या कहेंगे ?

माया—मैं जहांतक समझता हूं वह इस प्रस्तावका समर्थन न करेंगे।

प्रेम—हां, मुझे भी ऐसी ही आशा है।

मायाशंकर चाचाकी बातोंसे उनकी चित्तवृत्तिको ताड़ गया। वह जबसे अपने इलाकेका दौरा करके लौटा था, अक्सर कृषकोंकी सुदशाके उपाय सोचा करता। इस विषयकी कई किताबें पढ़ी थीं और डाक्टर इर्फानअलीसे भी जिज्ञासा करता रहता था। प्रेमशङ्करको असमंजसमें देखकर उसे बहुत खेद हुआ। वह उनसे तो और कुछ न कह सका, पर उस पत्रका प्रतिवाद करनेके लिये उसका मन अधीर हो गया। आजतक उसने कभी समाचारपत्रोंके लिये कोई लेख न लिखा था, डरता था कि लिखते बने या न बने, सम्पादक छापे या न छापे। दो तीन दिन वह इसी आगा-पीछामें पड़ा रहा। अंतमें उसने उत्तर लिखा और कुछ सकुचाते, कुछ डरते डाक्टर इर्फानअलीको दिखाने ले गया। डाक्टर महोदयने लेख पढ़ा तो चकित होकर पूछा—यह सब तुम्हींने लिखा है ?

माया—जी हां, लिखा तो है, पर बना नहीं।

इर्फान—वाह ! इससे अच्छा तो मैं नहीं लिख सकता। यह सिफत तुम्हे बाबू ज्ञानशंकरसे विरासतमें मिली है।

माया—तो भेज दूं, छप जायगा ?

इर्फान —छपेगा क्यों नहीं ? मैं खुद भेज देता हूं।

प्रेमशंकर रोज पत्रोंको ध्यानसे देखते कि दीपकसिंहके पत्रका किसीने उत्तर दिया या नहीं, पर ८, १० दिन बीत गये और आशा न पूरी हुई। कई बार उनकी इच्छा हुई कि कल्पित नामसे इस लेखका उत्तर दूं, लेकिन कुछ तो अवकाश न मिला, कुछ चित्तकी दशा अनिश्चित रही, न लिख सके। बारहवें दिन उन्होंने पत्र खोला तो मायाशंकरका लेख नजर आया। आद्योपान्त पढ़ गये। हृदयमें एक गर्वपूर्ण उल्लासका आवेग हुआ। तुरन्त श्रद्धाके पास गये और लेख पढ़ सुनाया। फिर इर्फानअलीके पास गये। उन्होंने पूछा, "कोई नई खबर है क्या ?"

प्रेम—आपने देखा नहीं, मायाने दीपकसिंहके पत्रका कैसा युक्तिपूर्ण उत्तर दिया है ?

इर्फान—जी हां, देखा। मैं तो आपसे पूछने आ रहा था कि यह मायाहीने लिखा है या आपने कुछ मदद की है।

प्रेम—मुझे तो खबर भी नहीं, उसीने लिखा होगा।

इर्फान—तो उसको मुबारकबाद देनी चाहिये, बुलाऊं ?

प्रेम—जी नहीं, उसके इस जोशको दबानेकी जरूरत है। ज्ञानशंकर यह लेख देखकर रोवेंगे। सारा इलजाम मेरे ऊपर आयेगा। कहेंगे कि आपने लड़केको बहका दिया, पर मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि मैंने उसे यह पत्र लिखनेके लिये इशारातक नहीं किया। इसी बदगुमानीके डरसे मैंने खुद नहीं लिखा।

इर्फान—आप यह इलजाम मेरे सिर रख दीजियेगा। मैं बड़ी खुशीसे इसे ले लूंगा।

प्रेम—कल उनका कोपपत्र आ जायगा। मायाने मेरे साथ अच्छा सलूक नहीं किया।

इर्फान—भाभी साहिबाका क्या ख्याल है ?

प्रेम—उनकी कुछ न पूछिये। वह तो इस खुशीमें दावत करना चाहती हैं।

प्रेमशङ्करका अनुमान अक्षरशः सत्य निकला। तीसरे दिन ज्ञानशङ्करका कोपपत्र आ पहुंचा। आशय भी यही था—मुझे आपसे ऐसी आशा नहीं थी। साम्यवादके पाठ पढ़ाकर आपने सरल बालकपर घोर अत्याचार किया है, उसका अठारहवां वर्ष पूरा हो रहा है, उसे शीघ्र ही अपने इलाकेका शासनाधिकार मिलनेवाला है, मैं इस महीनेके अन्ततक इन्हीं तैयारियोंके लिये आनेवाला हूं, हिज एक्सीलेन्सी गवर्नर महोदय स्वयं उसे राज्य तिलक देनेके लिये पधारनेवाले हैं। इस मृदुसंगीतको इस बेसुरे रागने चौपट कर दिया। आपको अपने प्रजावादका बीज किसी और खेतमें बोना चाहिये था। आपने अपने शिक्षाधिकारका खेदजनक दुरुपयोग किया है। अब मुझपर दया कर मायाको मेरे पास भेज दीजिये। मैं नहीं चाहता कि अब वह एक क्षण भी वहां और रहे। अभिषेकतक मैं उसे अपने साथ रखूंगा। मुझे भय है कि वहां रहकर वह कोई और उपद्रव न कर बैठे… …अस्तु।

संध्याकी गाड़ीसे मायाशङ्करने लखनऊको प्रस्थान किया।

६५

महाशय ज्ञानशङ्करका भवन आज किसी कविकल्पनाकी भांति अलंकृत हो रहा है। आज वह दिन आ गया है जिसके इन्तजारमें एक युग बीत गया। प्रभुत्व और ऐश्वर्य्यका मनोहर स्वप्न पूरा हो गया है, मायाशङ्करके तिलकोत्सवका शुभ मुहूर्त्त आ पहुँचा है। बंगलेके सामने एक विशाल प्रशस्त मण्डप तना हुआ है। उसकी सजावटके लिये लखनऊके चतुर फर्राश बुलाये गये हैं। मंच गंगा-जमुनी कुरसियोंसे जगमगा रहा है। चारों तरफ अनुपम शोभा है। गोरखपूर, लखनऊ और बनारसके मान्य पुरुष

उपस्थित हैं। दीवान-खाना, मकान, बंगला सब मेहमानोंसे भरा हुआ है। एक ओर फौजी बाजा है, दूसरी ओर बनारसके कुशल शहनाईवाले बैठे हैं। एक दूसरे शामियानेमें नाटक खेलनेकी तैयारियां हो रही हैं। मित्रभवनके छात्र अपना अभिनय-कौशल दिखायेंगे। डाक्टर प्रियनाथका संगीतसमाज अपने जौहर दिखायेगा। लाला प्रभाशंकर मेहमानोंके आदर सत्कारमें प्रवृत्त हैं। दोनों रियासतोंके देहातोंसे सैकड़ों नम्बरदार और मुखिया आये हुए हैं। लखनपुरने भी अपने प्रतिनिधि भेजे हैं। यह सब ग्रामीण सज्जन प्रेमशंकरके मेहमान हैं। कादिरखां, दुखरन भगत, डपटसिंह सब आज कैसरीबाना धारण किये हुए हैं। वह आज अपने कारावास-जीवनपर एक नक्ल करेंगे। सैयद ईजाद हुसेनने एक जोरदार कसीदा लिखा है। इत्तहादी यतीमखानेके लड़के हरी हरी झंडियां लिये मायाशंकरका स्वागत करनेके लिये खड़े हैं। अंग्रेज मेहमानोंका स्थान अलग है। वह भी एक एक करके आते जाते हैं। उनके सेवा-सत्कारका भार डाक्टर इर्फान अलीने लिया है। उन लोगोंके मनोरंजनके लिये प्रोफेसर रिचर्डसन कलकत्तेसे बुलाये गये हैं, जिनका गानविद्यामें कोई सानी नहीं है। बाबू ज्ञानशंकर गवर्नर महोदयके स्वागतकी तैयारियोंमें मग्न हैं।

संध्याका समय था। वसन्तकी शुभ्र, सुखद समीर चल रही थी। लोग गवर्नरका स्वागत करनेके लिये स्टेशनकी तरफ चले। ज्ञानशङ्करका हाथी सबसे आगे था। पीछे पीछे बैण्ड बजता जा रहा था। स्टेशनपर पहलेहीसे फूलोंका ढेर लगा दिया गया था। ज्योंही गवर्नरकी स्पेशल आयी और वह गाड़ीसे उतरे, उनपर फूलोंकी वर्षा हुई। उन्हें एक सुसज्जित फिटनपर बिठाया गया। जलूस चला। आगे आगे हाथियोंकी माला थी। उसके पीछे राजपूतोंकी एक रेजीमेंट थी। फौजके बाद गवर्नर महोदयकी फिटन थी, जिसपर कारचोबीका छत्र

प्रेमशंकर सामने बैठे हुए उसके संकटपर अधीर हो रहे थे। सहसा मायाशंकरकी निगाह उनपर पड़ गयी। इस निगाहने उसपर वही काम किया जो रुकी हुई गाड़ीपर ललकार करती है। उसकी वाणी जागृत हो गयी। ईश्वर-प्रार्थना और उपस्थित महानुभावोंको धन्यवाद देनेके बाद बोला:—

महाराजा साहब, मैं उन अमूल्य उपदेशोंके लिये अन्तःकरण-से आपका अनुगृहीत हूं जो आपने मेरे आनेवाले कर्त्तव्योंके विषयमें प्रदान किये हैं, और आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं यथासाध्य उन्हें कार्य्यमें परिणत करूंगा। महोदयने कहा है कि ताल्लुकेदार अपनी प्रजाका मित्र, गुरु और सहायक है। बड़ी विनयके साथ निवेदन करूंगा कि वह इतना ही नहीं, कुछ और भी है, वह अपनी प्रजाका सेवक भी है। यही उसके अस्तित्व-का उद्देश्य और हेतु है, अन्यथा संसारमें उसकी कोई जरूरत न थी, उसके विना समाजके संगठनमें कोई बाधा न पड़ती। वह इसलिये नहीं है कि प्रजाके पसीनेकी कमाईको विलास और विषय-भोगमें उड़ाये, उनके टूटे-फूटे झोपड़ोंके सामने अपना ऊंचा महल खड़ा करे, उनकी नग्नताको अपने रत्नजटित वस्त्रोंसे अपमानित करे, उनकी संतोषमय सरलताको अपने पार्थिव वैभवसे लज्जित करे, अपनी स्वादलिप्सासे उनकी क्षुधा-पीड़ाका उपहास करे। अपने स्वत्वोंपर जान देता हो, पर अपने कर्त्तव्यसे अनभिज्ञ हो। ऐसे निरङ्कुश प्राणियोंसे प्रजाकी जितनी जल्द मुक्ति हो, उनका भार प्रजाके सिरसे जितनी ही जल्द दूर हो, उतना ही अच्छा है।

विज्ञ सज्जनो, मुझे यह मिथ्याभिमान नहीं है कि मैं इन इलाकोंका मालिक हूं। पूर्व संस्कार और सौभाग्यने मुझे ऐसी पवित्र, उन्नत, दिव्य आत्माओंकी सत्संगतिसे उपकृत होनेका अवसर दिया है कि अगर यह भ्रम, यह ममत्व एक क्षणके लिये भी मेरे मनमें आता तो मैं अपनेको अधम और अक्षम्य समझता।

भूमि या तो ईश्वरकी है जिसने इसकी सृष्टि की, या किसानकी जो ईश्वरीय इच्छाके अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देशकी रक्षा करता है, इसलिये उसे किसानोंसे कर लेनेका अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूपमें ले, या कोई इससे कम आपत्ति-जनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणीको मीरास, मिल्कियत, जायदाद, अधिकारके नामपर किसानोंको अपना भोग्यपदार्थ बनानेकी स्वच्छन्दता दी जाती है तो इस प्रथाको वर्तमान समाज व्यवस्थाका कलंक चिह्न समझना चाहिये।

ज्ञानशंकरके मुंहपर हवाइयां उड़ने लगीं। गवर्नर साहबने भी अनिच्छाभावसे पहलू बदला। रईसोंमें इशारे होने लगे, लोग चकित थे कि इन बातोंका अभिप्राय क्या है। प्रेमशंकर तो मारे शर्मके गड़े जाते थे, हां डाक्टर इर्फानअली और ज्वालासिंहके चेहरे खिले पड़ते थे।

मायाशंकरने जरा दम लेकर फिर कहा—

मुझे भय है कि मेरी बातें कहीं तो अनुपयुक्त और समय-विरुद्ध और कहीं क्रान्तिकारी और विद्रोहमय समझी जायेंगी, लेकिन यह भय मुझे उन विचारोंके प्रकट करनेसे रोक नहीं सकता जो मेरे अनुभवके फल हैं और जिन्हें कार्यरूपमें लानेका मुझे सुअवसर मिला है। मेरी धारणा है कि मुझे किसानोंकी गर्दनोंपर अपना जुआ रखनेका कोई अधिकार नहीं है। यह मेरी नैतिक दुर्बलता और भीरुता होगी अगर मैं अपने सिद्धान्तका भोगलिप्सापर बलिदान कर दूं। अपनी ही दृष्टिमें पतित होकर कौन जीना पसन्द करेगा? मैं आप सब सज्जनोंके सम्मुख उन अधिकारों और स्वत्वोंका त्याग करता हूं जो प्रथा, नियम और समाजव्यवस्थाने मुझे दिये हैं। मैं अपनी प्रजाको अपने अधिकारोंके बन्धनसे मुक्त करता हूं। वह न मेरे असामी हैं, न मैं उनका ताल्लुकेदार हूं। वह सब सज्जन मेरे मित्र हैं, मेरे भाई

हैं। आजसे वह अपनी जोतके स्वयं जमींदार हैं। अब उन्हें मेरे कारिन्दोंके अन्याय और मेरी स्वार्थ-भक्तिकी यन्त्रणायें न सहनी पड़ेंगी। वह इजाफे एखराज, बेगारकी विडम्बनाओंसे निवृत्त हो गये। यह न समझिये कि मैंने किसी आवेगके वशीभूत होकर यह निश्चय किया है। नहीं, मैंने उसी समय यह संकल्प किया जब अपने इलाकोंका दौरा पूरा कर चुका। आपको मुक्त करके मैं स्वयं मुक्त हो गया, अब मैं अपना स्वामी हूं, मेरी आत्मा स्वच्छन्द है। अब मुझे किसीके सामने घुटने टेकनेकी जरूरत नहीं। इस दलालीकी बदौलत मुझे अपनी आत्मापर कितने अन्याय करने पड़ते, इसका मुझे कुछ थोड़ा अनुभव हो चुका है। मैं ईश्वरको धन्यवाद देता हूं कि उसने मुझे इस आत्मपतन-से बचा लिया। मेरा अपने समस्त भाइयोंसे निवेदन है कि वह एक महीनेके अन्दर मेरे मुखतारके पास आकर अपने अपने हिस्सेका सरकारी लगान पूछ लें और वह रकम खजाने-में जमा कर दें। मैं श्रद्धेय डाक्टर इर्फानअलीसे प्रार्थना करता हूं कि वह इस विषयमें मेरी सहायता करें और जाब्ते और कानूनकी जटिल समस्याओंको ते करनेकी व्यवस्था करें। मुझे आशा है कि मेरे समस्त भ्रातृवर्ग आपसमें प्रेमसे रहेंगे और जरा-जरासी बातोंके लिये अदालतकी शरण न लेंगे। पर-मात्मा आपके हृदयमें सहिष्णुता, सद्भाव और सुविचार उत्पन्न करें और आपको अपने नये कर्त्तव्योंका पालन करनेको क्षमता प्रदान करें। हां, मैं यह जता देना चाहता हूं कि आप अपनी जमीन असामियोंको नफेपर न उठा सकेंगे। यदि आप ऐसा करेंगे, तो मेरे साथ घोर अन्याय होगा, क्योंकि जिन बुराइयोंको मैं मिटाना चाहता हूं आप उन्हींका प्रचार करेंगे। आपको प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि आप किसी दशामें भी इस व्यवहारसे लाभ न उठायेंगे, असामियोंसे नफा लेना हराम समझेंगे।

मायाशंकर ज्योंही अपना कथन समाप्त करके अपनी जगह